प्रकाशक :—

आर. के. भट्ट,

सस्कृत - चिकित्सा (जयपुर),

सुरेन्द्र निवास, दादाभाई रोड, विले पार्ले (पश्चिम),

मुंबई नं. ५६

पुस्तक - प्राप्तिस्थान –

१ प्रकाशक के उपरोक्त-पते से.

२ श्रीब्रह्मकुमार गिरिजाशकर जोशी, बी कॉम. ज्योतिर्विद्-भास्कर
रायपुर, हजीरानी पोल,
अमदावाद–१

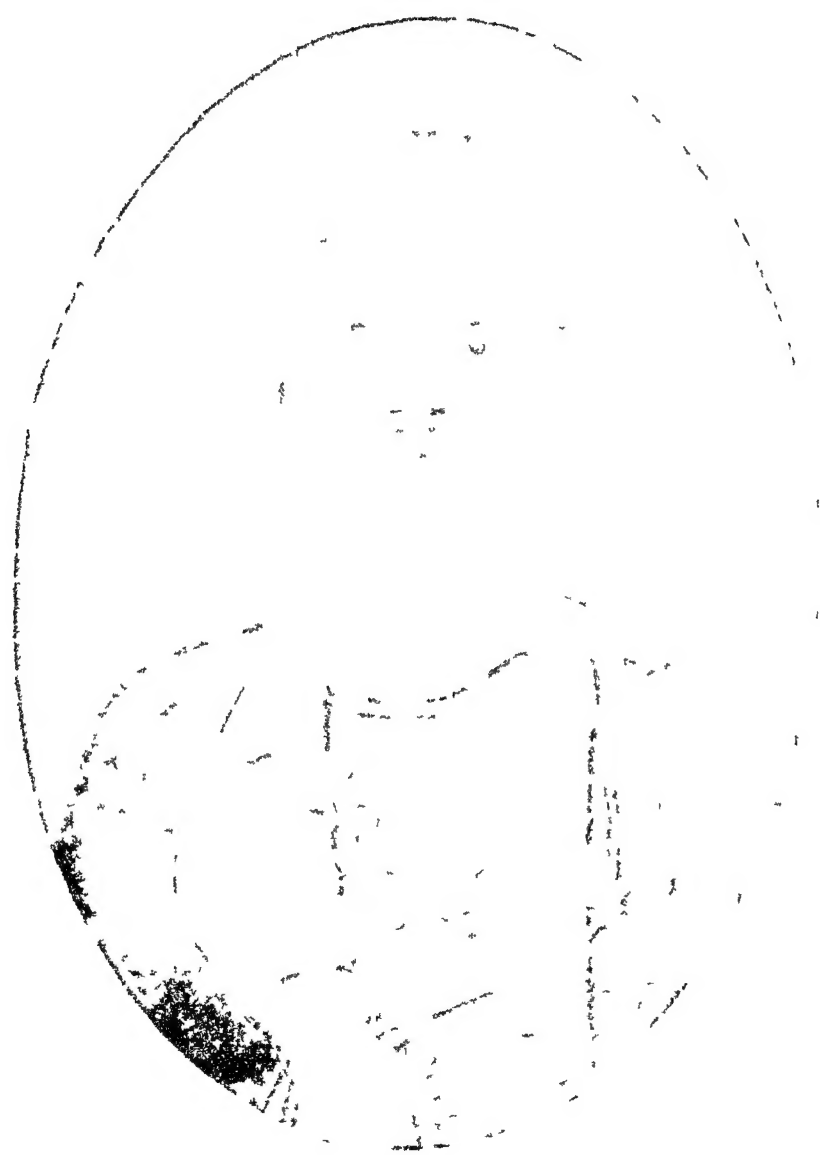
३ भिषगाचार्य श्रीरामप्रकाशस्वामी एम् ए
'आयुर्वेदमार्तण्ड श्रीस्वामिलक्ष्मीरामचिकित्सालय'
जयपुर.

प्रिन्टर :—

लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी,

निर्णयसागर प्रेस, २६।२८ डॉ एम् बी वेलकर स्ट्रीट, मुंबई नं. २

वैद्य-कुल-गुरवः



स्वर्गताः सर्वतंत्रस्वतंत्रा रा. वै. महाकविभट्ट-श्रीकृष्णराममहाभागाः

प्रार्थना

अस्ति श्रीमाधवाधीशकृपाभूरिसमृद्धिमत् ।
प्रभाऽवधीरिताशेषपत्तनं जयपत्तनम् ॥ १ ॥
तत्राप्यपारपाण्डित्यसौजन्यप्रमुखैर्गुणैः ।
विराजमानैर्विद्वद्भिः पाठशाला विराजते ॥ २ ॥
तत्राज्ञानतमोराशिभास्करं नित्यमङ्गलम् ।
बुध कवि द्विजरतिं वैद्यविद्यावृहस्पतिम् ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णरामनामानं गुरुं शरणमाश्रितः ।
समन्त्रमायुषो वेदमविदं तत्प्रसादतः ॥ ४ ॥
क्रमेण तत्र तिस्रोऽपि परीक्षास्ता महत्तराः ।
समुत्तीर्याभवं सद्यस्तत्कृपाभाण्डतद्भुजः ॥ ५ ॥
अनन्तरं तदाज्ञस्सत्कृतेर्गुम्फपूर्वकम् ।
लेखनं शोधनं चैव टिप्पणीं कर्तुमारभे ॥ ६ ॥
पूर्णां निजाज्ञामालोक्य गुरुणा कीर्तिचारुणा ।
प्रसन्नमनसा दत्ता शुभाशिषमवाप्नवम् ॥ ७ ॥
तच्छुभाशी प्रभावेण प्रधानासनमास्थितः ।
अध्यापयामि सततं चिकित्सितपटून् वटून् ॥ ८ ॥
सोऽहं कृताञ्जलिर्भूत्वा भूयो भूयो विमर्षितुम् ।
दोषं सम्प्रार्थये मुग्धो विदग्धप्रवरान् बुधान् ॥ ९ ॥
अल्पीयानपि मान्यो भवति हि लोके महान्तमाश्रित्य ।
गुरुकृतिचरणन्यस्ता मत्कृतिरभितश्चमत्कुरुताम् ॥ १० ॥

विद्वत्कृपाकामः श्रीलक्ष्मीरामः,

जयपुरराजकीयसरकृतपाठशालायामायुर्वेदप्रधानाध्यापकः ।

भूमिका



विदाङ्कुर्वन्तु तावत्सकलविद्यापारपारावारावगतान्तास्तत्रभवन्तो भवन्त इह किल सकलधरणितलललाटायमाने भारते वर्षे तिलकायमानं स्वकान्तितिरस्कृतनिखिलनगराभिमानं श्रीमथुरापुष्कराख्यप्रसिद्धतरक्षेत्रद्वयान्तरालवर्तिमत्स्यदेशप्रतिष्ठमान सर्वसंपत्समेधमानं श्रीसूर्यवंशीयश्रीरामचन्द्रात्मजकुशकुलजमहाराजाधिराजपाल्यमानमस्ति जयपुराभिधानं पुर पुराणम् ।

तत्र श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीप्रतापसिंहदेवराज्यसमयेऽधीतायुर्वेदो गुर्जरभूनिर्जरान्तर्गतभट्टमेवाडजातीय स्वयश.प्रख्यापनकृतमतिर्लक्ष्मीरामनामा सुमतिरहम्मदाबादनामकप्रसिद्धपुटभेदनादाजगाम । एत्य च रोगिनैरोग्यसंपादितप्रसिद्धिर्भूमिपतेरपि समानमवाप । अथ ल्लुरामनामा तदात्मज पितृसमान एवाल्पेनैव कालेन महाराजाधिराजप्राप्तराजवैद्यप्रतिष्ठ. श्रीयशसामेक निधानमभवत् । अथ तस्य पौत्र. श्रीवैद्यकुन्दनरामपुत्र. श्रीकृष्णरामनामा च मे पितासीत् । य खलु—

श्रीमन्माधवसिंहभूपसमितौ लब्धप्रतिष्ठास्पद
साहित्याम्बुधिकुम्भसंभवमुनिर्धन्वन्तरिर्वैद्यके ।
कीर्तिर्यस्य दिगन्तगा च, कवने य कालिदासोपम.
सोऽयं राजभिषग्वरो विजयते श्रीकृष्णशर्मा गुरुः ॥

अथ धर्मादयश्चत्वार पुरुषार्था. पुरुषै स्वस्वजीवनपर्यन्तं संपादनीया इति निखिलागमपुराणधर्मशास्त्रादीना दृढतरसमतम् । ते च सर्वथा शरीरस्थितिनैरोग्याधीना । न हि शरीरस्थितिमन्तरा नैरोग्येण विना च कस्यापि धर्मादिसाधनमुपलभामहे । पूर्वस्मिन्नपि काले दृढतरशरीरसामर्थ्येनैव संपाद्य तपस्तीव्रं महर्षयोऽनेकानेका. सिद्धीरलभन्त । न हि वैद्यशास्त्रमन्तरा शरीरस्थितिनैरोग्ययोः कारणमिति तत्कर्तारो धर्मशास्त्रादिसंहिताकर्तृभ्योऽप्यधिकतरं मान्या वन्दनीयाश्च । वर्तन्ते च चरकसुश्रुतादिसंहिता सर्वलोकमान्या अतिगभीराशया., परंतु तासामतिश्रमसाध्यत्वाद्दुर्विज्ञेयत्वाच्च सर्वेषां नाधुनोपकर्तृत्वं संघटते । किंच सन्ति तादृश्यपि गूढान्यौषधानि लोके यानि संहितादिग्रन्थेष्वलिखितान्यप्यनेकेष्वसाध्येषु रोगेषूपयुज्यन्ते । न हि तेषां दृष्टफलानामद्यावधि संग्रह. कुत्रापि मुद्रितो दृश्यते, इति मत्पितृचरणा यावज्जीवनं यत्र कुत्रापि मिलतो वैद्याञ्जटिलांश्च काव्यकथाकथनेन द्रव्यप्रदानेनाध्यापनेन सेवास्वीकारेण वाऽन्यैश्चानेकैरुपायै. संतोष्य संतोष्य तान्यतिचमत्कारीणि गूढौषधानि संगृह्य संगृह्य चरकादिसंहितातोऽपि परीक्षितान्यनुभूय चौषधान्येकीकृत्येमां सिद्धभेषजमणिमालां गुम्फितवन्त. । यां च—

"उपासते येऽनुभवन्ति ये च ध्यायन्ति ये भेषजसिद्धमालाम् ।
प्रयोगनित्या सुखजीवदानाल्लोकद्वये ते शुभमाप्नुवन्ति" ॥

तन्नाप्यरसाया मालाया न हि लोके आदरणीयता दृश्यते इति काव्यरसोऽपि सिक्त । पञ्चगुच्छात्मकेऽस्मिन् ग्रन्थे प्रथमगुच्छे पूर्वपीठिका, द्वितीयस्मिंश्च पक्वान्नादीनां गुणा , तृतीये च रोगिणश्चेत. स्वास्थ्यसपादनायानेकानि कौतूहलानि, चतुर्थे सर्वरोगोपशमन पञ्चमे रसप्रक्रिया, इति क्रमोऽत्र प्रकटीकृत ।

एतद्ग्रन्थसमाप्तिसमनन्तरमेव कश्चिदसाध्यो व्याधि श्रीपितृचरणानां समुत्थित - येन शरीरस्थितिमविज्ञायैतद्ग्रन्थस्य मुद्रापणं शीघ्र प्रारब्धम् । परतु समाप्तिमकृत्वैवाध्यापयितुमिवाश्विनीकुमारौ दिव गता । स्वर्यातेषु पितृचरणेषु अतीवोपयोगितया एतद्ग्रन्थस्य मुद्रणमत्यावश्यकमिति मत्वा स्वेनैव द्रव्यव्ययेन मयाऽयं ग्रन्थो मुद्रापित । इति मत्परिश्रमसाफल्याय ग्रन्थस्वीकारेण स्वेषामन्येषां चारोग्यसपादनेन मामन्यांश्च कृतार्थयन्तु श्रीमन्त इति विज्ञापयति—

श्रीकृष्णरामात्मजः—व्यासोपाख्यराजवैद्यभट्टगङ्गाधरशर्मा,

जयपुरसस्कृतपाठशालायामायुर्वेदाध्यापक ।

प्रस्तावना

लेखकः — वैद्य - मूर्धन्य प हरिदत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्य

(भूतपूर्व - डायरेक्टर ऑफ आयुर्वेद महाराष्ट्र प्रांत, प्रधान वैद्य तथा अन्वेषक 'यूनीवर्सल हेल्थ् इन्स्टीटयूट्ट हॉस्पिट्ल, मुबई, —सप्रति, डायरेक्टर एम् सी के - आर - हॉस्पिटल, न्यू दिल्ली ।)

'सिद्ध - भेषज - मणिमाला' सस्कृत - साहित्य मे, विशेषत आयुर्वेद - वाङ्मयमे, एक अद्वितीय, अनुपम, अन्यत्र - अलभ्य, सचमुच अमूल्य ग्रंथरत्न है — गुरुपरपरा से प्राप्त, अनुभव सिद्ध - भेषजरूपी मणियो की यह माला ही है। इसके निर्माता वैद्यकुल - गुरु, संस्कृत - वाङ्मय के प्रखर पडित, स्वभाव - सिद्ध - महाकवि, जयपुर के परंपरागत राज्य वैद्य स्व - नामधन्य पुण्यश्लोक श्रीभट्ट श्रीकृष्णरामजी थे ।

महामहिम श्रीभट्टजीने, आयुर्वेद - विज्ञानमय इस ग्रथ - श्रेष्ठ की रचना, अपनी स्वभाव - सिद्ध रमणीय काव्योचित - शैली में की थी । संप्रति, काल - प्रभाव से विलीन होती हुई सस्कृत - भाषा से अनभिज्ञ - आधुनिक - वैद्य - समाज, इन सिद्ध - भेषज - मणियों की अपार समुज्वलताका—उनकी उपादेयताका—यथार्थ मूल्यांकन करने में प्राय असमर्थ हो चुका हे । वैद्योंकी इसी असमर्थता की निवृत्ति के लिये, अपेक्षित प्रकाश - दानमे समर्थ 'विश्वान् नरान् नयति, विश्वे वा नरा एन नयन्ति' — (यास्क) इस अन्वर्थ से युक्त 'वैश्वानर' नामक हिंदी विवृति, ग्रथकारके अभिप्राय का अनुसरण करते हुये, प्रकरणानुसार समयोचित विचार के आधारपर, प्रकट की गयी है ।

किसी भी 'टीका' की उत्तमता की कसौटी 'नामूलं लिख्यते किंचित्-नानपेक्षित मुच्यते' समझी जाती है-अर्थात 'टीका' निर्मूल न हो, साथ ही, वृथा वाक् आडम्बर भी न हो। प्रस्तुत 'वैश्वानर' विवृत्ति में, पाठक यत्र तत्र सर्वत्र, मूल के गुप्त रहस्यों का, गुरुपरंपरा से प्राप्त, अपेक्षित-समुचित-विवरण पायेंगे। तदुपरांत, विवृति-कारने, इस ग्रंथ मे, महर्षि अग्निवेश प्रणीत 'गागर मे सागर' रूप 'अंजननिदानम्' का सक्षिप्त किंतु सुबोध, प्राजल-हिंदी भाषा से भावानुवाद निवेशित करके, कुशलता पूर्वक, 'रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम्' इस प्रसिद्ध-सिद्धान्त के प्रतिपादन के साथ साथ, प्रस्तुत-ग्रथ की उपादेयता में अधिकाधिक अभिवृद्धि करदी है। जहां कहीं मूल-प्रोक्त-प्रयोग में अपेक्षा समझी गयी, वहा, अनुवादक ने अपने पू. पितारूप गुरु से प्राप्त रहस्य को भी, निःसकोच प्रकट किये है। जिज्ञासु को इसके उदाहरण पुस्तक के प्राय प्रत्येक पृष्ठपर प्राप्त होगे-'हाथ कंगन को आरसी क्या ?

मूल ग्रंथ 'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' के निर्माता, विविध काव्य-विधाता, अभिनव-पारद सस्कारानुसधाता, अविराम-कविता-धाम भट्ट श्रीकृष्णरामजी महाकवि ही नही किंतु धन्वन्तरि सम अद्वितीय चिकित्सक एव पारद-सस्कार-प्रकारो में दूसरे सिद्ध नागार्जुन ही थे-'सूते गंधकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः'। सौभाग्यवश, उनके सुपुत्र श्री कलाधर भट्टजी भी पितातुल्य मेधावी, सुकवि तथा पडित-प्रकाड थे। इनको तथा इनके ज्येष्ठ भ्राता षड्-शास्त्री श्री गगाधर भट्टजी को चरक-सहिता अनुलोम-विलोम गति से कठगत थी !!! श्रीकलाधरजीने बाल्यावस्थामे ही अपने पू. पिताजीसे स-रहस्य आयुर्वेदशास्त्रसहित प्रस्तुत ग्रंथ का अध्ययन किया था।

सौभाग्यवश श्रीकलाधर भट्टजीके सुपुत्र श्रीरणछोड कलाधर भट्ट (आर कलाधर भट्ट) भी जन्मसिद्ध आशुकवि तथा सस्कृत-वाङ्मय के उद्भट विद्वान हैं। आपश्री ने महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाप्रसादजी से ज्योतिष-शास्त्र का तथा उनके ही शिष्य श्रीचद्रशेखरजीसे व्याकरण, सांख्य तथा न्यायसहित सपूर्ण सस्कृत-साहित्य का बाल्यावस्थामें ही अध्ययन कर लिया था। इन्होंने अपने पिताश्री से ही विधिवत् समग्र आयुर्वेद शास्त्र पढा है। 'अष्टांग-हृदय' वाग्भट जैसे सुप्रसिद्ध सहिता-ग्रथ आद्योपात स्मृति से ही आप आज भी पढाते है !!! मुंबई का वैद्यसमाज आपकी इस विचक्षण-स्मृति को अजमा चुका है। आप एक अच्छे सफल-चिकित्सक भी है। यही नहीं, अग्रेजी साहित्य मे भी आप एम ए एल एल. बी पद प्राप्त हैं। आप व्यवहार-वाणिज्य-विद्यापटु होते हुये, औद्योगिक कारखानों के स्थापक तथा सचालक हैं। धी एवं श्री समन्वित इस विचक्षण महानुभाव मे अपने पिता एवं पितामह के उत्तम-गुणों का अवतार हुआ है। प्रस्तुत 'सिद्ध-भेषज-मणिमाला' की दुरूहता अच्छे अच्छे संस्कृतज्ञों को भी अखरती है-अतएव इसका उत्तरोत्तर

प्रचार संकुचित हो रहा है। वर्तमान में, 'एकमात्र श्री आर के. भट्टजी ही इसपर अपेक्षित हिंदी टीका लिखकर प्रकाशित करें" ऐसी मेरी विनयोक्ति को स्वीकारकर श्रीभट्टजीने हिंदी टीकायुक्त इस ग्रंथको, भली प्रकार सपादित करके, प्रसिद्ध निर्णय सागर प्रेस मे, स्वकीय द्रव्य-व्यय पूर्वक, उत्तमोत्तम कागजपर छपाई सहित सोत्साह प्रकाशित किया है। अपने इस स्तुत्य कार्य के लिये श्रीभट्टजी, वर्तमान तथा भावी वैद्योद्वारा, धन्यवाद के पात्र हैं।

चरकोक्त पंचाशत्-महाकषायों के गद्य-प्रघट्टकों का उत्तमोत्तम अनुष्टुप्-श्लोकों में सुख-स्मरणीय रमणीय अनुगुंफन, आपकी आशु कवित्वशक्ति के मूर्त उदाहरण रूप से, इस ग्रंथ के अंतिम प्रकरण मे प्रकट है। पाठक महाभाग इससे प्रसन्न होंगे ही। इति शम्

विजयादशमी
स २०२४ नयी दिल्ली } वैद्य हरिदत्त शास्त्री

रा. वै. भट्ट श्री श्रीकृष्णरामजी

मुगल राज्य के चरम-विकास के धुरि-रूप मानसिंह के पुत्र, छत्रपति शिवाजी के समकालीन तथा सम्राट् औरंगजेब के महासेनाधिपति कच्छवंश शिरोमणि जयसिंह ने जयपुर नगर का निर्माण किया था। श्रीजयसिंह विचक्षण प्रतिभासपन्न महापुरुष थे। इन्होने भारत के सुदूर प्रांतो मे से चुनेहुये उत्तमोत्तम कलाकार, कवि, ज्योतिर्विद्, प्राणाचार्य, सगीतज्ञ, स्थपत्य-कला-विशारद, चित्रकार आदि विद्वानों को अपने यहां प्रश्रय दिया था। उनके वंशज महाराजाओने यह संग्रह कार्य गतिमान रखा। परिणामत , जयपुर, भारतीय सस्कृति, सस्कार तथा विद्याओ का, अभीतक, एक सजीव केन्द्र माना जाता है।

उपरोक्त महाराजाके वंशज श्रीप्रतापसिंहदेव के शासनकाल मे, अहमदावाद निवासी, आयुर्वेद-शास्त्रके परम ज्ञाता, वेद-शास्त्रपारगत श्रीव्यास श्रीलक्ष्मीराम भट्टने जयपुर में प्रश्रय प्राप्त किया। हल्दी-घाटी के सुप्रसिद्ध रणप्रांगण मे अपने शौर्य की यशोगाथाओं से समुज्ज्वल भट्ट-मेवाडा जाति के आप ब्राह्मण थे। बप्पा रावल के गुरु श्री हारीत ऋषि भट्ट-जाति के पूर्वज माने जाते हैं। श्रीभट्टलक्ष्मीराम के चिकित्सा नैपुण्य से सु-प्रसन्न महाराजा प्रतापसिंहदेव ने इनका प्रचुर सन्मान किया। इनके पुत्र श्रीलल्लुराम-अपरनाम श्रीविष्णुराम-पिता के समान ही असाधारण प्रतिभा से सपन्न थे। वेदवाङ्मय के साक्षात्-प्रतीक रूप, प्रकृतित. परमउदार एवं दयालु श्रीविष्णुराम के चिकित्सा-शास्त्र में अगाधज्ञान से मुग्ध श्रीप्रतापसिंहदेवने आपश्री को 'राज-वैद्य' पद प्रदान किया। इनके पुत्र, चरित्र में वस्तुत· कुन्दन

श्रीकुन्दनराम अपने पिताके समान ही उद्भट विद्वान थे-आपने यावन चिकित्सा शास्त्र को छन्दोबद्ध किया। 'हिकमत्-मंदारबन्ध' नाम से सुप्रसिद्ध यह काव्यमय शास्त्र इसके निर्माता की विचक्षण प्रतिभा का बोध करा देता है। आयुर्वेद-ज्ञान के प्रकाशद्वारा सपूर्ण भारत को समुद्भासित करनेवाली वर्तमान जयपुर राजकीय-सस्कृत पाठशाला की प्रदीप-शिखा को, इसी पडितप्रकांड ने आयुर्वेद के आद्य-अध्यापक के रूप मे, प्रथम ही प्रथम प्रज्वलित की थी।

श्रीकुन्दनरामजी की प्रथम पत्नी से, क्षीरोदधि से साक्षात् धन्वन्तरि के समान, विक्रमाब्द १९३२ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की पुण्य-तिथि में पुण्यश्लोक श्रीकृष्णरामजी अवतीर्ण हुये। द्वितीय पत्नी से, इनके अनुज 'कविमल्ल' श्रीहरिवल्लभजीने जन्म लिया, जिन्होंने 'जयनगरपंचरगम्, कान्तावक्षोजशतोक्तय' आदि रसमय काव्यो की रचना की। गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्रीआनन्द शकर ध्रुव इनके कुछ कालतक अन्तेवासी रहे थे।

परममेधावी श्रीश्रीकृष्णरामने, बाल्यकाल में ही अपने पूज्यपिताश्री से समग्र आयुर्वेद, व्याकरण, न्याय, वेदात आदि शास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करलिया था। आपने, उस कालके अप्रतिम पंडित श्रीजीवनाथ गुरु से काव्यप्रकाश के आशयसहित सपूर्ण सस्कृत साहित्य का तथा श्रीचन्दनदास साधुसे सगणित छन्दशास्त्र का विशेष अध्ययन किया। इस तरह युवावस्था में पदार्पण करने के साथ ही साथ, धी एव श्री दोनो ने आपका मानो सर्वात्मना वरण कर लिया था।

सर्वतोमुखी विचक्षण प्रतिभा से सपन्न, ज्ञानप्रौढ, पचीस शरदातिक्रात युवक श्रीश्रीकृष्णरामको, उनके पिताश्री कुन्दनरामने, जयपुर-राजकीय-सस्कृत-पाठशाला का, अपना आयुर्वेद अध्यापन कार्यभार सुपुर्द करदिया 'गुणा पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च वय'।

श्रीभट्टजी के अध्यापन नैपुण्यकी कीर्तिगाथा से मुग्ध होकर भारत के दूर दूर प्रांतों से, पजाब, बगाल, नेपाल, बर्मा, सीलोन आदि प्रदेशो से, छात्रसमूह जयपुर आने लगे। आपही के एक पृथक् निवासस्थान में, इनके रहने का, भोजन का तथा अध्ययन का नि.शुल्क सुप्रबंध किया गया। सपत्ति तथा सरस्वती का, मुक्त हस्त एवं मुक्तहृदय से, इस तरह वितरण करने के अतिरिक्त अन्य और कौनसा उपयुक्त विनियोग कहा जा सकता है? पाठशाला मे, पाठशाला से अवकाश मिलने पर, घर मे, अनवरत एकनिष्ठा से श्रीभट्टजी इन ज्ञान-तृषातुरो को अपनी अलौकिक प्रतिभापीयूष से आप्यायित करते रहते थे। आज भी, ऐसी कोई दिशा नहीं, ऐसा कोई देश नहीं, ऐसा नगर नहीं जहां इनकी परिपल्लवित शिष्यपरंपरा उपलब्ध न होती हो। 'न सा दिड् न स देशोऽपि न च तन्नगर क्वचित्-यत्र श्रीकृष्णवैद्यानां शिष्यैर्नैव विजृंभ्यते'। राजस्थानके प्रकाड आयुर्वेदीय विद्वान्-चिकित्सक चूडामणि श्रीश्यामजी तथा भिषगाचार्य श्रीलक्ष्मीराम स्वामीजी-आपही के निकटतम अन्तेवासी थे। पू श्रीभट्टजी के

स्वर्गारोहण उपरांत, उनके शिष्य महानुभावो ने, अपने पूज्य गुरुमहाशय के आयुर्वेद प्रचारकार्य को उसी निष्ठा से यथावत् गतिमान् रखा था। इस शिष्यपरपरा के पांडित्य एव नि स्वार्थ भावना की अप्रकंप्य पार्वतीय नीव पर निर्मित भारतीय आयुर्वेद तथा सस्क्रांत आज अनश्वर बन चुकी है। पू श्रीश्रीकृष्णराम रूपिणी मंदाकिनी मे से नि सरित शिष्यप्रशिष्यरूप अनेको नहरोकी शाखा-प्रशाखाओं से परिसिंचित आयुर्वेद वसुंधरा निरतर शस्यशामला रहेगी। पू भट्टजी के अद्यावधि स्मारक के अभाव मे यह कार्य ही उनका एक अमिट, अमर एवं दिव्य स्मारक बना रहेगा।

'सिद्ध-भेषज मणिमाला' ग्रंथरत्न, पू. श्रीभट्टजीकी, अक्षर से संबध रखनेवाली, कीर्तिमय देह है। इस रूपमे भी उनकी सरस्वती तथा सपत्ति का वितरणकार्य निरतर गतिमान है और रहेगा। पाश्चात्य-चिकित्सा शैलीके प्रारभिक विकासकाल में पू श्रीभट्टजीका जन्म हुआ था। अपनी सद्य.फलदायिनी औषधियों के चमत्कारी प्रभाव से, जनसाधारण, उपरोक्त चिकित्सापद्धति की तरफ आकर्षित हो रहा था। सप्रति, पाश्चात्य-चिकित्सापद्धती के अन्तर्गत शल्यचिकित्सा अत्यधिक विकसित हो रही हे, साथ ही, वैज्ञानिक आधारपर रोगों के निगूढ हेतुओ की शोध करके, उनके सद्य प्रतिकार के लिये अमोघ भेपजो का निर्माण किया जा रहा है। पाश्चात्य चिकित्सा की सर्व प्रियता के अनेको हेतुओ मे से, उपरोक्त हेतुद्वय मुख्य है। प्रश्न यह है कि क्या आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा अपूर्ण थी? क्या आयुर्वेद में रोग का सद्य प्रतिकार करनेवाली औपधियो का अभाव हे? आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा, सुश्रुतकालमे वस्तुत विकसित हो चुकी थी। नासादि-सधान कर्म, सुश्रुतकाल की अपूर्व मौलिक गवेषणा थी। पाश्चात्य-देश की 'प्लास्टिक सर्जरी,' वस्तुत सुश्रुतोक्त शल्यचिकित्सान्तर्गत-सधान-कर्म का एक अंग मात्र है। आयुर्वेद के इस विकसित अंग को अपने मूलस्वरूप में उपस्थित करने की, विशेपतया वर्तमानयुग में, नितात आवश्यकता है।

पू श्रीभट्टजीने, अपने समय में, काय-चिकित्सा-गत रोग का सद्य. प्रतिकार करनेवाली औपधियो के शोध का भगीरथकार्य प्रारभ किया। रोग की सद्यो निवृत्ति के विषय मे आयुर्वेद, आधुनिक पाश्चात्य-चिकित्सा के सिद्धांत से सहमत नहीं है। पाश्चात्य-चिकित्सा, रोग का सद्य. प्रतिकार अवश्य करती है, किंतु, उससे प्राय अन्यविकार उत्पन्न हो जाते है। एक विकार को शमन करनेवाला किंतु अन्यको उत्पन्न कर देनेवाला प्रयोग, आयुर्वेद के मत में, अशुद्ध है। 'प्रयोग शमयेत् व्याधिं योऽन्य-मन्यमुदीरयेत्। नाऽसौ विशुद्ध. शुद्धस्तु शमयेत् यो न कोपयेत्'। 'एतीत्यायु' जो सतत गत्वर-शील हो उसे आयु कहते है। इस गत्वर-शील-अस्थिर आयु को अधिकाधिक स्थिर बनाकर, मानव किस तरह अपने अभीप्सित पदार्थों का यथावत् उपभोग कर सकता है? इसी प्रयोजन को लेकर आयुर्वेद की अवतारणा की गयी। कृत्रिम फुफ्फुसवाला, नकली दंतपंक्तियुक्त, अन्यान्य अंगो से विकल, आयुर्वेदीय

परिभाषा के अनुसार, स्वस्थ नही। इन्द्रियों की स्वस्थता, मानसिक स्वस्थता का हेतु है। मानसिक स्वस्थता की सपूर्णता मे ही, इन्द्रियसमूह की, अपने विषयो से यथावत् रसोपभोग करने की, सामर्थ्य निहित है। अत आयुर्वेद, रोगकी चिकित्सा के साथ साथ रोगी की चिकित्सा पर अधिक भार देता है। रोग की आगति की अपेक्षा उसकी निर्गति-जलौघवत्-अल्पाल्परूप से मानी गयी है। अतः रोग का सहसा निवारण आयुर्वेद को इतना सम्मत नहीं है। तथापि, अमुक अवस्थाओ मे, स्वसिद्धांत में अवरोध न आता हो वहां, शीघ्र-चिकित्सा का आदेश भी आयुर्वेदने दिया है। 'धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवत् शीघ्रकारि यत्'।

रोग के आशु-निवारक प्रयोगों का वर्णन सहिताग्रथो में मिलता अवश्य है, किंतु सग्रहरूप से नहीं, यत्र तत्र प्रकीर्णरूप से ही उपलब्ध होता है-जैसे अतिसार चिकित्सा के अनेको प्रयागो मे से कौनसा आशुफलप्रद है? कौनसा नहीं? इसका निर्णय प्राय नही किया जा सका। रोगियोपर सतत प्रयोग के द्वारा ही औषध के प्रभाव की प्रतीति निर्णयात्मक रूप से की जाती है। इस प्रकारकी गवेषणा के अभाव मे, अनुभूत योगोंका शास्त्रीय आलेखन आयुर्वेद मे अल्पप्रमाण से ही उपलब्ध होता है। 'सिद्ध-भेपज-मणिमाला' इस क्षेत्र मे, एक सर्वांग, नूतन शास्त्रीय-ग्रंथ है। रोग के सद्य प्रतिकार के सदर्भ मे, आयुर्वेद के जो निःसदिग्ध-वैज्ञानिक सिद्धांत है, उनके अनुरूप-अविरुद्ध-मौलिक-प्रयोगो का सकलन इस ग्रथ मे हुआ है, साथ ही शास्त्रीय प्रयोगों को भी, जहां आवश्यकता हुई, परिवर्तित अथवा सशोधित करके इसमें स्थान दिया गया है। आयुर्वेद के मूर्तिमान् विग्रह पू श्रीभट्टजी में, उनका हृदय एक आदर्शछात्र की अतृप्त-जिज्ञासा वृत्ति से समन्वित था। जिज्ञासा मानव के विधायक तत्व के प्रकर्ष की जननी है, तथा उसकी मौलिक-वृत्तियों को सस्फुरित रखती है। 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' आयुर्वेदीय आशु चिकित्सा का, तत्सबंधी औषधीय द्रव्यो का तथा पारदादिरस प्रक्रियाओ का मौलिक शास्त्र है। वातादि दोषो को शमन एवं कोपन करनेवाले, तथा उनके प्रति उदासीन रहनेवाले द्रव्यो की विवेचना, तथा साथ ही, इस प्रकार के कुल सत्तावन द्रव्यों की शोध, श्रीभट्टजी की, आयुर्वेद जगतको, अपनी ही एक गवेषणात्मक मौलिक भेट है।

तदुपरात, आयुर्वेदोक्त औपधीय द्रव्यों को भिन्न भिन्न वर्गों मे विभक्त करके, प्रत्येक वर्ग मे, रोग-प्रतिरोध मे प्रभावातिशय दर्शाने वाले विशिष्ट द्रव्यों का ही इस ग्रंथ में, सकलन किया गया है। सतत अनुसधानपूर्वक औषधीय द्रव्यों का यह सिद्ध संचयन पू श्रीभट्टजी के अगाध परिश्रम एवं मति-वैमल्य का निगूढ-परिचय करा देता है। रसों की तथा दोषों की परम-जटिल-विस्तार विधि को जिस सरल, सुदर एवं चमत्कार पूर्ण शैली में समझाया गया है वह अन्यत्र सहिता-ग्रंथों मे विरल रूपसे ही उपलब्ध होती है।

चतुर्थ-गुच्छ में सर्व रोगोपशमन के सिद्ध प्रयोगों का सकलन है। प्रत्येक योग अनुभूत है। 'सिद्ध-भेपज-मणि-माला' गत इन योगो के, मेरे पास, पू श्रीभट्टजी के श्रीहस्त से आलेखित अनेको जीर्ण-पत्र है। प्रत्येक योग के नीचे प्राय. इस तरह लिखा हुआ मिलता है-'अजमा कर देख लीनी छे-सही छे'। इससे इतना सुनिश्चित है कि इन योगों को, उनकी, यथा रोगपर प्रयोगद्वारा, सिद्धि की दृढ प्रतीति होनेपर ही पद्य-बद्ध करके, इस ग्रंथ में, स्थान दिया गया है। ये योग अत्यंत सरल है। इनके घटक द्रव्य प्राय. सर्वत्र अनायास उपलब्ध होनेवाले अल्प-व्यय साध्य है। घर में या वन मे, वैद्य इन योगोद्वारा सस्ती किंतु सद्य फलदायिनी चिकित्सा कर सकता है। इस ग्रथरत्न को अपने हस्तगत रखनेवाला वैद्य वस्तुत· 'पीयूष-पाणि' है।

शास्त्रीय योगो का निगूढ-रहस्य, पू श्रीभट्टजीने गुरु परपरा से भी प्राप्त किया था-तदुपरांत, अन्यान्य चमत्कारिक-प्रयोगो को उन्होंनें, साधुओं से तथा अनुभवी वृद्धजनों से सेवा-शुश्रूपाद्वारा, अपने शिष्यों से स्नेहद्वारा, ग्रामीण जनो से द्रव्य, उपकार, प्रभाव, परिश्रम तथा अन्यान्य साधनोद्वारा, प्राप्त किये थे। जिन जिन महानुभावो से इस तरह के योग प्राप्त हुये, उनके नामों का उल्लेख उन योगों के साथ करके, पू श्रीभट्टजी उनको भी अपने ग्रंथ के साथ अमर कर गये। पू श्रीभट्टजी की कृतज्ञतामयी यह मनोवृत्ति वैद्य-समाज का एक अनुकरणीय गौरवान्वित आदर्श है।

इसी तरह, पंचम-गुच्छ-गत पारद-प्रक्रिया पर भी, आपश्री ने, अपनी निजी मौलिक पद्धति प्रस्तुत की है। पारद की, गर्भयन्त्र द्वारा अन्तर्धूम 'जारणा' विधि, तेजो-जल का निर्माण, सौर को वह्नि-क्षम बनाने का प्रकार आदि इस सदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। यह सिद्ध वैद्य, स्वयं अपनी ही पद्धतिद्वारा, पारद-प्रधान सभी रसो का निर्माण करता था। शास्त्रो का आधार लेकर, अध्ययनात्मक व्याख्या कर देना एक बात है। किंतु, शास्त्रोल्लिखित प्रयोग को क्रियात्मक रूप में प्रत्यक्ष करके, प्रत्यक्षी-कृत उसी सत्य को, उसके मौलिक स्वरूप मे, अपने अनुभव का पुट लगाकर प्रस्तुत करने से, आर्ष-शास्त्रों के प्रति श्रद्धा में अभिवृद्धि होती है-और इसी में, उस ज्ञान को प्रस्तुत करने वाला अपनी कृतकृत्यता समझता है। आत्मज्ञान से साक्षात् करने वाले, ब्रह्म-सूत्र के व्याख्याता श्रीशकराचार्य, वेदव्यास से कदापि न्यून नही है। आयुर्वेद विज्ञान-वारिधि स्व श्रीभट्टजी नागार्जुनादि रस वैज्ञानिकों की समकक्षा के उद्भट विद्वान् थे। क्योंकि, वीसवीं शताब्दि में सर्व प्रथम यही एक ऐसा रस-विद्या-वैज्ञानिक रहा, जिसने रस-ज्ञान के विपय मे अपना यह परिचय दिया-'सूते गधक-जारणावधिकृता येन क्रिया नैकश "।

आयुर्वेद शास्त्र का विवेचन, चरकसहितादि के अमुक अंशों को छोडकर, अधिकांश में पद्य-बद्ध मिलता है। कदाच्, छात्र की सुख-स्मृति के लिये इस शैली का आग्रह रहा हो। किंतु, आयुर्वेद कदापि काव्य का विषय नहीं बनाया जा सकता

यदि बनाया जा सकता है तो 'संस्कृत-वाङ्मय' में यह एक नूतन एवं अद्भुत शैली मानी जायेगी। पू. श्रीभट्टजी की जन्मसिद्ध काव्य-प्रतिभा के विषय में पृथक् निबंध लिखना होगा। कच्छ-वंश आदि महाकाव्यों के प्रणेता श्री श्रीकृष्णरामजी 'अनामिका सार्थवती बभूव' इस उक्ति के अपवाद रूप हैं। वह अपने युग के वस्तुतः कालिदास ही थे। श्रीभट्टजीके समकालीन महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाप्रसादजी ने उनके विषय में 'कवने यः कालिदासोपम.' कह कर उनका यथानुरूप परिचय दिया था।

आयुर्वेद को काव्य का विषय सर्वप्रथम पू. श्रीभट्टजी ने बनाया। इस प्रसग में, आपका 'पलाण्डुराजशतकम्' आयुर्वेद-वाङ्मय में एक परम नूतन एवं रमणीय काव्य है। काव्यारभ कन्द-प्रकांड पलाण्डुराज के दिग्विजय-प्रस्थान वर्णन से किया गया है। समग्र कदजाति के एकमात्र अधिपति पलाण्डु जो श्वेतवर्ण हो गये वह अपने ही यशोविपाक से!!! 'प्रतापखर्वीकृतसर्वकन्दो यशोविपाकेन विशिष्य पाण्डु।' पलाण्डुराज के सेनापति, विभग्न का सधान करने में निपुण, अमृत-बिन्दु से उत्पन्न अत एव रस-मय स्वयं रसोन हैं—'समन्ततो मर्मपिनद्धवर्मा विभग्नसधानविधाविदग्ध। पफाण पीयूषपृषत्समुत्थो रस दधानो मिषतां रसोन'। अर्श सहार में कृत प्रतिज्ञ परमवीर सूरण, सेनाग्रभाग को अलंकृत कर रहे हैं—'सामर्षमर्शोवध-बद्धदीक्षो विरूढशस्त्रव्रणकर्कशाङ्गः। स सूरणः सद्गुणपूरणश्रीरमुष्य नासीरमलञ्चकार'। ऊटोपर आरूढ, दोषत्रय-नाशक बाल 'मूलक' सेना के साथ साथ प्रस्थान कर रहे हैं। क्रमेलकानामुपरि क्रमेण विस्तार्य हंसच्छदतूलकानि। आरुह्य दोषत्रयघस्मराणि प्रतस्थिरे बालकमूलकानि'। कितना रमणीय है यह काव्य!!! पलाण्डु, रसोन आदि कदवर्गीय-शाक मात्र न रहकर, अपने अपने विशिष्ट-गुणो से युक्त मानो सजीव योद्धाओं के रूप से उपस्थित हो गये हो!!! भाव के साथ भाषा का मधुर समिश्रण दर्शनीय है। आपश्री के सभी काव्यों मे से, अक्षर अक्षर मे से, पद पद मे से एक अनिर्वचनीय मधुरता, सजीवता एवं अनूठापन छलकता हुआ प्रतीत होगा।

इनकी साक्षात् प्रतीति के लिये 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' का कोई भी पद्य ले सकते है। यह ग्रंथ स्वयं काव्यमय आयुर्वेद है।

'कवित्व' साधनोंद्वारा प्राप्त की जानेवाली वस्तु नहीं है—यह एक स्वयंभू मानसिक वृत्ति है। नैसर्गिकी प्रतिभा के साथ साथ निरतर अध्ययनशीलता से ज्ञान की अतिविमलताद्वारा काव्य की संपदा मे वृद्धि की जा सकती है। किंतु काव्य-गत 'चारुत्व' की निष्पत्ति के लिये 'व्युत्पत्ति' की प्राप्ति इतनी सुलभ नहीं।

'नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतञ्च बहु निर्मलम्। अमन्दश्चाभियोगोऽस्या कारणं काव्यसंपद.॥'
कवित्वं जायते शक्तिर्वर्द्धतेऽभ्यासयोगत.। तत्र चारुत्वनिष्पत्तौ व्युत्पत्तिस्तु गरीयसी॥

व्युत्पत्ति समन्वित ही महाकवि कहलाता है। पू. श्रीभट्टजी महाकवि थे। 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला', 'चारुत्व' के प्राचुर्य से मानों उभराती है। यवानी

(अजवायन) कृशोदरी यवनी के समान 'तीक्ष्ण' होती हुई भी 'रुचिकर' क्यो न होगी?

'तीक्ष्णाऽपि रुच्या नवला सवातला प्रदीपनी शुक्रहरी कृशोदरी।
हिनस्ति जंतून् द्रवभावभाविनी लघुर्यवानी यवनीव भासते'।

सिद्ध-भेषज-मणि-माला मे ऐसा एक भी पद्य नहीं जो अनप्रास रहित हो—यमक, अर्थालंकार, सामयिक अनूठि उपमाये, संगीतमय भाषा मे मनोगतभाव की अभिव्यक्ति, नैसर्गिक कोमलकांत पदावलि आदि काव्यसंपदा से चकचकित यह मणिमाला वस्तुत. परम-स्पृहणीय वन गयी है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'पलाण्डुकन्दपानीयमानीय द्विपलं पिबेत्'। 'कर्षन्ति कार्श्यं क्रमश. कृशानो'।
'पित्तास्त्रमारुतविदाहरुजोविदारी-स्तन्या विदारयति दाररतिं ददाति'।
'कटुरसपरिपुष्टं तिक्तभावेन जुष्टं, पवनविजयतुष्ट शुक्रकारि प्रदिष्टम्।
विधमति वहु दुष्टं श्लेष्मवीसर्पकुष्ठं, श्वसनकसनकष्टं टु सह हन्ति 'कुष्ठम्'।

'भक्तं मिथोविभक्तं साधय सितशर्करासमासक्तम्।
तद्धरति-रक्तपित्तं वेश्याचित्त यथा वित्तम्'॥

'अरुणधवलचलकिसलयनवकिसलयपुटविपक्वफणिफेनम्।
अतिसरणमसुहरणमपि हरिस्मरणमिव रुणद्धि ससरणम्'॥

'रसायन सर्वरसो विशारद पराक्रमासौ भजता विहारद.।
त्रिदोषनुद्योगवहोऽर्तिपारद. करोति कुष्ठक्षपणानि पारद'।

"गुटकर्पूरवटिका श्वास सद्यो व्यपोहति। प्रभा प्रभाकरस्येव सकोचं सरसीरुहाम्'॥

'शूलं समूलं हरति प्रसह्य कूलं यथा निर्झरिणी-प्रवाह'।
'हरन्ति मेहानपि दीर्घकालजान्-गुरूपदेशा दृढसशयानिव'॥

'नस्य कृतं मत्कुणजैरसृग्भिर्हरत्यपस्मारमुदग्रवेगम्।
मदीयकाव्यं सितया समान वृथाभिमान द्विषता कवीनाम्'॥

'निहन्ति जठरान्तक कृतघ्न इव सौहृदम्'।
'म ु मधुर गव्य पय कुन्दसहोदरदन्ति। त्रुटिमधुकप्रतिसारितं कण्ठगद लघुहन्ति'॥
'करालङ्कृतावग्रतो विस्फुरन्त्यामपेक्षा भवेत् किं पुनर्दर्पणस्य'।

'खलजनता स्तुतिभिरहो विनीतभाव दधाति न क्वापि।
नवनीतभाविता किं लोहशलाका मृदुर्भवति'॥

'हेमन्तकालेऽत्र वियोगिकाले शीतस्य रुक् पश्य न तस्य यस्य।
अङ्के हसन्ती दयिता हसन्ती पार्श्वे हसन्ती वसनानि सन्ति'॥

कोमलकान्त पदावलियुक्त अतिसार के असाध्य लक्षणोवाली समस्यापूर्ति पठनीय है.—

'सोऽसाध्य परिकीर्तितोऽतिसृतिमान् यस्येति सार्येतविण्
नीलाभाऽधिकनिर्मलाग्रविलसत्सौरभ्यसभारयुक्।

अन्तर्दुष्टितयाऽनिविभ्रमलिना चक्रा गिरासन्तुभि-
र्जम्भृतन जलबिन्दुवत जन्मानन जन्मान्तन जाल्मत' ॥

जिस वृत्त में रचना की गई हो उसमें तद्वृत्तनामोल्लेखन-रूप रचना कौशल्य दर्शनीय है –

'गोमूत्रे क्वथित स्नुहीपयसि च न्यस्तमत' क्षालितो-
मल्ल सन्मदिराभिषेकनिचित सिंहोऽग्निना खर्परे ।
मान्द्यश्लेष्मसमीररुक्कृमनरुग्गामागहिपाज्वर-
क्ष्वेड्यालद्रुकुरङ्गकेषु कुरुते शार्दूलविक्रीडितम्' ॥

इत्यादि। शिखरिणी छंद में शिखरिणी (दधि-निर्मित-लेह) का वर्णन कितना रुचिकर बन गया है –

मरुल्लीला लीना भवति च नवीना रुचिरलं-
समुद्रिक्तं पित्तं मलिनयति चित्तं क्षयभिया ।
बलास. किं हास्य व्रजति बलतां वदनानि यलं-
समीक्ष्योच्चैरेलोपणशशिवयस्या शिखरिणीम् ॥

आयुर्वेद के निगूढ ज्ञान की प्राप्ति के साथ साथ दुर्लभ काव्य-रस की आनन्दानुभूति के लिये, अब, आप 'सिद्ध-भेषज-मणि-माला' को ही क्यो न धारण करें?

पू. श्रीभट्टजी ने अपने अगाध ज्ञानको, देव-वाणी-पर अपने अप्रतिम वर्चस्व के अनुरूप शैली में अभिव्यक्त किया है-अत यह ग्रंथ अपने आपको समझाने में, समझने वाले के संपूर्ण पाण्डित्य की एकाग्रता माग लेता है। जिन्होंने इस ग्रंथ का गुरुपरंपरा से अध्ययन किया है वही इसे समझ सकते है-अन्य कदापि नहीं। बहुत से प्रयोग ऐसे हैं जिनका संपूर्ण रहस्योद्घाटन नहीं किया गया। अमुक प्रयोग कूट-पद में कह गये हैं-तो अमुक प्रयोग के घटक-द्रव्य अनुक्त रहे हैं। अमुक स्थलोपर औषधीय द्रव्यों के क्लिष्टातिक्लिष्ट पर्यायो का उपयोग किया गया है—'यथा मानदल, रूक्ष, घननाद, त्रिवार्षिक आदि जिसका टिप्पणी मे भी स्पष्टीकरण नहीं मिलता। औषधियो के मान 'कटपयादिक्रम' को जानने वाला ही समझ सकता हे। कहीं 'गुरूक्त-विधि' अनुक्त ही रही हे तो कहीं कहीं अर्थ तिरोहित सा रहा है।

मेरे मत मे, इस ग्रंथका संपूर्ण अनुवाद एक परम-दुरूह कार्य हे—तथापि पू. पिताजी की आज्ञासे श्रीगणेश कर ही दिया, प्रारंभ के दो गुच्छो का विवरणसहित अनुवाद समाप्त हुआ ही था कि उस दिन पू. पिताजीने मुझे बुलाकर कहा कि बेटा! आज हम 'अमरपथ' की यात्रा करेंगे। मैं दिङ्मूढ था—पू. पिताजी को कोई रोग-विशेष नहीं था। उन्होने मुझे अपनी नाडी बताई और कहा इस तरह जब नाडी चलती हो तब समझना कि व्यक्ति चार प्रहर के पीछे देह-त्याग करदेगा। अपने अंतिम समयतक मेरे पिता मुझे ज्ञान देते रहे।

पिताजी के साथ साथ इन दो गुच्छों के अनुवाद की भी उपरति हो चुकी थी, किंतु, मेरे 'कल्याण-मित्र' वैद्य-मूर्धन्य पं श्री. हरिदत्तजी शास्त्री की सतत प्रेरणा एवं नियोग से, मैंने अवशिष्ट अनुवाद सपूर्ण कर ही दिया-किंतु मुझे सतोप जो नहीं हो रहा वह इसलिये की विस्तृत-व्याख्या मांग लेने वाले अमुक प्रयोगों के प्रति पुस्तक के कलेवर में अभिवृद्धि के भय से, न्याय नहीं कर सका। 'चितादग्ध खावस्थि' 'तक्षककलेडिकातल पर्पटिका' उन प्रयोगो मे से कुछ है।

महर्षि अग्निवेश-प्रणीत अंजन निदान के हिंदी अनुवाद का सयोजन इस ग्रंथ-रत्न की उपादेयता मे अभिवृद्धि करेगा। इसकी मूलप्रेरणा प श्रीहरिदत्तजी से ही प्राप्त हुई। महानुभावों की सत्सगति मानव के अभ्युदय का मगलमय सोपान है। पू श्रीशास्त्रीजी ने प्रूफ सशोधन से लेकर शुद्धिपत्र के निर्माण-सीमातक इस ग्रंथ के सपादन मे जो अपना अमूल्य समय-दान किया उसके लिये मैं उनका तथा उतनी ही मात्रा में-अपनी सस्कृत एव आङ्ग्ल-साहित्य पडिता-पत्नी श्रीमती चद्रा भट्ट एम् ए का हृदय से कृतज्ञ हूं। अंत मे, विद्वानों से प्रार्थना है कि यदि अनुवाद मे कहीं कुछ सदिग्धता प्रतीत हो तो परिशिष्ट गत शुद्धि-पत्र अवश्य देखलें। गुरु परपरा से प्राप्तबोध के अनुरूप ही यथामति, मैंने, यह अनुवाद किया है। अधिकाश मे यह स्वतत्र अनुवाद है—अत कही कहीं मूल मे अनुक्त द्रव्य, मान आदि स्पष्ट करके, इसमें, लिख दिये हैं। ग्रथ-गत, विशेपतया, विप-प्रधानयोगो का उपयोग अनुभवी वैद्योद्वारा ही कराना हितावह होगा।

पू श्री श्रीकृष्णरामजी ने इस ग्रंथ रत्न की सपूर्ति करके, इसका मुद्रापण कार्य शीघ्र ही प्रारभ करदिया था। किंतु, हाहन्त, इसी समय, विक्रम सवत् १९५४ वैशाखकृष्ण प्रतिपदा के दिवस, ४९ वर्ष की अवस्था में आप यश शेपता को प्राप्त हो गये। स्वर्गारोहण से कुछ समय पूर्व, चिकित्सा-गत अनुसधान-कार्य को अक्षुण्ण रूप से गतिमान रखने के अभिप्राय से, आपश्रीने, 'सस्कृत चिकित्सालय' के नाम से एक सस्था स्थापित की थी। अपने अनुसधानकार्य में उत्तरोत्तर वृद्धिंगत यह सस्था स्व पू श्रीभट्टजी का एक सजीव-स्मारक बन गया है।

स्व. पू श्रीभट्टजी के कुल में, पुत्र-पौत्र तथा प्र-पौत्र-वशजो मे-आयुर्वेद-शास्त्र के अविस्मरणीय विद्वान् है तथा होगये। षड्शास्त्री भट्ट श्रीगगाधरजी-आशु-कवि भट्ट श्रीकलाधरजी एवं प्रसिद्ध चित्रकार श्रीघनश्यामजी आपकी सतान-त्रयी मूर्तिमान् वृहत्त्रयी थी। मेरे प पू पितृव्य श्रीगगाधरजी-आयुर्वेद महासम्मेलन पनवेल के सभापति-अपने पिता के समान ही आयुर्वेद तथा सस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। मेरे स्व प पू पिताश्री को चरक-सहिता-अनुलोम-विलोम गति से कठाग्र थी।

स्व. पू श्रीभट्टजी के निकटतम पट्टशिष्यो मे से, साधु श्रीलक्ष्मीरामस्वामी, एवं आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध पडित श्रीनन्दकिशोरजी के पिता श्रीश्यामजी विशेष उल्लेखनीय है।

'सिद्धभेषज मणिमाला' के टिप्पणीकार-भिषगाचार्य श्रीलक्ष्मीरामस्वामी, पू. श्री. भट्टजीरूप ज्ञान-प्रदीप से प्रवर्तित अपर प्रदीप ही थे। मणि-माला पर, श्रीस्वामिजीकी टिप्पणी उनकी एक अमर साहित्यिक कृति है। श्रीस्वामिजी-वाग्भट के सुप्रसिद्ध टिप्पणीकार अरुणदत्त एवं हेमाद्रि से कदापि न्यून नहीं थे। 'टिप्पणी' में उनके मधुर कवित्व एवं आयु. शास्त्र-गत अगाध-पाण्डित्य का स्वत. परिचय मिल जाता है। टिप्पणी गत प्राय' प्रत्येक पंक्ति पद्य-बद्ध अथवा कोमल-कांत-पदावलि समन्वित है— 'फाणितप्रवर ह्येतद्बान्तावप्यवचार्यते'—'लोके यस्याः चारुणीति प्रसिद्धि'—'द्वैगुण्य स्यादौषधान्माक्षिकस्य'—'लोके सञ्ज्ञा' 'एलिया' चास्य मात्रा प्राह्या यावन्त्यङ्गुलीपर्वयुग्मात्'। श्रीस्वामिजी के किसी स्वतंत्र काव्यमय-प्रबंध के अभाव में-पू. श्रीभट्टजी पर स्वरचित प्रशस्ति के केवल सार्धश्लोकद्वय उनको महाकवि रूप से अमर करदेने में पर्याप्त होगे—

"तत्राऽज्ञानतमोराशिभास्कर नित्यमंगलम्।
बुध कविं द्विजपतिं वैद्य-विद्या-बृहस्पतिम्॥"

श्रीकृष्णरामनामान गुरु शरणमाश्रित.॥

श्रीस्वामिजी के श्रीगुरु अलौकिकत्वसे समन्वित थे। अज्ञानरूप शनि तथा तमो राशि रूप राहु केतु के लिये साक्षात सूर्य थे। आप द्विजपति (चंद्रमा), मंगल मय, बुध (विद्वान्), बृहस्पति तथा कवि (शुक्र) थे। नवग्रह-मय इस श्लोकसहित श्रीस्वामीजी को वन्दन हो!!!

'वन्दे. सर्वस्वहरणं प्रवणं भव-तारणे। साधूनामेकशरण श्रीकृष्णचरण नुम'॥

यह है काव्य! यथार्थ चारुत्व!! नैसर्गिकी प्रतिभा!!! अष्टांग-हृदय का आद्योपांत मुख-पाठ सुनकर इस ग्रंथ के अनुवादक को 'जन्म-सिद्ध-प्राणाचार्य' की पदवी अर्पण करने वाले, विद्वत्ता, साधुता एव सहृदयता के, साक्षात्-प्रतीक, सर्वत्र-पवित्र-वृत्तिमय साधु श्रीलक्ष्मीराम-स्वामीजी की मधुरस्मृति पूर्वक इस लेख को, मैं यहा सपूर्ण करता हू।

विजयादशमी
१९६७

— विनयावनत —
रणछोड कलाधर भट्ट

स्वर्गताः रा. वै. भट्ट श्रीकलाधरमहाभागाः

॥ श्रीः ॥

समर्पणम्



त्रयीमयाय प्रतिभाप्रभाणा

गुणापगाना वरुणाल्याय ।

क्रियाविधौ सिद्धसुधाकराय

प्रणौमि सपूर्णकलाधराय ।

*

श्री १०८ गुरुवर्य-पितृतीर्थश्रीकलाधरभट्टमहाभागानां

चरणारविन्देषु



परमादरेण प्रणम्य

प्रस्तुतग्रन्थरत्नानुवादरूपपुष्पाञ्जलि

सानुनय

समर्पयति

तत्रभवद्वंशंवदः

रणछोडभट्टः

॥ श्री ॥

आयुर्वेद-वाचस्पति,

वैद्य राम-प्रकाश स्वामी एम ए भिषगाचार्य, दर्शनशास्त्री.

आचार्य गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज, जयपुर.

-सम्मति-

आयुर्वेद के उद्भट विद्वान् एव अनेकशास्त्रो के मर्मज्ञ रा. वै महाकवि स्व भट्टश्री श्रीकृष्णरामजी प्रणीत 'सिद्ध-भेषज मणिमाला' आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान पर, एक नूतन एवं अनुसधानात्मक मौलिक शास्त्र है।

श्रीभट्टजी के पट्ट शिष्य, आधुनिक आत्रेय स्व. श्रीलक्ष्मीरामजी स्वामी ने अपनी अनुपम टिप्पणीद्वारा, इस ग्रंथोत्तम की सिद्धि के निगूढ रहस्य का-तत्-गत भेषज रूप मणियो के यथार्थ वैभवका, वैद्य-समाज को परिचय दिया एव इस तरह अपने पू गुरु महाशय की ज्ञान-धारा को अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान रखा।

कालप्रभाव से, तलस्पर्शी-पाण्डित्य के उत्तरोत्तर ह्रास के कारण मणिमाला के सर्वोपयोगी प्रयोगों से आधुनिक चिकित्सक वर्ग अपरिचित सा होता जा रहा है, इनके अवबोध के लिये, स्व. श्री भट्टजी के पौत्र जन्म-जात 'प्राणाचार्य' श्री आर के. भट्ट ने मणिमाला पर 'वैश्वानर' नामक हिंदी विवरण लिख कर, वैद्य जगत् का अतिशय उपकार किया है। चरकोक्त महाकषायो के पद्यबद्ध निरूपण से, श्री आर के. भट्टकी, कुल परंपरा प्राप्त, कवित्व प्रौढी का दर्शन होता है। तदुपरात, 'अंजन-निदानम्' के हिंदी रूपान्तर को सन्निविष्ट करके, आपने इस ग्रंथ रत्न को अधिकाधिक उपयोगी बना दिया है।

यत्र तत्र वैमत्य का दिग्दर्शन भी किया गया है जो कि भविष्य मे समावेय होगा। यह ग्रथ सग्रहणीय है और इस कृति के लिये श्री आर. कलाधरभट्ट का प्रयत्नस्तुत्य हे। 'वैश्वानर' टीका अज्ञानान्ध को भस्म करके ज्ञानालोक का प्रसार करेगी।

वैद्य राम प्रकाश स्वामी

अनुक्रमणिका



॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमहागणाधिपतये नमः ।

सिद्ध - भेषज - मणि - माला

व्यासोपाख्य - राजवैद्य - भट्ट - श्रीकृष्णरामकविगुम्फिता ।

तत्पौत्र राजवैद्य भट्ट श्री आर् कलाधर कविरत्न - विरचितया

'वैश्वानराख्यया' हिंदीविवृत्या समलङ्कृता ।

प्रथमो गुच्छः

आविर्बभूव कलशं दधदर्णवाद्यः पीयूषपूर्णममरत्वकृते सुराणाम् ।
रुग्जालजीर्णजनताजनितप्रशंसो धन्वन्तरिः स भगवान् भविकाय भूयात् १

परागमहितौ सदालिभिरतीव संसेवितौ
स्वतापपरिशान्तये प्रवरराजहंसोद्धतौ ।
प्रकाममृदुलारुणोदरतया चमत्कारिणौ
वयं गुरुपदौ स्तुमः कमलसंपदां लुण्ठकौ ॥ २ ॥

हि दी अ नु वा द

मंगलाचरणम्-

सुदक्ष मस्तुत्ये मदमथननृत्ये फणिपते समादिग्ध स्निग्ध पशुपयुवतीना कुचमदै ।
स्वकीयान् गोवत्सानानुचरितुमुत्कंठितमहो प्रभो पद्मासमाऽवतु मुदितपद्माङ्घ्रियुगलम् १

सस्मृत्य वाक्यान्यपरो हि कृष्णो नैरोग्यधर्माभ्युदयाय जात. ।
पायादपायात् स तनोर्निकायात् श्रीकृष्णरामो भविकाय भूयात् ॥ २ ॥

क्षीर-सिधु से हुये प्रकट अमि मय घट धरकर, करने, परमकृपाल, देव गण को अजरामर
रोग-जाल से जीर्ण-जगत-वदित विश्वभर धन्वन्तरि भगवान करे कल्याण निरतर ॥१॥

अपनी अत्यत मृदुता तथा तल गत अरुणिमा से कमल के सौंदर्य को परास्त करने वाले, गुरु के चमत्कारपूर्ण चरण युगल को, हम प्रणाम करते है, जो चरण

श्रीकृष्णरामशिष्यो लक्ष्मीराम प्रणम्य त भक्त्या । तत्कृतनिबन्धसमयं व्यक्तीकुरुते यथाबुद्धि ।
न सा दिड् न स देशोऽपि न च तन्नगर क्वचित् । यत्र श्रीकृष्णवैद्याना शिष्यैर्नैव विजृम्भ्यते ॥

१-इह खल्वस्मद्गुरव श्रीकृष्णरामपादा "कीर्तिरक्षरसम्बद्धा स्थिरा भवति भूतले" इत्युक्तेर्भेषजमाला ग्रथ्नन्त शिष्टस्थितिपालनार्थं ग्रन्थस्य निर्विघ्नपूर्वक समास्त्यर्थं च द्वाभ्या पद्याभ्या मङ्गलमाचरन्ति—आविरित्यादि । २-जनसमूह । ३-परागमहितौ, परागमहितौ । ४-सदा अलिभि , सतामालिभिश्च । ५-राजहसै , राजतल्लजैश्च ।

आयुर्वेदवचःप्रपञ्चचतुरो विद्यावतामग्रणीः
संख्यातीतगुणाश्रयो गदहृतौ साक्षाद्धि धन्वन्तरिः ।
विश्वस्मिन्नुपकारबुद्धिरधिकं कल्पद्रुवत्प्रेष्ठदः
श्रीमद्भट्टवरेन्द्रगुर्जरकुले श्रीलल्लुरामोऽभवत्[1] ॥ ३ ॥

तस्मादिन्दुरिवाम्बुधेः समभवद्वेदार्थपारङ्गमः
प्रौढः कर्मसु सर्वविद्वदगदङ्काराग्रणीः कुन्दनः[2] ।
यो रामक्षितिपेन पाठनिलये सत्कृत्य संस्थापितः
सर्वेषां गदगञ्जनाय हिकमन्मन्दारबन्धं[3] व्यधात् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णस्तनयस्ततः समजनि श्रीपाठशालासन-
स्थायी नैकविचित्रकाव्यरचनाप्राप्तप्रतिष्ठाभरः[4] ।

कमल पराग की महिमा से युक्त अथवा परा-ज्ञान की प्राप्ति कराने में समर्थ है, जो सदा भ्रमर समूह से अथवा सज्जनो से ससेवित है, एवं जिनका समाश्रय-सम्मान, अपने सताप की शाति के लिये, उत्तम राजहंस अथवा श्रेष्ठ राजपुरुष करते है ॥ २ ॥

मेरे पितामह श्रीमद् ललुरामजी (अपर पर्याय श्री विष्णु रामजी) ने श्रीभट्ट श्रेष्ठ—गुर्जर कुल मे जन्म लिया—आप आयुर्वेद-वाङ्मय मे परम विद्वान्, विद्वद् समाज मे अग्रगण्य एवं अनत गुणों से समलङ्कृत थे। रोग निवारण विधि मे साक्षात् धन्वन्तरि के समान तथा अपनी परमोदार-वृत्ति के कारण अभीष्ट-पूर्ति करने में स्वय कल्पवृक्ष ही थे ॥ ३ ॥

इनसे, महासमुद्र मे से चंद्रमा के समान, श्रीकुन्दनराम-पुत्र-रत्न ने जन्म लिया। आपका अपर नाम श्रीजीवनराम भी है। आप वेदार्थ मे पारगत, चिकित्सा शास्त्र मे प्रौढ तथा पंडित एवं वैद्य समाज मे सर्वश्रेष्ठ थे। आपको ‘ सस्कृत विद्यालय ’ में सस्थापित करके श्रीरामसिह भूपति ने आपके प्रखर-पाडित्य का प्रचुर सम्मान किया था। सर्व-प्राणियो को रोग-मुक्त करने के लिये आपने यावन-चिकित्सा-शास्त्रपर ‘ हिकमन्-मंदार’ नामक काव्य-मय मौलिक ग्रंथ की रचना की थी ॥४॥

इनसे पुत्र-रत्न श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुये। श्रीसस्कृत पाठशाला मे पदारूढ, अनेकों उत्तम-काव्यो की रचना द्वारा प्रचुर प्रतिष्ठा एव यश को प्राप्त वही मै श्रीकृष्ण विद्वान

१—श्रीविष्णुरामापरपर्याय । २—श्रीजीवनरामापरपर्यायः । ३—यवनशास्त्रानुसारेण सदर्भविशेषम् । वैद्यविद्या यवनैर्हिकमच्छब्देनोच्यते । उक्त च—“विद्यैषा हिकमत्प्रोक्ता नज्री अम्लीति सा द्विधा” इति (हिकमत्प्रकाशे)। ४—श्रीगुरुचरणरचितेषु बहुषु काव्येषु चमत्कारप्रधानानि कियन्ति काव्यानि प्रत्यभिज्ञार्थं चतसृभिरार्याभिः प्रदर्श्यन्ते—

आर्यालङ्कारशत पञ्चमहाकाव्यसारशतक च। जयपुरविलासकाव्यं मुक्तकमुक्तावली नाम ॥१॥
श्रीकच्छवाहवंश छन्दोगणित पलाण्डुदिग्विजयम्। गोविन्दभट्टभङ्गं तथैव होलोत्सवो भाण २
जयपुरमेलककुतुकं गप्पसमाधानमद्भुतं तद्वत्। नाथस्तव कनीयान् काशीनाथस्तवोऽपि तथा३
सम्राट्सुताभिनन्दन-माधवपाणिग्रहोत्सवावच्छौ ।
गोपालगीतपत्रप्रशस्तिमुख्यानि खण्डकाव्यानि ॥ ४ ॥

सोऽहं संप्रति सिद्धभेषजमणीनाहृत्य मालामिमां
गुम्फामि स्फुरदच्छगुच्छरुचिरां विद्वद्भिषक्प्रीतये ॥ ५ ॥
श्रीकच्छवाहकुलपुष्करचित्रभानुर्मानो[2,3] बभूव नृपतिः प्रथिताभिमानः ।
यः काबुलावधि विजित्य महीं महाब्धावक्षालयद् द्विपदसृक्कलुषं कृपाणम् ॥ ६ ॥
तस्यान्वये समभवज्जयसिंहवर्मा धर्मादरः समधिकं हयमेधकर्मा ।
उच्चैश्च तुष्पटिविचित्रचतुष्पथं यः शिल्पिव्रजैर्जयपुरं[5] परमं व्यधत्त[6] ॥ ७ ॥
जातस्तस्यान्ववाये महति महितधीर्दूषणध्वंसदीक्षः[7]
श्रीरामः प्रौढकामः सुकृतमतिरसत्सम्प्रदायप्रमाथी ।

वैद्य-समाज की प्रीति के लिये, सिद्ध-भेषज रूपी मणियों को एकत्रित करके-समुज्वल निर्मल-गुच्छों मे विभक्त इस रमणीय-माला की रचना प्रारभ करता हूं ॥ ५ ॥

परम-मनस्वी मानसिंह-भूपति, श्रीकच्छवाह-वंश-कमल के लिये साक्षात् सूर्य के समान थे-जिन्होने काबुल-पर्यंत-पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके शत्रुओ के रक्त से रजित अपनी कृपाण को महासमुद्र मे धोकर स्वच्छ की थी ॥ ६ ॥

इनकेही वंश मे श्रीजयसिंह वर्मा उत्पन्न हुये। धर्म मे प्रगाढ-श्रद्धोपेत इन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। कुशल शिल्पियों द्वारा सुंदर-चतुष्पथों से समन्वित, दीर्घ राजमार्ग वाले रमणीय नगर जयपुर का निर्माण इन्होंने ही किया ॥ ७ ॥

इसी महावंश मे, उत्तम-प्रतिभा-सपन्न, पुण्य-मतिवाले, असत् संप्रदाय के विनाशक, दूषणरूपी दूषणासुर के सहार मे कृत-निश्चयी, लोक के योग-क्षेम की

१–अनेन प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थमभिधेयोक्तिस्तथा भिषक्प्रसाद. प्रयोजनम् । मुख्यप्रयोजनमनायासेनारोग्यमित्यपि ज्ञेयम् । २–सूर्यः । ३–श्रीमानसिंह । अयं च महावीरतथा जगत्प्रतीत श्रीमदकबरशाहदिल्लीदुश्च्यवनस्य प्रधानसेनापतिः कच्छवाहवंशमहाकाव्ये सपरिवारो वर्णित' । प्रसङ्गात्तत्रत्य कश्चिदेक श्लोक विलिख्य दर्शयाम —

मातुं मानमहास्यतीव न गुरु प्रौढोऽपि सन् स्वर्गुरु
सा गीर्गायति कि तु नान्तमयते काव्यस्य कक्षा कुत ।
वल्मीद्वीपभवौ कवी तु जरठौ का मादृशाना कथा
यत्सख्याकलन-क्रियासु विकल शेषोऽपि शिष्यायते ॥
इत्यष्टमसर्गसमाप्तौ श्रीगुरुक्तिर्द्रष्टव्येति ।

४–अयमपि तत्रैव महाकाव्ये दशमैकादशसर्गयोः सव्यास वर्णितः । यथा—
'राज्यं वर्धितमाहवेषु विजितं स्वच्छं यशोऽप्यर्जित
शिल्पिक्षुण्णमयस्मयं जयपुर निर्माय विख्यापितम् ।
येनायाजि तुरङ्गमेधविधिना द्रव्यं द्विजेभ्योऽर्पित
सोऽय श्रीजयसिंहवीरनृपति स्यात् कस्य वाग्गोचर ।'

इत्यलमप्रस्तुतेन । ५–अस्य पुनर्वर्णनं जयपुरविलासे द्रष्टव्यम् । ६–व्यधापयत् ।
७–दूषणध्वसे दूषणनामरक्षोविनाशे दीक्षा यस्य स तथा। एतेन श्रीरामचन्द्रौपम्य ध्वनितम्।

योगक्षेमक्षमर्धिः शशिविशदयशा राजराजेश्वरीतो[2]
यो "जी, सी, एस, आई" त्यलभत परमां नीतिशस्तः प्रशस्तिम् ॥ ८ ॥
महति तस्य पदे तदनु प्रभुर्विनिहितः सचिवेन तदाज्ञया ।
सुरपुरीं मघवेव महामहा जयपुरीमधुनाऽवति माधवः ॥ ९ ॥
सोऽयं चिरं स्फुरतु विस्फुरितप्रतापप्रौढानलाहुतसपत्नपतङ्गपङ्क्तिः ।
कन्दर्पदर्पदलनक्षमयौवनश्रीर्विद्वत्सुकल्पितकृपो नृपमाधवेन्द्रः ॥ १० ॥
हंहो माधवसिंहो द्विपदः पुनरपि सदा द्विपदः ।
जगति प्रसिद्धनागो नागो यस्य प्रसिद्धिमुपयाति ॥ ११ ॥
तदन्नोदकमास्वाद्य श्रमं शास्त्रेषु कुर्वतः ।
ममात्र साहसं किंवा शक्तिरित्यवधार्यताम् ॥ १२ ॥

सामर्थ्य से युक्त, चंद्र-ज्योत्स्ना के समान विस्तृत यशवाले, नीतिज्ञों से प्रशंसित साक्षात् श्रीराम के समान श्रीरामसिंह ने जन्म लिया। आंग्ल-महाराज्ञी श्रीमति विक्टोरिया ने इनको जी सी. एस आई, का परमोच्च पदवी प्रदान किया था ॥ ८ ॥

उपरोक्त महाराजा के आसन पर उनकी यथा आज्ञा, सचिव फतेसिंह वर्मा ने, श्रीमाधवसिंह को अभिषिक्त किया। वर्तमान मे यही माधव-इन्द्र के समान-स्वर्ग-भूमि जयपुर नगरी का परिपालन कर रहे है ॥ ९ ॥

कंदर्प के लावण्याभिमान का विदलन करने वाली यौवन-सपद् से सुशोभित, अपनी दिगन्त-व्याप्त-प्रताप की प्रचंड पावक मे शत्रुओ की पक्तिरूपी पतग-समूह को भस्म करनेवाले, विद्वद्-जनों के प्रति कृपा-कटाक्षवाले-श्रीमाधवेन्द्र नृपति चिरकालतक देदीप्यमान रहें ॥ १० ॥

अहो ! आश्चर्य ! श्रीमाधवसिंह द्विपद है, क्योकि वे नित्य द्विप-हाथीयों का दान करते है। जगत मे, अपने पराक्रम से नाग-गजेन्द्र के यश को प्राप्त श्रीमाधवेन्द्र वस्तुत नाग है—अर्थात् न-आग-दोषों से रहित है। (कविता मे एकही पदकी पुन आवृत्ति-पुनरुक्ति दोप कहलाती है। इस श्लोक मे, द्विपद तथा नागशब्द की पुन आवृत्ति होने से, आपातत पुनरुक्ति दोष जैसा लगता है. वस्तुत यहां पुनरुक्ति-वदाभास अलकार है ॥ ११ ॥

यहां यह जानलेना चाहिये, कि भूरि श्रम से, अनेकों शास्त्रो के अभ्यास पूर्वक-इस सिद्ध-भेपज-मणि-माला ग्रंथ के प्रणयन का जो साहस किंवा शक्ति मेरे मे है, वह केवल इसी नरेश के अन्न और जलके उपभोग की परिणति है ॥ १२ ॥

१—योगोऽन्नवस्त्रादिभि सबन्ध, क्षेमस्तेषा चौर्याद्युपद्रवरक्षणम्। २—श्रीविक्टोर्यायाः सकाशात्। ३—'G C S I' हिन्दुस्थानस्य महती तारेत्यर्थ। ४—त्रिभिर्वर्तमानमहाराजवर्णनम्। ५—फत्तेसिंहवर्मणा। ६—द्वे पदे यस्येति। ७—द्विपान् गजान् ददातीति पौनरुक्त्यव्युदास। ८—न आग इति छेद। ९—घोषणम्।

विद्विषां रोषपोषार्थं तोषार्थं माधवप्रभोः ।
रोगिरोगप्रमोषार्थं मालेयं ग्रथ्यते मया ॥ १३ ॥
अपारमगदङ्कारं कथङ्कारं मयोच्यताम् ।
न्यक्कारार्थं विकाराणां सारं सारं प्रसारितम् ॥ १४ ॥
विगुणाऽपि मदुक्तिर्वो हर्षायैव भविष्यति ।
केषां न मोदमाधत्ते गद्गदं बालजल्पितम् ॥ १५ ॥
सुमवर्षिणीति नाम क्वापि न घटते यथा प्रमार्जन्याः ।
अस्माकमसर्वविदां वैद्यत्वं तद्वदेव जानीत ॥ १६ ॥
खलजनता स्तुतिभिरहो विनीतभावं दधाति न क्वापि ।
नवनीतभाविता किं लोहशलाका मृदुर्भवति ॥ १७ ॥
भवेदियं व्यासतयाँ निरर्था धियं विधायेति न जातु हेया ।
यद्वा परोद्योगनिरर्थकत्वे सन्तो न सज्जा इह तत्किमुक्तैः ॥ १८ ॥
नानानिबन्धेष्वपि विस्फुरत्सु सिद्धाः क्रियाः ख्यापयितुं समन्तात् ।
कुर्वेऽहमेतं कमपि प्रबन्धं क्षिपन्त्विहार्याः करुणाकटाक्षान् ॥ १९ ॥

विरोधियो के क्रोध मे अभिवृद्धि करने के लिये, माधव प्रभु के सतोष के लिये तथा रुग्णके रोग-शमन करनेके लिये मैं इस माला को गूंथता हूं ॥ १३ ॥

आयुर्वेद-शास्त्र अपार है अत विकारो के शमन मे परम उपयोगी मुख्य मुख्य सारभूत प्रयोगों के आलेखन के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूं ? आप ही बताइये ! ॥ १४ ॥

मेरी वाणी, गुणों से रहित होती हुई भी आपको अवश्य हर्षान्वित करेगी, बालक की गद्गद् जल्पना किसको प्रमुदित नहीं करती ! ॥ १५ ॥

पुष्प-वर्षिणी नाम जिस तरह प्रमार्जिनी (झाडू) मे कदापि नहीं घटता उसी तरह सबकुछ न जाननेवाले हमारे जैसोके लिये 'वैद्यत्व'का प्रयोग है ॥ १६ ॥

प्रशसा-प्रशस्ति से भी दुष्ट-जन कभी विनीत नहीं होते, नवनीत से भावित लोह शलाका क्या कभी मृदु हो सकती है ॥ १७ ॥

यह केवल एक सग्रहात्मक-ग्रथ है अत निरर्थक है यह मत स्थिर करके इस ग्रंथ की कभी अवहेलना मत करना । अथवा, यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि अन्य-जनद्वारा आचरित उद्योग के निरर्थक होजाने पर भी क्या सन्त-जन स्वोद्योग से उसे सार्थक करने मे तत्पर नहीं बनेंगे ? ॥ १८ ॥

अनेको ग्रंथों मे बिखरे हुये चमत्कारिक-सिद्ध प्रयोगों का एकत्र उपचयन करके उनकी उपयोगिता प्रकट करनेके लिये मैं इस अद्भुत ग्रथ की रचना मे प्रवृत्त हुवा हूं । इसलिये सहृदय-जन अपने कृपा-कटाक्ष से मुझे अवश्य अनुग्रहीत करेंगे ॥ १९ ॥

१-प्रयोजनान्तरदर्शनम् । २-आयुर्वेदशास्त्रम् । ३-विनयोक्ति । एवमग्रेऽपि । ४-विस्तृततया, व्याससबन्धितया वा ।

निबन्धेऽत्र दृष्टे प्रयोगाः परं ते परिस्फूर्तिमेष्यन्ति ये स्यन्ति[1] रोगान् ।
करालङ्कृतावग्रतो[2] विस्फुरन्त्यामपेक्षा भवेत् किं पुनर्दर्पणस्य ॥ २० ॥

गुच्छैरच्छाऽऽमुखद्रव्यचित्रोपायरसाह्वयैः[3] ।
भैषज्यमणिमालाऽसौ कण्ठस्था क्रियतां बुधैः ॥ २१ ॥

श्रीलल्लुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि[4] तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणायां गुच्छोऽयमच्छः प्रथमः समाप्तः ॥ २२ ॥

॥ इत्युपोद्घातगुच्छः प्रथमः ॥

इस निबंध में आलेखित प्रयोगों की विशेषता तभी चरितार्थ हो सकेगी जब वे रोगों का नाश करदें-इसमें यदि शंका हो, तो इनका प्रयोग करके देखलें । हाथ कङ्गन को आरसी क्या ? ॥ २० ॥

आमुख-गुच्छ, (उपोद्घात) द्रव्य-गुच्छ, चित्र-गुच्छ, (पताका आदि प्रस्तार) उपाय गुच्छ (चिकित्सा) तथा रस-गुच्छ (पारदादि रस) इस तरह स्वच्छ पांच गुच्छों से युक्त इस भेषज-मणि-माला को विद्वद्-जन कण्ठस्थ करें ॥ २१ ॥

श्रीलल्लुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकार-वृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण कविद्वारा गुम्फित इस सुंदर-गुण-युक्त (गुण=धागा) भेषज-मणि-माला का यह प्रथम स्वच्छ-गुच्छ संपूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

—प्रथम उपोद्घात-गुच्छ समाप्त—

१—'षोऽन्तकर्मणि' इत्यस्य प्रथमपुरुषबहुवचनम् । नाशयन्तीत्यर्थः । २—लोकोक्तिरियम् । ३—चिकित्सा । ४—पादपूरणार्थं, हितस्येति गुरविशेषणं वा ।

य प्राचा भिषजा विवेद महितास्तिस्रोऽपि ता. संहिता
साहित्य च सधर्मशास्त्रमभितः स्वच्छन्दवाक्छन्दसि ।
लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन्
व्याचष्ट प्रथमं गुलच्छममलं भैषज्यरत्नस्रज ॥ १ ॥

इति लक्ष्मीरामसुधीकृते सिद्धभेषजमणिमालाव्याख्याने
प्रथमो गुच्छः समाप्तः ॥



अथ हरीतक्यादिवर्णनं नाम द्वितीयो गुच्छः।

स्फुरत्प्रभामण्डलमण्डिताङ्गीं पुण्यैकलभ्यां दुरितापहन्त्रीम्।
शूलिप्रियां पर्वतजामपर्णां महौषधिं कामपि भावयामि ॥ १ ॥
द्रव्ये गुणा यत्र समीरिता ये त एव तस्यावयवेऽपि दृष्टाः।
भेदे विकारेऽपि ततोऽत्र कुर्यां द्रव्यप्रभेदैः किमु तुन्दिलत्वम् ॥ २ ॥

-द्वितीयो गुच्छः-

परम-पुण्यसे प्राप्य दुरित करती जो खंडित। प्रभा पुंजसे अंग अंग जिसके परिमंडित ॥
पर्वतजा, अतिदिव्य, अपर्णा, इष्टशूलि को। करता सविनय-नमन किसी उस महा-मूरिको १

मैं किसी उस अनिर्वचनीय महौषधि (भगवती महादेवी) का ध्यान करता हू जिसका उत्पत्ति-स्थल हिमपर्वत (पार्वती) है, जो पत्रसे रहित (अपर्णा) है, जिसके अंग उद्दीप्त तेजोमंडलसे देदीप्यमान है, जो केवल पुण्य-बलसेही प्राप्त की जा सकती है, जो दुरित (रोग) का नाश करनेवाली एव शूलसे युक्त (महादेव) को पथ्य (प्रिय) है ॥ १ ॥

(विशेष—वाल्मीकि-रामायणमे इस महौषधि का वर्णन मिलता है 'हरयस्तु विजानन्ति पार्वती तां महौषधीम् ॥ सजीवकरणी दिव्या विशल्यां देवनिर्मिताम्'। युद्धकांड ५० सर्ग).

शास्त्रमें जो द्रव्य जिन गुणोंसे युक्त माना गया है प्राय. वही गुण उस द्रव्यके अवयवोमें (स्कध-फल-मूल-पत्र-पुष्पआदिमे), उसके भेदोमे (सजातीयद्रव्योंमे) एवं

कलितविविधस्वरूपा विगलितदोषा मुद वितन्वाना।
स्फुरतु सदायतिसुखदा (क) श्रीपथ्या (ख) सर्वजनपथ्या ॥ १ ॥

१—अथ हरीतक्यादिद्रव्यगुलच्छ जुगुम्फिषवः समुचितमङ्गलमाचरन्ति—स्फुरदित्यादि। २—शूलरोगी, शिवश्च। ३—पर्वतरोहिणीम्। ४—पर्णरहितामिति लक्षणनिर्देश। भवन्ति तथाविधा अपि महौषधय। यथा मन्थानभैरवागमे—सोमवल्लीव निष्पत्रा कज्जलाभरसाश्रिता। अपर्णाऽसौ भवेद्विन्ध्ये नात्युच्चा रसवन्विनी" इति। सुश्रुतचिकित्सिते निवृत्तसतापीयेऽपि—" निष्पत्रा कनकाभासा मूले द्व्यङ्गुलसमिता। सर्पाकारा लोहितान्ता श्वेतकापोतिरुच्यते ॥ पक्षे भगवत्या सज्ञा। ५—भवज्वरोपशयतया भगवत्या अपि महौषधित्वं सगच्छत एव। ६—प्रायोवादमाश्रित्यैवमुक्ति सर्पस्य सविषत्वेऽपि तन्मणेर्विषघ्नत्वात्। पटोलपत्रस्य पित्तघ्नत्वेऽपि वल्लीप्रभृतीना भिन्नगुणत्वात्। यदाह माधव.—"पटोलपत्र पित्तघ्न वल्ली चास्य कफापहा। फलं त्रिदोषशमन मूलं तस्य विरेचनम् ॥" उक्तं च—"ये यत्रोक्ता गुणा द्रव्ये ते तस्यावयवेष्वपि। भेदेष्वपि विकारेषु अपवादादृते मता ॥"

(क) हरीतकीपक्षे सत्या शोभनया आयत्या उत्तरकालेन सुखदा, पक्षे सदा सर्वदा यत्या विच्छेदसज्ञिकया सुखदा पक्षे सदा यतीना यतात्मना सुखदेति।

(ख) हरीतकी, पथ्यार्या छन्दोविशेष, भगवती चेति त्र्यर्थेयमार्या। स्पष्टमन्यत्।

द्रव्यं[1] यत् पित्तकफौ व्यस्तसमस्तौ न हन्ति नो कुरुते ।
शुद्धं[2] वा मिश्रं वा निहन्ति वातं तदस्ति वातघ्नम् ॥ ३ ॥

शुद्धं निहन्ति वातं शुद्धं मिश्रं करोति वा पित्तम् ।
वातघ्नपित्तलं तद्द्रव्यमिह द्रव्यवेदिभिर्विदितम् ॥ ४ ॥

वातघ्न[3]पित्तलमिव शेषभेदद्वयं यथा ।
वातघ्नश्लेष्मलं वातजित्पित्तश्लेष्मवर्धनम् ॥ ५ ॥

शुद्ध[4] वा सान्वयं पित्तं न करोति न हन्ति यत् ।
वातं निहन्ति वातघ्नपित्तोदासीनमस्ति तत् ॥ ६ ॥

उसके विकारोंमे (स्वरस, क्वाथ, कषाय आदिमें) भी उपलब्ध होते हैं । इसलिये यहां मैं, द्रव्यके उपरोक्त अनेकविध भेदोंकी कुछ विस्तृत चर्चा करूंगा ॥ २ ॥

(तात्पर्य यह है कि जिस द्रव्यमें जो गुण होते हैं वही गुण प्राय उस द्रव्यके अवयवोंमे, विकारोंमे और जातियोंमें भी पाये जाते हैं यह शास्त्रका सिद्धांत है 'ये यत्रोक्तगुणा द्रव्ये ते तस्यावयवेष्वपि ॥ भेदेष्वपि विकारेषु ह्यपवादादृते मता ' । इस सिद्धांतके अपवाद भी हैं—'पटोलपत्रं पित्तघ्नं वल्ली चास्य कफापहा ॥ फलं त्रिदोषशमनं मूलं तस्य विरेचनम्' अर्थात् पटोलका पत्र पित्तघ्न है, उसकी लता कफघ्न है, फल त्रिदोष-शामक है तथा मूलमें विरेचन गुण है ।)

जो द्रव्य केवल पित्तका, या केवल कफका, अथवा संसर्गरूपसे कफ-पित्त का न शमन करता हो न प्रकोप, किंतु जो केवल वायुका ही शमन करता हो, अथवा जहां पित्तसह वात हो, अथवा कफसह वात हो-वहा भी केवल वातका ही शमन करने वाला हो-वह द्रव्य 'वातघ्न' कहलाता है ॥ ३ ॥

जो द्रव्य केवल वात का शमन करता हो, किंतु शुद्ध या मिश्र पित्त का प्रकोपक हो, उस द्रव्यको-द्रव्य-वैज्ञानिक-वातघ्न-पित्तल कहते हैं ॥ ४ ॥

वातघ्न पित्तल की तरह, वातघ्नश्लेष्मल तथा वातघ्नपित्तश्लेष्मल इन अवशिष्ट दो भेदोंकी भी योजना कर लेनी चाहिये ॥ ५ ॥

जो द्रव्य शुद्ध या मिश्र पित्तका-न शमन करता हो, न प्रकोप, किंतु केवल वातका शमन करता हो वह वातघ्न पित्तोदासीन कहलाता है ॥ ६ ॥

१—अथ पञ्चदशभिर्वातघ्नादिसप्तपञ्चाशद्भेदान् यथाक्रमं दर्शयन्ति । यद्द्रव्यं शुद्धं मिश्रं वा कफं पित्तकफं वा न निहन्ति नापि करोति किं तु शुद्धं मिश्रं वा वातं हन्ति तद्वातघ्नमिति । २—यच्छुद्धं वातं निहन्ति शुद्धं मिश्रं वा पित्तं करोति तद्वातघ्नपित्तलम् । ३—वातघ्नपित्तलवद् वातघ्नश्लेष्मलं वातघ्नपित्तश्लेष्मलं च बोध्यम् । ४—यच्छुद्धं मिश्रं वा पित्तं न करोति नापि हन्ति किंतु वातं हन्ति तद्वातघ्नं पित्तोदासीनम् ।

एवमेव समीरघ्नश्लेष्मोदासीनमौषधम्।
वातघ्नमितरद्वन्द्वोदासीनं चापि कीर्तितम्॥ ७॥
वातघ्नं श्लेष्मलं पित्तोदासीनं पुनरष्टमम्।
वातघ्नं पित्तलं श्लेष्मोदासीन नवमं स्मृतम्॥ ८॥
पित्तघ्नस्य कफघ्नस्य भेदा वातघ्नवन्नव।
वातपित्तापहं द्रव्यं त्रिप्रकारमुदीरितम्॥ ९॥
वातपित्तापहं वातपित्तघ्नश्लेष्मलं तथा।
वातपित्तापहश्लेष्मोदासीनं चेति भेदतः॥ १०॥
मारुतपित्तापहवद्वातश्लेष्मघ्नपित्तकफहभिदाः।
दोषनुदेकं दोषत्रितयोदासीनमप्येकम्॥ ११॥
यद्द्रव्यं पित्तकफौ व्यस्तसमस्तौ न हन्ति नो कुरुते।
शुद्ध वा मिश्रं वा करोति वातं तदस्ति वातकरम्॥ १२॥

वातघ्न पित्तोदासीनकी तरह, वातघ्नश्लेष्मोदासीन औषधीय द्रव्य है। इसी तरह वातघ्नपित्तश्लेष्मोदासीन द्रव्यभी है॥ ७॥

इसी तरह वातघ्नश्लेष्मल पित्तोदासीन, तथा वातघ्नपित्तलश्लेष्मोदासीन क्रमशः आठवा तथा नवमा द्रव्यभेद है। इसी तरह वातशामक द्रव्यके भी नौ भेद है॥ ८॥

वातघ्न-द्रव्य की तरह, पित्तघ्न-द्रव्य की भी योजना कर लेनी चाहिये, उसके भी इसी तरह नौ भेद है। इसी तरह कफघ्न द्रव्य के भी नौ भेद बनते है। इस तरह वातघ्न पितघ्न तथा कफघ्न-इन तीनोके-पृथक् पृथक् नौ नौ भेद के अनुसार-कुल सत्ताईस भेद होते है। मम्मिलित दोनो दोषो के शामक द्रव्यो मे से वातपित्तघ्न-द्रव्य तीन प्रकारके है॥ ९॥

यथा—वातपित्तघ्न-वातपित्तघ्नश्लेष्मल-वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीन॥ १०॥

वातपित्तघ्नकी तरह-वातश्लेष्मघ्न एव पित्तश्लेष्मघ्न-द्रव्योके-प्रत्येक के पृथक् पृथक् तीन तीन-भेदों की योजना समझनी चाहिये। इसके अतिरिक्त द्रव्यके दो भेद और होते है यथा-एक त्रिदोषघ्न तथा दूसरा दोष-त्रयोदासीन॥ ११॥

जो द्रव्य, केवल पित्तको-अथवा केवल कफको-अथवा (ससर्ग रूपमे) पित्त-कफ दोनों को न शमन करता है और न प्रकुपित, किंतु केवल वातको, अथवा ससर्ग

१—वातघ्नपित्तलवद्वातघ्नश्लेष्मोदासीनं तथा वातघ्नपित्तश्लेष्मोदासीनमिति। २—एवं वातघ्नश्लेष्मलपित्तोदासीनं, वातघ्नपित्तलश्लेष्मोदासीनमिति नव वातघ्नद्रव्यभेदा व्याख्याता। ३—वातघ्नवत् पित्तघ्नश्लेष्मघ्नयोरपि प्रत्येकं नव भेदा। एवमेते। मिलित्वा सप्तविंशतिर्भवन्ति। ४—द्वन्द्वघ्नेषु वातपित्तघ्न तावत्त्रिविधम्। वातपित्तघ्न-,वातपित्तघ्नश्लेष्मल—वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीनभेदादिति। ५—वातपित्तघ्नमिव वातश्लेष्मघ्न-पित्तश्लेष्मघ्नयोरेवमेते द्वन्द्वघ्नभेदा नव, दोषघ्नमेकं, दोषत्रयोदासीनमप्येकम्, इत्येकादशभेदा पुनरन्ये फलन्ति। ६—यच्छुद्ध मिश्र वा पित्त कफं पित्तकफं वा न हन्ति नापि करोति किंतु शुद्ध मिश्रं वा वातं करोति तद्वातलम्।

शुद्धं वा सान्वयं पित्तं न करोति न हन्ति यत् ।
वातं सूते पवनलं पित्तोदासीनमेव तत् ॥ १३ ॥
एवं वातकरश्लेष्मोदासीनमवगच्छत ।
चतुर्थं वातलं श्लेष्मपित्तोदासीनमित्यपि ॥ १४ ॥
पित्तकृच्छ्लेष्मकृद्द्रव्यं वातकृद्वच्चतुर्विधम् ।
द्रव्याणि द्वन्द्वकारीणि द्विद्विभेदानि मन्महे ॥ १५ ॥
अस्ति पवनपित्तकरं श्लेष्मोदासीनवातपित्तकरम् ।
एवं वातश्लेष्मलपित्तश्लेष्मपदार्थभेदौ स्तः ॥ १६ ॥
एकं दोषलमित्येते सप्तपञ्चाशदीरिताः ।
अनन्ताः स्युः पुनरमी तारतम्यादिभेदतः ॥ १७ ॥

स्थिति में भी अर्थात् कफ-वात एवं पित्तवात में भी अकेले वात को ही प्रकुपित करता हो वह 'वातकारक' कहलाता है ॥ १२ ॥

जो द्रव्य, केवल पित्तको-अथवा वातसह पित्त एवं कफसह पित्तको (अर्थात् संसर्ग रूपमें भी स्थित केवल पित्तको) न शमन करता हो और न प्रकुपित, किंतु केवल वातको प्रकुपित करता हो, वह 'वातलपित्तोदासीन' है ॥ १३ ॥

वातलपित्तोदासीन की तरह, वातलश्लेष्मोदासीन की योजना करनी चाहिये, इसी तरह चतुर्थ भेद वातलश्लेष्मपित्तोदासीन समझना चाहिये ॥ १४ ॥

वातल द्रव्यों की तरह पित्तल तथा श्लेष्मल द्रव्योंके भेद समझलें (इस योजनासे वातल द्रव्योंकी तरह पित्तल तथा श्लेष्मल, द्रव्योंके-प्रत्येक के चार चार भेदसे कुल आठ भेद होते हैं। इसी तरह द्वन्द्वल द्रव्योंके (प्रत्येकके दो दो भेदोंके अनुसार) पद् भेद होते हैं। यथा वातपित्तल वातपित्तलश्लेष्मोदासीन, वातश्लेष्मल, वातश्लेष्मल पित्तोदासीन, पित्तश्लेष्मल, पित्तश्लेष्मल वातोदासीन । इसी तरह 'त्रिदोषल' भी द्रव्यका एक अलग भेद है। इस तरह द्रव्यके कुल सत्तावन भेद हैं। ये द्रव्य तरतम भेद से अनगिनत प्रकारोंमें विभक्त किये जा सकते हैं । १५-१६-१७, द्रव्योंके सत्तावन-भेदोंकी सोदाहरण तालिका नीचे दी जाती है ॥

१—यच्छुद्धं मिश्रं वा पित्तं न करोति न हन्ति किंतु वातं करोति तद्वातलपित्तोदासीनम् । २—वातलपित्तोदासीनवद्वातलश्लेष्मोदासीनं, वातलपित्तश्लेष्मोदासीनमिति चत्वारो वातलभेदाः । ३—वातलवत् पित्तश्लेष्मलयोरपि पृथक् चातुर्विध्यम् । द्वन्द्वल द्रव्यं तावद् द्विद्विभेदम् । यथा—वातपित्तलं वातपित्तल—श्लेष्मोदासीनम्, इति षड् द्वन्द्वलभेदाः, दोषलमेकमिति सप्तपञ्चाशद्वातलादिभेदा विशदीकृत्य प्रदर्शिताः । ४—तरतमादिभेदास्तथा वातलपित्तलाल्पश्लेष्मलादिभेदाश्च अनन्तत्वादुपेक्षिताः । एषामुदाहरणजिज्ञासा चेत् पश्य सिद्धमन्त्रप्रकाशमिति ।

१ वातघ्न–तिन्दु, कपास, तालमखाना, एरंडफल आदि। २ वातघ्नपित्तल–अम्ल, तक्र, तैल-सिद्ध-पूरि आदि। ३ वातघ्नश्लेष्मल–हडजोड (अस्थिशृंखला) मीठा पालेवत, जीरा आदि। ४ वातघ्न पित्तश्लेष्मल कौंच के बीज, विदाम अखरोट, करज फल आदि। ५ वातघ्नपित्तोदासीन–पूरणीय। ६ वातघ्नश्लेष्मोदासीन–पूरणीय। ७ वातघ्न-पित्तश्लेष्मोदासीन–मसूर, गेहूं, कुलत्थ, मृगका यूप तथा अजामांस यूप। ८ वातघ्न-श्लेष्मलपित्तोदासीन–प्याज, पक्व आम्र, इलायची आदि। ९ वातघ्नपित्तलश्लेष्मो-दासीन–तिलका तैल आदि। १० पित्तघ्न–चदन, कदली, कास, वशलोचन आदि। ११ पित्तघ्न वातल–एरका, वदिर-फल, तडाग जल आदि। १२ पित्तघ्नश्लेष्मल–शाल्मली, कमल, शाली आदि तथा उबालकर शीतल किया गया दूध। १३ पित्तघ्नवातश्लेष्मल–मानकन्द, आलू, शृगाटक, कसेरु आदि। १४ पित्तघ्नवातोदासीन–पूरणीय। १५ पित्तघ्नश्लेष्मोदासीन–विम्बी (कटुतुण्डिकेरी)। १६ पित्तघ्नवातश्लेष्मो-दासीन–काकोदुम्बरिका-फल (कठूमर)। १७ पित्तघ्नश्लेष्मलवातोदासीन–पूरणीय। १८ पित्तघ्नवातश्लेष्मोदासीन–पालक्या आदि। १९ श्लेष्मघ्न–शाल, शमी, कदव, शिंशिपा, मदनफल, धत्तूरा, लताकस्तूरिका आदि। २० श्लेष्मघ्न-पित्तल–रक्तशि-ग्रुके अकुर, वडवाका दही आदि। २१ श्लेष्मघ्नवातल–लाङ्गली, कुसुभ, क्षार आदि। २२ श्लेष्मघ्नवातपित्तल–द्रोणपुष्पी, चक्रमर्द, वेणुयव, टकण आदि। २३ श्लेष्मघ्न-वातोदासीन–पूरणीय। २४ श्लेष्मघ्नपित्तोदासीन–मेपीघृत। २५ श्लेष्मघ्नवातपित्तोदा-सीन–अरिष्ट। २६ श्लेष्मघ्नपित्तलवातोदासीन–उद्दालक तथा मधु की शराब। २७ श्लेष्मघ्नवातलपित्तोदासीन–उद्दालक, यवनाल, श्यामाक तथा ईखकी शराब आदि। २८ वातपित्तघ्न–शाक, मुलहटी, शतावरी, प्रियंगु, रजत आदि। २९ वातपित्तघ्नश्ले-ष्मल–अष्टवर्ग, विदारी, कदलीफल, नारियल आदि। ३० वातपित्तघ्नश्लेष्मोदासीन–फालसा, काश्मर्य, गोधूम, मिश्री आदि। ३१ वातश्लेष्मघ्न–देवदारु, कट्फल, स्नुही, गुग्गुल, रास्ना आदि। ३२ वातश्लेष्मघ्नपित्तल–वरुण, अगरु, शिग्रु, आकडा, राई, नागवल्ली आदि। ३३ वातश्लेष्मघ्नपित्तोदासीन–विल्व, आर्द्रक, अम्लदाडिम आदि। ३४ पित्तश्लेष्मघ्न–जांबु, खदिर, पिप्पल, उदुम्बर, भूर्ज, कुटज, आदि। ३५ पित्तश्लेष्मघ्न-वातल–निव, अगस्ति, वासा, पर्पटक, सूरण, अमलतास आदि। ३६ पित्तश्लेष्मघ्नवातो-दासीन–कारवेल, बहेडा, कदली-कन्द, मधु आदि। ३७ त्रिदोषघ्न–ब्राह्मी, काश्मरी, शिरीष, अशोक, गुडूची, तामलकी (भुई आंवला)। ३८ दोषत्रयोदासीन–मधुयुक्त दही, हिम का पानी, रागखाडव आदि। ३९ वातल–खोल (पिन्याक), शाक, कुल्माप आदि। ४० वातलपित्तोदासीन–पूरणीय। ४१ वातलश्लेष्मोदासीन–पूरणीय। ४२ वात-लपित्तोदासीन–पूरणीय। ४३ पित्तल–शमीफल, तैलपक्कमांस। ४४ पित्तलवातोदासीन–पूरणीय। ४५ पित्तलश्लेष्मोदासीन–चौल्यजल। ४६ पित्तलवातश्लेष्मोदासीन–पूरणीय। ४७ श्लेष्मल–शाल्मली–गोंदकी पेया, पायस आदि। ४८ श्लेष्मलवातोदासीन–पूरणीय। ४९ श्लेष्मलपित्तोदासीन–पूरणीय। ५० श्लेष्मलवातपित्तोदासीन–पूरणीय। ५१ वातपित्तल–कच्चा आम्र तथा विरूद्ध अन्न। ५२ वातपित्तलश्लेष्मोदासीन–कच्चा

कासश्वासविशोषशूलजठराध्मानव्रणार्शोऽग्नि-
  वैस्वर्यज्वरकामलाग्रहणिकाहिक्काप्रमेहापहा ।
गुल्मप्लीहहृदामयादिशमनी दोषत्रयोन्मूलिनी
  चक्षुष्याऽतिरसायिनी लघुरगा मेध्या शिवाऽऽयुःप्रदा ॥ १८ ॥
केऽप्यं कषायं नयनामयघ्नं स्पर्शे हिमं भेदि हितं स्वरेऽपि ।
वीर्योष्णरूक्षं मधुरं विपाके बिभीतकं पित्तकफप्रमाथि ॥ १९ ॥
हरीतकीवामलकीफलं मतं परं तु पित्तास्रहरं विशेषतः ।
अपि त्रिदोषोन्मथनं त्रिदोषकृत् प्रसिद्धतत्तद्गुणयोगदर्शनात् ॥२० ॥

कैथ, वंशांकुर । ५३ वातश्लेष्मल—सूप, शाक, निष्पिम्ब, पुत्रजीवक आदि के फल । ५४ वातश्लेष्मलपित्तोदासीन—सुवर्चला, यातुका (वंशपत्रिका नाम का शाक—चक्रपाणि) ५५ पित्तश्लेष्मल—आम्र, पुष्पकारिणी का जल, शाण्डाकी । ५६ पित्तश्लेष्मलवातोदासीन—कुसुंभतैल । ५७ त्रिदोषल—सर्षप का शाक, मन्द-दही, भेड़ का दही, फाणित आदि ।

(वातादिदोषों को शमन एवं कोपन करने की तथा उनके प्रति उदासीन रहने की भी अपनी भिन्न भिन्न विशिष्ट-वृत्ति के कारण द्रव्यों के कुछ मनोरंजन भेदों का उल्लेख करके अब उन द्रव्यों के, तथा, विशेष करके, अधिक उपयोग में आने वाले प्रमुख द्रव्यों के भी सामान्य गुणों का, उनके वीर्य, विपाक तथा प्रभाव आदि का काव्य-मयी चमत्कृत शैली में सविशेष व्याख्यान ग्रंथकार करते हैं) ।

हरीतकी—स्वास्थ्य तथा आयुप्रद, अत्यंत रसायिनी, मेधाकर, कुछ सारक गुण से युक्त, आंखों को हितकर, त्रिदोष उन्मूलक, गुल्म, प्लीहा तथा हृदय के रोगादि में उपकारक, कास, श्वास, क्षय, शूल, उदर, आध्मान, व्रण, अर्श, अग्निमांद्य, ज्वर, कामला, ग्रहणी, हिक्का तथा प्रमेह आदि को मिटानेवाली एवं स्वर्य है ॥ १९ ॥

(हरीतकी को वाग्भट ने 'रूक्ष' कहा है । चरकने रूक्ष-भोजियोंके लिये हरीतकी को अपथ्य माना है—'अजीर्णिनो रूक्षभुज स्त्रीमद्यविषकर्षिताः । सेवेरन् नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये' । सुश्रुतने 'कषाय दीपन चाम्लं चक्षुष्यं चाभया-फलम्' अभया को कषाय बताते हुये उसके रूक्षत्व-गुण का निर्देश किया है । प्रस्तुत श्लोक मे, हरीतकी के रूक्षत्व गुण का जो उल्लेख नहीं किया गया वह यह मानकर कि अभया कषाय वर्ग की औषध है । अत उसमे रूक्षत्व है ही । उल्लिखित गुण बडी हरडे के है—छोटी के नहीं । छोटी में रसायन-गुण न्यून है । हरीतकी की क्रिया पचन-यंत्र पर साक्षात् होती है । दोनो ही मृदु-विरेचक है । छोटी हरडे अजीर्ण-जन्य-अतिसार, पेचिश, जीर्ण आव तथा जीर्ण कब्ज में विशेष गुण दिखाती है—क्योंकि उसमें

१—अग्निसाद । २—हृद्रोग । ३—हरीतकी । ४—अपिर्भिन्नक्रम ।
उक्तं च तन्त्रान्तरे—

"हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यत । कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषनुत् ॥
कुर्यात् पित्तं तदम्लत्वात् कफं माधुर्यशैत्यत. । वातं रूक्षकषायत्वादेवं किं न विपर्यय ॥
धात्र्यास्त्रिदोषहन्तृत्वं प्रभावान्मुनिभिर्मतम् । प्रभावनावशादुक्ता रसादेरपि हेतुता" इति ।

योऽन्याऽभयैकत्र विभीतकौ द्वौ फलानि चत्वारि तथाऽऽमलक्याः ।
नेत्रार्तिमेहज्वरकुष्ठपित्तकफार्तिहन्त्री त्रिफलेयमुक्ता ॥ २१ ॥

कषायत्व गुण अधिक है—वस्तुत छोटी हरडे, बड़ी हरडे का बाल-स्वरूप ही है। विरेचन के लिये बड़ी हरीतकी की मात्रा तीन से छह माशा है—रसायन गुण के लिये १½ से ३ माशा है। बड़ी हरडे का चूर्ण उसकी गुठली निकालकर बनाना चाहिये।)

विभीतक (बहेडा), केशों को हितकारी, कषाय, नेत्र-विकारो को नष्ट करनेवाला, उष्णवीर्य, स्पर्श मे शीतल, भेदन, स्वर को उत्तम करनेवाला, रूक्ष एवं विपाक में मधुर है। यह पित्त एव कफ का शमन करता है ॥ २० ॥

(सुश्रुत ने 'विभीतकमनुष्णं तु कफपित्तनिबर्हण' विभीतक को 'अनुष्णं' कहा है। वाग्भट भी 'कटुपाके हिम केश्यमक्षमीषच्च तद्गुणम्' विभीतक को उष्ण नहीं मानते। इसके विरुद्ध 'राज निघण्टु' 'विभीतक. कटुस्तिक्त कषायोष्ण कफापह' इसे उष्ण बताते हैं। यही अभिप्राय धन्वन्तरी-निघण्टु का है 'चक्षुष्यं कटुरूक्षोष्ण, पाके स्वादुकफात्तजित्'। वस्तुतः सुश्रुत तथा वाग्भट ने जो इसे हिम कहा उसका तात्पर्य 'स्पर्शे हिमम्' मे है। निघण्टुकारो ने जो इसे 'उष्ण' बताया उसका अर्थ 'वीर्य-उष्ण' से है। मानो इन दोनो दलो के परस्पर विरुद्ध कथनो के समाधान रूप में ग्रंथकार ने, इस श्लोक को रचा हो!! इसमें विभीतक को 'स्पर्शे-हिमम्' तथा 'उष्ण-वीर्य' बताया गया है। इस कथन को मदनपाल के इस श्लोक से मिलाइये 'उष्णवीर्यो हिमस्पर्शो भेदन कासनाशन'। इन अवतरणो का मनन करने पर वाग्भट के टीकाकार 'अरुणदत्त' ने जो विभीतक को शीतवीर्य' माना (पाके कटुक शीतवीर्यं) वह कहा तक सुसगत है? बेहडा केशो को श्याम बनाता है। इसकी मुख्य क्रिया गले एव श्वास नलिका पर होती है। इसकी मींगी मादक (Sedative) है। तथा इसका तैल खाज में लाभ देता है।)

आमलक के गुण हरीतकी के समान हैं। विशेषतया यह रक्त-पित्त में परम उपकारक है। यह त्रिदोषकारक होता हुआ भी अपने प्रभाव से तीनों दोषो का शमन करता है। इसका यह प्रभाव इसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया से स्वत.सिद्ध है ॥ २० ॥

१—आयुर्वेदप्रसिद्धा पारिभाषिकीय सज्ञा। नचैव सख्यावैषम्ये—
"पथ्याविभीतधात्रीणा फलै स्यात्त्रिफला समै ।"
इति भावस्य साम्यकथन विरुध्यते। यतो हरीतक्यादिफलाना मियो मानभेदाद्यथोक्ताकृतिमानेन गृह्यमाणानामेव साम्य सभवति। विभीतकामलक्योर्हरीतक्या सम तोलने द्विचतुष्फलग्रहण एव साम्यम्। तथा हि हरीतकीफल
"नवादिगुणयुक्तत्व तथैकत्र द्विकर्षता। हरीतक्याः फले यत्र"
इत्युक्तेर्द्विकर्षमित, विभीतक च कर्षप्रमाणं भवति, एवमामलकेऽपि द्रष्टव्यमिति।

कृमिहितं[1] मरिचं कटु पित्तलं श्वसनशूलहरं कफवातजित् ।
मधुरमार्द्रमिदं न च पित्तलं न च कफं कुरुते चलितं[2] गुरु ॥ २८ ॥

संज्ञा दी है। इसके 'जिह्वा-कण्ठ-विशोधन' गुण को धीरों ने बराबर पहिचाना है। तदनुसार यह गले के एक विशेषरोग में जिसे आधुनिक चिकित्सक Relaxed-Throat कहते हैं-उपयुक्त होती है। उदरशूल की यह उत्तम औषधि है। अपने इस गुण के कारण यह विरेचन औषधियों का प्रधान अंग बनी हुई है। कफवृद्धि, कफज्वर, कफकास आदि में अदरक के रस में मधु मिलाकर सेवन करने से उत्तम लाभ होता है। अदरक के कवोष्ण रस की दो तीन बूंद टपकाने से कर्ण-शूल मिटता है। सर्दी के कारण उत्पन्न शीर्ष वेदना में सोंठ को जल में घिसकर कपाल पर लगावें। शुष्क कास तथा निद्रानाश में सोंठ का उपयोग अपथ्य है।) पिप्पली लघु, कटु उष्ण वात तथा कफ को दूर करने वाली, पाक में मधुर तथा कटु है। कास, श्वास, ज्वर, उदर तथा प्रमेह का मथन करती है। आर्द्र पिप्पली भी स्निग्ध, शीतल, मधुर तथा कफ कारक है। गुड में मिलाकर सेवन करने से, अजीर्ण, अरुचि, कास तथा पाण्डु आदि रोगों में हितकारी है ॥ २७ ॥

(टिप्पणीकार श्रीस्वामीजी ने अनुष्णा का अर्थ 'ईषदुष्णा' किया है। उनका मन्तव्य है कि यदि यह अर्थ न किया जाये तो वाग्भट में विरोध आयेगा। 'ईषद् उष्ण' अर्थ करने पर भी वाग्भट से विरोध तो रहेगा ही—क्योंकि वाग्भट ने इसे 'उष्ण' कहा है ईषद् उष्ण नहीं। उनके मत में आर्द्र पिप्पली शीत है। शुष्क पिप्पली उससे विपरीत अर्थात् उष्ण है—'श्लेष्मला स्वादु शीताऽऽर्द्रा गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली। सा शुष्का विपरीताऽत स्निग्धा वृष्या रसे कटु ।' ग्रंथकार का 'अनुष्ण' सुश्रुत तथा चरक से मिलता है। सुश्रुत ने पिप्पली को 'पित्ताविरोधिनी' कहा है। 'शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी' तथा चरक ने 'नात्यर्थं स्निग्धोष्णा।' कहा है (वि स्था अ १ श्लो १८) पिप्पली में दाहक गुण होनेसे आचार्यों ने एक वर्ष पुराणी उपयोग में लाने का विधान कहा है। वर्धमान पिप्पली का प्रयोग मांस-वर्धक, स्वर्य, आयु प्रद मेध्य तथा वय स्थापक है। भगवान् आत्रेय के मत में, दो पिप्पली के चूर्ण-कल्क में शहद तथा घी मिला कर एकवर्ष पर्यंत नियमित प्रातःकाल लेने से रसायनोक्त गुणों का लाभ होता है। शोढल के कथनानुसार पिप्पली चूर्ण को शहद में मिलाकर मसूढों पर घिसनेसे छोटे बच्चोंके दांत विनाकष्ट निकलते हैं। पिप्पली चूर्ण को शहद के साथ दो बार नियमित सेवन करने से दो चार मासमें ही मेद तथा कफ का ह्रास हो जाता है। पिप्पली विशेषतः कफ वात-प्रधान विकारों में व्यवहृत

१—"द्रुमामये भवेत् पुंसि कीटे च कृमिवत् क्रिमि" इति रभस । २—चल-ग्रहणादीषत्प्रकोपोऽभिप्रेत, अन्यथा "स्वादुपाक्यार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रकोपि च।" इति विरोध अकारप्रश्लेषो वा।

व्योषं विदुर्विश्वकणोषणानि संदीपनं पीनसगुल्मनुत् तत् ।
सश्लीपदश्वासकफप्रमेहत्वग्रोगमेदःकसनानि हन्ति ॥ २९ ॥
शमयति कफवातौ पाचयत्यन्नमग्निं द्विगुणयति कटुत्वं लाघवं च व्यनक्ति ।
श्वसनजठरगुल्मप्लीहजन्तुक्षयार्तिं क्षपयति मगधाया मूलमारोग्यमूलम् ३०

होती है। पित्त-प्रधान व्याधियों में इसका उपयोग नहीं करना चाहिये।)

काली मिर्च-कटु, कृमिघ्न तथा पित्तकारक है। श्वास, शूल, वात तथा कफ का शमन करती है। आर्द्र मिरच, गुरु तथा मधुर है न अधिक पित्त करती है न अधिक कफ। ('नच कफं कुरुते बलिनं गुरु' यहां टिप्पणीकार ने बलिन का अर्थ 'बलग्रहणात ईषत् प्रकोपोऽभिप्रेत.' किया है। यदि यह अर्थ न किया जाये तो उनके मत में, सुश्रुत से विरोध होता है। 'स्वादुपाकार्द्रमरिच गुरु श्लेष्मप्रकोपि च' टिप्पणीकार ने जो सुश्रुत का यह श्लोक उद्धृत किया उसका शुद्ध पाठ 'श्लेष्म-प्रसेकि' है न कि 'श्लेष्म-प्रकोपि'। 'श्लेष्म-प्रसेकि' का अर्थ होता है, कफ निःसारक। आर्द्र मिरच सुश्रुत मत मे, कफ निःसारक (Expectorant) है। निघंटुकार भाव मिश्र का भी यही भाव है। 'तदार्द्र मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु-किंचित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्म प्रसेकि स्यादपित्तलम्'। अर्थात् आर्द्र-मिरच सचित कफ का स्राव करती है तथा नूतन सचय को रोकती है। 'नच कफं कुरुते बलिनं' का अर्थ यही है कि मरिच कफ के बल का ह्रास करती है तथा उसे बलवान नही होने देती। काली मिर्च, वस्तुत उसका सुखाया हुआ अर्ध पक्व फल है। संपूर्ण परिपक्व फल की ऊपरि त्वचा को उतारने पर श्वेत मिर्च बनती है। श्वेत मिर्च चक्षुष्य है तथा 'युक्त्या चैव रसायनम्' पथ्य आहार विहार पूर्वक इसका सेवन रसायन गुण दिखाता है। चरकाचार्य ने शहद तथा घृतमिश्रित काली मिर्च के चूर्ण को कास की उत्तम औषध बताया है। श्वेत मिर्च को दधि मंड मे घिसकर प्रात सायं अंजन करनेसे रतौंधि दूर होती है। यह वाग्भट का मत है। मुख के पक्षाघात मे (अर्दित मे) काली मिर्च के चूर्ण को जिह्वापर घिसने से उसका खिचना बंद होता है।) ॥ २८ ॥

सूंठ, काली मिर्च तथा पिप्पली, इस समिश्रित त्रयी को 'व्योष-त्रिकटु' कहते हैं। व्योष अग्निप्रदीपक तथा पीनस, गुल्म, श्लीपद, श्वास, कफ, प्रमेह, त्वचा के रोग-मेद तथा खासी को नष्ट करता है। (सूंठ, मिर्च, पिप्पली तथा पिप्पलीमूल इनके योग को 'चतुरूपण' कहते हैं। इनके गुणभी व्योष के समान ही हैं।) ॥२९॥

पिप्पलीमूल आरोग्य की मूल है। कफ वात का शमन करती है। इससे अन्न का पचन सम्यक् होता है। यह अग्निवर्धक, कटु तथा लघु है। श्वास, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, कृमि तथा क्षय का क्षय करती है। (पिप्पलीमूल की क्रिया फुफ्फुस और गर्भाशय पर विशेष रूप से होती है। शीत तथा कफप्रधान रोगों मे इससे लाभ होता है। प्रसवोत्तर काल मे पिप्पलीमूल का फॉट देने से जरायु सरलता से नीचे गिर जाता है। प्रसूतिज्वर, कफज्वर, आमवात तथा शीतज्वर मे शहद के साथ पिप्पलीमूल का प्रयोग लाभदायी है। इसकी मात्रा ४ रत्ती तक है) ॥ ३० ॥

श्वासो नोच्छ्वासलेशं सृजति न लभते क्वापि कामः प्रकाशं
तृष्णा तैक्ष्ण्यं न धत्ते मरेति च मरणं दाहमाप्नोति दाहः ।
दोषाः सर्वेऽपि दुष्टिं परिजहति रुचिर्धीयते मेहनान्त-
र्मूत्रं नो मात्यवृष्ये मधुरपरिणतौ धान्यके सेव्यमाने ॥ ३७ ॥

अरोचरेतःकफवातहारिणी विपाचिनी शोणितपित्तकारिणी ।
मेदोऽक्षिनिद्रानिलमान्द्यदारिणी विसूचिकां कृन्तति पित्तकारिणी ॥३८॥

कटुदीपनपाचनोष्णरूक्षमतिसारज्वरकफानिलघ्नम् ।
हृदयङ्गममेध्यवृष्यदृश्यं जरणानां त्रितयं रुचिं चिनोति ॥ ३९ ॥

कहते हैं। यह शीतल तथा आमाशय की गरमी को शांत करनेवाले माने जाते हैं। उत्तम-मात्रा में दारुहरिद्रा पाली के ज्वर को रोकती है। दारुहल्दी के मूल और काड के नीचे के भाग की पीत रग की लकडी को उपयोग में लेना चाहिये।) धनिया विपाकमें मधुर है। इसमें श्वास का उच्छ्वास बंद होता है। काम को कहीं भी प्रकाश नहीं मिलता। तृष्णा अपनी तीक्ष्णता का त्याग कर देती है। अतिसार मरक जाता है। दाह का दहन हो जाता है। सभी दोष अपनी सदोषता त्याग देते हैं। रुचिका उपचय होता है। प्रमेह नि संदेह दूर होता है। वन्हिमें मूत्र नहीं माता, नृपता कृशता को प्राप्त होती है। (धनियां त्रिदोषहर, शीतप्रशमन तथा ज्वरनाशक है। हरा धनिया सुगन्धियुक्त एवं हृद्य है। विशेषत:, पित्त-शामक है। ज्वर में धनिये का हिम लाभ देता है। उदर-वेदनामें इसका तैल प्रशस्त माना गया है—सिरदर्द में तथा मिर्चके सेवन से उत्पन्न दाह एवं शोथ में धनिये के लेप का विधान है।) लाल मिर्च-अरुचि, शुक्र, कफ तथा वात का नाश करती है। पाचक है, रक्तपित्त करती है। मेद, नेत्र, निद्रा और अग्निमांद्य को दूर करती तथा विसूचिकामें लाभ देती है ॥ ३७–३८ ॥

जीरा तीनो प्रकारका-रुचिकारक है। कटु, दीपन, पाचन, उष्ण, रूक्ष है—अतिसार, ज्वर, कफ तथा वायु का नाश करता है—हृद्य, अमेध्य, अवृष्य तथा चक्षुष्य है। (तीन प्रकारका जीरा होता है। श्वेत छोटे, बडे के भेदमे-दो प्रकार का तथा कृष्ण जीरा। जीर्णज्वर मे जीरा देने से भूख बढती है। नूतनज्वर मे प्रयोग करने से शरीर का तथा मूत्र का दाह कम होता है। प्रसवोत्तर काल मे इसके क्वाथ का सेवन करने से गर्भाशय सकुचित होता है—तथा दूध बढता है। काला जीरा रज -स्रावकारी है। अतः रज कृच्छ्रता तथा रजोरोध मे उपयुक्त होता है। त्वचा के रोगो में इसका प्रलेप कण्डू, दाह तथा वेदना को दूर करता है।) ॥ ३९ ॥

१—गच्छति। २—अतिसाराख्यो रोगविशेष । ३—हेतुव्याध्युभयहेतुत्व प्रतिपादितमनेन तथा च शोणितदुष्टौ पित्तकोपे तद्वदेव च रक्तपित्तव्याधावपि निदानमित्यर्थ । ४—'लाल मिरच' 'पित्तकाली'नाम्ना लोके प्रसिद्धिमावहति। ५—अग्नि पचति तस्य पचनो ये विबन्धादयो भवन्ति तान्निषिध्य पाटवमादधान पचेति प्रयुङ्क्त इव तत् पाचयतीति पाचनमुच्यते। हेतुमण्णिजन्तात् पचेर्बाहुलकात् कर्तरि ल्युट्। "यदुपयुक्तमन्नपानौषधमामाना धातूना पाचने समर्थं तत् पाचनम्" इत्यरुण । ६—श्वेतमहल्लघुकृष्णप्रभेदतो जीरकत्रितयम्।

कल्वञ्जिका पाचनदीपनी परं संधानयोग्या[1] कफवातवारिणी ।
प्रवर्तयत्यार्तवमुष्णवीर्या भक्तेऽपि भक्तिं वहुलीकरोति ॥ ४० ॥
गृह्णाति वर्चः शिशिरं व्यनक्ति प्रसादयत्यस्त्रमुदीर्णवेगम् ।
निहन्ति दाहज्वरमुष्णवातं वलावलम्बीश्वरबोलसंज्ञः ॥ ४१ ॥
आनाहविष्टम्भवलासवायुहृद्बस्तिवाधां न निहन्ति किं नु ।
तीक्ष्णं मनोज्ञं पुरुपित्तसंपत् कटु प्रपाकेऽपि रसेऽपि हिङ्गु ॥ ४२ ॥

कलौंजी - उत्तम दीपनपाचन, सधान मे उपयोगी तथा कफ वात कारक आर्तव - जनन एव उष्णवीर्य हैं। इसके सेवन से रुचि बढती है। (कलौजी कृष्णजीरकका ही एक भेद है। इसको सस्कृत मे उपकुंची कहते हे। इसके वीज सधान मे व्यवहृत होते है। यह मेध्य, वृष्य तथा गर्भाशयशोधक है। यह त्वचा, स्तन तथा मूत्रपिंड के मार्ग से बाहर आती है अत. त्वक् रोग में लाभ देती हुई मूत्रपिड को साफ करती तथा प्रचुर मात्रा में दूध वढाती है। इसको विरेचन द्रव्यो के साथ मिला कर देने से पेट मे मरोड नहीं आती। इसके प्रयोग से आर्तव साफ आता है) ॥ ४० ॥

ईश्वरबोल (इसबगोल) मलावरोध दूर करता है, शीतल है, रक्त की उष्णता को दूर करता है। दाह, ज्वर, तथा सौजाक को मिटाता है तथा बलकारक है। (इसबगोलको घी मे मसल कुछ गरम करके लेने से अतिसार तथा प्रवाहिका मे लाभ होता है) ॥ ४१ ॥

हींग-आनाह, विष्टंभ, कफ, वायु, हृदय तथा वस्ति के रोगो का नाश करनेवाला, तीक्ष्ण, रुचिकर पित्तल तथा रस एव विपाक दोनों मे कटु है। (हींगमे तैलयुक्त राल तथा गन्धक उपलब्ध हुआ है—हींग में स्थित तैल श्वासनलिका, त्वचा तथा वृक्क-मार्ग से वाहर निकलता है तदनुसार कफ पतला होता है, तदन्तर्गत कीटाणु नष्ट होते तथा दुर्गंध दूर होती है। हींग को पानी मे घोलकर पीने से फुफ्फुस रोग मे लाभ होता है। शीत ज्वर मे भी हींग उपयोगी है। हींग को गुड मे मिला कर खिलाने से स्नायुक मर जाता है। फुफ्फुस रोग मे कच्चा तथा पेट के रोग में घी मे भूनकर हिंग देने का विधान है। हृदय की धडकन, हृत्पीडा तथा घवराहट मे 'हिंगु कर्पूर-वटिका' का प्रयोग प्रसिद्ध है। इस वटिका मे $\frac{1}{2}$ भाग कस्तूरी मिलाने से विशेष लाभ होता है। 'हिंगु-कर्पूर-वटिका' मे १ भाग हींग १ भाग कपूर मिलाना चाहिये। मात्रा १ से २ रत्ति है। चिरकारी उदर रोग की हींग उत्तम औषध है। अपस्मार तथा मनोविकार मे भी यह लाभ करता है) ॥ ४२ ॥

१—स्थूलकृष्ण 'कलौंजी'नामा जीरकविशेष । जीरकत्रयेऽपि कल्वञ्ज्या विद्यमानतया पुनर्विशेषगुणलाभार्थं जानीत प्रतिपादनम् । २—आम्रसधानादिष्वतीवोपयोगिनी। ३—अयं च लोके 'सौजाक' इति गीयते । ४—'इसरबोल', 'इसबगोल' इति च ख्यात सूक्ष्मपत्रस्छत्राकारस्तस्य च बीजानि व्यवह्रियन्ते ।

पौष्करं कफमरुज्ज्वरशोफपार्श्वरुक्छ्वासकासवमिघ्नम् ।
शृङ्गिका क्षयसमीरबलासश्वासतृट्कसनहिध्मानहन्त्री ॥ ४८ ॥
कट्फलं तुवरकं कटु तिक्तं हन्ति मेहकसनश्वसनादीन् ।
गुल्मरक्तकफपीनसशोथश्वासकासपवनानथ भार्गी ॥ ४९ ॥
विकिरति कफं कासह्रासं समारभते रुचिं
स्फुटयति हृदातङ्कं मध्यात्युदीरयति स्वरम् ।
द्यति मरुदपस्माराध्मानान् प्रदीपनपाचनं
गिलति गलजान् व्याधीन्मेध्यं कुलिञ्जनमीरितम् ॥ ५० ॥
उदरग्रहणीगुदजान् सहसाऽनिलपित्तपरानपहन्ति कपा ।
जनितज्वलना सकषायरसा हवुषा गुरुरेव किमत्र मृषा ॥ ५१ ॥

पुष्करमूल—कफ, वायु, ज्वर, शोथ, पार्श्वपीडा, श्वास, कास तथा वमन का नाश करता है। शृंगिका (काकडासींगी) क्षय, वात, कफ, श्वास, कास, तृष्णा तथा हिक्का को दूर करती है। (पुष्करमूल आकार प्रकार मे कुठ से मिलता जुलता है। चरक ने पुष्कर-मूल को 'हिक्काश्वासकासशूलहराणाम्' मे परिगणित किया है। श्वास, श्वासनलिका-शोथ, फुफ्फुस, कलाशोथ, क्षय तथा पसली के दर्द मे इसका उपयोग होता है। काक-डासीगी कफरोग में उत्तम कार्य करती है। नूतन अथवा जीर्ण श्वासनलिका के शोथ में इससे जमा हुआ कफ बाहर निकलता है तथा नया उत्पन्न नही होता।) ॥ ४८ ॥

कट्फल (कायफल) कषाय, कटु तथा तिक्त है। प्रमेह, श्वास, कास आदिका नाश करता है। भार्गी (भारगी) गुल्म, रक्तविकार, कफ, पीनस, शोथ, श्वास, कास तथा वायुका शमन करती है। (कायफल की छाल का उपयोग चूर्ण या क्वाथ के रूप से होता है। यह शुक्रशोधन तथा वेदनास्थापन गण की औषधि है। राजनिघण्टु इसे प्रतिश्यायहर तथा मुख रोग का नाश करनेवाली मानते हैं। इसके चूर्ण के उपयोग से मसूढे दृढ होते हैं ॥ ४९ ॥

कुलिंजन कफ को काट डालता है, श्वास का ह्रास करता है तथा रुचि को उत्पन्न करने वाला है। हृदयरोग मे हितकर एव स्वर्य है। वायु, अपस्मार तथा आध्मान को नष्ट करनेवाला, गले की व्याधियो को निगल जानेवाला, दीपन पाचन तथा मेध्य है। (कुलिंजन त्वचाका ही एक भेद है। अमुक वैद्य पान के मूल को ही कुलिंजन कहते हैं। यह भ्रान्तिमूलक है। कुलिंजन लताजातीय औषधि है। इसके मूल गाठदार, रक्तवर्ण तथा सुगंधित होते हैं। धन्वन्तरीनिघण्टु मे इसी को 'अगस्त्य' वच कहा है।) ॥ ५० ॥

हाऊवेर वात तथा पित्त-प्रधान उदर, ग्रहणी तथा गुदा के रोगो का शीघ्र विनाश कर देता है। इसको अग्नि प्रदीपक, रस मे कषाय तथा भारी कहा गया है इसमे जरा भी असत्य नहीं।

१–कुष्ठविशेषः। २–वचाभेद। ३–'हाऊवेर' इति लोके विख्याता।

कटुत्वरूक्षत्वलघुत्वतैक्ष्णान्युरीकरोति प्रतनोति वह्निम् ।
आध्मानकोष्ठक्रिमिबन्धवायुबलासशूलादिहरं विडङ्गम् ॥ ५२ ॥
कटूष्णतिक्तो रुचिदोऽग्निदीप्तिदो हितोऽक्षिकर्णोदररुक्षु किं गुरुः ।
क्षणात् क्षिणोति श्वसनप्रभञ्जनौ कफक्रिमिप्लीहरुजोऽपि तुम्बरुः ॥५३॥
पित्तास्रक्रिमिगणतृड्विपातिसारे धातक्या लघु मदकारि पुष्पमुक्तम् ।
गुल्मार्शोहृदयभगार्तिकृच्छ्रमेहप्लीहाश्मव्रणशमनो हिमोऽश्मभेदः ॥ ५४ ॥

(झाऊबेर के मटर के समान बडे कुछ श्यामता को लिये हुये किरमिजी रग के फल होते हैं । इसमें मत्स्य के समान गंध आती है । इसीलिये इसे मत्स्यगधा भी कहते हैं । इसकी लकडी कलम बनाने के काम मे आती है । यह लेखन तथा शोषक होने के कारण जलोदर, हृदयोदर, एव श्वेत प्रदर मे उपकारक है ।) ॥ ५१ ॥

वायविडग कटु, रूक्ष, लघु, तीक्ष्ण तथा अग्निवर्धक है । आध्मान, कोष्ठगत कृमि विबन्ध, वात, कफ तथा शूल आदि को दूर करता है । (वायविडग उत्तम कृमिघ्न तथा रसायन है । 'विडग कृमिघ्नानाम्' । बच्चो की चिरकारी बद्ध कोष्ठता तथा तीव्र कास में पिप्पली चूर्ण के साथ इसे देने से लाभ होता है । जुलाब लेने के उपरात एक तोला भर विडंग चूर्ण लेकर तथा उस पर पुन॰ जुलाब देने से गोल तथा चपटे कृमि मर कर गिर जाते हैं । विडग के फलो को मसल कर उसके ऊपर के रक्ताभ रज कणो को उतार कर एकत्र किया जाता है । इसे ही कम्पिल्लक या कबीला कहते हैं ।) ॥ ५२ ॥

तुवरु (तेज बल) कटु, उष्ण, तिक्त, रुचिकारक, अग्नि प्रदीपक, नेत्र, कर्ण तथा उदररोग मे हितावह एव गुरु है । श्वास और वात को ही नहीं, कफ, क्रिमि, तथा प्लीहा की व्याधि को भी यह एक ही क्षण मे क्षीण कर देता है । (तेजबल के वृक्ष के फल को तुंबरु कहते है । इसके फल, धनिया के आकार जैसे बीजो से युक्त होते है । औषधार्थ फल का उपयोग, बीजो को निकाल कर ही करना चाहिये ।) ॥ ५३ ॥

धातकी (धाय) पित्त, रक्तविकार, कृमि, तृषा तथा मलाधिक प्रवृत्ति मे लाभ देता है । इसके पुष्प लघु तथा मादक हैं । अश्म-भेद (पाखानभेद) गुल्म, अर्श, हृदय तथा योनि रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, प्लीहा, अश्मरी तथा व्रण का शमन करनेवाला एवं शीतल है । (धायके फूल आसवादि मे खमीर उठाने और रग लाने के लिये उपयोग मे आते हैं । इसीलिये इसका एक नाम मद्यपुष्प भी है । यह सग्राहक है । अत्यार्तव, अतिसार तथा जीर्ण आंव मे फल देते हैं । पाखानभेद पत्थर मय चट्टानो मे पैदा होता है । यह अश्मरी की अमोघ औषधि मानी जाती है । उदर शूल मे, इसके पत्र स्वरस में लवण मिला कर देने से आशु-लाभ होता है । यह आतों को शक्ति देता है, अत॰ आंव तथा अतिसार मे उपयोगी है ।) ॥ ५४ ॥

१—बन्धो विबन्ध । २—मरिचवद्व्यात्तमुख फलमिति ।

स्निग्धा हिमा वनप्सा¹ तत्क्वाथो ज्वरमपस्मृतिं जयति ।
अथवा यष्टिसहायः श्वयथुं लेपाद्विलोपयति ॥ ५५ ॥
पिनष्टि पित्तं श्वसनं सुनोति कासं च निष्कासयति प्रसह्य ।
विबन्धबाधां विरलीकरोति रूक्षस्वभावा चिरपूर्वपोटिका² ॥ ५६ ॥
लघुस्तिक्तकः सारको रूक्षशीतस्तृषाकुष्ठजन्तुव्रणश्लेष्मगीतः ।
निहन्ति ज्वरश्वासकासान्किरातः सपित्तास्रशोफान्यथैणान्किरातः ॥ ५७ ॥
हिमकटु त्रिमलोन्मथनं ज्वरक्रिमिगुदोद्भवकुष्ठविसर्पहृत् ।
रुधिरमारुतशूलभरश्रमातिसृतिनाशनमिन्द्रयवं नवम् ॥ ५८ ॥

वनप्सा स्निग्ध तथा शीतल है, इसका क्वाथ ज्वर तथा अपस्मार को दूर करता है। मुलहठी के साथ इसके लेप से शोथ का विलयन होता है। (वनप्सा रक्तकी ऊष्मा को शमन करता है-तथा निद्रा लाता है। कण्ठ की रूक्षता में हितकर है। वस्ति-शोथ मे इससे परम लाभ होता है) ॥ ५५ ॥

चिरपूर्वपोटिका (काकमाची) पित्त को पीस डालती है, श्वास का ह्रास तथा कास का बलात् नाश कर देती हे। विबन्ध का बन्धन तोडनेवाली एवं रूक्ष स्वभावकी होती है। (मकोय के पत्र गरम करके लगाने से वेदना तथा अंडकोष की सूजन मे लाभ होता है। काकमाची के रस को मिट्टी के पात्र मे गरम करके छान कर पीने से मूत्र सरलता से उतरता है। यह रस विविध प्रकार के चर्मरोग मे लाभप्रद पाया गया है। वाग्भट ने इसे स्वर्य तथा रेचक कही है 'काकमाची सरा स्वर्या'।) ॥ ५६ ॥

किरात (चिरायता), मृग समूह का किरात की तरह, रक्तपित्त, शोथ, ज्वर, श्वास तथा कास का, संहार कर देता है। यह लघु, तिक्त, सारक, रूक्ष, शीतल तथा तृषा, कुष्ठ, कृमि, व्रण एवं कफ विकारो मे लाभ कारक है। (यह भूनिंब नामसे भी प्रसिद्ध है। यह गर्भ कालीन वमन को रोकता है—स्तन्य शोधक तथा उत्तम ज्वरघ्न है। यह आनुलोमिक अत एव दस्त को साफ लानेवाला है। आमाशय की शिथिलता मे यह परम औषधी है।) ॥ ५७ ॥

नूतन इन्द्रयव शीतल, कटु, त्रिदोषहर, ज्वर, कृमि, गुदा के विकार, कुष्ठ तथा वीसर्प को दूर करता है। रक्तविकार, वायु, शूल, श्रम तथा अतिसार को मिटाता है।

(इन्द्रजौ के मूल तथा वीज उपयोग मे लेने चाहिये। चरक (कल्पस्थान) के टीकाकार ने पुंकुटज तथा स्त्रीकुटज भेद से दो प्रकार के कुटजो का उल्लेख किया है। पुरुष जाति का श्वेत तथा स्त्री जाति का कृष्णवर्ण कहा गया है। श्वेत कुटज तिक्त तथा श्याम कुटज मधुर होता है। दृढबल के मत मे उभय जाति समान गुणवाली है। सुश्रुत टीकाकार डल्हण श्वेत कुटज को गुण मे अधिक मानते है। श्वेत कुटज-त्वक्

१-यवनभाषानुसारेण सुप्रसिद्धतरमिदं नाम द्वीपान्तरीयघासविशेष इति 'करावादीन सफाई', केचित्तु-काश्मीरदेशोत्थो घासविशेष इत्याहु, अन्ये पुनस्त्रायमाणामेदमाहुः ।
२-चिरपोटिका-काकमाची, 'मको' इत्युर्दूभाषाया, 'पीलूडी' इति गुर्जरभाषाया च प्रसिद्धा ।

रूक्षा हिमा लघुसरा दहनप्रबोध-
दक्षा विपाककटुका कटुकाऽतितिक्ता।
हर्त्री प्रमेहकसनक्रिमिकुष्ठपाण्डु-
श्वासास्रुग्दवथुपित्तकफज्वराणाम्[1] ॥ ५९ ॥

उद्गाढपित्तरुधिरोद्धुरशूलकालः
प्रध्वस्तहृद्गदमरुज्ज्वररोगजालः।
संत्रोटितातिमलसंभृतकोष्ठताले[2]ः
स्वादुर्हिमो गुरुतरस्तरुजातिपाल[3]ः ॥ ६० ॥

रक्तातिसार की उत्तम औषध है। गुद कील में इससे लाभ होता है। प्रसवोत्तर-कालीन योनि तथा गर्भाशय की शिथिलता मे यह उपकारक है। इसके पत्ते चबाने से दन्त शूल का शमन होता है। जीर्ण श्राव मे ताजी छाल का क्वाथ असर कारक है। हमेशा ताजी छाल ही उपयोग में लेनी चाहिये, सूखने पर इसके गुण में न्यूनता आ जाती है। इन्द्रयव का फाट रक्तार्श में लाभ दिखाता है।) ॥ ५८ ॥

कटुका (कुटकी) रूक्ष, शीतल, उत्तम-सारक, दीपन, विपाक मे कटु तथा तिक्त है। प्रमेह, कास, कृमि, कुष्ठ, पाण्डु, श्वास, रक्तविकार, दाह, पित्त, कफ एवं ज्वरको हरनेवाली है। (इसके मूल का उपयोग होता है। गुडूची की तरह यह भी काण्डरुहा है। स्वाद में अति तिक्त होने से यह कटुका नाम से प्रसिद्ध है। तोडने से इसके पर्व के ऊपर मत्स्याकृति तथा गोलाकार चिह्न दीख पडते है। अत इसके चक्राङ्गी तथा मत्स्यरोहिणी नाम भी है। ग्रंथकार ने इसे 'लघुसरा' कहा है। अधिक मात्रा मे यह स्रंसन गुण दिखाती है। कामला में अपने पित्त नि.सारक गुण के कारण यह उत्तम लाभ देती है। विषम ज्वर मे यह परम उपकारक है।) ॥ ५९ ॥

तरुजातिपाल (अमलतास) शूलका काल तथा अतिप्रवृद्ध पित्त एवं रक्तविकृति से मुक्त करता है। हृदय रोग, वायु एवं ज्वर के जाल को जर्जरित कर देता है। मल सग्रह से ठसा ठस भरे हुये कोष्ठ के तालेको तोड डालता है। स्वादु शीतल तथा गुरु है। ('चतुरङ्गुलो मृदु विरेचनानाम्' अमलतास मृदु विरेचन औषधियो मे श्रेष्ठ है। यह नव ज्वर मे भी विरेचनार्थ प्रयुक्त की जा सकती है। यह कोष्ठ शुद्धि की परम औषध है। पित्त की प्रधानता मे इमली के साथ, शीत की प्रधानता में निसोथ के साथ एवं यकृत् विकृति मे मकोय के साथ इसका उपयोग होता है। गले की ग्रथिशोथ में, गो दुग्ध अथवा मकोय रस के साथ इसकी छाल का क्वाथ शनै शनै. पीते रहने से लाभ होता है। अमलतास का गूदा आंतो से चिपक जाता है अत. इसका प्रयोग बदाम तैल के साथ करना चाहिये। इसके गूदे को कभी नहीं उकालना चाहिये। गरम पानी को उतार कर फिर उसमें गूदा मिला कर उपयोग करने से यथावत् लाभ होता है।) ॥ ६० ॥

१–"कर्तृकार्ययोरक्तादौ कृति षष्ठी" इत्यनुशासनात् कर्मणि षष्ठी। २–द्वारपिधान-साधनम्। ३–राजवृक्ष।

यकृत्क्रिमिप्लीहविबन्धगुल्मशूलादिकेष्वेलमुशन्ति वैद्याः ।
केचित् पुनः संभवमेतदीयं कुमारिकायाः स्वरसाद्वदन्ति ॥ ६१ ॥
विस्फोटरक्तातिसृतिप्रमेहव्रणज्वरग्रन्थिविषामहन्त्री ।
भिनत्ति मूत्रस्य परं निरोधं गुर्वी हिमा रेवतिका प्रदिष्टा ॥ ६२ ॥
रूक्षोष्णा शोधिनी बाढं वातश्लेष्मविरोधिनी ।
शस्ता सनामकी नाम मनाक् पीततनुच्छदा ॥ ६३ ॥

एल-एलिया यकृत, प्लीहा, विबन्ध, गुल्म, शूल आदि में लाभदायी है–ऐसा वैद्य लोग कहते है। अमुक इसकी उत्पत्ति घी कुवार के रस से मानते हैं। (एलिया को मुसव्वर कहते है। प्राचीन ग्रथो मे इसका उल्लेख नहीं मिलता। मुसव्वर घी कुवार के रस से बनाया जाता है जिसे 'सेकोटॉइन्' कहते हैं। सेकोटॉइन् मुसव्वर के अतिरिक्त 'अरबियन्', जाफराबादी, मसूरी मुसव्वर भी बनाये जाते हैं। ग्रथकार का, मुसव्वर के विषय मे, वक्तव्य यथावत् है। बच्चो के नाभिप्रदेश मे एरड तैल के साथ मुसव्वर का मर्दन करने से कोष्ठशुद्धि होती है। अर्शरोग जनित आव युक्त रक्तस्राव मे यह परम उपयोगी है।) ॥ ६१ ॥

रेवतिका-रेवन्दचीनी (पीतमूला, अम्लपर्णी), विस्फोट, रक्तविकार, अतिसार, प्रमेह, व्रण, ज्वर, ग्रथि, विष तथा आव का नाश करती है। मूत्रकृच्छ्र मे हितावह, गुरु तथा शीतल है। (रेवंद फारसी नाम है, आंग्लभाषा मे इसे 'रुबर्ब' कहते हैं। इसकी एक छोटी जाति काश्मीर मे भी होती है जिसे रेवास कहते है। रेवद अल्प मात्रा मे ग्राही है। अधिक मात्रा मे मरोड के साथ यह जुलाब का काम करती है। इसलिये इसका उपयोग शुण्ठि अथवा सौफ के अर्क के साथ ही करना चाहिये। पहिले जुलाब लाकर पीछे से कब्ज का काम करनेवाले दो औषधीय द्रव्य हैं। एक एरड तैल दूसरी रेवद। भेद इतना ही है कि एरड क्षार स्वभावी नहीं है, अत पेट की अम्लता इससे दूर नहीं होती। रेवतिका अम्लता दूर करती है। रेवंदका क्षार स्वभाव अल्प है। अत इसमे थोडी सर्जिका क्षार मिलानी चाहिये। यूनानी मतसे रेवद मूत्रल है और यही मत ग्रथकार का है।) ॥ ६२ ॥

सनामकी (सनाय) कुछ पीताभ पतले पत्तोवाली, रूक्ष, उष्ण, उत्तम, शोधन गुणवाली वात तथा कफ की विरोधी है।

(सनाय हरे पीले पत्तों की एक लता जातीय औषधिका नाम है, इसे 'मीठी आवल' भी कहते हैं। अमुक इसे ही मार्कंडी लता बताते हैं। इसके पत्ते रास्ना से

१–'एलिया' इत्यस्य सुप्रसिद्ध नाम। २–अप्रतिषिद्धत्वात् स्वाभिमतमपि। ३–'रेवत(न्द)चीनी' इति प्रसिद्धा पीतवर्णा। 'रुबर्ब'इत्याङ्ग्लभाषायाम्। ४–'सनाय', 'मीठी ऑवल' इति प्रसिद्धा हरित्पीतपत्रा काचिल्लता। केचिदेता मार्कण्डीलतामाहु। अपरे च–रास्नासदृशपत्रत्वात् सर्पसुगन्धत्वाच्च रास्नाभेदं 'नाकुली' सञ्ज्ञमाचक्षते।

विड्जन्तुजालक्षपणान्यपानावर्तोदरातङ्कनिषूदनानि ।
कटूनि सोष्णानि विपाचनानि बीजानि कालाञ्जनिकांजनूंषि ॥ ६४ ॥
सुस्निग्धं गुरु रेचि पित्तकफनुन्नेपालबीजं[2] रसे
पाके स्वादु जयेत् क्षतक्षयमरुद्दाहास्रकासापदः ।
उष्णा स्वादुरसा त्रिवृन्निगदिता तिक्ता समीरापहा
पित्तश्लेष्मगदोदरश्वयथुजिद्रूक्षा मलक्षालिनी ॥ ६५ ॥
तत्तादृशानुल्वणवृक्कशूलदृगामयान् हन्तुमतीव वीरः ।
कल्याणकारी मलरोधहारी प्रशस्यते मध्यविलो ममीरः[4] ॥ ६६ ॥

मिलते हैं-और सर्प-सुगन्ध के कारण रास्ना के एक भेद 'नाकुली' नाम से भी यह प्रसिद्ध है। सनाय रेचक है। इससे पेट मे ऐंठन होती है अत· शुण्ठी अथवा सौंफ के साथ इसका उपयोग किया जाना चाहिये। सनाय दूधके द्वारा बाहर आती है, अत. धावन काल मे माता को सनाय देने से बालक को भी जुलाब होता है। पित्त-ज्वर में सनायका अमलतास के साथ जुलाब देना शास्त्र सम्मत) ॥ ६३ ॥

काला दाना मल संग्रह तथा कृमि समूह को बाहर निकाल देता है। अपान तथा उदावर्त के आतंक का अंत करता है। यह कटु, उष्ण तथा पाचक है। (काले दाने की क्रिया निसोत के समान है। इसके लेप से किलास तथा झाईं मे लाभ होता है।) ॥ ६४ ॥

त्रिवृत (निशोथ) उष्ण, रस मे मधुर, तिक्त, वात, पित्त, कफ, उदररोग तथा शोथ को दूर करने वाली, मलनिःसारक एवं रूक्ष है। नेपालबीज (जमालगोटा) स्निग्ध, गुरु, रेचक, रस तथा पाक मे मधुर, पित्त, क्षत, क्षय, वात, दाह, रक्त विकार तथा कास को उत्पन्न करता है। (निशोथ की लता होती है। मूल का उपयोग तत्-गर्भ-गत-काष्ठ को निकाल कर ही करना चाहिये। निशोथ श्वेत और श्याम भेद से दो प्रकार की मानी गयी है। अरुण-मूल वाली निशोथ अधिक गुणयुक्त होती है। 'मूल तु द्विविध तस्या श्याम चारुणमेव च—तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूल यदरुणप्रभम्। सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्टे च तच्छुभम्'। निशोथ को 'रेचनी' भी कहते है। त्रिवृत् सुखविरेचनानाम्। हरीतकी के साथ त्रिवृत्, आमवात, पक्षाघात, मनका अवसाद, वातशोथ तथा कुष्ठ रोग मे लाभ दिखाती है। जमालगोटा तीव्र रेचक तथा अधिक मात्रा मे विष है। जब रक्तगत जलांश कम करना हो, अथवा हृदयोदर मे हृदय पर के पानी के दबाव को न्यून करना हो तब जमालगोटा देते है। इसके तैलकी एक बूंद से पानी जैसे पतले बहुत से दस्त हो जाते है। यदि विरेचन अधिक हो तो कत्था पानी मे मिलाकर या निंबू का शर्बत देना चाहिये।) ॥ ६५ ॥

ममीर, अति वृद्ध वृक्क शूल तथा नेत्र रोग मे अत्यत हितकर है। स्वास्थ्य की

१—मिरचाइ', 'कालादाना, इति च प्रसिद्धानि । २—दन्तीबीजं 'जयपाल, जमाल गोटा' इति च ख्यातम् । ३—तत्तादृशानिति च्छेद । ४—आन्ध्यहर्ताऽतीव दुर्लभो ग्रन्थिलः काष्ठौषधविशेष । 'यस्य स्पर्शात् काकपक्षमपि कालिमान जहाति' इति वृद्धजनश्रुति ।

पुनर्नवोष्णा मधुरा सतिक्ता सरा कषाया कटुका च रूक्षा ।
विषार्तिपाण्डुश्वयथूदरार्शोवातव्रणश्लेष्मगदेषु पूज्या ॥ ६७ ॥

ब्राह्मी तिक्तकषायशीतमधुराऽऽयुष्या सरा बुद्धिदा
स्वर्या शोफविषज्वरास्रकसनी पाण्डुप्रमेहौ हरेत् ।
छिक्कोष्णा कटुकाऽग्निदाऽरुचिमरुच्छ्लेष्मास्रजन्तुप्रणु-
द्गोजिह्वाऽनिलकृद्धिमातिसृतिहृन्मेहे कफे स्याज्ज्वरे ॥ ६८ ॥

सुरक्षा करनेवाला एव मलावरोध हटाता है। मध्य भाग में छिद्र युक्त ममीर ही प्रशस्त कहा गया है।

(हरिद्रा जाति की छोटी ग्रथियुक्त जड को ममीर कहते है। इसके वृक्ष काश्मीर जैसे पार्वत्य देशों मे पाच हजार फीटकी ऊचाई पर पाये जाते है। यह आध्य-दूर करनेवाली ग्रथियुक्त, काष्ठ-गर्भा दुर्लभ औषधि है, जिसके स्पर्श से काक के पक्ष की कालिमा भी दूर हो जाती है' यह मत इस ग्रथके विद्वान् टिप्पणीकार का है। ग्रंथकर्ता के पुत्र श्री कलाधर राज-वैद्य के मत में २१ वर्ष पुरानी जगली चमेली (पुष्पलता) की जड मे भी यही गुण है। अपने इसी गुणधर्म के कारण यही ममीर कहलाती है)॥६६॥

पुनर्नवा-उष्ण, मधुर, तिक्त, सारक, कषाय, कटु, रूक्ष तथा विष, पाण्डु, शोथ, उदावर्त, अर्श, वात, व्रण एव कफ-जन्य विकारो मे परम-पूज्य है। (पचाग, विशेषतया मूल उपयोग मे लाये जाते है। यह ऊंची जलार्द्र भूमि मे, वर्षाकाल मे, परिवर्धित होती है इसीलिये इसका एक नाम 'वर्षाभू' भी है। श्वेत तथा रक्त भेद से यह दो प्रकार की होती है। फल पाकान्त पर इसका क्षुप सूख जाता है-किंतु मूल नही सूखते। शोथघ्न होने से इसे 'शोथघ्नी' भी कहते है। यह मूत्रल है इसका प्रलेप विषाक्त कीट-दशमे विशेषतया वृश्चिक दश मे महौषधी का कार्य करता है।) ॥ ६७ ॥

ब्राह्मी, तिक्त, कषाय, शीत, मधुर, आयु तथा बुद्धि को बढाने वाली, सारक तथा स्वर्य हे। यह शोफ, विष, ज्वर, रक्त-विकृति, पाण्डु, तथा प्रमेह मे लाभ देती हे। छिक्का नकछिकनी, उष्ण, कटु, दीपन, रुचिकर तथा वात, कफ, रक्तविकार तथा कृमि को दूर करने वाली है। गोजिह्वा (बनगोभी) वात-कारक, शीतल, अतिसार, हृदयरोग, प्रमेह तथा कफ ज्वर मे प्रशस्त है। (ब्राह्मी का समग्र-क्षुप औषधार्थ उपयोग मे आता है। यह मूत्रल, मृदु रेचक तथा बल्य है। मूत्राघात मे कोष्ठबद्धता भी हो तब ब्राह्मी के उत्तम गुण की प्रतीति हो जाती हे। वातज दौर्बल्य, शुक्रक्षीणता तथा अपस्मार मे इसका उपयोग होता है। नकछिकनी, जलार्द्र भूमि मे अधिक होती हे। इसे सूघनेसे लगातार छींकें आने लगती है, अत इसका एक नाम 'घ्राणदुःखदा' भी है। हिक्का-तथा प्रतिश्याय आदि नासिका जन्य रोगो मे इसका शिरोविरेचनार्थ प्रयोग प्रशस्त हे। इसके तैल का प्रयोग खुजली मे लाभ देता है।) ॥ ६८ ॥

१–शोफादीना शासिनी 'कसि गति शासनयो. इत्यस्माद्युट्। टित्वान् ङीप्।

त्रायन्ती तुवरा सरा कफहरा नश्यद्गरा विज्वरा
पित्तच्छेदकरा भृशं भ्रमभराऽत्युग्राऽस्रनाशोद्धुरा।
विध्वस्तप्रदरज्वरा गुरुतरा स्निग्धाऽतिशुक्रोत्तरा
विट्स्रारं स्यति सारिवाऽल्परुधिरा दोषोत्किरा भो नराः॥६९॥

उष्णा विपाकमधुरा कटुका कषाया तिक्ता लघुर्ज्वरहरा वलदा गुडूची।
दोषत्रयामवमिमेहविदाहकासतृट्पाण्डुविट्स्रणवेधविधानसूची[1]॥७०॥

वरं बालं बिल्वं कटुतुवरतिक्तोष्णमुदित
मरुन्मान्द्यश्लेष्माञ्छ्रथयति च पित्तं रचयति।

त्रायन्ती (त्रायमाणा) तिक्त, सारक, कफ तथा गरविनाशक, विषमज्वर तथा पित्तकी छेदक, भ्रम हारक तथा उग्र रक्त विकृति की विघातक है। सारिवा, अनन्तमूल-प्रदर तथा ज्वरका नाश करने वाली, भारी, स्निग्ध तथा अत्यत शुक्रल है। मलनि सारक तथा रुधिराल्पताजन्य विकारो की सहारक है।

(त्रायमाणा शिमले के सोलन गांव के पर्वतो की चोटी पर होती है, यहा इसे कडू नाम से भी पुकारते है। जम्मू मे वैश्नवीदेवी के पहाडो पर भी उपलब्ध होती है। यहा यह तीता नाम से प्रसिद्ध है। 'मुहिते आजम' में गॉफिस् का सस्कृत नाम त्रायमाण दिया है। यह मूतिकाशूल का नाश करती है। इन्द्रलुप्त रोग मे इसके प्रलेप से लाभ होता है। यह पित्त स्राव कराती है तथा उत्तम मूत्र विरजनीय औषधि है। सारिवा, श्वेत, कृष्ण भेद से दो प्रकारकी होती है। सारिवा के मूल सुगंधित तथा उड्डयनशील तैल से युक्त होते है, अत. इसे अधिक नही उकालना चाहिये। सारिवा के यह गुण उसके मूल में है–तत्-गर्भ-गत-काष्ट मे नहीं, अत एव काष्ठ रहित ताजे पतले मूल को ही उपयोग मे लेना चाहिये। शास्त्र में जहा सारिवा लेने को कहा हो वहा अनन्तमूल ही ग्रहण करना चाहिये–जहां सारिवा-द्वय लिखा हो वहा श्वेत एवं कृष्ण दोनो प्रकार की ही सारिवा लेने का शास्त्रीय विधान है। चरकज्वरचिकित्सा मे शिवदास कहते है कि 'यत्र सारिवैका पठ्यते तत्रानन्तमूलमेव'। सारिवा रसायन तथा रक्त के विकारो मे विशेष उपकारक है। उपदंश अथवा सुजाक से वारवार गर्भपातकी स्थिति मे सारिवा मूल का सेवन अत्यंत प्रशस्त है॥ ६९॥

गुडूची (गिलोय) उष्ण, पाकमे मधुर, कटु, कषाय, तिक्त, लघु, ज्वरनाशक, तथा वलकारक है। त्रिदोष, वमन, दाह, खांसी, प्यास, पाण्डु तथा अतिसार को गुडूची, सूची की तरह विद्ध कर देती है।

(गिलोय की लता को कहीं भी रख दिया जाये-उसमे से नूतन लता प्रस्फुटित हो आती है अत इसे अमृता कहते है। इसके टुकडे करने पर भी इसमे से पुन नये अकुर निकल आते है। अत यह छिन्नोद्भवा भी कहलाती है। शुष्क की अपेक्षा आर्द्र गिलोय मे अधिक गुण होते है। गुडूची का वल्य, ज्वरघ्न एवं मूत्रल गुण सर्वत्र प्रसिद्ध है।)॥ ७०॥

१–दोषत्रयादिविट्स्रणान्ताना गदाना वेधविधाने सूचीव सूचीत्यर्थं।

अथो वासा वातस्वरबलकरा तिक्ततुवरा
लघुर्हृद्या शीता ज्वरवमनतृष्णाकसननुत् ॥ ७१ ॥
उष्णी ज्वरश्वसनशूलकफाग्निसादान् हन्याद्गुणाद्यबृहती बृहती सवातान् ।
पार्श्वार्तिपीनसहृदामयजन्तुषु स्याद्रूक्षा सरा तदुपमा लघुकण्टकारी ॥७२॥
लघुर्यवासो मधुरः कषायः सरो हिमः पित्तकफानिलास्रे[2] ।
तृड्भ्रान्तिमेदोभ्रमकुष्ठकासज्वरास्रवीसर्पमदान् धुनोति ॥ ७३ ॥

विल्व अपक्व ही श्रेष्ठ है, कटु, कषाय तथा तिक्त है। पकाहुआ बिल्व वात-कारक, अग्नि-मद करने वाला, कफ को पतला बना देने वाला तथा पित्त प्रकोपक है। वासा, अरडूसा वातकर, स्वर्य, तिक्त, कषाय, लघु, हृद्य, शीतल, तथा ज्वर, वमन, तृष्णा और खासी को मिटाने वाला है।

(विल्व का मूल, त्वचा, पत्र तथा फल का गूदा औषधार्थ व्यवहृत होते हैं। दशमूलादि कषायों मे मूल या त्वचा का उपयोग करना चाहिये। इसका मूल मादक तथा ज्ञान ततुओं पर शामक असर करने वाला माना जाता है। अत यह निद्रानाश आदि मे प्रशस्त है। कच्चा बिल्व-फल सौंफ तथा वचा के काथ सह, आव में विशेष लाभ देता है। दाख, आवला, हरीतकी आदि फल शुष्क होने पर अधिक गुण वाले होते हैं। बेल फल के अतिरिक्त अन्य फल पकने पर उत्तम गुण वाले होते हैं। बेल कच्चा ही उत्तम माना गया है। अडूसा, उत्तम कफ नि सारक है पत्र की अपेक्षा मूल मे यह गुण अधिक है। कफको पतला करके खासी के वेग को न्यून करना-यह अडूसा का प्रधान-कर्म है। रक्त पित्त तथा क्षय मे तथा फुफ्फुस में मे रक्त-स्राव मे, रक्तार्श तथा रक्त प्रदर मे अडूसा का पत्र स्वरस पीना चाहिये। अडूसाकी शुष्क पत्तियों मे कुछ धत्तूर पत्रका चूर्ण मिलाकर धूम्र पान से श्वास के वेग मे शाति मिलती है ॥ ७१ ॥

बृहती, बडी कण्टकारी उष्ण, ज्वर, श्वास, शूल, कफ, अग्निमाद्य तथा वातरोग की नाशक गुणयुक्त औषधि है। लघुकण्टकारी भी बडी के समान रूक्ष तथा सारक है एव पार्श्व शूल पीनस, हृद्रोग तथा कृमि मे उपयोगी है। (इस क्षुपका पचाग औषधार्थ व्यवहृत होता है। श्वेत पुष्पयुक्त कण्टकारी लक्ष्मणा के समान गर्भ कारक किंतु अप्राप्य है। दोनों प्रकार की कण्टकारी स्वेद जनन, उष्ण, मूत्र-जनन तथा कफ-नि स्सारक है। इसका प्रयोग गले एव श्वास नलिका के शोथ की प्रथमावस्था मे होता है ॥ ७२ ॥

यवास, जवासा लघु, मधुर, कषाय, सारक, शीतल तथा वात-रक्त मे प्रशस्त है, यह तृषा, भ्राति, मेद, वमन, कुष्ठ, कास, ज्वर, रक्त विकार, विसर्प तथा मद का नाश करता है। (वर्षा-ऋतु मे जब अन्य औषधियां उत्पन्न होती-जवासा जल जाता है। इस विषय मे, ग्रंथकार की एक सुदर रचना है-' वनासा चौमासा वन घन-घटा

१-अत्र रसस्यानुक्तावपि रौक्ष्यौष्ण्यादियोगात् कटुतिक्तरसावत्रगन्तव्यौ। २-'शस्त' इति शेष ।

तुहिनतुवरतिक्तः कुष्ठकण्डुप्रमेह-
श्वयथुरुधिरपित्तश्लेष्मपाण्डुप्रहारी ।
ज्वरभरबहुमेदोऽरोचकास्यद्विजार्तिं
तिरयति खदिरोऽसौ शुक्लस्तस्य सारः ॥ ७४ ॥

मायाफलं मनागुष्णं कषायं पवनास्रजित् ।
केशसात्म्यं वितनुते संकोचं प्रतिसारणात् ॥ ७५ ॥

सावन घुटी-जवासा का रासा जलकर जरासा रह गया। हरासा ये घासा वन-बिच भरासा गुथ रहा-तमासा हे खासा त्रिभुवन पिपासा मिट गई। धमासा भी जवासा के समान ही है—भेद इतना है कि धमासा के फल होते हैं जिसके उपर एक तीक्ष्ण कांटा रहता हे जवासा के फलिया लगती है। दुरालभा, धन्वयास आदि धमासा के सस्कृत नाम हैं। जवासा उत्तम कफघ्न है। श्वास में जवासा का धूम्र-पान करने से लाभ होता है। जवासे के क्षुपको वस्त्र के ऊपर आलोडित करने से उसपर श्वेत रज-कण जैसा द्रव पदार्थ जम जाता है इसे आयुर्वेद में यासशर्करा तथा यूनानी मे 'तुरजवीन' कहते हैं। चरकसहिता में यासशर्करा के गुण मिलते हैं 'कषायमधुरा शीता सतिक्ता यासशर्करा'। सुकुमार-प्रकृतिवालों के लिये यह उत्तम-विरेचन औषधि है। यह पित्त को सरलता से वाहर निकाल देता है।) ॥ ७२ ॥

खदिर-शीतल, कषाय, तिक्त है—तथा कुष्ठ, खुजली, प्रमेह, शोथ, रक्तपित्त, पाण्डु, ज्वर, मेद, अरुचि, एव दतपीडा को दूर करता है। खदिर का सार, खैरसार शुक्ल है। (खैर की लकडी से कत्था बनाया जाता है। खैरसार वृक्ष के मध्य भाग में स्वत. उत्पन्न होता है। कत्था सग्राहक है—किंतु इससे पाचक-रस का क्षय होता है। गर्भाशय की शिथिलता से उत्पन्न प्रदर, रक्त-स्राव तथा योनि-शैथिल्य मे समभाग कत्था तथा बोल गुणकारी हे। काकडे (Tonsils) के कष्ट में खैरसार के रस को चूसने से लाभ होता है। यह रसायन एव शुक्रल है। खदिर की अन्य दो जातिया और हैं—एक सोमवल्क या श्वेत खदिर दूसरा विट्खदिर या इरिमेद-यह दुर्गंधयुक्त होता है।) ॥ ७४ ॥

मायाफल, मांजूफल—कुछ उष्ण, कषाय, वात-रक्त-नाशक तथा केश्य है। इसके प्रतिसारण से योनि-सकुचित होती है। (यह फल नहीं एक प्रकारका कीट-गृह है, यह अति-कषाय होता है। माजूफल को पानी मे घिसकर गले मे लगाने से टॉन्सिल के शोथ में तथा इसके क्वाथ के गण्डूष लेने से दातो और मसूढों के शैथिल्य में लाभ होता है। योनि-शैथिल्य में इसके चूर्ण की कपडे मे पोटली बाधकर योनि में रखने है—अथवा इसके क्वाथ की उत्तर-बस्ति देते है।) ॥ ७५ ॥

१—'माजूफ़ल' इति नाम्ना प्रसिद्धं हरिद्वर्णं वर्तुलं च। २—पालित्यादिहरत्वात्। ३—योनिसंकोचम्।

शीतो निम्बतरुर्विपाककटुकस्तोतुष्यते पित्ततृड्
हृल्लासज्वरजन्तुकुष्ठकसनच्छर्दिप्रमेहव्यथाः ।
रूक्षस्तिक्तकषायकः क्रिमिकफच्छर्दिप्रमेहास्रविट्-
सारप्रौढरुजो रुणद्धि च महानिम्बोऽपि दुर्नामहृत् ॥ ७६ ॥
लोध्रः कषायः शिशिरो लघिष्ठः संग्राहको नेत्रगदेष्वपीष्टः ।
बलासपित्तप्रदरप्रहर्ता दाहस्य शोथस्य विनाशकर्ता ॥ ७७ ॥
त्विषा जितविषा विषो हतविषा सृतौ रंहसा
प्रसारितरुषा कृशानुगदशातिनी किं न सा ।

निंब-शीतल, विपाक में कटु तथा पित्त, तृषा, हृल्लास, ज्वर, कृमि, कुष्ठ कास, वमन और प्रमेह को मिटानेवाला है । महानिंब-रूक्ष, तिक्त, कषाय है तथा कृमि, कफ, वमन, प्रमेह, रक्तदोष और अति प्रवृद्ध अतिसार को रोकता है विशेष तया यह अर्श का नाश करता है । (नीम के सभी अंग औषधार्थ व्यवहृत होते हैं निंब का तैल उसके सभी अंगों से अधिक गुणयुक्त माना जाता है । यह कुष्ठ में उत्तम लाभ देनेवाला तथा रसायन है । नीम की अन्तर्छाल का ज्वर-प्रतिबंधक गुण सिंकोन की छाल के समान ही है । अन्तर्छाल का करीब ३ माशा चूर्ण सौंफ के अर्क के साथ लेने से आशु-असर होता है । संधि-शोथ तथा आमवात में तैल की मालिश करते हैं । महानिंब देखने में निंब जैसा ही है-इसके पुष्प सुगंधित तथा श्वेत होते हैं इसे ही बकायन कहते है । इसके गुण-धर्म निंब के समान ही है । बकायन का प्रयोग वाग्भट ने अर्श मे किया है–'लवणोत्तमहिंगुकलिंगयवान्-चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान् पिब सप्तदिनं मथितालुडितान् यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ') ॥ ७६ ॥

लोध्र-कषाय, शीतल, अतिलघु, सग्राही, नेत्रो को हित कर तथा कफ, पित्त, प्रदर, दाह एव शोथ का नाश करनेवाली है । (लोध्र-ग्राही, रक्तस्तंभक तथा शोथघ्न है । इसकी मुख्य-क्रिया छोटी रक्तवाहिनियों पर होती है–उनके सकुचित होने से रक्त-स्राव बद होकर शोथ उतरती है । गर्भाशय शैथिल्य से श्वेतप्रदर तथा अत्यार्तव में लोध्र-चूर्ण से लाभ होता है । यह योनि-रोग मे उपकारक, स्तंभक तथा वर्ण्य है । प्रसूतावस्था मे योनिक्षत मे इसका लेप करते है अथवा क्वाथ की उत्तर-बस्ति देते है । आख की रताग और सूजनको उतारने के लिये-आंख की पलक पर इसका लेप किया जाता है ।) ॥ ७७ ॥

विषा, अतिविषा अतीस-अपने प्रभावसे विष-नाशक, अतिसार में आशुलाभ देने वाली, अग्निमांद्य-विकारो की विनाशक, अति कटु-रस से पूर्ण, अन्न-रस मे से

१–अतिविषा । सा च त्रिविधा भवति शुक्लकृष्णारुणकन्दभेदात् । तथा च राजनिघण्टुः "त्रिविधाऽतिविषा ज्ञेया शुक्ला कृष्णा तथाऽरुणा । इति" तत्र प्रशस्ततया शुक्लमेदुरकन्दाया गुणा. । त्विषा जितविषेति ।

भृशं कटुरसा विशादयति सामपित्तं रसात्
प्रशान्तवमिसाध्वसा ज्वरतृषार्तकूलङ्कषा ॥ ७८ ॥
दुष्टव्रणास्रहन्त्री कटुका शीता विषस्य संहर्त्री ।
शृङ्गाकृतिर्विशेषात् प्रशस्यते ³निर्विषा नाम ॥ ७९ ॥
गुदकीलकपित्तबलासतृषारुधिरातिसृतिप्रलयप्रबलः ।
जठरज्वलनं ज्वलितं कुरुते कटुकः कुटजस्तुवरः शिशिरः ॥ ८० ॥
पाठोष्णा कटुका कफानिलहरी तीक्ष्णा लघुर्ग्राहिणी
शूलच्छर्दिविषज्वरक्रिमिमहाश्वासव्रणध्वंसिनी ।

अपक्व पित्त को निकाल देने वाली, वमन में हितकर तथा ज्वर-जन्य-तृषा से आकुल के लिये साक्षात् निर्झरिणी-सरिता है। (राज-निघण्टु मे शुक्ल, श्याम तथा रक्त भेद से तीन-प्रकार की अतीस कही गयी है। अतीस के मूलक चूर्ण की मात्रा दो रत्ती से दो माशा तक है। इसके विष-नाशक गुण का वर्णन राज-निघण्टु ने किया है। मदनगोपाल ने इसके लेप को श्वयथु में लाभ-प्रद कहा है। 'लेपात् श्वयथुनाशिनी'। चक्रदत्त ने इसे ज्वरातिसार में उपयुक्त बताया है। अतीस बल्य, वृष्य तथा ज्वर प्रतिषेधक है। विडंग के साथ लेने से अंत्रस्थ कृमि बाहर निकल आते हैं। समभाग अतीस और दाडिम के पुष्पचूर्ण को बच्चो के दस्त बंद करने के लिये देते हैं। अतीस, शुद्ध भांग तथा वचा चूर्ण का प्रयोग अतीसार में लाभ करता है।) ॥ ७८ ॥

निर्विषा, जदवार—शृंग के समान आकारवाली, कटु तथा शीतल है। दुष्ट व्रण, रक्तपित्त तथा विषका नाश करती है। (जद्वार एक बूटी की जड का नाम है—जो वच्छनाग के समान शृंगाकार होती है। जद्वार उष्ण-प्रकृतिवालो के लिये अहितकर है। इसका निवारक धारोष्ण दूध है। यह सभी प्रकारके विषो को हरने वाली असर कारक औषधि है। दंशज विषो में दंश-स्थानपर मद्य में घिसकर इसका लेप करते हैं। यह वेदना-स्थापक है। खाने तथा लेप करने से बाह्य तथा आन्तर पीडा में लाभ देती है। जद्वार प्रतिश्याय आदि कफ रोगो में प्रयुक्त होती है। यह अपस्मार तथा त्वक्-शून्यता में उपकारक है।) ॥ ७९ ॥

कुटज-कषाय, शीतल, कटु है तथा गुद-कील, पित्त, कफ, तृषा, रक्त दोष और अतीसार का प्रचंड-प्रलय कर देता है—तथा जठर की अग्नि-ज्वाला को प्रदीप्त करता है। (कुटज-मूल की ताजी छाल के चूर्ण को खट्टी-छाछ मे पीसकर-५ तो मात्रा मे ४-४ घंटे के अंतर से देने पर ज्वर, अतिसार तथा मल मे से रक्त स्राव दूर हो जाता है। रक्त-प्रवाहिका मे कुटज-मूल की छाल के तुल्य अन्य-औषधि नहीं है।) ॥८०॥

पाठा, पाढ-उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, लघु, ग्राही है-तथा कफ, वात, शूल, वमन, विष, ज्वर, क्रिमि, महाश्वास और व्रण का नाश करता है। मूर्वा (मरोडफली), भारी, सारक और मधुर है। यह तृष्णा, हृदय-रोग, प्रमेह, पित्त, रुधिर-विकार,

१—ज्वरतृषार्तानां कूलङ्कषेव कूलङ्कषेति। "कूलङ्कषा निर्झरिणी" इति कोशः।
२—'निर्विषी' तथा 'जदवार' इति नाम्ना प्रसिद्धा कृष्णवर्णा प्रायो लेपेन ग्रन्थ्यादिषूपयुज्यते।

तृष्णाहृद्रुदमेहपित्तरुधिरव्यापत्त्रिदोषज्वरान्
कण्डूकुष्ठसखान् हरेद्गुरुसरा स्वादुर्हि मूर्वा मता ॥ ८१ ॥
शीता विषव्रणविसर्पविदाहलूता-
भूतातिसारविनिवारणपण्डिताऽस्ति ।
रक्तं ततं हठतया विदधाति रिक्तं
शस्ता मरालपदिकाऽऽपदि पित्तजायाम् ॥ ८२ ॥
एरण्डो मधुरगुरुः सरो निहन्यादानाहश्वयथुकफज्वरामवातान्
गुल्मार्शोयकृदुदरक्रिमिव्रणार्तौ स्यादर्कः कफपवमानकच्छुकुष्ठे ॥ ८३ ॥
अष्ठीलोदरकफवातगुल्महर्ता सेहुण्डः कटुगुरुरेचनोष्णतीक्ष्णः ।
धत्तूरो मददहनानिलप्रबोधी यूकौघव्रणविषकुष्ठनाशशूरः ॥ ८४ ॥

त्रिदोष, ज्वर, खुजली तथा कोढ का नाश करती है। (पाढ की छोटी और बडी ऐसी दो जातिया है। बडी को राजपाठा तथा छोटी को लघुपाठा कहते है। चरकचिकित्सा अध्याय १८ के त्र्यूषणादि घृतमे 'द्वे पाठे' ऐसा उलेख है। इसकी व्याख्या में चक्रपाणि-दत्त लिखते है कि 'द्वे पाठे इत्यनेन स्वल्पपत्रा द्वितीया पाठा ग्राह्यन्ति' पाठा की लता होती है, अत्यंत-तिक्त होने के कारण इसे 'वरतिक्तिका' भी कहते है। इसके रस को मिलाने से पानी जमकर सान्द्र हो जाता है।) ॥ ८१ ॥

मरालपदिका, हसराज-पित्तज-विकारो मे प्रशस्त है। शीतल है तथा विष, व्रण वीसर्प, दाह, लूताविष, भूत-बाधा और अतिसार के निवारण मे पंडिता है ॥ ८२ ॥

एरड-मधुर, भारी तथा सारक है। यह आनाह, शोथ कफ, ज्वर और आम वात को दूर करता है। अर्क, आक्डा-गुल्म, अर्श, यकृत्, उदर रोग, कृमि, व्रण, कफ, वात, कण्डू तथा कोढ मे प्रशस्त है। (एरड-तैल सौम्य-स्रसन तथा वातहर है। यह आतो की श्लेष्मल-त्वचा को मृदु बनाता है जिससे मल की गाठे नीचे सरकती है। एरड तैल को प्रात आर्द्रक-रस में मिलाकर खाली पेट लेना चाहिये। कटि-शूल, गृध्रसी, पार्श्व-शूल, हृदय-शूल, आमवात तथा सधि शोथ में एरड-तैल एव अल्प-मात्रा मे शिलाजीत मिला कर देते है। स्तन पर एरड तैल लगाकर उसका पत्र बाधने से स्तन-शोथ कम होता है।) ॥ ८३ ॥

सेहुण्ड, स्नुही, डडा थोर-कटु, गुरु, रेचन, उष्ण तथा तीक्ष्ण है। अष्ठीला उदर रोग, कफ, वात और गुल्म को दूर करता है। धत्तूरा मादक, दीपन तथा वातकर है। यूका, व्रण, विष और कुष्ठ का नाश करनेवाला है। (थूहरका दूध तीक्ष्ण-विरेचन है अत मृदुकोष्ठवालो पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये-तीक्ष्ण एवं अधिक काटे दार, दो या तीन वर्ष पुराने वृक्ष का ही क्षीर ग्रहण करना चाहिये। 'ता विपाट्य हरेत् क्षीर शस्त्रेण मतिमान् भिषक्-द्विवर्षा वा त्रिवर्षा वा शिशिरान्ते

१-'मरोडफली' इति वैद्या -इयं धनुर्गुणोपयोगिनी। 'मूर' इति महेश्वर। 'मोरवेल' इत्येके। २-'हसराज' नाम्ना प्रसिद्धो रक्तवर्णस्तृणविशेष प्रायो जलसमीपे भवति।

किं स्तम्भनमाफूकं कसनश्वसनापहं किमाफूकम् ।
किं शोषणमाफूकं बलासपवनापहं किमाफूकम् ॥ ८५ ॥
सहास्यरङ्गां मदमोहतुङ्गां विट्सारभङ्गां पृथुपित्तसङ्गाम् ।
उच्चैरनङ्गां हरिदङ्गरङ्गां क्षुधोत्तरङ्गां स्पृहयामि भङ्गाम् ॥ ८६ ॥
आवर्तमानपयसि क्षिप भङ्गाज्यं विधत्स्व दधि तस्य ।
तज्जं पुनस्तदाज्यं स्वच्छमगन्धं ददीत सुमकन्दे ॥ ८७ ॥
स्यात् सैन्धवं स्वादु हिमं मनोज्ञं सूक्ष्मं लघु स्निग्धमतीव दृश्यम् ।
त्रिदोषनुद्दीपनपाचनं च सर्वेषु मुख्यं लवणेषु वृष्यम् ॥ ८८ ॥

विशेषत '–दृढबल। दृढबल ने दो प्रकार के सेहुण्ड बताये है–'द्विविध स मतो यैश्च बहुभिश्चैव कण्टकै.–सुतीक्ष्णै कटकैरल्पै प्रवरो बहुकटक '। इसकी जड सर्पदंश में हितकर है। सुश्रुत ने कुत्ते के विष मे धत्तूरे का उपयोग बताया है। धत्तूरे के पत्र स्वरस में अफीम और पुनर्नवा मूल पीस कर लेप करने से वात-वेदना तथा हाथ-पैर का शोथ दूर होता है।) ॥ ८४ ॥

आफूक, अफीम–शुक्र पुरीष आदि का स्तभन करनेवाली कौनसी वस्तु है ? अफीम। श्वास तथा कीटनाशक कौन है ? अफीम। शरीर का शोषण करनेवाली कौन है ? अफीम। कफ का तथा कफावृत वायु का नाश करनेवाली कौन है ? अफीम। (किसी द्रव्य-विशेष के गुण दोष का वर्णन इतनी प्रभावोत्पादक काव्यमय शैली मे क्वचित् ही पढने मे आता है) ॥ ८५ ॥

भाग हास-विलास के रग को जमानेवाली, मद तथा मोह मे अतिवृद्धि करनेवाली, विट्सग्रह की भेदक, पित्ताधिक्यवाली, अनग-रग तथा क्षुधा की तरग को बढानेवाली हरित-रग के अंगवाली भाग स्पृहणीय है। भाग से सिद्ध किये गये घृत को दूध मे मिला कर उसका दही जमा देवे-फिर उसको मथकर घृत निकाललें। इस स्वच्छ तथा निर्गंध घृत का गुलकद के साथ सेवन करे। (भाग का सुजाक और ग्रहणी मे प्रयोग किया जाता है। गुद-प्रदेश पर भाग का लेप करने से अर्श वेदना मे लाभ होता है। भाग धनुस्तंभ तथा विषूचिका की लाभदायी औषध है।) ॥ ८६–८७ ॥

सैंधव कुछ मधुर, शीतल, रुचिकर, सूक्ष्म, लघु, स्निग्ध, नेत्रो को

१–शुक्रपुरीषादीनाम्। २–केवलश्लेष्मणस्तथा श्लेष्मावृतवायोश्च नाशकम्। श्लेष्मणा मार्गावरोधाद्यो वायुकोपस्तत्रोपशयम्। तदुक्त—"वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च।" इति। न तु स्वतन्त्रपवनापह, धातुशोषणात्तथा निद्रानाशजृम्भादिवातकार्योत्पादनादनुभवाच्च वातवर्धनोपपत्ते। ३–हास्यविलासाभ्या सहिताम्। ४–रङ्गशब्दोऽत्र देशीवर्णमात्रवाचक। ५–प्रसङ्गाद्भङ्गाघृतस्य सस्कार प्रतिपाद्यते। ६–अधिपुष्पवर्गे वक्ष्यमाणकर्तव्यताके। ७–लवणद्रव्यत्वादनुक्तोऽपि लवणरस प्राधान्येन समुच्चीयते, तेनेषत्स्वादुत्वम्। तन्त्रान्तरेऽपि—"त्रिदोषघ्न समधुर सैन्धवं लवणोत्तमम्।" इति। तत्र समधुरमितीषन्मधुरम्। ८–सूक्ष्मस्रोतोऽनुसारित्वात्।

सौवर्चलाख्यं विशदं लघूष्णं प्ररोचनोद्दीपनपाचनं च।
आनाहविड्बन्धसमीरशूलनाशप्रपञ्चप्रवणं प्रसिद्धम् ॥ ८९ ॥
सक्षारतीक्ष्णोष्णलघु व्यवायि रुच्यं सरूक्षं सरमग्निकारि।
विष्टम्भहृद्रुग्गुरुताविवन्धश्लेष्मानिलघ्नं[1] विडमामनन्ति ॥ ९० ॥
तिक्तं विपाके मधुरं विभेदि नात्युष्णपित्तं कफलं मरुन्नुत्।
वह्निप्रदं गुर्वविदाहि वैद्याः सामुद्रसंज्ञं[2] लवणं लपन्ति ॥ ९१ ॥
अत्यर्थमुष्णं लघु भेदि तीक्ष्णं व्यवाय्यभिष्यन्दि समीरहारि।
सूक्ष्मस्वभावं कटुकं विपाके गडाभिधं[3] पित्तविकारकारि ॥ ९२ ॥

ग्रहण्यर्शःशूलश्वसनकसनश्लेष्मगलरुङ्-
मरुत्पाण्डुप्लीहान् व्यपनयति गुल्मामसहितान्।
यवक्षारः स्निग्धो लघुरतुलवैश्वानरकर-
स्त्वथ स्वर्जिक्षारो विलसति यवक्षारसदृशः ॥ ९३ ॥

अत्यंत हितकर, त्रिदोष-शामक, दीपन पाचन, वृष्य तथा सभी लवणो में उत्तम है। (सैंधव को ईषत् मधुर अन्यत्र भी कहा गया है 'त्रिदोषघ्न समधुर सैंधवं लवणोत्तमम्'।) ॥ ८८ ॥

सौवर्चल, काला नमक-विशद, लघु, उष्ण, रुचिकर तथा दीपन-पाचन है। आध्मान, मलावरोध, वायु तथा शूल आदि के प्रपंच का नाश करने में परम प्रशस्त है ॥ ८९ ॥

विड् नमक कुछ क्षार-स्वभावी, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, व्यवायी, रुचिकर, रूक्ष, सारक तथा दीपन है। विष्टंभ, हृद्-रोग, गुरुता, मलावरोध, कफ तथा वात-नाशक है ॥ ९० ॥

समुद्र लवण पाक में तिक्त, मधुर, भेदक, किंचित् उष्ण, किंचित् पित्त तथा कफ करने वाला, वातनाशक, दीपन, गुरु और विदाही है ॥ ९१ ॥

गड्-नमक, साभर देशोद्भव-शाकम्भरीय-नमक अत्यत-उष्ण, लघु, भेदक, तीक्ष्ण, व्यवायी, स्रोतों को रुद्ध करने वाला, वातनाशक, सूक्ष्म-स्वभावी, विपाक मे कटु तथा पित्त-विकार करनेवाला है। (गड्-लवण ही शाकभरीय-लवण है- 'शाकंभरीयं कथितं गडाख्यम्।) ॥ ९२ ॥

यवक्षार-स्निग्ध, लघु, तथा उत्तम दीपन है। ग्रहणी, अर्श, शूल, श्वास, कास, कफ, गल-रोग, वायु, पाण्डु, प्लीहा तथा गुल्म सहित आव का नाश करता है।

१—श्लेष्मानिलघ्नमिति च तयो स्वस्वमार्गप्रापकत्वात्, यदुक्त—
"विडं सक्षारमूर्ध्वाव कफवातानुलोमनम्।" इति। २—दक्षिणसमुद्रे भवतीति सामुद्रम्। ३—साम्भरिदेशोत्य लवणं 'गड' नाम्ना कथ्यते। यथा—"शाकम्भरीयं कथितं गडाख्यम्" इत्यादि।

सावुक्षारस्तैलचूर्णाम्बुजन्मा स्फीतच्छायो बस्तिवासोविशोधी ।
नक्तान्धत्वं विस्रुतामण्डकण्डूं सोदावर्तं जन्तुजालं निहन्ति ॥ ९४ ॥

इति हरीतक्यादिवर्ग ॥ १ ॥

सर्जिका-क्षार, गुणधर्म मे यवक्षार के समान ही है। (जब यव परिपक्व हो जाये तब ताजी अवस्था मे ही क्षुप को उखाड कर सुखाना चाहिये। फिर इसे जला कर इसकी राखको पानी में भिगोते हैं। इस तरह क्षार भाग पानी मे घुल जाता है। इस जलको धूप में सुखा देने पर क्षार अवशिष्ट रह जाता है—यही यवक्षार है।) ॥ ९३ ॥

साबु-क्षार, कलिका चूर्ण में घुले हुये पानी को नितार कर उसको तैल मे मिलाने से, तैयार होता है। श्वेत-वर्णवाला यह साबु-क्षार वस्ति तथा वस्त्र को स्वच्छ करता है—अंजन से रात्र्यंधत्व दूर करने वाला, अंडकोष पर मालिश से उसकी खुजली को मिटानेवाला तथा बस्तिद्वारा उदावर्त सहित कृमि-समूह का नाश करनेवाला है। (इसकी निर्माण-विधि-चिकित्सा-गुच्छ मे दी गई है।) ॥ ९४ ॥

हरीतक्यादि-वर्ग समाप्त हुआ ॥ १ ॥

अथ पौष्टिकवर्गः ।

रसायनी स्वादुरसा गुरुर्हिमा हिता दृशोः स्तन्यकरी शतावरी ।
बलप्रदा मारुतपित्तरक्तरुक्कृशानुसादश्वयथुव्यथाहरी ॥ ९५ ॥
स्निग्धा हिमा समधुरा स्वरदाऽतिवृष्या मूत्रप्रदा गुरुरतीव रसायनी च ।
पित्तास्रमारुतविदाहरुजो विदारीस्तन्या विदारयति दाररतिं ददाति ॥९६॥

पौष्टिक-वर्ग ।

शतावरी-रसायन, बलकारक, रस मे स्वादु, गुरु, शीतल, स्तन्य, नेत्रों को हितकर, वायु, पित्त, रक्तपित्त, अग्निमाद्य तथा शोथ को हरनेवाली है ॥ ९५ ॥

विदारीकंद, स्निग्ध, शीतल, कुछ मधुर, स्वर्य, अत्यंत वृष्य, मूत्र-जनन, भारी, एवं उत्तम रसायन है। पित्त, रक्तविकार, वायु और दाह का विदारण करता है तथा वाजीकर है। (अल्पार्तव मे विदारीकद उत्तम लाभ देता है।) ॥ ९६ ॥

१—अस्य कर्तव्यताविधिश्चिकित्सागुलच्छेऽनुसधेय । २—अञ्जनेन । ३—म्रक्षणेन । ४—बस्तिविधया । इति हरीतक्यादिवर्गः । ५—पुष्ट्यर्थमवश्योपादेयानि सुखग्रहणार्थं कानिचिद्द्रव्याणि पृथग्वर्गनिर्देशेन समुच्चिन्वन्ति । ६—विशिष्टरसजनकत्वेन जराहरीत्यर्थ । ७—वाराहीकन्द , भूकूष्माण्डीकन्दो वा । ८—वाजीकरत्वात् ।

पवमानंबलासचर्ममचित्रक्षयमाकर्षति वीर्यवृद्धिदात्री।
बलदाऽतिरसायिनी कषाया हयगन्धा गदिता बुधैः सतिक्ता ॥ ९७ ॥
नारीषु वाजिनमिव प्रबलं मनुष्यं सद्यः करोति कुपितं पवनं पिनष्टि।
श्लेष्माणमुत्क्षिपति पित्तभयं भिनत्ति प्रौढं बलं वितनुते कपिकच्छुबीजम् ९८
कषायतिक्तः कटुको रसायनः सरोऽनिलार्शःकफशोफमेहहा।
बलाग्निशुक्रस्वरकान्तिकारकः प्रियो न केषामिह वृद्धदारकः ॥ ९९ ॥
मधुरा बलदा युवभावकरी गुदजानिलकोपहरी मुशली।
उपभुज्यत एव हि येन सदा भुवि तेन परं सदृशो मुशली ॥ १०० ॥

इक्षुरस्तु मधुरस्तुहिनोऽम्ल स्निग्धपित्तलगुणो बहुवृष्यः।
तिक्तको मरुदसृग्गदतर्षानाममप्यतिबलं विनिहन्ति ॥ १०१ ॥

अश्वगधा, असगध-वीर्यवर्धक, कषाय, तिक्त, बलकारक तथा उत्तम रसायन है। यह वात, कफ, श्वेत-कुष्ठ तथा क्षय का नाश करती है। (औषधार्थ इसके मूल का उपयोग किया जाता है। असगध अवसादक है। इसके मूल का चूर्ण दूध के साथ देने से बालकों के शरीर का अच्छा विकास होता है।) ॥ ९७ ॥

कौंच के बीज-यह उत्तम वाजीकरण है। कुपित वात को पीस डालता है। कफ को बाहर निकाल फेंक देता है। पित्त-भय का भेदन करता है एव परम बल-कारक है। (इसे आत्मगुप्ता भी कहते हैं। चरक (सू अ ८) के बल्य-वर्ग मे इसका वर्णन ऋषभी शब्द से किया गया है-कौंच के बीज आर्तव जनन तथा बल्य हैं। प्रदर, कष्टार्तव तथा आर्तव की अनियमितता में इसका उपयोग होता है।) ॥ ९८ ॥

वृद्धदारक (विधारा)-कषाय, तिक्त, कटु, सारक तथा रसायन है। वात अर्श, कफ, शोथ, प्रमेह का नाश करता है। बल, अग्नि, शुक्र, तेज तथा स्वर को उत्तम करने वाला वृद्धदारक किसे प्रिय नहीं है? ॥ ९९ ॥

मुशली-जो व्यक्ति सतत मुशली का सेवन करता है-उसके समान, भूतल पर मुशली (बलराम) ही है। मुशली मधुर, युवावस्था देनेवाली, गुद-रोग तथा वातकी नाशक है ॥ १०० ॥

इक्षु, तालिमखाना-मधुर, शीतल, अम्ल, स्निग्ध, अत्यंत वृष्य, पित्तल-गुण-युक्त तथा तिक्त है। यह वात, रक्तदोष, तृषा तथा प्रवृद्ध आमवात को नष्ट करता है। (कोकिलाक्ष के बीज, मूल, पत्र तथा पचाग के क्षार का उपयोग होता है। यह शुक्र शोधक तथा अश्मरीघ्न है। यह सतर्पण औषधियो मे उत्तम है। इसके बीज कामोत्तेजक कहे गये है। मूल का क्वाथ सुजाक तथा बस्तिशोथ मे देते है।) ॥ १०१ ॥

१-पवमानो वायु "पवमान प्रभञ्जन" इति कोशात्। २-"चर्मचित्रं श्वेतकुष्ठे" इति शब्दार्थचिन्तामणि। ३-अश्वगन्धा। ४-सा च श्वेतकृष्णभेदाद् द्विविधकन्दा। ५-बलराम। ६-'तालमखाना' इति प्रसिद्ध। ७-अत्रामशब्देन आमवात परामृश्यते।

क्षयज्वरश्वाससमीरकामलातृडस्रपित्तानि निहन्ति शीतला।
अलं बलं यच्छति वंशलोचना नृणां नवीनेव कुरङ्गलोचना ॥ १०२ ॥
त्वक्क्षीरी[1] स्वादुशिशिरा हृद्या रुधिरशोधिनी।
पित्ततापप्रशमनी गुणतः शर्करासमा ॥ १०३ ॥
सालिमो मैसरः[2] कन्दः स्वादुरच्छच्छविर्गुरुः।
वातपित्तहरो बल्यः संस्विन्नः[3] शुक्रलः परम् ॥ १०४ ॥
करोति रेतः परिपूरितं जनं निषेविता भञ्जयति प्रभञ्जनम्।
बलासजित्पित्तकरी जराहरी प्रमेहपीडाप्रणुदस्ति तोदरिः[4] ॥ १०५ ॥
कसेलिका[5] मेदुरसूक्ष्मवल्कप्रभेदतोऽत्र द्विविधा प्रदिष्टा।
कर्याऽपि[6] युक्त्या नियमेन भुक्ता स्त्रीणां पुनर्यौवनमादधाति ॥ १०६ ॥

इति पौष्टिकवर्ग ॥ २ ॥

वंशलोचना-नवयौवना कुरंगलोचना के समान मनुष्यो को पर्याप्त बल देती है। यह शीतल है-क्षय, ज्वर, श्वास, वात, कामला, तृषा, रक्तदोष तथा पित्त का नाश करती है ॥ १०२ ॥

त्वक्क्षीरी, तवासीर-मधुर, शीतल, हृद्य, रक्त-शोधक, पित्त और दाह शामक तथा गुणमें शर्करा के समान है ॥ १०३ ॥

सालम मिश्र-देश मे उत्पन्न होने वाला कन्दविशेष है। यह भारी, स्वच्छ वर्ण-वाला, स्वादु, वात-पित्त-नाशक एव बल्य है। क्षारादि द्रव्योंद्वारा खिन्न करके इसका उपयोग करने से यह शुक्र की अत्यत वृद्धि करता है। (सालम-मिश्री मस्तिष्क तथा नाडियो को उत्तेजन देता है। यह उत्तम वाजीकर तथा स्तंभन द्रव्य है। पचन नलिका के दाहयुक्त-रोगो मे हितकर है। अतिअभ्यास, अतिमैथुन तथा प्रसवोत्तर कालीन दुर्बलता मे अथवा थकावट मे यह अपना गुण दिखाता है। इसके चूर्ण को १॥ या २ माशा भर मात्रा मे, बकरी या गाय के मधुर दूध के साथ लेना चाहिये।) ॥१०४॥

तोदरी का सेवन करने वाले मनुष्य का शुक्र प्रचुर मात्रा मे बढता है। यह वात नाशक तथा पित्तकारक है, वृद्धावस्था को दूर करती है। कफ तथा प्रमेह मे हितकर एव वेदना शामक है। (तोदरी श्वेत, रक्त तथा पीतवर्ण के भेद से तीन प्रकार की होती है। औषधार्थ इसके बीजो का उपयोग होता है। यह शुक्र को गाढा करती है।) ॥ १०५ ॥

कसेलिका-स्थूल एव सूक्ष्म छाल के भेद से दो प्रकार की कही गयी है। इसका पाक अथवा मोदक बनाकर नियम-पूर्वक सेवन करने से स्त्रियो को पुन यौवन प्राप्त होता है ॥ १०६ ॥

पौष्टिक वर्ग समाप्त ॥ २ ॥

१-'तवाखीर' इति ख्याता। २-मिसरदेशोद्भव। ३-क्षारयोगादियुक्त्या। ४-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा बीजरूपा श्वेतारुणभेदाद् द्विविधा च। ५-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा। ६-पाकमोदकादिस्वरूपया।

अथ सुगन्धिवर्गः ।

कर्पूरो लघुलेखनोऽथ मधुरो वृष्यो नमस्यो गुणै-
श्चक्षुष्यः क्षिपति प्रदाहजनुषां पूरं सुदूरं रुजाम् ।
वैरस्यं विधुनोति कर्षति तृषं मथ्नाति मेदोगदं
पित्तश्लेष्मविषं निरायति स तत्सौरभ्यतः श्लाघ्यते ॥ १०७ ॥
कर्पूरमर्धस्फटिकासहायं समुद्गके ताम्रमये निरुद्धम् ।
विपक्वमन्तः कृशरं प्रमाणाद्विवर्धते क्वापि मया श्रुतं भोः ॥ १०८ ॥
इन्दुं न्यस्य शरावे तदुपरि संमुद्य करकमधरास्यम् ।
दीपाग्नौ खलु दत्ते सिध्यत्युड्डीय हीररुचिरिन्दुः ॥ १०९ ॥

सुगन्धित-द्रव्य-वर्ग ।

कर्पूर अपने गुणों के कारण वन्दनीय एवं उत्तम सुगंध के कारण प्रशंसनीय है। यह लघु, लेखन, मधुर, वृष्य, चक्षुष्य, पित्त, श्लेष्म तथा विष को दूर करता है। दाह से उत्पन्न रोगो को वहुत दूर फेंक देता है। मुख के वैरस्य को मिटाता है, तृषा का शमन करनेवाला तथा मेदो-रोग का मन्थन करता है। (कपूर अल्पमात्रा में वाजीकर किंतु अधिक मात्रा में कामावसादक है। औषधीय मात्रा से अधिकमात्रा में कपूर दाह-जनक तथा मादक-विष है। उष्णता अथवा अन्य कारणों से उत्पन्न हृदय की विकृति में कपूर देने से लाभ होता है—इसी कारण कपूर को हृदय का रक्षक कहा गया है। अपक्व कपूर, पक्व-कर्पूर की अपेक्षा अधिक गुणयुक्त कहा गया है।) ॥१०७॥

कर्पूर तथा इससे प्रमाण में अर्धभाग जितनी स्फटि इन दोनो को मिला कर एक ताम्र की डिविया में सपुटित कर दे, इस डिविया को खिचडी मे रख कर पकाने से कर्पूर अपने प्रमाण से अधिक हो जाता है। यह मैंने कहीं भी सुना है ॥ १०८ ॥

भीमसेनी कपूर वनाने की विधि-कपूर को शराव में रख कर, उस पर मिट्टी के करवे को ओधा ढककर दोनो के सधि-भाग को सुदृढ-सपुटित कर दें।

१–अथ पौष्टिकेषु प्रयोगेषु कर्पूरादीना प्रायो नियतत्वात् सुगन्धिवर्गारम्भ । २–"कर्पूरमस्त्रियाम्" इत्यनुशासनात् पुल्लिङ्गोऽपि । ३–"भेषजस्नेहलवणगन्धधान्यगुडादिषु । पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान् दाप्यस्तु षोडश ।" इति स्मृत्युक्तदण्डयोग्यै साहसिकैरधिकलाभाय क्रियमाणप्रकारस्य प्रदर्शन भिषजामवधानेन प्रवर्तनार्थम् । ४–'करवा' इति लोकप्रसिद्धमृत्पात्रविशेषम् । "करकाश्च हिरण्मयान्" इति । वाल्मीकि । ५–अष्टमाश किंचिदधिको वा सिध्यति । स च लोके "भीमसेनी कपूर बरास" इति । योगरत्नाकरेऽपि—

"सुधाशोर्वसुभागा स्युरेलाभागद्वयं तथा । चन्दनं चाब्धिफेनं च बीज कतकसभवम् ॥
रसाञ्जनं भद्रमुस्त प्रत्येकं कर्षसंमितम् । सर्वं दुग्धे विमर्द्याथ पिण्ड गोधूमपिष्टवत् ॥
कृत्वा पात्रे निधायाथ क्षिपेत् पात्र तथोपरि । अथ प्रज्वालयेद्दीपं वर्त्याऽङ्गुष्ठसमानया ॥

त्रुटिशीतभूतकेशीप्रभृति[2] नियोज्यं गुरूक्तमार्गेण ।
उपयुक्तमत्र यत्रावरणमसकृदार्द्रवस्त्रखण्डेन ॥ ११० ॥

मेषीपयोभिर्मसृणीकृतस्य विधोर्विधेया गुलिका सरन्ध्रा ।
माला तदीया शिशिरा मनोज्ञा गले ललन्ती दवथुं निहन्ति ॥ १११ ॥

इसके नीचे तिल तैल के दीपक की तीन घटे तक अग्नि दे, ऊपर के करवे मे हीरक मणि-तुल्य स्वच्छ द्रव्य लग जायेगा । यही सिद्ध भीमसेनी कपूर है । इसे बरास भी कहते हैं ॥ १०९ ॥

उपरोक्त शराव मे कपूर के साथ इतने द्रव्य और मिला देवें, स्थूल तथा छोटी दोनो प्रकारकी इलायची, जटामांसी, चंदन, उशीर, वाशी, कपूरकाचरी, तुत्थ, कस्तूरी, केसर, अंबर, शीतल मिर्च, टकण, सौरा, शिलारस, मुरा, शिरीप, पिप्पली, हरिद्रा, केतकी, गुलाब, स्फटी, मिश्री, शिलाजित, मुस्ता, लताकस्तूरी, लविंग, अगुरु, मुलहठी, त्वक्, जायफल, चम्पा, नख, शल्लकीसार, कंकोल, प्रियंगु, दूर्वा, ताबूल, तुलसी, कदली-स्तंभ-रस और गोदुग्ध । शराव संपुटवाले उपरी घट पर तीन चार तह किया हुआ आर्द्र वस्त्र पुन पुनः रखते रहें । दीपक की अग्नि तीन घंटे से अधिक नहीं देनी चाहिये, अधिक अग्नि लगने से घट लग्न द्रव्य पुन नीचे गिर जाता है । अत तीन घंटे के उपरात यंत्र को नीचे उतार कर, ऊपरी घट-सलग्न कपूर निकाल लेना चाहिये । शराव में स्थित कपूर यदि सपूर्ण उडकर ऊपरी घट मे जमा नहीं हुआ हो तो उसे पुन उडा लेना चाहिये) ॥ ११० ॥

भेड के दूध मे कपूर को पीसकर मणके जैसी छोटी गोल-गुटिकायें बना लें, इनमें छिद्र करके-तथा सूत्र में पिरोकर माला बनालें । सौंदर्य-प्रसाधन रूप से गले में धारण की गई यह माला शीतलता देती एव दाह का शमन करती है । भेड के दूध में पीसने से कपूर उडता नहीं है ॥ १११ ॥

एवं प्रहरपर्यन्तं वह्निं कुर्याच्च युक्तित । पात्रस्योपरिभागं तु शीतलं रक्षयेद्बुध. ॥
सदाऽऽर्द्रचैलखण्डेन शीतलेन च वारिणा । स्वाङ्गशीत ततो ज्ञात्वा पश्चात् कर्पूरमाहरेत् ॥
स्फटिकाकारमत्यच्छं श्वेतं हीरमणिप्रभाम् । भीमसेनाख्यकर्पूरमौषधेषु प्रयोजयेत् ॥" इति ।
केचित् पुन —" पक्वात् कर्पूरत प्राहुरपक्व गुणवत्तरम् ।" इति वदन्ति ।

१—त्रुटि स्थूला सूक्ष्मा च द्विविधाऽत्र विवक्षिता । २—" वाशी गन्धसठी तुत्थ कस्तूरीकुंकुमाम्बरे । कबाबा टङ्कणं चण्डी (क) गौरक शिह्लकं मुरा । शिरीषं पिप्पली नक्तं केतकी तरुणी स्फटी । सिताकेसरशैलेयोशीरमुस्तकपाणिजम् (ख) ॥ लवङ्गागुरुयष्टी-त्वग्जातीकोष सचम्पकम् । पत्रिका (ग) शल्लकीसार कङ्कोलं च प्रियङ्गुका ॥ दूर्वाताम्बूल-तुलसीरम्भावारि पयो गवाम् । एतान् कर्पूरसस्कारे यथालाभं प्रयोजयेत् ॥" इति—प्रभृतिशब्दार्थं । (क) लताकस्तूरी । (ख) नखम् । (ग) 'पनडी' इति लोके ।

कस्तूरिका परितनोति दधाति हन्ति
मुष्णाति नाशयति शोषयति क्षिणोति ।
शुक्रं कटुत्वमनिलं सकफं विषार्ति
वान्ति विशोपमपि शीतभरं क्रमेण ॥ ११२ ॥

अम्बरं नाम किमपि गन्धद्रव्यं समीरितम् ।
शैत्यजित् पित्तलं हृद्यं ग्रहघ्नं चपलासखम् ॥ ११३ ॥

कस्तूरी–शुक्र को बढाती है-कटुता देती है, वातको कफ सहित नष्ट करती है। विषपीडा को दूर करती है, वमन को बन्द करती है, शोप का शोपण करती तथा शीत-भार को कम करती है। (असली कस्तूरी की परीक्षा-जो कस्तूरी, पिंजर वर्ण युक्त केतकी पुष्प की सी सुगन्ध-वाली, स्वाद मे तिक्त अथवा कटु, वजन मे हलकी, मसलने से चिकनाहट देने वाली, दग्ध किये जाने पर भी न जलने वाली, अग्नि पर डालने से चिमचिम करनेवाली–अथवा मानों चर्म जल रहा हो ऐसी गध देनेवाली हो, वह असली है। परीक्षण की दूसरी विधि–कस्तूरी को हथेली मे रख कर उसमे थोडे जलबिंदु डाले, यदि कुछ समय पीछे वह जल आरक्तता लिये पीले रंग का हो जाये तो समझना यह कस्तूरी कृत्रिम है। 'ईषत् क्षारानुसौगन्ध्या दग्धा याति न भस्मताम्। पीता केतक गधा च लघु स्निग्धा मृगोत्तमा'।) ॥ ११२ ॥

अंबर एक सुगधित-द्रव्य-विशेष का नाम है। पिप्पली-चूर्ण के साथ यह शीत को जीतता है–पित्तल एवं हृद्य है। ग्रहो के अनिष्ट को यह दूर करता है। (यावन-निघण्टु मे अंबर के विषय मे यह वर्णन है–'द्वीपान्तरीयस्य वृषस्य फेनो रोमन्थजो ह्यंबरनामधेय। सौरभ्यसपन्नतृणाशनाद्य कस्तूरिकातुल्यगुणाकर स्यात्।) ॥ ११३ ॥

१–परीक्षणमेतदीय यथा—

"या गन्ध केतकीना वहति समधिकं वर्णत पिञ्जराभा
स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलघु तुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात् ।
भस्मत्व नैति दग्धा चिमिचिमि कुरुते चर्मगन्धा हुताशे
सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा ॥"

अन्यदपि—

"करतलजलमध्ये स्थापयित्वा मद्धि पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीय मुहूर्तम् ।
भवति यदि सरक्त सज्जलं पीतवर्ण न भवति मृगनाभि कृत्रिमोऽसौ विकारः ॥"
"ईषत्क्षारानुसौगन्ध्या दग्धा याति न भस्मताम् ।
पीता केतकगन्धा च लघु स्निग्धा मृगोत्तमा ॥" इत्यपि कश्चित् ।

२–इदं च द्वीपान्तरीयवृषविशेषफेनरूपम् । तथा चोक्तं यावने निघण्टुविशेषे—
"द्वीपान्तरीयस्य वृषस्य फेनो रोमन्थजो ह्यम्बरनामधेय ।
सारभ्यसपन्नतृणाशनाद्य कस्तूरिकातुल्यगुणाकरः स्यात् ॥" इति ।

लुनाति[1] मथ्नाति रुणद्धि हन्ति ददाति चोत्कृन्तति कुङ्कुमाख्यम् ।
व्यङ्गं त्रिदोषं वमनं व्रणौघं कान्तिं रुजां मस्तकजां प्रसह्य ॥ ११४ ॥

विषक्लमश्लेष्मविकारभञ्जनं विदाहपित्तास्रतृषादिगञ्जनम् ।
सतिक्तशीतं लघु चित्तरञ्जनं सुगन्धि वृष्यं स्मरबोधि चन्दनम् ॥११५॥

[2]अगुरु [3]नगुरु वातश्लेष्मशीतेषु शस्तं
कटुरसमतिहृद्यं पित्तलं तिक्ततीक्ष्णम् ।
श्रवणनयनरुक्त्वग्दोषरोषप्रमोषि
प्रवरमगुरु नीरे मज्जनं यत् करोति ॥ ११६ ॥

पद्मकं शिशिरतिक्तकषायं वातलं वमिहरं लघु रुच्यम् ।
दाहकुष्ठकफपित्ततृडस्रस्फोटरुग्व्रणविसर्पविनाशि ॥ ११७ ॥

केसर–व्यङ्ग को काटता है, त्रिदोष का मथन करता है, वमन को रोकता है, व्रण-समूह को हटाता है, कान्ति को बढाता है, शीर्षवेदना को हठात् नष्ट कर देता है ॥ ११४ ॥

चंदन–विष, क्लम तथा कफ के विकारो को तोडनेवाला एव विदाह, पित्त, रक्त-विकार तथा तृषा आदि को दूर करता है। तिक्त, शीतल तथा लघु है। चित्तको प्रसन्न करने वाला, वृष्य, सुगधित तथा कामोद्बोधक है ॥ ११५ ॥

अगुरु–गुरु नहीं है, यह वात, कफ तथा शीत-जन्य विकारों मे प्रशस्त, रस में कटु, अत्यंत हृद्य, पित्तकारक, तिक्त तथा तीक्ष्ण है। यह कर्ण, नेत्र तथा त्वचा के उग्र विकारो का नाश करता है। जो अगुरु जल मे न डूबे वही उत्तम है–और ऐसे ही अगुरु को औषधि-व्यवहार में लेना चाहिये ॥ ११६ ॥

पद्मक शीतल, तिक्त, कषाय, वातकर, वमि मे हितकर, लघु, रुचिकारक तथा दाह, कुष्ठ, कफ, पित्त, तृषा, रक्त विकार, विस्फोट, व्रण और वीसर्प का नाश करने वाला है। (पद्माक की नयी लकडी ही काम में लेनी चाहिये। इसकी छाल में एक विशेष प्रकार का विषैला सत्त्व मिलता है। स्तंभन तथा कटु पौष्टिक गुण इसकी लकडी में है। किंतु वेदना स्थापन गुण इसकी छाल मे ही उपलब्ध होता है। आमाशय के क्षत में इसका उपयोग किया जाता है। हृदय पर मेद बढ जानेपर एक प्रकारकी कास उठती है, इस में यह गुण कारक है। पद्माख का क्वाथ करने से इसका सत्त्व उड जाता है। अत. गुनगुने पानी मे इसका फाट बनाकर देना चाहिये। पद्माख को जल मे घिस कर लेप करने से सूखी खाज मे लाभ होता है।) ॥ ११७ ॥

१–अत्रापि क्रमेणान्वय । २–मुखन्छायाम् । ३–"काकतुण्डाकृति· स्निग्धो गुरु, श्वैवोत्तमोऽगुरु ।" इति परीक्षा । "अगुरु पुंस्यपि" इत्यमरटीका । ४–लघु इत्यर्थ ।

स्यात्तिक्तं ग्राह्युशीरं लघु हिममधुरं छर्दितृष्णास्रकृच्छ्रे
मांसी[1] शीता कषाया द्युतिमतिबलदा दोषवीसर्पकुष्ठे ।
शैलेयं[2] शीतहृद्यं कफदवथुविषास्राश्मरीकुष्ठकष्टे
मुस्ता संबद्धविट्का कृमिकफपवनारोचतृष्णाज्वरास्रे ॥ ११८ ॥

कङ्कोलमुष्णं लघु तीक्ष्णतिक्तं रुच्यं मनोज्ञं श्वसनप्रहारि ।
कामप्रदं हन्ति बलासवेगं हृद्रोगदौर्गन्ध्यमरुद्विदारि ॥ ११९ ॥

हिक्कामकण्डुकफमारुतरक्तशोथ-
श्वासप्रमेहगदपीनसरुक्षु चारुः ।
तन्द्राविबन्धशमनो मथनो ज्वरस्य
स्निग्धोष्णतिक्तकटुकः किल देवदारुः ॥ १२० ॥

जातीफलं[3] कटुकतिक्तलघूष्णतीक्ष्ण-
स्वर्यप्रदीपनसुगन्धिमनोज्ञरुच्यम् ।
कुर्यात् तृषाविषवमिक्रिमिशोषकास-
श्वासार्तिमारुतकफानभिधावशेषान्[4] ॥ १२१ ॥

उशीर—तिक्त, लघु, शीतल तथा मधुर है। यह वमन, तृषा, रक्तपित्त तथा मूत्रकृच्छ्र में हितावह है। जटामांसी शीतल, कषाय तथा बल्य है। यह शरीर के तेज को तथा मति को बढानेवाली, त्रिदोष नाशक, वीसर्प तथा कुष्ठ को शमन करनेवाली है। शैलेय, छारछरीला-शिलापुष्प शीतल तथा हृद्य है। कफ, दाह, विष, रक्त, पित्त, अश्मरी तथा कुष्ठ को दूर करता है। मुस्ता, नागरमोथा-मल को बांधता है। क्रृमि, कफ, वात, अरुचि, तृष्णा, ज्वर एवं रक्तपित्त-विकार में उपकारक है ॥ ११८ ॥

ककोल-उष्ण, लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, रुचिकर, मन को प्रिय, श्वासहर, कामोत्तेजक, तथा कफ, हृद्रोग, दुर्गंध और वात का नाशक है ॥ ११९ ॥

देवदारु—स्निग्ध, उष्ण, तिक्त तथा कटु है। हिक्का, आम, खुजली, वात, रक्त-विकार, शोथ, श्वास, तथा प्रमेह में उत्तम लाभ देता है। तंद्रा तथा विबन्ध का शमन और ज्वर का मंथन करता है। (इसका सार, काष्ठ तथा काष्ठ को जला कर निकाला हुआ तैल, औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं। देवदारु का तैल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रण शोधक, क्रृमि, कुष्ठ तथा वात का नाशक है। जीर्ण त्वचा के विकारों में इसका तैल खाने तथा लगाने से लाभ होता है। ज्वर में इसके प्रयोग से स्वेद आता तथा मूत्र का प्रमाण बढता है। जीर्ण आमवात मे यह उपकारक है।) ॥ १२० ॥

जातीफल, जायफल कटु, तिक्त, लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, स्वर को उत्तम करनेवाला, मन को आह्लादक, सुगन्धित, रुचिकर तथा दीपन हे। यह तृषा, विष, वमन, क्रृमि, शोष, कास, श्वास, वात, एव कफ का सपूर्ण नाश कर देता है ॥ १२१ ॥

१—मासी पिङ्गलजटाकृतिरिति । २—शिलापुष्पं 'छारछरीला' इति लोके ख्यातम् । ३—"जातिफलं सशब्द च स्निग्ध गुरु च शस्यते"। ४—नाममात्रावशेषान्।

जाविन्त्रिका[1] लघु स्वाद्वी कटूष्णा रुचिवर्णदा ।
कासश्वासक्रिमिवमिनाशिनी सुरभिः सरा ॥ १२२ ॥
हिक्काशूलश्लेष्मपित्तास्रतृष्णाच्छर्द्याध्मानश्वासकासक्षयघ्नम् ।
रुच्यं नेत्र्यं स्वल्पशीतं लवङ्गं तिक्तोदग्रं पाचनं दीपनं स्यात् ॥ १२३ ॥
कबावचीनी[2] शिशिरा प्रमेहप्रहारिणी किंचिदिवौष्ण्यदाऽपि ।
संग्राहिणी तूर्णवितीर्णमूत्रा लवङ्गभद्रत्रिपुटावदुक्ता ॥ १२४ ॥
एला[3] कासश्वासहृल्लासवाते पित्तास्रार्शोमूत्रकृच्छ्रेषु शस्ता ।
शीता लघ्वी वक्त्रसौगन्ध्यकर्त्री हृद्या वृष्या पाटवं च व्यनक्ति ॥ १२५ ॥
त्वक्[4] स्यादुष्णा तिक्ता स्वाद्वी कट्वी लघ्वी रूक्षा रुच्या ।
जन्तावामे वातव्याधौ श्लेष्मोद्रेके पाण्डौ पूज्या ॥ १२६ ॥

जावित्री-हलकी, स्वादु, कटु, उष्ण तथा रुचिकारक है । वर्णको उत्तम करती है। कास, श्वास, कृमि एव वमन का नाश करने वाली, सुगधित तथा सारक है ॥ १२२ ॥

लवङ्ग, (लौंग)-हिक्का, शूल, कफ, पित्त, रक्तदोष, तृषा, वमन, आध्मान, श्वास, कास तथा क्षय को दूर करती है । रुचिकर, नेत्र को हितकर, कुछ शीतल, अत्यंत तिक्त तथा दीपन-पाचन है ॥ १२३ ॥

कबाबचीनी, शीतल मिर्च-शीतल तथा कुछ उष्ण है, प्रमेह को हरती है । यह सग्राहक, शीघ्र मूत्र लानेवाली, लौंग तथा इलायची के समान गुणवाली है । (इसके बीज और तैल उपयोग मे आते है । बीज को चबाने से एक विशेष प्रकार की मनोज्ञ, तीक्ष्ण गध आती है । स्वाद चरपरा होता है । और जीभ पर कुछ ठंडक प्रतीत होने लगती है । जीर्ण सुजाक और अर्श पर यह उत्तम औषधि है । मुखपाक मे कबाबचीनी लाभ करती है । यूनानी मत मे यह ध्वजोच्छ्राय-जनक तथा वातानुलोमक है । इसके प्रयोग से दात तथा मसूढे मजबूत होते है ।) कंकोल एवं कबाबचीनी को बहुत से वैद्य एक ही मानते है । वस्तुतः यह दोनों भिन्न भिन्न औषधीय द्रव्य है ॥ १२४ ॥

एला (इलायची)-कास, श्वास, हृल्लास, वात, पित्त तथा मूत्रकृच्छ्र मे प्रशस्त है । शीतल, लघु, मुखको सुगन्धित करने वाली, हृद्य तथा वृष्य है । स्वास्थ्य की सुरक्षा करती है । (पाटव का अर्थ स्वास्थ्य भी होता है ।) (पचन नलिका की शिथिलता तथा प्रदाह-प्रधान विकारो मे एला प्रचुर लाभ दिखाती है । अंत्र-रस कम उत्पन्न होता हो-तथा पित्त-स्राव उचित मात्रा मे नही होता हो तब इलायची देते हैं । नाडीशूल मे-२-३ ग्रेन कुनैन के साथ इलायची का प्रयोग उपकारक है ।) ॥ १२५ ॥

त्वक्, (दालचीनी)-स्वादु, उष्ण, तिक्त, कटु, लघु, रूक्ष तथा रुच्य है । क्रिमि, आम और वात-व्याधि मे, श्लेष्मा की अधिकता मे तथा पाडु-रोग में पूज्य है ॥ १२६ ॥

१-जातिपत्री । २-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा कृष्णमरिचाकृति । 'शीतलमरिच' इत्यपि कुत्रचिदुच्यते । ३-एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा । ४-'तज-दालचीनी' इति ख्याता ।

भिन्दञ्छूलभयं व्रणानभिभवञ्छिन्दन् विसर्पादिका-
न्रालो भाति समाचरन्नतिसृतौ शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १३६ ॥

इति सुगन्धिवर्ग ॥ ३ ॥

को छेदती तथा अतीसार को रुद्ध करती हुई शार्दूल-विक्रीडित का अनुसरण करती है। (ग्रंथकार ने 'शार्दूल-विक्रीडित' वृत्त में 'राल' के बहुविध गुण-धर्म का यह वर्णन किया है। शार्दूल-विक्रीडित का शब्दार्थ है 'सिंह-क्रीडा'। राल की गुण-धर्म-मय क्रियाओं को वैद्य महाकवि श्रीकृष्णरामजी ने 'शार्दूलविक्रीडित' के समान बताते हुये-छंद का नामोल्लेख भी साथ ही साथ कर दिया है। यह पद्धति वाग्भट ने भी अपनायी है। यथा–हिंगुग्राविडशुण्ठ्यजाजिविजयावाय्याभिधानामयैश्चूर्णः कुम्भनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तर वर्धितै । पीत कोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदरादीनय शार्दूल प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानिव'। यहा 'शार्दूलविक्रीडित' वृत्त में 'वृत्त का नाम' 'शार्दूल' भी उल्लिखित हुआ। इसे रचना-कौशल कहते हैं। अस्तु, शक्कर के साथ राल का चूर्ण आव तथा रक्तातिसार मे उत्तम लाभ दिखाता है। उपजिह्वा के बढने पर इसके चूर्ण का मर्दन उपकारक है।) ॥ १३६ ॥

सुगन्धि-वर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

अथ पुष्पवर्गः[3]।

दाहोदन्यास्रविस्फोटविसर्पगरलादिषु ।
मृद्नाति मधुरं वर्ण्यं कमलं कमलं[4] न हि ॥ १३७ ॥

पुष्प-वर्ग।

कमल-तृषा, दाह, रक्तपित्त, विस्फोट, विसर्प, गरल आदि मे से किसे यथेच्छ नष्ट नहीं करता? यह मधुर है एवं वर्ण को उत्तम करता है। (श्वेत कमल को पुंडरीक, रक्त कमल को कोकनद या राजीव एवं नीलकमल को इन्दीवर कहते है। श्वेत की अपेक्षा रक्त एव नीलकमल न्यून गुण वाले होते है। सूर्य-विकासी कमल के बीज को कमलगट्टा कहते है। रात्रिविकासी कमल को कुमुद कहते है। इसके फल-कोष मे सरसो के समान आरक्त दाने होते है जो सूखने पर कृष्णवर्ण हो जाते है। इसके लड्डु हलके तथा शीघ्रपाची होते है। कमल पुष्पो की पंखुडियो के बीच बीच पीताभ जीरे जैसा द्रव्य कमल-किंजल्क, केसर कहलाता है, एवं पीतवर्ण के धूलिकण कमल-रेणु रज कहे जाते है। फूलों के पूर्ण विकास काल मे एक कोष की उत्पत्ति होती है

१–शालनिर्यास.। २–सिंहचेष्टितं छन्दोविशेषश्च। इति सुगन्धिवर्ग । ३–घ्राणेन्द्रिय-सतर्पकत्वेन पुष्पवर्ग सुगन्धिवर्गानन्तर सदर्भ्यते। ४–कम् अलमिति च्छेद कं नाल मृद्नातीति योजना।

लघुशिशिरगुणाऽथ शुक्रकर्त्री कटुकरसा रुचिरा त्रिदोषहर्त्री।
पृथुतररुधिरातिसारहन्त्री बलमहसोः शतपत्रिका सवित्री॥ १३८॥

तरुणी[2] शिशिरा हृद्या शुक्रला स्रंसिनी मनाक्।
त्रिदोषशमनी वर्ण्या दाहपित्तास्रनाशिनी॥ १३९॥

जातीयुगं[3] मस्तकनेत्रवक्त्ररदार्तिकुष्ठास्रविषेषु शस्तम्।
यूथीयुगं[4] चापि तथैव किं तु व्रण विशेषाद्विकलीकरोति॥ १४०॥

कफानिलासृग्विषजन्तुकृच्छ्रपित्तापदो गन्धफली[5] पिनष्टि।
दन्त्यो विषश्वित्रकृमिव्यथाघ्नोऽनुष्णः कषायो हरिकेसरोऽपि[6]॥ १४१॥

कषायलवणस्वादुर्नीपो रूक्षो हिमो गुरुः।
बलासस्तन्यपवनप्रदो विष्टम्भकः सरः॥ १४२॥

जिसमे बीज निकलते है। इन्ही कच्चे बीजो को कमलगट्टा कहते है। इसकी पेया से वमन, हिचकी तथा प्रदर बंद होता है। कमल की पंखुडियां हृदय संरक्षक तथा रक्त-सग्राहक है। रक्तार्श, अत्यार्तव और दाह मे कमल-केसर, मिश्री तथा मक्खन के साथ देते है। गार्भिणी के गर्भाशय से रक्तस्राव मे कमल के फाट से लाभ होता है। कमल के फूल, चदन, रक्त-चंदन, खस, मुलहठी तथा नागरमोथा का क्वाथ मिश्री के साथ, पित्तज्वर की उत्तम औषधि हे।)॥ १३७॥

शत-पत्रिका (सेवन्ती गुलाव) लघु, शीतल, शुक्रल, रस मे कटु, रुचिर, त्रिदोष-शामक तथा तीव्र रक्तातिसार का नाशक है। बल तथा तेज को बढाता है॥ १३८॥

तरुणी (गुलाब पुष्प) शीतल, हृद्य, शुक्रल, कुछ सारक, त्रिदोष शामक और वर्ण्य है तथा दाह, पित्त एव रक्त दोष को दूर करता है॥ १३९॥

जातीपुष्प (श्वेत तथा पीत चमेली और सोन चमेली दोनो ही) मस्तिष्क मुख, नेत्र तथा दात की वेदना को मिटाता है। कोढ, रक्त-विकार तथा विषमे लाभ-दायी हे। दोनो प्रकार की जूही-जुही तथा सोनजुही भी गुण मे चमेली के समान ही है। विशेषतया व्रण मे उपकारक है॥ १४०॥

गन्धफली (चम्पा पुष्प) कफ, वात, रक्तदोष, विष, कृमि, मूत्रकृच्छ्र तथा पित्त व्याधि को पीस डालता है। हरिकेसर (बकुल पुष्प) दन्त्य है, विष, श्वित्र तथा कृमि की व्यथा मिटाने वाला, अनुष्ण एव कषाय है॥ १४१॥

नीप (कदंब पुष्प) कषाय, क्षारयुक्त, स्वादु, रूक्ष, शीतल, तथा गुरु है। कफ तथा वातकर, विष्टभी, सारक एव स्तन्य है॥ १४२॥

१–श्वेतपुष्पा तरुणी 'सेवन्ती गुलाब' इति प्रसिद्धा। २–लाक्षापुष्पा तरुणी 'गुलाब'नाम्ना लोकव्यवहृता। ३–श्वेतपीतपुष्पभेदात्। 'चमेली-सोनचमेली' इति प्रसिद्धम्। ४–इदमपि तथैव 'जुही-सोनजुही' इति मालाकारैराकार्यते। ५–चम्पक-कलिका। ६–वकुलः 'बोलसरी' इति प्रसिद्धः।

केतक[1]स्तिक्तकटुकलघुभावात् कफापहः ।
तिक्तोष्णामोदबहुला नेत्र्या काञ्चनकेतकी ॥ १४३ ॥
रक्तपित्तशिरोबाधाविषघ्नः प्रतिविष्णुक[2]ः ।
माध्याह्निक[3]स्तु संग्राही कफकृद्वातपित्तहृत् ॥ १४४ ॥
हृद्या संग्राहिणी केश्या कफमारुतजिज्जपा[4] ।
सुलभा[5] पवनश्लेष्मकुष्ठकृच्छ्रास्रशूलनुत् ॥ १४५ ॥

केतक (केवडा) तिक्त, कटु, लघु और कफहर है। कांचन-केतकी तिक्त, उष्ण, अत्यत सुगंधयुक्त तथा नेत्रों को हितकर है। (केवडे के मूल, पुष्प तथा फल व्यवहार से आते है। मूलक्षार १-२ माशे, पुष्प क्वाथ ५-१० तोले मात्रा मे लेना चाहिये। केवडा घर्मकारक तथा आक्षेपनिवारक है। मूर्च्छा तथा श्रम में इसका प्रयोग होता है। जीर्ण तथा नूतन शिरोवेदना मे लाभदायी है। कर्ण-शूल अथवा पूतिकर्ण मे इसके तैलबिंदु डालने से शांति मिलती है। केतकी के मूल को दूध के साथ पीस कर सेवन करने से गर्भस्राव की शंका नही रहती। यह शीतवीर्य है। ज्ञानेन्द्रिय, हृदय एवं मस्तिष्क को बल देता है। रक्त की तीक्ष्णता एव हृदय की धडकन मे लाभदायी है।) ॥ १४३ ॥

प्रति-विष्णुक (मुचुकुन्द, क्षत्रवृक्ष)–रक्तदोष, शिरोवेदना तथा विष का नाश करता है। माध्याह्निक (दुपहरिया, बप्पोरियो)–ग्राही, कफकारक तथा वात-पित्तनाशक है ॥ १४४ ॥

जपा (गुडहल)–हृद्य, ग्राही, केश्य, कफ-वात-शामक है। सुलभा (तुलसी) वात, कफ, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष तथा शूल को दूर करती है। (गुडहल के पुष्प प्रयोग मे आते है। पुष्प-कल्क १-२॥ तोला तक लिया जा सकता है। गुडहल के फूलों को कृष्ण-गाय के मूत्र मे पीसकर लगाने से सिर की गंज मे लाभ होता है तथा बाल बढते है। जपा-पुष्प की १०-१२ कलिया दूध मे पीस छान कर पीने से, तथा केवल दूध पीकर रहने से-प्रदर मिटता है-'कृष्णगवीमूत्रयुतैः पिष्टैरालेपितैर्जपाकुसुमैः ॥ शतमखलुप्तं नश्यति भवन्ति केशाश्च तत्र घना' रा निघण्टु। 'कलिकाः क्षीरसपिष्टा जपाविटपजाः पिबेत्। दश द्वादश वा, नारी प्रदरार्ता पयोऽशनी' –गदनिग्रह। तुलसी शीत-प्रधान रोगो मे दी जाती है। ज्वर मे इसका स्वरस काली मिर्च के चूर्ण के साथ, सर्वांग-वेदना एवं सधिशोथ मे अजवायन और सभालु के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। इसका स्वरस वमन बद करता तथा दस्त साफ लाता है। अश्मरीशूल, तथा बस्तिशोथ मे इसके बीजका हिम दूध तथा शक्कर के साथ दिया जाता है।) ॥ १४५ ॥

१–क्रकचच्छद 'केतकी, केवडा' इति ख्यात । २–मुचुकुन्द
३–'दुपहऱ्यो', 'बप्पोरिओ' इति च ख्यात । ४–सुकुमाराऽतिलोहितपुष्पा 'भोडल, जासूल' इति प्रसिद्धा। ५–तुलसी।

विषशूकप्रभृतिविषक्रिमिकुष्ठवलासवातजिन्मरुकैः ।
ग्रहकुष्टरक्तकण्डूविषत्रिदोषापहो दमनः ॥ १४६ ॥
सेवन्तीतरुणीसहस्रमिहिरव्याघ्रीवलाधातकी-
पीकादण्डसुवर्णशाल्मलिजपाफूकाम्रबब्बूलजाः ।
स्वस्वप्रत्ययगैर्विशिष्य सुमनःकन्दा अमन्दा गुणैः
किंतूच्चै रुचिसौमनस्यमहिताः सौम्याः सितासङ्गतः ॥ १४७ ॥
प्रसूनकन्दविषये पुष्पेभ्यस्त्रिगुणा सिता ।
वर्षं सूर्यातपः सिद्धौ त्रुटिक्षेप इति स्थितिः ॥ १४८ ॥

मरुक (मरवा) विष-शूक आदि विषाक्त जन्तुओं के विषका, कृमि, कुष्ठ, कफ तथा वात का नाश कर देता है। दमन (दमनक) ग्रह, कुष्ठ, रक्तदोष तथा त्रिदोष को दूर करता है ॥ १४६ ॥

सेवतीगुलाब, गुलाब, सूरजमुखी, आकडा, व्याघ्री, बला, धाय, सेहुण्ड, अमलतास, सेमल, गुडहल, अफीम, बबूल आदि के पुष्पो से तथा आम्र की मजरी आदि से बनाये गये गुलकंद, अपने अपने पुष्पों के गुणो के समान ही गुणयुक्त होते हैं। किंतु, यदि इनमें मिश्री मिला दी जाये तो ये विशेष रुचिकर, सुगन्धयुक्त तथा गुणों में अधिक हो जाते हैं ॥ १४७ ॥

गुलकंद बनाने में पुष्प से तिगुनी मिश्री लेनी चाहिये। एकवर्षपर्यंत सूर्य-ताप में पकने से गुलकन्द तैयार-सिद्ध होता है। इस तरह सिद्ध हो जाने पर इलायची का चूर्ण इसमें डालना चाहिये ॥ १४८ ॥

१—'मरवा' इति प्रसिद्ध पर्णागभेद । २—दोनाप्रसाद । ३—सितया सह पुष्प-कलिकादिम्रक्षणजातस्य 'गुलकन्द'नाम्ना यवनवैद्यै प्रसिद्धीकृतस्य साधारणो गुणज्ञानोपायः; अत्र च सहस्रं 'गेन्दहजारा' इति प्रसिद्धम् । मिहिरोऽर्क । इषीका 'तुलियाथोर,' दण्डः 'दण्डाथोर' इति । सुवर्ण कृतमाल । आफूकम् अफीमपुष्पम् । ४—स्वस्वोपादानगतै-रित्यर्थ । ५—तत्साधनार्थं परिभाषेयम् । निघण्टुसारे त्वन्यथा परिभाष्यते यथा—

"पिष्ट्वादौ कलिका द्विघ्ने स्वादौ क्षिप्त्वा करैस्तत ।
घृष्ट्वा घृतेऽभ्रेऽहोरात्रे खाब्धिसख्यै प्रजायते ।
तत्तद्वृक्षगुणः कन्दो नूल श्रेष्ठो गुणाधिक ।" इत्यादि

होलामहोत्सवे मुक्तकमुक्तावलौ वा श्रीगुरुभिर्देशभाषाबन्धेन मादकोऽपि सुमकन्दः स्वीयदेशभाषावृत्तेन वर्णित । यथा—

"मिश्री लेकर वंशलोचन सही तामें मही डारिकै
भङ्गाको घृतदे गुलाबदल औ एला मिला दीजिये ।
पीछे पात्रविषे पचीसदिन लों नीके जमा कीजिये
लीजे ये गुलकन्द फेर झगरो कीजे कलाकन्दतै" इति ।

गुलाबादिप्रसूनोत्थः स्नेहः कोऽप्यत्तरः स्मृतः ।
सौरभप्रीणितघ्राणो यज्जातस्तद्गुणागुणः ॥ १४९ ॥

इति पुष्पवर्गः ॥ ४ ॥

गुलाब आदि पुष्पों मे से निकाला गया स्निग्ध-द्रव्य-सार 'इत्र' कहलाता है। इत्र अपनी सुगन्ध से घ्राणेन्द्रिय को परितृप्त करनेवाला होता है। जिस पुष्प का जो 'इत्र' होता है, उसके गुण-धर्म उस पुष्प के तुल्य ही समझने चाहिये ॥ १४९ ॥

पुष्प-वर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

अथ फलवर्गः[2] ।

शिशिरमधुरा गुर्वी नेत्र्या सरा बहुबृंहिणी
ज्वरमरुदसृक्पित्तश्वासक्षयार्तितृषः क्षिपेत् ।
दवथुमदरुङ्मूर्च्छामूत्रापदोऽपि च गोस्तनी[3]
प्रविलसदसृक्पित्तोष्णाऽऽमा मताऽम्लरसाधिका ॥ १५० ॥

वमिमददवभ्रान्तिश्रान्तिज्वरास्रमरुत्तृषा-
रुचिस्रुतिमहामूर्च्छापित्तापहं मधुरं लघु ।
प्रकटयति कफेऽप्यौदासीन्यं हिमं बलशुक्रलं
परिणततरं बालं हीनं ततो वरदाडिमम्[4] ॥ १५१ ॥

फल-वर्ग ।

गोस्तनी (पक्क अंगूर) शीतल, मधुर, भारी, नेत्र्य, सारक तथा अत्यत बृहण है। ज्वर, वायु, रक्तविकार, पित्त, श्वास, क्षय तथा तृषा को मिटाती है। दाह, मद, मूर्छा एव मूत्र कृच्छ्र को भी नष्ट करती है। अधिक अम्ल रस से युक्त एवं अपक्क अंगुर उष्ण तथा रक्त-पित्त कारक है ॥ १५० ॥

परिपक्क दाडिम (अनार), वमन, मद, दाह, भ्रम, मानसिक तथा शारीरिक थकान, ज्वर, रक्त-विकार, वायु, तृषा, अतीसार, महामूर्छा और पित्त का नाश करने वाली, मधुर, रुचिकर, कफ मे उदासीन, शीतल एवं बल और शुक्र की वर्धक है। कच्ची अनार मे परिपक्वकी अपेक्षा न्यून गुण है ॥ १५१ ॥

१—अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो न च केवलं प्रसूनोत्थ एव किं तु अम्बरोशीरपनडी-चन्दनादिसुगन्धिद्रव्यसयोगेनापि जायते । प्रायो गान्धिकापणेषु मिलति । २—पुष्पानन्तर-मेव फलोत्पत्तिदर्शनात्तदनन्तर फलसग्रह । ३—द्राक्षा मुनक्का । ४—वरमिति विशेषणात् काबुलं परिणत सदुक्तगुण, बाल सत्तत परिणताद्धीनगुणमिति ।

वहति तुवरं बाल वद्धास्थ्यपि त्रिमलोदयं
परिणतमसृक्शोफश्लेष्मातिपित्तलमीरितम् ।
मधुरममरुत्पित्तं स्निग्धं विपक्वतमं हिमं
तृपि सदवथौ पथ्यं त्वाम्र्ं रसः स्मरदः सरः ॥ १५२ ॥

अपित्तं खर्वूजं विरचयति रेतो गुरु हिम
मरुन्माथि स्वादु श्रमजिदतिसारं त्वरयति ।
समानं तर्वूजं[3] तदपरिणतं स्यादितरथा
कषायं संग्राहि प्रथितपवनं जाम्बवफलम् ॥ १५३ ॥

दशाङ्गुलस्य प्रतनूनि कृत्वा खण्डानि खण्डेन विमिश्रितानि ।
पित्तप्रतापक्षपणक्षमाणि कामं लिहन्तो धनिनोऽपि धन्याः ॥ १५४ ॥

विष्टम्भि सुस्वादु सर समीरसमीरणं क्षुत्क्षपणं सुगन्धि ।
गुणौघवित्तं परिजित्य पित्तं मुदं किमूदञ्चति नामरूदम् ॥ १५५ ॥

बलासवीर्यपात्राणि दात्राणि द्रवसंपदाम् ।
प्रायशः स्वादुमात्राणि गण्डगात्राणि मन्महे ॥ १५६ ॥

कच्चा आम्र कषाय, कच्ची गुठलीवाला त्रिदोष कारक, पक्व किंतु खट्टा रक्तविकार, शोफ और कफ करनेवाला, पक्व मधुर, वात-पित्त नाशक तथा स्निग्ध होता है। अत्यंत परिपक्व आम्र शीतल तथा तृषा और दाह में पथ्य है। आम्र का मधुर रस सारक तथा कामोद्बोधक है ॥ १५२ ॥

खर्वूज पित्त न करने वाला (अर्थात् किंचित पित्तकारक) शुक्र-वर्धक, भारी शीतल स्वादु, वात-नाशक, श्रमहारक तथा सारक है। तर्वूज भी खर्वूज के समान गुणयुक्त है। किंतु कच्चा तरबूज इससे गुणो में विपरीत होता है। जाम्बवफल (जामुन) कषाय, ग्राही तथा वात-कारक है ॥ १५३ ॥

खरबूज के छोटे छोटे टुकडे करके, उसमे शर्करा मिलाकर यथारुचि सेवन करने वाले धनिक वस्तुत धन्य है। खरबूज का यह पानक पित्त प्रभाव का नाश करने मे समर्थ माना जाता है ॥ १५४ ॥

अमरूद विष्टभी, सुस्वादु, सारक, वातकारक, भूख को मिटानेवाला और सुगंधित है। अपनी गुण सपदा से पित्त को जीतकर एक विशेष आल्हादमय तृप्तिकी अनुभूति कराता हे। (कच्चे अमरूद को स्वच्छ शिलापर पानी से थोडा घिसकर उसका लेप करने से 'आधा सीसी' अर्धावभेदक में तत्काल शांति मिलती है।) ॥ १५५ ॥

सीताफल मधुर, कफकारक, शीतवीर्य और दाह शामक है। (सीताफल को 'गण्डगात्र' तथा 'कृष्ण बीज' भी कहते है। इसके बीज के कल्क का मस्तक पर

१–दरपक्व मध्यं तु पित्तलमिति दर्शनात्। २–दशाङ्गुल वल्लीज फल प्रायो ग्रीष्मे प्रचरति। ३–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धम्। क्वचिच्च 'मतीरा' इति ख्यात खर्वूजान्महत्तर जलबहुलम्। 'कालिङ्गम्' इति देववाण्यामुच्यते। ४–अन्तर्भावितण्यर्थमिदम्। तेन प्रापयतीत्यर्थ। ५–'जाम्फलम्' इति गुर्जराः। ६–गण्डा गात्रे यस्येति आतृप्य सीताफलमिति यावत्।

अतिसारभ्रमच्छर्दिपिपासापित्तवस्सरम् ।
मधुराम्लरसं रुच्यमेलचीफलमीरितम् ॥ १५७ ॥
कफं वितनुतेऽनिलं प्रबलयत्यपक्कं ततः
परं मधुरमम्लकं किमपि वायुवारि स्मृतम् ।
अथो परिणतं वमिश्रममदाशि बल्यं सरं
नियच्छति तृषं भृशं बदरमालयोत्थं वरम् ॥ १५८ ॥
कसेरुद्वयं[3] क्षुण्णपित्तं पिपासाप्रमेहाक्षिपीडाविदाहेषु दद्यात् ।
कषायं गुरु ग्राहि मिष्टं तुषारं मरुत्स्तन्यशुक्रक्रिमिश्लेष्मकारि ॥ १५९ ॥

लेप करने से जूंये मर जाती है। कल्क का प्रलेप करके मस्तक को एक स्वच्छ महीन वस्त्रसे बांध देना चाहिये। एक प्रहर पीछे सिर को धो डाले। साफ करते समय पानी आखों में न चला जाये इसकी सावधानी रखनी चाहिये।) ॥ १५६ ॥

एलची फल मधुर, रस से अम्ल, रुचिकारक तथा अतीसार, भ्रम, वमन, तृष और पित्त का नाश करनेवाला है। (एलचफल कलकत्ते का प्रसिद्ध फल है। यह पिण्डिकाओं से युक्त, हरितारुण वर्णवाला तथा वर्तुलाकार होता है।) ॥ १५७ ॥

अपक्क-वदर कफ-कारक तथा वायु को प्रवल करनेवाला है। किंचित्-पक्व वदर-फल स्वाद मे मधुर और अम्ल तथा वात-नाशक है। सपूर्ण परिपक्व गृहवदर वमन, श्रम और मद को दूर करनेवाला, वलकारक, सारक तथा तृष्णाधिक्य में उपकारक है। (वदर की वहुत सी जातिया हे, जिनमे राज-वदर सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अरवी-भाषा मे इसे उन्नाव कहते है। राजनिघटु में इसके गुण यह कहे गये हैं— "राजवदरः सुमधुर शिशिरो दाहार्तिपित्तहर। वृष्यश्च वीर्यवृद्धि कुरुते शोषश्रमं हरते"। उन्नाव खासी मे लाभ देता हे। उन्नाव, कतीरा गृद, गुलाव और शक्कर इनके घन की गोलिया मुंह मे रखने से कास मे शाति मिलती है। राजवदर के अतिरिक्त वदर की- अन्य जातियो मे सौवीर, कोल, कर्कन्धु, गोप-घोण्टा (क्षुद्र बदरी-सुश्रुत) आदि मुख्य है-इनके गुणधर्मो मे यत्किंचित् ही विभिन्नता हैं। वेर के वीज हिक्का तथा नेत्र-विकार मे, ताजी पत्तियो का लेप ज्वर-जन्य-दाह में तथा त्वचा का लेप विस्फोट में लाभकारी है। 'वदरस्य पत्रलेपो ज्वर-दाह विनाशन। त्वचा विस्फोटशमनी, वीजं नेत्रामयापहम्'—रा नि।) ॥ १५८ ॥

दोनो प्रकार के कसेरू पित्तनाशक, भारी, कषाय, ग्राही, मधुर तथा शीतल है। वीर्य, स्तन्य, क्रिमि, वात और कफ को वढाने वाले तथा प्यास, प्रमेह, नेत्ररोग और विदाह मे उपकारक है। (कसेरू दो प्रकार के होते है, एक राजकसेरू जो प्रमाण मे वडा होता है, दूसरा चिचोड जो छोटा होता है।) ॥ १५९ ॥

१—"हरितारुणवर्णाभि पिण्डिकाभिरिवाञ्चितम् ।
वर्तुल कलिकाताया प्रसिद्ध फलमेलचम् ॥" इति ।
२—गृहवदरमश्नन्ति वनिन इति प्रशंसाश्रवणात् । ३—जलमध्ये जायते ।

प्रमेहार्शःश्लेष्मानिलगदनुदाल्रूर्निगदितो
हिमाऽदोषा क्षीरी प्रकटितवला पिच्छिलतरा ।
भवेदामाऽम्लीका पवननुदपित्ता परिणता
त्वशुक्रं निम्बूकं दृगरुचिमरुन्मार्दवजयि ॥ १६० ॥
विभावनीयं शुचि भूरिवारानूर्जेऽम्वरं निम्बुकजाभिरद्भिः ।
तदम्बु भैषज्यविभावनायां दद्यादलाभे सति निम्बुकानाम् ॥ १६१ ॥
लुङ्गं स्यान्मुखशोध्यरोचकहरं वह्निप्रद वल्कलं
जन्तुश्लेष्ममरुत्प्रणुन्नमतिस्वादूष्णतिक्तं गुरु ।

आरुक (आलूबुखारा) प्रमेह, अर्श, कफ और वात का नाश करता है । दोनो प्रकार की खिरणी, शीतल, त्रिदोषघ्न, वल्य और अत्यंत पिच्छिल है । कच्ची इमली वात-शामक तथा परिपक्व इमली पित्त तथा शुक्र-नाशक है । निंबू नेत्र विकार, अरुचि और वायु का नाश करता है । (आलूबुखारा की चार जातिया होती है–'विद्यात् जातिविशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम्' । आडु, आलूबुखारा, आलुवालु और आलुचा । स्वल्प, दीर्घभेद से खिरणी दो प्रकार की होती है । खिरणी के बीजो के प्रलेप से गर्भस्राव होता है । तथा बीजो का तैल-मादक है । पित्त-ज्वर मे दाह शमन के लिये तथा मलावरोध दूर करने के लिये इमली का पानक देते है–'पूर्वं तोये वासर वासिताना चिचाऽस्थीनां दुग्धकल्कीकृतानाम् ॥ पीत्वा कर्पं सुदरीपूरुषौ द्रागस्थिस्रावात् सोमरोगाच्च मुक्तौ' ॥ एक तोले भर इमली के बीजो को रात्रिपर्यंत जल मे भिगोकर फिर प्रात त्वचा निकाल दूध मे पीसकर कल्क बनाले । इसको लेने से अस्थिस्राव तथा सोमरोग मे विलक्षण लाभ होता है । कल्क मे विदारीकद तथा वृद्ध-दारुक का चूर्ण मिलाकर देने से श्वेत प्रदर में यह परम उपकारक सिद्ध हुआ है । हमारे यहां का यह अनुभूत प्रयोग है ।) ॥ १६० ॥

कार्तिक मास के फलवाले निंबु लेकर उनके रस में शुद्ध वस्त्र को पुन पुन विभावित करके हिफाजत से रखले । अब, आवश्यकता होने पर इस वस्त्रपट को स्वच्छ जल में भिगो कर मसल ले । फिर निचोड लें । किसी भी ऋतु मे इस तरह प्राप्त निंबु-जल का, निंबु-रस के अभाव मे, औषधादि निर्माण कार्य मे, निर्भय उपयोग करें ॥ १६१ ॥

वीजपूर (मातुलुग) मुखको स्वच्छ करने वाला, रुचिकर और अग्निप्रदीपक है । इसकी छाल तिक्त, उष्ण, भारी, दुर्जर, अत्यत सुस्वादु तथा वात, कफ और कृमि का

१–'आरु, आरुक' इति लोकैरुद्धुष्टो मधुरकषाय फलविशेष । २–राजादन-फल 'खिरिणी, रायण' इति ख्यातं दीर्घाकृति स्वल्प फलमिति । महत्स्वल्पभेदाद् द्वेधा । ३–निम्बूरससाध्यकार्यार्थं सर्वेष्वृतुषु तद्रसलाभोपायप्रदर्शनमेतत् । ४–कार्तिके । ५–वीजपूरकम् ।

तन्[1]मध्यं गुरु बृंहणं हिममसृक्पित्तानिलोन्मूलनं
ग्राही तस्य तु केसरो जठरजिद्बीजं भवेद्गर्भदम् ॥ १६२ ॥
अम्लवेतसमत्यम्लं गुल्मामारुचिशूलजित् ।
जम्भो न्यूनस्ततोऽन्यद्यदम्लं श्लेष्मविबन्धनुत् ॥ १६३ ॥
निम्बू[2]कमुक्त मधुरं पिपासापित्तारुचिच्छर्दिविषास्रनाशि ।
स्वाद्वम्लशीतं कफमारुतघ्नं संग्राहि रुच्यं लघु कर्मरङ्ग[3]म् ॥ १६४ ॥
हरेद्धिमं गुर्वतिसारनिघ्नकं प्रमेहपित्ते सकफे च तिन्[4]दुकम् ।
सगौरवं स्यात् कदलीफलं वरं हिमं सपित्तास्रदवव्यथाहरम् ॥ १६५ ॥
संक्षोद्य सम्यक् कदलीफलानि सर्पिः सितां चाप्युपरि प्रकीर्य ।
यथेच्छमास्वादयतां नराणां कदाऽपि वीर्यस्य न हानिरस्ति ॥ १६६ ॥
हिक्काहृदम्लं मधुरं कपित्थं विट्सारपित्तानिलतृट्सु पथ्यम् ।
विष्टम्भ्य वातं गुरु नारिकेरं रोगे[5] हितं नो किमु पैत्तिकेऽरम् ॥ १६७ ॥

नाश करने वाली है। विजौरा का गूदा भारी, बृंहण तथा शीतवीर्य है। वात और रक्तपित्त का उन्मूलन करता है। इसका केसर ग्राही तथा उदर-रोग नाशक है। बीज गर्भप्रद है ॥ १६२ ॥

अमलवेत अत्यत खट्टा तथा गुल्म, आव, अरुचि और शूल का नाश करने वाला है। ('अम्लवेतसो भेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्महराणाम्'। चरक) जम्भीरी निंबू अमलवेत की अपेक्षा न्यून गुणवाला है। अम्लता को लिये जम्भीरी निंबू कफ और विबन्ध को दूर करता है ॥ १६३ ॥

मधुर निंबू तृष्णा, वमन, विष तथा पित्त का नाश करनेवाला, रुचिकर और रक्तशोधक है। कमरख स्वादु, अम्ल, शीतवीर्य, कफ और वात नाशक, ग्राही, रुच्य तथा लघु है ॥ १६४ ॥

तिंदुक (तेंद) शीतल, भारी, कफकर तथा अतीसार, प्रमेह और पित्त को हरनेवाला है। परिपक्व केला गुरु, शीतल तथा रक्त, पित्त एवं दाहजन्य वेदना का नाशक है ॥ १६५ ॥

केले को अच्छी तरह कूटकर उसमे घृत तथा शक्कर मिलाकर यथेच्छ सेवन करने से वीर्य कदापि न्यून नहीं होता ॥ १६६ ॥

कपित्थ मधुर, अम्ल तथा हिक्कानाशक है। अतीसार और तृषा मे पथ्य कारक तथा वात-पित्त हारक है। नारियल विष्टम्भी, भारी तथा वात-शामक है। पित्तज विकार मे इससे अधिक उपकारक अन्य औषधि नहीं है। (मेदोवृद्धि मे खोपरेल का सेवन करने से मेद का ह्रास होता है।) ॥ १६७ ॥

१—त्वक्केसरयोर्मध्यभागस्थं गूदापदवाच्यम्। २—मिष्टनिम्बूगुणाः। ३—'कमरख' इति प्रसिद्धम्। ४—'तेंदू—जींदू' इति। ५—पैत्तिके रोगे अर किमु नो हितमित्यन्वय।

अञ्जीरनारङ्गपरूपचारखर्जूरतूदानि ससेवकानि ।
वृष्याणि पित्तानिलरक्तदाहहराणि वल्यानि हिमानि सन्ति ॥ १६८ ॥
मुकूलाक्षोटवादामचारवो गुणचारवः ।
वल्या वृष्याः सरा उष्णा गुरवः स्वादवोऽप्यलम् ॥ १६९ ॥

इति फलवर्गः ॥ ५ ॥

अंजीर, सतरा, फालसा, चारोली, खर्जूर, शहतूत और सेव यह सभी वृष्य, वल्य, शीतल, रक्तपित्त और दाह के शामक तथा वात पित्त को दूर करनेवाले है ॥१६८

पिस्ता, अखरोट, बादाम और चिरौंजी उत्तम गुण देनेवाले, वल्य, वृष्य, उष्ण, भारी, सारक तथा परम सुस्वादु है ॥ १६९ ॥

फलवर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

अथ धान्यसंग्रहः ।

सर्वोऽपि शालिः शिशिरोऽल्पवातवलासकारी मधुरो मनोज्ञः ।
वल्यः सशुक्रो लघुरस्तपित्तः संवद्धविट्को रुचिदः प्रदिष्टः ॥ १७० ॥
गोधूमकः स्वादुसरोऽसमीरपित्तो गुरुः शुक्रवलप्रकर्षी ।
यवः कषायो मधुरः सशीतो विलेखनः पाककटुः सवातः ॥ १७१ ॥

धान्य-सग्रह ।

खेत में उगे हुये अन्न को सस्य कहते है, परिपक्व-सतुप सस्य 'धान्य' कहलाता है । यही निस्तुप, 'आम' शब्द से जाना जाता है । स्विन्न किया गया आम 'अन्न' कहाता है ।

सभी जाति के चावल शीतल, किंचित् कफ-वात कारक, मधुर, पथ्य, बल्य, शुक्रवर्धक, हलके, पित्तशामक, मल को बाधनेवाले तथा रुचिकर कहे गये है । (श्वेत चावल को शालि कहते है ।) ॥ १७० ॥

गेहू स्वादु, सारक, भारी, पित्त-हर, शुक्र और वल के वर्धक है । यव कषाय, मधुर, शीतल, लेखन, पाक में कटु तथा वात कारक है ॥ १७१ ॥

१–काष्ठोदुम्बरिकाफलमिति वृद्धा । २–चार फाल 'चिरौंजी, चारोलि च' । ३–'तौंत, सेतोंत' इति च प्रसिद्धम् । ४–निकोचफलम् । लोके 'पिस्ता' इति । ५–चार-चारमित्यनर्थान्तरम् । मुकुलादिवर्गेऽपि चारुपाठादञ्जीरादीनामपि प्रकृतिभेदेन सरत्वमविरुद्धं, न पुन पुनरुक्तिरिति । इति फलवर्ग । ६–पेयादिपथ्योपयोगित्वेन भेषजान्त पातित्वाद्धान्यप्रस्ताव । "सस्य क्षेत्रगत प्राहु सतुप धान्यमुच्यते । आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदीरितम् ॥" इति वशिष्ठ । ७–"क्षुण्णः सित स्मृत शालि" इत्यरुणदत्त ।

अदोपलौ मुद्गमकुष्ठकौ लघू ज्वरापहौ बद्धमलौ दृशोर्हितौ ।
गुरुस्तु माषः कफपित्तशुक्रकृद्बलास्रदः स्निग्धसरोऽनिलान्तकः ॥ १७२ ॥
ग्राही कषायो मधुरो विरूक्षो गुरुर्मरुत्कृत् किल राजमाषः[1] ।
शीतो मसूरस्त्ववसरः सवातो बलासपित्तास्रहरो ज्वरघ्नः ॥ १७३ ॥
विष्टम्भी चणको ज्वरास्रकफजिद्रूक्षः कषायो लघु-
वर्तं पुष्यति पुंस्त्वपित्तमथनस्तद्वद्धदाम्याढकीम् ।
पित्तास्रप्रवरो लघूष्णतुवरो हिक्काश्मरीशुक्रदृक्-
श्वासानाहमरुत्कफज्वरविषे पथ्यः कुलत्थः कटुः ॥ १७४ ॥
स्वादूष्णस्तुवरस्तिलः कटुगुरुर्ग्राही सतिक्तोऽग्निदः
केश्यः पित्तकफोत्तरोऽनिलहरस्त्वच्योऽल्पमूत्रो बली ।
तीक्ष्णोष्णः कफवातभूतदमनोऽसृक्कृत् कटुः सर्षप-
स्तीक्ष्णा[2] तीक्ष्णतरा कफानिलहरा पित्ताग्निरक्तादरा[3] ॥ १७५ ॥
अतसी मधुराऽतिगुरुः कटुकाऽनिलशुक्रकफाक्षिहरोष्णतरा ।
कफपित्तजिदल्पमरुच्छिशिरं सुकुसुम्भभवं[4] तदिवास्ति शणः ॥ १७६ ॥

मूग और मोठ दोनो दोषघ्न, लघु, कफ-पित्त-नाशक, मल को बाधनेवाले, आंखों को हितकर तथा ज्वर को नष्ट करनेवाले हैं। उडद भारी, स्निग्ध, सारक, वातनाशक तथा कफ, पित्त और शुक्र को बढानेवाले, बलदायक तथा रक्त-पित्त कारक है ॥ १७२ ॥

राजमाष (चोंला) कषाय, मधुर, रूक्ष, भारी और वातकारक है। मसूर शीतल, ग्राही, वात-कर, कफ, पित्त, रक्त-विकार तथा ज्वर का नाश करने वाला है ॥१७३॥

चना विष्टम्भी, कषाय, लघु, रूक्ष, वात-पोषक, पुस्त्व और पित्त का शोषक तथा ज्वर, रक्त विकार और कफ को दूर करनेवाला है। आढकी (अरहर) गुण-धर्म मे चने के समान ही है। कुलत्थ पित्त और रक्तविकार-कारक, कटु, लघु, उष्ण तथा हिक्का, अश्मरी, शुक्र और दृष्टि का नाश करनेवाला है। श्वास, आनाह, ज्वर, विष तथा कफ-वात-प्रधान विकारों मे पथ्य है। तिल स्वादु, उष्ण, कषाय, पाक में कटु, ग्राही, तिक्त, अग्नि-प्रदीपक, केश्य, कफ-पित्त-कारक, वात-नाशक, त्वच्य, बलदायक और मूत्र को अल्प करनेवाला है। तीक्ष्णा (राजि, राई) अति-तीक्ष्ण, कफ-वात-हर तथा पित्त, अग्नि, और रक्त की वर्धक है। सर्षप (सरसों) तीक्ष्ण, उष्ण तथा कफ, वात और भूतादि-बाधा का दमन करने वाला, रक्त-विकार-कारक तथा कटु है ॥ १७४—१७५ ॥

अतसी (अलसी) मधुर, अत्यत भारी, पाक मे कटु, अत्युष्ण तथा दृष्टि, वीर्य और कफ का नाश करने वाली है। कुसुम्भ-बीज, शीतल, किञ्चित् वातकारक तथा

१—'चोंला' इति प्रसिद्ध । २—राजिका । ३—पित्तादिवर्धिनी । ४—कुसुम्भबीजम् ।

श्यामाककङ्गुनलकोद्रवयावनाल-
नीवारचीनतृणजादि समस्तमेव ।
कीलालपित्तकफदाहविनाशि शीतं
संग्राहकं पवनपोषि लघु प्रदिष्टम् ॥ १७७ ॥

एकान्तसात्म्यानि रुचिप्रदानि लघूनि दोषत्रयपूजितानि ।
सर्वेषु रोगेष्वनिवारितानि दानानि साब्बूप्रथमानि विद्मः ॥ १७८ ॥

श्लक्ष्णाण्यणूनि शुक्लानि वर्तुलानि स्वरूपतः ।
इङ्ग्रेजैरत्र नीतानि साब्बूदानानि नामतः ॥ १७९ ॥

इति धान्यवर्गः ॥ ६ ॥

कफ-पित्त का नाश करनेवाले हैं। शण (मातुलानी, महाशना) के गुण धर्म कुसुंभ-बीज के समान ही हैं। (शण का पुष्प रक्त-प्रदर-अत्यार्तव-में हितावह है।) ॥ १७६ ॥

श्यामाक (सावा), कगु, नल, कोद्रव (कोदो) यावनाल (ज्वार), नीवार (तीनी), चीनाक तथा तृणान्न एवं अन्य वज्रादि (वाजरा आदि) क्षुद्र-धान्य यह सभी रक्त, पित्त, कफ और दाह का नाश करनेवाले, शीतल, सग्राही, वातकारक, तथा हल्के कहे गये हैं ॥ १७७ ॥

साबूदाने अत्यत-सात्म्य, रुचि दायक, लघु, तीनो दोषो मे उपकारक तथा सभी रोगो मे अनिवार्य-पथ्य माने जाते है ॥ १७८ ॥

भारत मे साबूदानो का आगमन अंग्रेजो से हुआ। साबूदाने अत्यत सूक्ष्म आकृति मे गोलाकार, श्वेत, तथा चिकने होते है ॥ १७९ ॥

धान्य-वर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

अथ सिद्धान्नसंग्रहः ।

सिद्धं नटीनामधरोष्ठवत् परं प्रवृद्धपीनस्तनवत् सुवर्तुलम् ।
स्नेहप्रगाढं सुहृदां चरित्रवल्ललत्यलं लोचनलोभि लड्डुकम् ॥ १८० ॥

सिद्धान्न-संग्रह ।

नर्तकी के अधरोष्ठ के समान परम मधुर, उसके उकसे हुये पीन उरोज के समान सुंदर वर्तुलाकार, सहृदयो के स्वभाव की तरह प्रचुर स्नेह से ओत प्रोत, लोचन को लुभाने वाले लड्डु हृदय को अत्यत लालायित कर देते है ॥ १८० ॥

१—मौक्तिकतन्दुलम् । लोके 'जुन्हरी, जुवार' इति प्रसिद्धम् । २—आदिशब्दाद्वज्रकादिक्षुद्रधान्यपरिग्रह । ३—कीलाल रुधिर, रक्तपित्तमित्यर्थो वा । ४—साब्बुदानानीत्यर्थ, एषामभक्ष्यत्वमुक्तमाकरव्रज्याया वनपतिमिश्रै । तच्च सर्वमालुकोपरि द्रष्टव्यम् । ५—साबूदानालक्षणमिदम् । ६—लेण्ड्रजजनै तथा चात्र मेरुतन्त्रम्— "पूर्वाम्नाये नव शत षडशीति प्रकीर्तिता । फिरङ्गभाषया मन्त्रास्तेषा ससाधनात् कलौ ॥ अधिपा मण्डलाना च सग्रामेष्वपराजिता । इङ्ग्रेजा नवषट्पञ्च लेण्ड्रजाश्चापि भाविनः ॥" ७—इदानीं धान्यसामान्यगुणान-

मृदितविरलसर्पिः शुद्धगोधूमचूर्णं
सलिलनिविडबद्धं गोमयाग्नौ विपक्वम् ।
तितउशुचि घृतेन प्लावितं शर्कराढ्यं
त्रुटिसुरभि सुहृद्भिर्भुज्यतां चूर्णमोख्यम् ॥ १८१ ॥
अत्युज्ज्वलैरवयवैर्मृदुतां दधाना
भुक्ताऽऽवलं वितरति स्मरदानदक्षा ।
स्निग्धाशया गुरुगुणग्रथिता मनोज्ञा
फीणी नवीनललनेव मुदं ददाति ॥ १८२ ॥
जलवलिवलयानि प्रौढपित्तक्षयानि
क्षतपवनभयानि प्रोल्लसद्विस्मयानि ।
मधुररसमयानि श्लाघनीयानि यानि
स्फुरदरुचिजयानि प्रेमतो वर्णयानि ॥ १८३ ॥
संपक्वं मृदुवह्निना चणकजं चूर्णं समाने घृते
क्षेप्यं खण्डजकर्दमे द्विगुणिते स्थाल्यामिदं ढालयेत् ।

उत्तम गेहूं के आटे मे घी का मोयन देकर अच्छी तरह, पानी से गूधे । फिर इसे कडों की अग्नि (जगरे) मे सेकें । अच्छी तरह सिक जानेपर कूट पीट कर चालनी से सूक्ष्म चूर्ण छानलें । इस चूर्ण को प्रथम घृत से प्लावित करके फिर उसमे शक्कर मिलादें । सुगंधि के लिये ऊपर से इलायची चूर्ण यथा मात्रा विखेर दें । इस 'चूरमे' का सन्मित्र मडली सहित आस्वादन करें ॥ १८१ ॥

अपने अत्यत उज्वल अवयवो से परम-कोमल, उपभोग करने वाले को यथेच्छ बल देनेवाली, काम-भाव अर्पण करने मे निपुण, स्निग्ध-आशय से युक्त, गुरु गुणो (दीर्घसूत्रो) से ग्रथित, मनको प्रिय, फीणी नवीन नवोढा-रमणी की तरह आह्लाद देती है ॥ १८२ ॥

प्रवृद्ध-पित्त का क्षय करने वाली, क्षत और वात के लिये साक्षात् भय-रूप, अपनी आकृति से विस्मय-भाव को जगाने वाली, अरुचिपर जय करनेवाली, मधुर रसमय जलवलिवलय (जलेबी) की हम यह सप्रेम स्तुति करते है ॥ १८३ ॥

चने का आटा तथा घी दोनों को समान-भाग मे लेकर, मदाग्नि से अच्छी तरह पकालें । फिर द्विगुणित-शक्कर की चासनी मे इसे मिलाकर एक थाली मे

भिधाय तद्विशेषाणा भक्ष्यादीना गुणा अभिधीयन्ते । अत्र केषाञ्चिद्गुणाभिधान प्रसिद्धत्वादुपेक्षितम् । तच्च सुधीभि स्वयमूह्यमिति ।

१–"चालनी तितउ पुमान्" इत्यमर । २–लोके 'चूरुं, चूरमो' इति, तच्च माषसूपेन सह भुञ्जते जयपुरीया इति । ३–भक्षिता, पक्षे सभुक्ता । ४–फेणिका समिताकृता । लोके 'फीणी' इति नाम्ना प्रसिद्धा । ५–कुण्डलिनी । लोके 'जलेबी' इति ख्यायते । ६–लोट्लकारस्योत्तमपुरुषैकवचनम् । ७–त्रिगुणे चतुर्गुणे वा लोकस्य भिन्नरुचित्वात् ।

कर्पूरत्रुटिकुङ्कुमैः कतलिकां कृत्वा शुभां भक्षयेत्
सैषा मानसमोहिनी बहुगुणा श्रीमोहनस्थालिका ॥ १८४ ॥

पतति पवनगर्वो हीयते पङ्गुपित्तं
विलसति बलमग्निर्वामनत्वं व्यनक्ति ।
प्रसरति कफराज्यं सेवितायां हि यस्यां
जगति सुकृतवद्भिर्लभ्यते लप्सिका सा ॥ १८५ ॥

सर्वाशनं यत्पुरतो वराकं प्राप्नोति यो भाग्यमृते सदा कम् ।
स्पर्धां विधत्ते सुधयाऽपि साकं सखे तमास्वादय दुग्धपाकम् ॥ १८६ ॥

मज्जानं नागरङ्गं पच हविषि सितासङ्गतं तत्र पक्वे
निक्षिप्य क्षीरमर्धक्वथितमथ समुद्धूलय द्राविडीभिः ।
नारङ्गक्षीरणीयं सुरपतिभिरपि प्रार्थिता वातपित्त-
व्यापत्तिं हन्त हन्ति प्रथितगुरुगुणा सौमनस्यं प्रसूते ॥ १८७ ॥

भुक्ताऽपि वाञ्छां बहुलीकरोति कान्त्याऽक्षिसौख्यं दधती जनानाम् ।
समुन्मिषद्गन्धरसा नवीना वासौंदिका स्त्रीव मुदे न कस्य ॥ १८८ ॥

डाल दें । कर्पूर, इलायची तथा केसर के चूर्ण का ऊपर से प्रक्षेप करके-अच्छी तरह जमजाने पर उसकी सुंदर चकत्तियां बनाकर भक्षण करें। यही अनेक-गुणों से पूर्ण, मन को मुग्ध करनेवाली 'मोहनस्थालिका' है ॥ १८४ ॥

जिनके सेवन से वायु का गर्व-खडित हो जाता है । पित्त पगुवत् हीन हो जाता है । बल का विकास होता है, अग्नि क्षीण हो जाती है, तथा कफ मे वृद्धि होती है ऐसी लप्सिका (लापसी) जगत् में पुण्य-शालियो को ही प्राप्त होती है ॥ १८५ ॥

जिसके समक्ष अन्य सभी भोज्य-व्यजन तुच्छ है, जो विना भाग्य हमेशा प्राप्त नहीं होता और जो अमृत की स्पर्धा करता है-उस दुग्ध-पाकका, हे मित्र ! आस्वादन करें ॥ १८६ ॥

नारगी के भीतरी गूदे को मिश्री चूर्ण मे मिलाकर घी मे पकावें । पक जाने पर, इसे अर्धक्वथित दूध में डाल दे। ऊपर से इलायची-चूर्ण का प्रक्षेप करें। इस तरह नारग क्षीरणीय सिद्ध होता है । अपनी सुगध से मनको प्रिय, अनेको गुणो से युक्त, यह क्षीरणीय, वात-पित्त का नाश करता है ॥ १८७ ॥

तृप्ति-पूर्वक उपभुक्त होने पर भी, अधिकाधिक सेवन करने की लालसा को बढाने वाली, अपनी काति से मनुष्यो के नेत्रो को आनन्द देने वाली नवीन वासौंढिका (बासुंदी) नवीना रमणी के समान रस तथा गध को वितीर्ण करती हुई किसे आह्लाद नहीं देती ॥ १८८ ॥

१—'मोहनथाल' इति प्रसिद्धा। २—'लापसी' एषा गुर्जरे बहु प्रचरति। ३—सतन्दुल-दुग्धकृतो लेह्यविशेष । 'खीर, तस्मै' इति च मध्यदेशे प्रसिद्ध । ४—एलाभिः। ५—समुन्मिषन्तौ गन्धरसौ यस्या सा तथा। पक्षे समुन्मिषन् गन्धरस सुगन्धिवस्तुविशेषो यस्या इति। ६—नवीना स्त्रीवेति सवन्ध ।

ऊधस्यमावर्त्य विधाय पिण्डं शनैः सितातन्तुलिकाविमर्दितम् ।
पश्चाद्धिस्थालि बुधेन ढालितं नाम्ना कलाकन्दमिति प्रचक्ष्महे ॥१८९॥

धाराभिरुत्तमघृतस्य कृताभिषेका
गोधूमजा शरदखण्डितचन्द्रवृत्ता ।
सिद्धाढकीदलगुडप्रतिपूरितेयं
श्रीपोलिका जगति कस्य मुदं न धत्ते ॥ १९० ॥

स्थालीपुटस्य जठरे पिहितां दलाभ्यां
वातामभज्जसितयोर्विनिवेश्य पोलीम् ।
अङ्गारकैरुपरि संनिचितैर्विपक्वां
मित्रैः समं रहसि भुङ्क्ष्व सुधासपत्नीम् ॥ १९१ ॥

पयोसिराद्रा सकलप्रियाणां दाल्यो घृतान्तस्तलिताः प्रियाभिः ।
पटूषणक्षोदचमत्कृता स्युस्ता भक्तदाल्यो रुचये न केषाम् ॥ १९२ ॥

मरुल्लीला लीना भवति च नवीना रुचिरलं
समुद्रिक्तं पित्तं मलिनयति चित्तं क्षयभिया ।

दूध को उकाल कर उसका खोवा बनावें। फिर इसे शक्कर की चासनी मे अच्छी तरह मिलाकर एक थाली मे ढाल देवे। इसे कलाकन्द कहते है ॥ १८९ ॥

स्विन्न की गई अरहर की दाल तथा गुड को परस्पर अच्छी तरह मिलाकर पिष्टी बनाले। इस पिष्टी से परिपूरित गेहू के लोये बेलकर, शरद के पूर्ण चद्रमा जैसी वृत्ताकार रोटिया पकाले। उत्तम-घृत की धारा से अभिषिक्त यह पोलिका (पूरण-पोली, वेढमी) जगत मे किसे आल्हाद नही देती ॥ १९० ॥

बादाम की मज्जा तथा शक्कर को अच्छी तरह मिलाकर-उसकी पूरी बना स्थाली सपुट मे रखकर अंगार-राशि पर अच्छी तरह पकाले। अमृततुल्य इस बादामपूरी को, कागज मे लपेट कर (दृष्टिदोष न लग जाये इस कारण) एकांत मे मित्र-मडली के साथ खाये ॥ १९१ ॥

दूध मे सिक्त, प्रियतमाओ द्वारा घृत मे तली हुई चने की दाल में नमक तथा मिरच के चूर्ण को प्रक्षेप करके सेवन करें। ये भक्तदाल (भक्तादाल) किसे रुचिकर नहीं है ॥ १९२ ॥

प्रतिक्षण पर्याप्त रुचि उत्पन्न करनेवाली, इलायची, मरिच तथा कर्पूरके चूर्ण से मिश्रित शिखरिणी को देखते ही वात-की लीला विलीन हो जाती है।

१–'चासनी' नाम। २–'बर्फी' इति प्रसिद्धम्। ३–उत्तमत्वं गव्यत्वे सति नव्यत्वम्। ४–उपलक्षणमिदं, तेन शर्करादिभि पूरण भवतीति बोध्यम्। ५–दक्षिणे 'पूरण-पोली', गुर्जरे 'वेढमी' इति प्रसिद्धा। ६–'कागज' इति प्रसिद्धाभ्याम्। ७–अतिसौन्दर्यवत्तया दृष्टिदोषभयात्। ८–"चणको हरिमन्थ स्यात् सकलप्रिय इत्यपि" इति निघण्टु। उपलक्षणं चेदम्। सर्वशमीधान्यस्येति। ९–'भक्तादालं' इति प्रसिद्धश्चर्व्यविशेष।

चलासः किं ह्रासं व्रजति चलतो वल्गति वलं
समीक्ष्योच्चैरेलोर्पणशशिचयस्यां शिखरिणीम् ॥ १९३ ॥
वाह्लीकजीरार्द्रलवङ्गसौरभास्तक्रे निमग्ना जलधाविवेन्दवः ।
जिह्वालताग्रे वटका मनोहरा· कल्लोलयन्ति त्रिदिवौकसामपि ॥ १९४ ॥
लवणमरिचदोर्षाहिङ्गुधान्याकजीरैः
पयसि चणकचूर्णंर्लोलयित्वा विपक्वम् ।
घृतमसृणतलायां ढालयेत् स्थालिकायां
भवति दधिनिमग्नः पित्ततोर्डः पितोडः ॥ १९५ ॥
कचवल्लिकौ विष्टभ्य प्रायो जीर्यति गुरुर्मरुज्जायिनी ।
पूरी पुनरूरीकृतवला विदूरीकरोति पित्तवलौ ॥ १९६ ॥
कृतानि धेनो· सलिलेन माषमकुष्ठमुद्गान्यतमोद्भवानि ।
रुचेर्रपि द्रागभिसारकाणि सममेर भक्षय पर्पटानि ॥ १९७ ॥

वृद्धिंगत-पित्त अपने नाशके भयसे विकल-चित्त हो जाता है। कफ का ह्रास तथा वलका पूर्ण विकास होता हे। (शिखरिणी छद मे शिखरिणी का वर्णन-कवि के रचना कौशल को प्रकट करता है। शिखरिणी-पानी से रहित दही-निर्मित लेह्य विशेप का नाम है। इस मे शक्कर तथा कर्पूर, मरिच आदि का चूर्ण मिलाकर खाने से रुचि के साथ जठराग्नि प्रवल होती है।) ॥ १९३ ॥

हींग, जीरा, आर्द्रक तथा लवंग की सुगंध से परिपूर्ण, तक्र मे निमग्न-अत एव मानो समुद्र-मग्न-चन्द्रमाओं के समान, मनोहर वटक, देवताओ की भी जिह्वा-रूपी लताग्र भाग पर कल्लोल करते हैं ॥ १९४ ॥

नमक, मरिच, हरिद्रा, हींग, जीरा तथा धनियाँ मिलाकर चने के आटे को पानी मे अच्छी तरह गूध कर अग्निद्वारा पकावे। सान्द्र होने पर, घृत-लिप्त अत एव सचिक्कन तल-वाली थाली मे इसे ढाल दे। इस तरह, पित्त-तोड पितौड सिद्ध होता है। दही में डुवोकर इसका सेवन किया जाता है ॥ १९५ ॥

कचौरी भारी, विष्टभी, वात-हर तथा विलंव से पचनेवाली है। पूरी पूरा वल देती तथा पित्त के वल को दूर करती है ॥ १९६ ॥

उडद, मकोय, मूग इनमें से किसी के भी, गोमूत्र से सिद्ध, पापड को मर्मर-शब्द पूर्वक खाये। यह रुचि को शीघ्र वढाने वाले तथा सधानकारी है ॥ १९७ ॥

१—एलादीनामुद्धूलनत्वाच्छाणम्। उक्त च—"शुद्धशर्करया युक्त निर्नीर द्विगुण दधि। शाणमुद्धूलन देयमेतन्मानं बुधै स्मृतम् ॥" इति। २—दधिजो लेह्यविशेष। अत्रोभययापि शिखरिणीति चित्रम्। दुग्धखण्डगालित निरेलं दधि द्रवन्ती व्यवह्रियते। उक्त च—'दध्यम्बुरहित पात्रे खण्डदुग्धेन गालितम्। कर्पूरमरिचोन्मिश्र द्रवन्ती परि-कीर्तिता ॥" इति। ३—हरिद्रा। ४—पित्तं तोडति। 'तुड तोडने' इत्यस्मात् कर्मण्यण्। ५—लोके 'कचोरी' नाम। ६—अत्रवारणार्थो भिन्नक्रमश्च। ७—अभिसारकाणीति विशेप-णेन रुचौ नयिकात्व पर्पटेषु च सधानकारित्व ध्वन्यते।

रांज्यक्तजातं रुचिरं समीरवलासजिद्व्यञ्जनसार्वभौमम् ।
अजस्रमिष्टान्नजडस्य जिह्वातलस्य तारल्यमपि व्यनक्ति ॥ २०८ ॥
विट्सारभाजामहिता न लाजा धाना तु रूक्षा गुरुताप्रधाना ।
पृथुप्रभावाः पृथुकाः प्रथन्ते न जातु चित्ते पृथुकाय देयाः ॥ २०९ ॥
प्रमृष्टपट्टा विजनं स्रजोऽच्छा धूपः सुगन्धिर्व्यजनं वयस्याः ।
रम्भापलाशानि समस्तमेतद्विभूषणं भोजनमण्डपस्य ॥ २१० ॥
चूर्णयुजि पूर्णपाथसि धात्रीफलसेवगर्जराम्राणि ।
त्रुडितानि द्वित्रिदिनं चतुरस्रं शङ्कुविद्धानि ॥ २११ ॥
संस्वेद्य संपरीक्ष्य प्रक्षाल्य भृशं पटेन निष्पीड्य ।
अधिसान्द्रसितातन्तुलि विरतोष्मणि विनिमज्जयेन्मङ्क्षु ॥ २१२ ॥

करनेवाला तथा वृद्धजनों का हितैषी है। (वृद्धावस्था मे दांत गिरजाने पर सीरा परम उपयोगी भोजन माना गया है।) ॥ २०७ ॥

रायता रुचिकर, वात और कफ का नाशक तथा सभी भोज्य-द्रव्यो में सर्वोपरि है। तथा सतत-मिष्टान्न-लोलुपता-सुलभ-जडता को प्राप्त जिह्वा-तल मे तरलता उत्पन्न करता है ॥ २०८ ॥

लाजा अतीसार से पीडित का अहित नहीं करता, धनियाँ रूक्ष और भारी है। पृथुका (पौंआ) स्थौल्य उत्पन्न करते है। दुर्जर होने के कारण बालकों को पृथुका प्रशस्त नहीं है ॥ २०९ ॥

साफ पोंछे हुये पाटे, एकान्तता, उत्तम पुष्पमालायें, धूप, सुगन्धि, पंखा, समवयस्क मित्र-मडली, कदली पत्र यह सभी भोजन-भवन के विभूषण है ॥२१०॥

आमलक, सेव, गाजर तथा आम्र-इनके फलो को, सुधाचूर्ण युक्त जल में सपूर्ण रूप से निमग्न करदे, दो तीन दिवस पीछे इनको निकाल कर चारों ओर से सोये से विद्ध करे। फिर इन्हें उबाल लेवें। तदनन्तर, धोकर, साफ करके, वस्त्रादि से पोंछ इनके पानी को सुखाले। शक्कर की गाढी चासनी में, शीतल होनेपर शीघ्र

१–लोके 'रायता' नाम्ना प्रसिद्धम्। २–पूवा चिडवा चेति। ३–पृथुको बालस्तस्मै न देया, दुर्जरत्वात्। ४–'पाटा, पाटला'। ५–भोजनशालाया। ६–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धफलविशेष। "मुष्टिप्रमाण वदर सेव सिञ्चितिकाफलम्।" इत्युक्तरूपो भावेन। ७–'गाजर' इति प्रसिद्ध काष्ठगर्भोऽरुणकन्दविशेषो नत्वभक्ष्यप्रकरणपठितो गृञ्जनसञ्ज्ञोऽयम्। "पलाण्डु विड्वराहं च छत्राक ग्रामकुक्कुटम्। लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायण चरेत् ॥" इति स्मृतौ गृञ्जन लशुनाकारि लोहितसूक्ष्मकन्दमिति व्याख्यात विज्ञानेश्वर-भट्टारकेण। तदस्मिंस्तल्लक्षणस्यानवस्थानात्। तथा शब्दार्थचिन्तामणावपि। "गन्धाकृति-रसैस्तुल्य सूक्ष्मनाल पलाण्डुना। इत्युक्तम्। तथा चास्य पलाण्डुसदृशगन्धाकृतिरसा-भावाद्गृञ्जनादन्य एवायं स्वादुकन्द, पलाण्डुशतकेपि—स्वमाधुरीरञ्जितसज्जनानि प्रभञ्जना-रम्भविभञ्जनानि। सेवापराणा गदगञ्जनानि जग्मुर्जवाद्गर्जरगृञ्जनानि ॥ इति भेदेनैव समु-पात्त इत्यलम्। ८–जलशोषणार्थम्।

गतवति सति सप्ताहे पूर्वकृतां तन्तुलीं द्रवीभूताम् ।
तेभ्यो विस्राव्य पृथक् तत्र सितां तत्क्षमां क्षिप्त्वा ॥ २१३ ॥
संसाध्य दृढं पश्चान्निमज्जयेदिति फलावलेहः स्यात् ।
प्रातर्वा सायं वा तत्तद्गुणलब्धये लिह्यात् ॥ २१४ ॥
द्रव्याढके स्फटीतः शाणो विल्वं पुराणचूर्णस्य ।
उपयुक्ता इह पेश्यो हृतत्वचां गर्जराम्राणाम् ॥ २१५ ॥

इन फलो को, डुबोदें । एक सप्ताह व्यतीत होने पर, पूर्वापेक्षया चासनी कुछ तरल हो जायेगी । इसको अलग नितार कर यथोचित मात्रा से, इसमें और शक्कर मिलाकर गाढी चासनी बना लेवें । अब, इसमें उपरोक्त फलो को पुन डाल देवें । फिर इन्हें स्वच्छ चीनी की बरणी में भरकर उसका मुह बंध करके रखदें । इस तरह फलावलेह (मुरब्बा) सिद्ध होता है । प्रात. अथवा सायकाल को तत् तत् फल गत विशेष-गुण की प्राप्ति के लिये तत् तत् फल का अवलेह सेवन करे । एक आढक-द्रव्य के उपयुक्त चासनी में तीन माशा स्फटी डाले । सुधा-चूर्ण पुराना चार तोला भर लेवें । गाजर तथा आम्र को, उनके छिलके तथा भीतर की अस्थि निकाल कर तथा गूदे के टुकडे बनाकर, उपयोग में ले ॥ २११–२१५ ॥

अथ संधानम् ।

आम्राणामर्धपक्वानां कुर्यात् पेशीर्हृतत्वचाम् ।
मनाग्विशोध्य भाण्डान्तः संभारेऽस्मिन् विनिक्षिपेत् ॥ २१६ ॥
आम्रपादो गुडः किं च तत्पादं पाटवं रजः ।
तत्तुल्ये मेथिकासुर्यौ भ्रष्टे सर्षपतैलतः ॥ २१७ ॥
तथाऽत्र तच्चतुर्थांशा तलिता पित्तकारिणी ।
रात्रिस्ततोऽपि तुर्यांशा हिङ्गु रात्र्यष्टमांशकम् ॥ २१८ ॥
कटाहपक्वकट्टुकतैले योग्ये सरामठे ।
गुडं विनैव संभारं सर्वमेवावचारयेत् ॥ २१९ ॥

अर्धपक्व आम्रफल के छिलके उतार कर गूदे के टुकडे बनालें । फिर एक कढाई में इन्हें थोडा उबाल कर, निम्नलिखित पद्धति से निर्मित सभार मे इन टुकडो को डाल दें । आम्रफल के टुकडो से चतुर्थ-भाग गुड, गुड से चतुर्थांश लवण, लवण तुल्य सर्षप-तैल में सिद्ध मेथी और राई, मेथी से चतुर्थांश जितनी तली हुई पितकाली (लाल मिर्च का चूर्ण), पितकाली चूर्ण से चतुर्थ भाग हरिद्राचूर्ण तथा हरिद्राचूर्ण से अष्टमांश भाग हींग लेवें । गुड के अतिरिक्त, इन सभी मसालों को एकत्र करके तथा इनमें उचित-मात्रा से शुण्ठिचूर्ण मिलाकर, कढाईगत पक्वतैल में डाल देवें ।

१–'मुरब्बा' इति लोके प्रसिद्ध. । २–तत्साधनार्थं परिभाषेयम् । ३–मेथीराज्यौ मिलित्वा लवणतुल्ये ग्राह्ये न तु पृथक् । ४–मेथिकातश्चतुर्थांशा इति पाठ साधु । ५–पित्तकारिणीत ।

एकीकृत्य समुत्तार्य गुडं प्रविकिरेदनु ।
न्यसेत् पिधाय भाण्डास्यमिति संधानपद्धतिः ॥ २२० ॥
सिद्धं स्यादाम्रसंधानमतिक्रान्तत्रिमासकम् ।
उच्चकै रसनाजाड्यमोचनं भक्तरोचनम् ॥ २२१ ॥
मेथीलवणनिशाभिः संभृतगर्भेऽधितैलमामुक्ते ।
ज्वालामरिचशलाटुनि[2] मिलति निमीलति पराऽप्यरुचिः ॥ २२२ ॥
मांसं[3] संग्राह्यवातं गुरु मधुररसं शुक्रलं बल्यमुच्चै-
र्हृद्यं साग्नि द्विधा तज्जगति निगदितं जाङ्गलानूपभेदात् ।
मेहघ्नं स्वादु रूक्षं रुचिमद तिलघुच्छर्दिवातघ्नमाद्यं
स्निग्धं मन्दाग्न्यपथ्यं कफि गुरु मधुरं पिच्छिलं वृष्यमन्यत् ॥ २२३ ॥

अच्छी तरह मिलजाने पर नीचे उतार लेवें। अब इस सभार मे गुड भी मिला दे। इन सभी को एक पात्र मे भरकर उसका मुख बद करके रखदें। इसे ही सधानपद्धति कहते है। तीन मास पीछे इस तरह 'आम्रसधान' सिद्ध हो जाता है। यह आम्र-सधान जिह्वागत जडता को मिटाता, भुक्त अन्न का पाचन करता है। हरी (ताजा) पितकाली के अन्तर्भाग में मेथी तथा लवण और हरिद्राचूर्ण भर दें। फिर इन्हे तैल मे निमग्न कर दें। इनके सेवन से परम अरुचि भी आख मीच लेती है, अर्थात् रुचि उत्पन्न होती है ॥ २१६–२२२ ॥

सभी प्रकार के मांस प्राय सग्राही, वातहर, भारी, रस में मधुर, शुक्रल, अत्यंत बलकारक, हृद्य तथा अग्निप्रदीपक होते है। जगत से मांस, जांगल और आनूप भेद से, दो प्रकार के कहे गये है। इसमें जागल मांस प्रमेह-नाशक, स्वादु, रूक्ष, रुचिकर अत्यंत लघु तथा वमन और वात-विकार का नाश करने वाला माना जाता है। आनूप मांस स्निग्ध, मदाग्नि मे अपथ्य, कफकारक, भारी, मधुर, पिच्छिल, तथा वृष्य कहा गया है ॥ २२३ ॥

अथ शाकानि[4] ।

वास्तूकद्वितयं[5] विपाककटुकं बल्यं सरं क्षारलं
दुर्नामास्रगरोचकाग्निमृदुताप्लीहत्रिदोषापहम् ।
पोताकी[6] कफलाऽस्रपित्तपवनारोचापहा शुक्रदा
पालङ्क्या कफवातला गुरुहिमा विष्टम्भिनी भेदिनी ॥ २२४ ॥

शाक-वर्ग

क्षुद्र तथा बृहद् पत्रभेद से दोनों प्रकार का बथुआ विपाक मे कटु, बल्य, सारक, क्षारयुक्त तथा अर्श, रक्तपित्त, अरोचक, अग्निमांद्य और तीनों दोषो को नष्ट करता है।

१–'अचार, अथाणूं' इति प्रसिद्धम्। २–पित्तकारिण्या "आमे फले शलाटु स्यात्" इत्यमर। ३–त्यागे फलश्रवणान्न विशेषगुणाभिधानप्रयोजनमस्येति सतोष्टव्यम्। ४–"भक्ष्याद्यै सह भोज्यत्वाच्छाकवर्गोऽभिधीयते"। इति। ५–बृहदल्पपत्रभेदात्। ६–उपोदिका 'पोई' इति ख्याता।

पित्तघ्नस्तन्दुलीयो[1] लघुशिशिरसरोऽसृक्कफघ्नोऽतिरुच्यो
लोणा[2] रूक्षाऽम्लगुर्वी कफपवनहरी दीपनी शीतलाऽपि ।
चुक्रा[3] स्वाद्वी सपित्ता रुचिकृदपवना श्लेष्मलाऽम्ला लघिष्ठा
मेथी हृद्याऽग्निदात्री क्रिमिकफपवनध्वंसिनी बद्धविट्का ॥ २२५ ॥
किंचित्सरा शीततरा सवातश्लेष्मा सरौक्ष्या मधुरा च नीली ।
दद्रुघ्नपत्रं मृदुलं कृमिघ्नं श्वासे च कासे कथितं कफघ्नम् ॥ २२६ ॥
सवह्निमान्द्यारुचिवन्धकानि साष्ठीलिकाशूलकफानिलानि ।
आध्मानगुल्मश्वयथूदराणि क्षिणोति सेहुण्डदलस्य शाकम् ॥ २२७ ॥
पौनर्नवं किसलयं नयनामयार्हं
श्वासक्षयश्वयथुपाण्डुकफज्वरघ्नम् ।
विध्वस्तपित्तरुधिरक्षयकासमेह-
च्छर्दिज्वराणि नववासकपल्लवानि ॥ २२८ ॥
गुडूचीपत्राणां जनितदहनानां ज्वरहृतां
लघूनां वल्यानां त्रिमलमथनानां जिततृषाम् ।
प्रमेहे पथ्यानामतिसृतिहराणां रुचिकृतां
कथङ्कारं यामो गुणगणनपारं वयमपि ॥ २२९ ॥

पोतकी (पोई) कफकारक, शुक्रल तथा रक्तपित्त, वात और अरुचि को दूर करती है। पालक्या (पालक) कफ-वात-कारक, गुरु, शीतल, विष्टंभी और भेदक है ॥२२४॥

तादलजा (चौलाई) पित्तघ्न, लघु, शीतल, सारक, रुचि-उत्पादक तथा रक्त-पित्त और कफ का नाश करनेवाला है। लोणा (लूणख्यो) नोनिया रूक्ष, अम्ल, गुरु, कफ-वात-नाशक, दीपन और शीतल है। चुक्रा (चूको) स्वादु, पित्तकर, रुचिकर, श्लेष्मल, अम्ल, लघु तथा वात-नाशक है। मेथी हृद्य, अग्निप्रदीपक, मलको बांधने वाली तथा क्रिमि, कफ और वात का विध्वस करनेवाली है ॥ २२५ ॥

नीली किंचित् सारक, अत्यत शीतल, वात-कफकारक, रूक्ष और मधुर है। दद्रुघ्न-पत्र कोमल तथा क्रिमिनाशक है। कफप्रधान कास तथा श्वास मे प्रशस्त कहा गया है। सेहुण्ड के पत्तो का शाक अग्निमाद्य, अरुचि, विबन्ध, अष्ठीला, शूल, कफ, वात, आध्मान, गुल्म, शोथ तथा उदर-रोग का नाश करता है। पुनर्नवा के नूतन पत्तो का शाक नेत्र-विकार, श्वास, क्षय, शोथ, पाण्डु, कफ और ज्वर को नष्ट करता है ॥ २२६—२२८ ॥

दाहयुक्त ज्वर को हरने वाले, लघु, बलकारक, त्रिदोष को मथनेवाले, तृषा को जीतनेवाले, प्रमेह मे पथ्य, अतीसार के नाशक तथा रुचि के उत्पादक गुडूची पत्रो के गुण-गणना का पार हम भी नहीं पा सकते ॥ २२९ ॥

१–'चौंलाई' इति मध्यदेशे 'तादलजो' इति गुर्जरे प्रसिद्धा। २–'लूणख्यो' इति प्रसिद्धा। ३–'चूको' नाम।

वरं भङ्गाशाकं मदयति न हा कं कफहरं
निहन्याद्विट्सारं हुतवहविकारं लघुतरम् ।
कफार्तौ वार्ताकं वरमनिलवार्ता न सहते
करोत्युग्रं पित्तं ज्वररुचि विरक्तं सरमपि ॥ २३० ॥

कूष्माण्डशाकं कफकार्यनुष्म गीतं भिषग्भिर्गुरु कान्तिपीतम् ।
प्रहारि पित्तस्य हुताशकारि चेतः स्थिरं भेदि करोति रेतः ॥ २३१ ॥

किं वर्णितुं वीतकफा नु तुंम्बी शक्येत शिम्बी गुरुरेव बिम्बी ।
धातुं विधातुं दवथुं विहातुमेता हि मान्या जगतीह नान्याः ॥ २३२ ॥

अमरुदं गुरु रक्तद्वेषि पित्तप्रमोषि
ज्वरहरमतिसारि प्रौढवह्निप्रसारि ।
कृमिकवलनकारि श्लेष्ममेहप्रहारि
प्रकटितकटुभावं कारवेल्लं ब्रवीमि ॥ २३३ ॥

अनुभव हिमभावं पित्ततः शत्रुभावं
कुरु पवनकफाभ्यां मित्रभावं भजस्व ।

भांग का शाक उत्तम है, अतीसार और अग्निमांद्य को दूर करने वाला, कफहर तथा लघु है । अरे ! यह किसको उन्मत्त नहीं करता ? वार्ताक (बैंगन) कफजन्य वेदना में उपकारक है । यह वात की बात भी सहन नहीं कर सकता, पित्त को उग्र कर देता है-तथा ज्वर के प्रति विरक्त और सारक है ॥ २३० ॥

वैद्योने, कूष्मांड के शाक को कफकारक, गुरु, शीतल तथा शरीर को स्वर्णाभ-पीतकांति अर्पण करनेवाला माना है । यह पित्तप्रहारक, अग्निप्रदीपक, चित्त-स्थैर्य-कारक, वीर्योत्पादक तथा भेदक है ॥ २३१ ॥

कफ से रहित तुंवी (घीया, दूधी) तथा शिंबी (फली) का कहां तक वर्णन करें ? बिंवी गुरु ही है । शुक्र की वृद्धि तथा दाह के ह्रास मे इनके अतिरिक्त विश्व में अन्य कोई भी मान्य नहीं है ॥ २३२ ॥

कारवेल्ल (कारेला) वातहर, लघु, रक्तविकार और पित्त का नाशक, ज्वरहर, सारक, जठरानल का उत्तम-प्रसारक, क्रिमिका कवल करजानेवाला, कफ और प्रमेह का प्रहारक तथा कटु-भाव का प्रकाशक माना गया है ॥ २३३ ॥

राजकोषातकी (गिलगिल तोरयू) के समक्ष शीतल स्वभाव की दीक्षा ले ।

१-अतिसारम् । २-अग्निमान्द्यम् । ३-पित्तकर्तृत्व चास्य जीर्णविषयं, तेन 'हृद्यं रुच्यमपित्तलम्' इति भावप्रोक्त बालविषय न विरुध्यते । तथाहि—"सा बाला कफपित्तघ्नी पक्वा सक्षारपित्तला" इति । तन्त्रान्तरेऽपि—"तद्बाल कफपित्तघ्न वृद्धं पित्तकर लघु ।" इति । ४-अननुरागि ज्वरघ्नमित्यर्थः । ५-'घीया' 'दूधी' इति प्रसिद्धा । ६-'फली' ७-'किन्दूरी, गीलोडा' इति । ८-शुक्रम् । ९-लघु ।

ज्वरमपहर कासं किं करोपि प्रकाशं
दमय दवथुभीतिं राजकोपातकीतः ॥ २३४ ॥
कोपातकी स्यात्तुहिनावशेषा सश्लेष्मदोषाऽपि लघुर्विशेषात् ।
वृष्य पैटोलं ज्वरनाशलोलं कासापहं खण्डितबन्धगोलम् ॥ २३५ ॥
कर्कोटकं कीर्तितमग्निकारि कासज्वरश्वासविकारहारि ।
हृलासकुष्ठारुचिकष्टनाशि प्रभेदि पाके कटु शैत्यराशि ॥ २३६ ॥
अर्शांसां विदधती क्षयमग्निं कुर्वती बलमलं कलयन्ती ।
जन्तुगुल्मविषपित्तविलासान् डोडिका विलसति क्षपयन्ती ॥ २३७ ॥
अगस्त्यसूनं ज्वररोगमूनं करोति तिक्तं कफपित्तरिक्तम् ।
पुष्पं कदल्या गुरु रक्तकुल्यापित्तक्षयघ्नं पवमानविघ्नम् ॥ २३८ ॥
कदलीमध्यमदण्डश्चण्डः पित्तास्रसंहरणे ।
प्रदरार्तिकालदण्डो मान्द्यमरोचं च खण्डयति ॥ २३९ ॥
त्रिदोषकालं हिमभेदि बालं वृद्धं तु मूलं त्रिमलानुकूलम् ।
तदीयपत्रं कफकृच्चरित्रं पित्तस्य मित्र स्वगुणैः पवित्रम् ॥ २४० ॥

पित्त से शत्रुभाव तथा वात कफ से मित्र भाव रखे । ज्वर को हटा दें । दाह के भय का दमन कर दे तथा कास के प्रकाश को समेट ले ॥ २३४ ॥

कोपातकी (तुरई) सपूर्ण शीतल तथा कफ दोष से युक्त होते हुये भी विशेषतया लघु है । पटोल (परवल) वृष्य, ज्वर नाशक, कासहर तथा विबन्धको दूर करनेवाला है । कर्कोटक (ककोडा) अग्निप्रदीपक, कास, ज्वर और श्वास विकार का विदारक, हृल्लास, कुष्ठ और अरुचि के कष्ट का सहारक, भेदक, पाक में कटु तथा अत्यंत शीतल है । डोडीका अग्निवर्धक, अत्यंत बलकारक तथा अर्श, क्रिमि, गुल्म, विष और पित्त के विलास को खतम करदेने वाली है। अगस्त्य-पुष्प ज्वर (विशेषतया चातुर्थिक) नाशक, तिक्त तथा कफ-पित्त हारक है । कदली पुष्प (केले का फूल) भारी, रक्त-सग्राहक, तथा वात पित्त और क्षय को नष्ट करनेवाला है । केले के मध्यभाग का दड (कदली स्तंभ) रक्त-पित्त का प्रचड सहारक, प्रदर रोग के लिये साक्षात् कालदड तथा अग्निमाद्य और अरुचि को खण्ड खण्ड कर देनेवाला है ॥ २३५–२३९ ॥

छोटी मूली शीतल, भेदक तथा त्रिदोष नाशक है । बडी मूली त्रिदोष करती है । मूली के पत्र अपने चरित्र से कफको काटनेवाले, पित्त के मित्र और गुणो से पवित्र

१–'गिलगिलतोऽयू, गलकातूरिआ' इति च प्रसिद्धवल्लीफलशाकविशेष. । २–तद्भेद एव । ३–'परवल' इति प्रसिद्धं फलशाकम् । ४–'ककोडा' कारवेल्लाकृति । ५–अनेनैव नाम्ना गुर्जरे प्रसिद्धा शास्त्रे तु 'जीवन्ती' इति । ६–रक्तप्रवाह । तेन रक्तपित्त-रक्तातिसार-प्रदरादिहरमित्यर्थ । ७–उक्त च पलाण्डुराजशतके– "क्रमेलकानामुपरि क्रमेण विस्तार्य हसच्छदतूलकानि । आरुह्य दोषत्रयघस्मराणि प्रतस्थिरे बालकमूलकानि ॥" इति ।

अलं समीरः कफयुद्धवीरो वेणोः करीरः किल दाहधीरः।
सोष्ण्यः सकण्डुः सकटुः सवह्निः स्याच्छूरणोऽर्शःकफकोपहन्ता॥२४१॥
अतीव बल्या रुचिदा बलासविबन्धविष्टम्भकृदालुकी[2] स्यात्।
आलूनि भेदीन्यपि दुर्जराणि सश्लेष्मवातानि महाबलानि॥२४२॥
वातध्वंसविशारदः कफकलासंवर्धकः शीतलो
बल्यः स्वादुरसो न पित्तबहुलः प्रोक्तः पलाण्डुर्बुधैः।
पित्तार्शोऽस्रकफानिलग्रहणिकारुग्गञ्जनं गृञ्जनं
तीक्ष्णोष्णं लघु तिक्तकं हुतवहप्रोद्बोधि संग्राह्यपि॥२४३॥

माने गये है। (वैद्य बृहस्पति श्रीकृष्णराम महाकवि कृत 'पलाण्डुराजशतकम्' मे मूली के काव्यमय शैली में उपवर्णित आयुर्वेदोक्त गुण धर्मों को अवश्य ही पढें, भिषग् श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मीरामने उन्हें अपनी टिप्पणी मे नीचे उद्धृत भी किये हैं)॥ २४०॥

वेणु के अंकुर वात को नष्ट करने में समर्थ तथा कफ युद्ध के विजेता वीर है। सूरण उष्ण, कण्डुप्रद, कटु, अग्निप्रदीपक तथा कफ के कोप को नष्ट करनेवाला है। आलुकी (अरवी) अत्यत बलवर्धक रुचिकर तथा कफ, विबध और विष्टभ करनेवाली है। आलू भेदक होते हुये भी दुर्जर कफ-वात-कारक तथा अत्यत बलदायक है॥ २४१-२४२॥

बुद्धिमान् वैद्योंने, पलाण्डु (प्याज) को, 'वातविध्वसविशारद', कफ कला का सवर्धक, शीतल, बल्य रस मे मधुर तथा अधिक पित्त नहीं करनेवाला कहा है। (महाकवि श्रीकृष्णरामजी की 'पलाण्डुराजशतकम्' एक परमोत्तम कवितामय मौलिक कृति है। आयुर्वेदवाङ्मय मे इस तरह का यह प्रथम ही नूतन-तम काव्य

१-'अर्शोघ्न सूरण कन्द.' इति कोश। उक्त च पलाण्डुराजशतके—"नाम·पैमर्गोत्रधवद्धदीक्षो विहटशास्त्रवण कर्कशाङ्ग·। स सूरण सद्गुणपूरणश्रीरमुष्य नासीरमल-ञ्चकार॥" इति। २-'अरी, अलवी' च। ३-एषामभक्ष्यत्वमुक्तं वनपतिमिश्रै। तथा च तत्पाठ –"कन्दो बहुविधो लोकैरालुशब्देन भण्यते। कचालु चैव घण्टालु पिण्डालु शर्करादिकम्॥ इङ्ग्रेजैर्यत् समानीत विलातीपदपूर्वकम्। कोषादिषु न दृष्टं यद्भक्षितं चावि-वेकिभि॥ निघण्टौ नास्य पर्याया न गुणा परिकीर्तिता। स्मार्तैरेतद्यवहृतमभक्ष्यं तद्धि·तार्थिभि॥ सावूदाना यथाऽभक्ष्यस्तथैतत् कथितं बुधै। निजधर्ममजानद्भिर्गृहीत बालिशै·र्वृथा॥" इति। ४-'प्याज, डूंगली' इति प्रसिद्ध कन्दविशेष·। स च श्रीगुरुभि पलाण्डु·राजशतकाभिधानेन विचित्रप्रबन्धेन वर्णित। तस्यान्तिमोऽयं श्लोक– "तदा प्रभृति वैदिकै स वरवर्णिनीसस्कृत पलाण्डुरुपसेवित पटुचमत्कृति स्नेहत। चिर रुचिमुदञ्चयन धुरि रसायनाना स्थितो गदानहह सहरन्निह दधातु कामं सताम्॥" इति। ५-'सलगम' इति ख्यात पलाण्डुभेद·। उक्तं च वाप्यचन्द्रेण–"गन्धाकाररसैस्तुल्यो गृञ्जनस्तु पलाण्डुना। सूक्ष्मनालाग्रपत्रत्वाद्भिद्यते तु पलाण्डुत॥" इति। अस्य नपुसकलिङ्गत्व चिन्त्यमिति।

दोषोत्सारिणि धीप्रसारिणि महानैर्बल्यसंहारिणि
श्लेष्मच्छेदिनि वातभेदिनि भृशं भग्नास्थिसंमेलिनि ।
रक्तोद्रेकिणि पित्तहेलिनि लघावप्यौषधीनां गुरौ
दुर्गन्धः सुगुणे किमत्र लशुने धातस्त्वया स्थापितः ॥ २४४ ॥

गुणेष्वेको[1] दोषो बहुषु नियतं मज्जति यथा
करेष्विन्दोरङ्कः श्रुतिरियमलीकेति कलये ।
तथा ह्युच्चैः पित्तं कफहृदमरुद्भेदि लशुनं
महावृष्यं लोकैरसुरभितया[2] त्यज्यत इह ॥ २४५ ॥

स्फट्या समं स्वेदनविप्रमुक्ततिक्तत्वनिम्बच्छदसिद्धशाकः ।
बलासपित्तज्वरकुष्ठजन्तुच्छर्दिप्रमेहारुचिदृग्गदघ्नः ॥ २४६ ॥

है । भट्ट श्रीकृष्णराम की लोकोत्तर प्रतिभा के जिज्ञासुओं से साग्रह निवेदन है कि वे इस सर्वांग रसमय काव्य का एकबार अवश्य पारायण करें ।) ॥ २४३ ॥

लशुन दोषो का उत्सारक, मेधा का प्रसारक, अत्यंत निर्बलता का सहारक श्लेष्मा का छेदक, वात का भेदक, भग्न अस्थियो का समेलक, रक्तवर्धक तथा पित्त का प्रेरक है । लघु होता हुआ भी औषधियों का गुरु है । (अपने गुणों के कारण गुरुवत् पूज्य है) इन अनेकविध उत्तम गुणो से युक्त लशुन में, हे विधाता ! तू ने न जाने क्यो यह दुर्गंध दोष रख दिया है ?) ॥ २४४ ॥

शास्त्र का यह वचन कि बहुत से गुणो मे एक दोष विलीन हो जाता है जैसे चंद्रमा की समुज्वल-किरणो मे उसका काला धब्बा-वह इस कलिकाल मे असत्य है । (महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमार-सभव' महाकाव्य मे कहा है कि-'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो. किरणेष्विवाङ्क.' ग्रंथकार इसी भाव को यहा उद्धृत करते हुये-लशुन में यह उक्ति चरितार्थ नहीं होती यह स्पष्ट करने के लिये कहते हैं कि) क्योंकि, लशुन पित्त का भेदक, कफ-का छेदक तथा वात का नाशक एवं परम वृष्य है । इतने गुणों से युक्त होते हुये भी यह अपने एक ही दुर्गंध-दोष के कारण जन-समाज से परित्यक्त है ॥ २४५ ॥

नीम के पत्तो को स्फटी डालकर उबाल लेवें, इस तरह करने से उनकी कटुता जाती रहती है । इन पत्तों से सिद्ध किया गया शाक कफ, पित्त, ज्वर, कुष्ठ, कृमि, वमन, प्रमेह, अरुचि तथा नेत्र-विकार को नष्ट कर देता है ॥ २४६ ॥

१–अस्यापि तत्रैव शतके वर्णनम् । यथा–"समन्ततो वर्मपिनद्धमर्मा विभग्नसधानविधाविदग्ध । पफाण पीयूषपृपत्समुत्थो रस दधानो मिषता रसोन ॥" इति । २–'एको हि दोषो गुणसनिपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्क ' इति । कुमारसभवोक्तेराक्षेप । ३–दुर्गन्धितया । कार्यवशाद्भुक्तस्यास्य दुर्गन्धापनयनप्रकारो ग्रन्थान्तरोक्त "कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधान्याकयष्टिमधुकवलः । हरति मुखपूतिगन्ध रसोनमदिरादिगन्ध च ॥" इत्यनुसर्तव्य. ।

अरोचवैरस्ययकृद्धमिक्रिमिप्रभञ्जनश्लेष्मगदप्रभञ्जनः ।
रूक्षस्तथोष्णः सुरभी रजःप्रदः पोदीनकः कल्कविधौ प्रशस्यते ॥ २४७ ॥
क्षीरैः स्नुहीजैः प्रतिभाविनैस्य संस्वेद्य धौतस्य मुहुर्जलेन ।
दध्ना तथा हिङ्गुपटूषणाद्यैश्चमत्कृत स्याल्लवणस्य शाकम् ॥ २४८ ॥

पोदीना अरुचि, मुख की विरसता, यकृत्-विकार, वमन, कृमि, वात और कफ को दूर कर देता है—यह रूक्ष, उष्ण, सुगंधित तथा आर्तव-जनन है। इसका उपयोग चटनी आदि मे प्रशस्त है ॥ २४७ ॥

लवण को स्नुही क्षीर की तीन वार भावना दें—फिर पानी में पुन: पुन उकाल कर इसे प्रक्षालित करते रहे। अन्त में, दहि तथा हींग, मिरच, नमक, आदि मसाले मिला कर लवण-शाक सिद्ध कर लें। यह शाक चमत्कार-पूर्ण गुण दर्शाता है ॥ २४८ ॥

अथ तैलम् ।

तैलं तैलं व्यवायि व्रणहृदपवनश्लेष्म चोष्णं विकाशि
त्वग्गर्भागारशोधि प्रकटयति वलं केश्यचक्षुष्यवृष्यम् ।
मेध्यं मिष्टं प्रमेहक्रिमिजठरशिरःकर्णरुग्भग्नपथ्यं
सूक्ष्मं तिक्तं कषायं सरमुरुदहनं रक्तपित्तप्रकोपि ॥ २४९ ॥
तीक्ष्णोष्णं लघु सार्षपं कटुरसं पित्तास्रसंदूषणं
मेदोर्शःकफमारुतश्रुतिशिरोरुक्कुष्ठकोठापदः ।
कण्डूजन्तुगणव्रणान् विजयते तैलं न पथ्यं दृशो
राजीतैलमतीव तीक्ष्णकटुकं तद्वत्तुवर्या अपि ॥ २५० ॥

तैल-तिलका तेल व्यवायी, विकाशी, उष्ण, सूक्ष्म, तिक्त, कषाय, मधुर, मेध्य. केश्य, वल्य, चक्षुष्य, वृष्य, त्वच्य, गर्भाशय-शोधक, उर में दाह का उत्पादक, रक्तपित्तकारक तथा प्रमेह, क्रिमि, उदर, मस्तक और कर्णरोग में पथ्य है। सर्षपतैल तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, रस मे कटु, रक्तपित्तदूषक, तथा मेद, अर्श, कफ, वात, कुष्ठ, कर्ण और मस्तक के रोग, कोढ, खुजली, क्रिमि और व्रणसमूह का नाशक है। मालिश करने से तैल त्वचा तथा नेत्र को लाभ करता है। यही खाने से त्वचा तथा नेत्र को हानि-कारक है। राई का तैल अत्यंत तीक्ष्ण तथा कटु है। तुवरी का तैल भी गुणधर्म मे राई तैल के समान ही है। अलसी का तैल उष्ण रक्तपित्त प्रदूषक, कफकारक तथा

१—प्रभञ्जनो वायु "पवमान प्रभञ्जन" इति कोशात। २—'चटणी' इति प्रसिद्धे। ३—त्रिकृत्व इति शेष। ४—पुष्कलजले ससाध्येत्यर्थ। ५—शाकसस्कारप्रयोज्यत्वात्तदनु तैलगुणाभिधानम्। ६—तिलोद्भवम्। ७—त्वचः शुद्धिकरत्वमभ्यङ्गेन, न पानाभ्यासेन। "त्वग्दोषपकृद्दचक्षुष्यम्," इति वाग्भटोक्ति। ८—पश्चिमार्णवतीरजो वृक्षविशेष.।

तैलं त्वतस्याः पवनप्रकम्पि कफास्रपित्तप्रदमुष्णमुक्तम् ।
ऐरण्डमुष्णं सरमामवातकोष्ठार्तिगुल्मज्वरशोथसादि ॥ २५१ ॥

रालस्य तैलमकफानिलकुष्ठपामा-
विस्फोटकं गुरु कुसुम्भभवं सदोषम् ।
अन्यत् स्वयोनिसदृशं गुणतः प्रदिष्टं
श्रीवाग्भटेन तदिहापि विचारणीयम् ॥ २५२ ॥

वातनाशक है । एरण्ड तैल उष्ण, सारक तथा आमवात, कोष्ठगत विकार, गुल्म, ज्वर और शोथ को नष्ट करनेवाला है । राल का तैल कफ, वात, कोढ, पामा और विस्फोट को दूर करता है तथा भारी है । कुसुभतैल त्रिदोषकारक है । जो तैल जिस द्रव्य मे से निकाला गया हो वह तैल उसही द्रव्य के गुणधर्म के समान होता है । 'तैलं स्वयोनिवत्' यही वाग्भट का मत है ॥ २४९–२५२ ॥

अथ दुग्धादि[2] ।

मदभ्रान्तिश्वासानिलरुधिरपित्तप्रशमनं
गरिष्ठं संदिष्टं तुहिनमतिमिष्टं कफकरम् ।
क्षये[3] क्रुद्धं स्निग्धं रचयति विवृद्धं मनसिजं[4]
सुधामुग्धं दुग्धं वलविधिविदग्धं पिब विभो ॥ २५३ ॥

पयः पीत्वा पीनो भव कफविलासाश्रय लभ
प्रभां पित्तातङ्कं जहिहि वहु दूरं क्षिप जराम् ।
शतं स्त्रीणां शश्वद्रमय शमय प्रौढमनिलं
धियं तीक्ष्णां धेहि प्रकटय शरीरे निविडताम् ॥ २५४ ॥

गवां दुग्धं स्निग्धं कफि गुरु सरं जीवनतरं
मरुत्पित्तच्छेदि श्रममदविदाहभ्रमहरम् ।

दूध आदि –मद, भ्रांति, श्वास, वात और रक्त-पित्तविकार का शामक, कफकारक, क्षयनाशक, कामप्रबोधक, गरिष्ठ, शीतल, अत्यत-मधुर, स्निग्ध, बल देने मे निपुण तथा सुधा को भी मुग्ध करनेवाले दुग्ध का, हे भगवन्! आप पान करें! दूध का पान करके पुष्ट होइये, कफ के विलास-केन्द्र बनिये, तेज प्राप्त कीजिये, पित्त के आतक को नष्ट करिये, वृद्धावस्था को सुदूर फेंक दीजिये, शतरमणियो के साथ रमण कीजिये, प्रवृद्ध वात को दबा दीजिये, बुद्धि को तीक्ष्ण कीजिये, तथा शरीर मे दृढता प्राप्त करिये ॥ २५३–२५४ ॥

१–'अलसी' इति प्रसिद्धाया । २–तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पय पिबेत्" इति नियमस्मरणाद्दुग्धगुणा , तत्साहचर्याच्च सतानिकादधितक्रादेश्च गुणा प्रोच्यन्ते । ३–क्षये क्रुद्ध क्षयघ्नमित्यर्थ । ४–कामम् ।

विषास्रघ्नं जीर्णज्वरविजयि रेतो वितनुते
हिमं बल्य स्तन्यं प्रचुरयति कृच्छ्रं शमयति ॥ २५५ ॥
कृष्णायाः पवनापहं गुणकरं पीतप्रभाया मरु-
न्मायुर्हन्ति विचित्ररक्तवपुषो धेनोरवातं पयः ।
शुक्लायाः कफि किं च वत्सवियुजो दोषत्रयीदूषकं
बल्यं वाष्कयिणीभवं त्रिमलजित् संतर्पणं भेद्यपि ॥ २५६ ॥
शीतं स्याद्गुरु माहिषं बहुबलं सुस्वाद्वभिष्यन्द्यलं
निद्राशुक्रहुताशमार्दवकरं गव्यादतिस्नेहलम् ।
छागक्षीरमदोषलं लघु हिमं संग्राहि पित्तास्रतृट्-
कासश्वासमदक्षयज्वरगदप्रोत्सारि सर्वोत्तमम् ॥ २५७ ॥

गाय का दूध स्निग्ध, कफकारक, गुरु, सारक, जीवनीय, वात-पित्तका छेदक, श्रम, मद, विदाह और भ्रम का नाशक, वीर्य-वर्धक, विष, रक्त-विकार तथा जीर्ण ज्वर को नष्ट करनेवाला, शीतल, बल्य, अत्यंत स्तन्य तथा मूत्रकृच्छ्र शामक है। कृष्ण गाय का दूध वातशामक तथा गुणकारक है । पीतगाय का दूध वात-पित्त-शामक है। चित्रित तथा रक्ताभ गाय का दूध वातहर होता है। श्वेत-गाय का दूध कफकारक तथा जिस का वत्स मर गया हो उसका दूध त्रिदोषकारक कहा गया है। बाखडी गाय का दूध बलकारक, सतर्पक, भेदक तथा तीनो दोषों को दूर करने वाला है ॥ २५५–२५६ ॥

भैस का दूध शीतल, भारी, अत्यत-बल-कारक, मधुर, अभिष्यदी, निद्राप्रद, शुक्रल, जठरानल की तीक्ष्णता को मंद करने वाला तथा गोदुग्ध की अपेक्षा अधिक स्नेहयुक्त होता है। (गाय के दूध की अपेक्षा भैस के दूध में अधिक-स्नेह होता है 'गव्यात् स्निग्धतर गुरु'- यह सुश्रुत का मत है। चरक मतानुसार भैस के दूध की अपेक्षा गाय का दूध अधिक स्नेहवाला कहा गया है। यह परस्पर विरुद्ध कथन है। खरनाद भी गोदुग्ध मे माहिष-क्षीर की अपेक्षा, अधिक स्नेह मानते है। 'गव्य स्नेहोत्तमं क्षीर, गव्याच्च पयस. पय.। यथोत्तर स्नेहहीनं औरभ्रच्छागमाहिषम्' ॥

१–मृतवत्सायाः। २–'बाखडी' इति ख्यातायाः धेनोर्दुग्धमिति । ३–गव्यदुग्धमपेक्ष्य महिषदुग्धे मानत स्नेहाधिक्यमित्यर्थ, तथैव प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, "स्निग्धतरम्" इति सुश्रुतदर्शनाच्च । न च तथात्वे चरकविरोध । "महिषीणा गुरुतर गव्याच्छीततरं पय । स्नेहादूनमनिद्राणामत्यग्नीना हित च तत् ॥" इति । यत स्नेहादूनमित्यस्यार्थविवेचनाया "माहिषस्य स्नेहोनत्व हृद्यादिगुणविषयम् । महिषीक्षीरजात् स्नेहाद्गव्यक्षीरज स्नेहो हृद्यादि-भिर्गुणैरधिक इत्यर्थ" इति हेमाद्रि । "तस्मादत्र गव्यस्नेहादूनमिति योज्यम् । तेन महिषीक्षीर गव्यस्नेहाद् हृद्यादिविषये न्यून हीनं, गव्यक्षीरात् पुन स्नेहे विषयेऽधिकमे-वेत्यर्थ" इति च चन्द्रिकाकार ।

सुधावद्धारोष्णं त्रिमलहरमुष्णं न हि पयः
स्मृतं धाराशीतं भवति गुरु पीतं त्रिमलकृत् ।
अभिष्यन्दि त्वामं गुरु कफि कृतामं पुनरिदं
शृतोष्णं वातघ्नं जितदवथुविघ्नं स्मृतिकरम् ॥ २५८ ॥
सितासहायं कफि वातहारि शृतं सितायुक्तमदोषि वृष्यम् ।
पित्तं कफं वा तरलीकरोति पयो गुडाढ्यं विनिहन्ति कृच्छ्रम् ॥ २५९ ॥
वल्यं प्रभातेऽग्निहरं कफाय मध्याह्नकाले कफवातबाधि ।
प्रायोऽपराह्णेऽनिलनुन्निशायामायुःप्रदं रोगहरं बलाय ॥ २६० ॥
अर्धाम्बु दुग्धमवशिष्टपयोविभागं
दोषापहं लघुतरं चरमामनन्ति ।
नीरं विना बहुशृतं सघनं यदास्ते
मन्दाग्नि तत्तु बलकारि सरं ससारम् ॥ २६१ ॥
फणामि फेनं पयसः समीरबलासपित्तास्रनिरासशूरम् ।
क्षये विरेकेऽप्यरुचौ ज्वरेऽपि कृशेऽपि वृद्धेऽपि शिशौ प्रशस्तम् ॥२६२॥

संभव है चरक कालीन गाय के दूध मे अधिक स्नेह उतरता रहा होगा। बकरी का दूध त्रिदोष-हर, लघु, शीतल, सग्राही तथा रक्त पित्त, प्यास, कास, श्वास, मद क्षय और ज्वर का नाश करनेवाला तथा सर्वोत्तम माना गया है ॥ २५७ ॥

धारोष्ण दूध (माताके स्तनकी तरह सीधा मुंहद्वारा पीया गया) अमृततुल्य गुणो से युक्त होता है। जो दूध दुह लेने पर शीतल हो गया हो, वह धाराशीत कहलाता है। गाय का धाराशीत दूध भारी तथा तीनो दोषो को प्रकुपित करनेवाला होता है। कच्चा दूध अभिष्यंदी, भारी तथा कफ और आम को बढानेवाला है। गरम किया हुआ दूध वात और दाह का नाशक तथा स्मृति देने-वाला कहा गया है। दूध को गरम करके तदुपरात शक्कर मिलाकर पीने से कफ की वृद्धि तथा वात का ह्रास होता है। शक्कर के साथ उकालकर गरम किया गया दूध त्रिदोष शामक तथा वृष्य माना जाता है। गुड-युक्त दूध कफ पित्त के प्रभाव को मिटाता तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। प्रातःकाल मे दूध का सेवन, अग्नि को मद करनेवाला तथा कफवर्धक कहा गया है। दूध में, उससे आधा जल डालकर उकाले जलभाग निःशेष होने पर, अवशिष्ट दुग्धभाग, दोषनाशक, अत्यत हलका तथा उत्तम होता है। बिना जल के ही खूब औटाया गया मलाईवाला दूध मंदाग्नि करनेवाला, बलदायक तथा सारक होता है ॥ २५८—२६१ ॥

धारोष्ण दूध को मथकर निकाला गया फेन वात, कफ, तथा रक्त-पित्त को

१—मुखमेव यस्य पात्रम्। २—'रबडी' इति प्रसिद्धम्। ३—सन्तानिकासहितम्। ४ धारोष्णदुग्धज, रात्रावाकाशे चन्द्रनक्षत्रशीतीकृतस्य पयसः प्रातर्मन्थनदण्डेन युक्त्या समुत्थापितं वा।

जातीजातीफलैलाघुसृणपरिचयां मातुलानीं विनीय
क्षीरे पादांशनीरे परिपचन समुल्लोलदोलाधिरूढाम् ।
क्षीरस्यार्धावशिष्टां स्थितिमनुभवतः शर्कराढ्यस्य सायं
स्फारा द्वित्रिः कटोराः पिबत यदि चिरं चन्दितुं युष्मदिच्छा २६३

दानादग्नेरुत्फणद्दुग्धमार्द्रैः काञ्चीशाखाकूर्चकैश्चालनेन ।
लब्ध्वा साम्यं सिद्धगोधूमचूर्णैर्धत्ते सर्पिःखण्डतो लड्डुभावम् ॥ २६४ ॥

सायं भृत्वा कनककलशीं क्षीरसंतानिकाभ्या-
मास्ये तस्याः सुपिरसुषम मल्लकं चापि धृत्वा ।
कोष्णैरच्छच्छगणभसितैरागलं संपिधेहि
प्रातर्वृष्यां रसय सितया सान्द्रसंतानिकां ताम् ॥ २६५ ॥

किंचिद्विपाचयित्वा सर्पिषि संतानिकां सान्द्राम् ।
मज्जय रसे सिताया निवेद्य देवाय मात्रया भुङ्क्ष्व ॥ २६६ ॥

नष्ट करने मे शूरवीर एव क्षय, अतीसार, अरुचि और ज्वर में तथा कृश, वृद्ध और बालक सभी के लिये प्रशस्त है ॥ २६२ ॥

भाग में जावित्री, जायफल, इलायची तथा केसर यथामात्रा मिलाकर दोलायंत्र मे रख उसे दूध में उससे चतुर्थांश पानी मिलाकर, खूब औटावें। फिर अनुमान से यह जानकर कि अब दूध ओटकर आधा रहगया है उसे उतारलें। यदि दीर्घ काल तक की आनन्दमयता प्राप्त करनी हो तो शक्कर युक्त इस दूध के छलकते हुये दो तीन कटोरे सायंकाल को पीये ॥ २६३ ॥

अग्नि पर खूब उकलते हुये दूध को बला की ताजी मोटी टहनी से जल्दी जल्दी हिलाते रहें। इस तरह करने से दूध, सिद्धगोधूम चूर्ण जैसा सुर्ख हो जायगा। इसमें घी और शक्कर मिलाकर लड्डु बनाले। इसे दूध का चूरमा कहते हैं ॥ २६४ ॥

सायंकाल को स्वर्ण कलश में दूध की मलाई भरकर उसके मुख को छिद्रपूर्ण मालसे से ढकदें। इस कलश को सरकडो की गरम गरम भोभल में आकठ

१–जावन्त्रिका २–कुङ्कुमम्। ३–भङ्गाम्। ४–'कटोरा' इति प्रसिद्धान् पात्रविशेषान्। "कटोरा स्त्री खनामख्याते पात्रे" इति ब्रह्मवैवर्तपुराणम्। जैमिन्याश्वमेधिके पर्वणि नवमाध्यायेऽपि–"रम्याश्च देवकीदत्त पात्रे काञ्चननिर्मिते। कटोराणां चतुःषष्टिः पात्रस्योभयतः स्थिता ॥" इति 'कटे ओलच्। रल्योरैक्यम्' इति चिन्तामणि। ५–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो बलभेद। ६–'दुग्धका चूरमा' इति प्रसिद्धम्। ७–वल्लभसाम्प्रदायिकै क्रियमाणोऽयं प्रकार। ८–'बचने का दरिद्रता' इति भाव। ९–'मालसा' इति प्रसिद्धमावरकं मृत्पात्रविशेषम्। १०–'भोभल' इति प्रसिद्धे। ११–प्रातराशसमये, न तु प्रातरेव श्लेष्मभयात्। १२–जातामज्जमसुवर्णां 'मलाई'नाम्ना सनाख्याताम्। १३–'चासनी' इति लोकप्रसिद्धे।

आपूरित कर देवें। प्रातःकाल इस वृष्य गुणयुक्त घट्ट बनी हुई मलाई को सिता-निर्मित चासनी मे डालकर भगवान को निवेदित करके फिर यथामात्रा इसका सेवन करें। (वल्लभसम्प्रदाय में वस्तुतः रजतकलश मे तथा स्वर्णकलश मे भी उपरोक्त 'सवानिका' सिद्ध होती है। अत टिप्पणीकार की इस उक्ति 'वचने का दरिद्रता' को 'वचने यथार्थता' इस अर्थ में समझे ।) ॥ २६५–२६६ ॥

दधि ।

दध्युष्णं गुरु दीपनं कफकरं पित्तास्रशोथप्रदं
स्वाद्वम्लं तुवरं रुचिप्रदमभिष्यन्द्यस्ति संग्राहकम् ।
गव्यं तत्र वरं विपाकमधुरं बल्यं पवित्रं परं
वातोन्माथ्यथ माहिषं कफि बहुस्निग्धं मरुत्पित्तनुत् ॥ २६७ ॥
आजं दधि ग्राह्यमलं लघूक्तं श्वासक्षयार्शःकसनानि हन्ति ।
सितासहायं मधुरं पिपासापित्तास्रदाहक्षपणं क्षयघ्नम् ॥ २६८ ॥
ससारं नक्षारं दधिपवनपारं रचयते
सभारं धिकारं प्रकटयति हाऽरं हि दवथो ।
असारं नो सारं जठरजविकारं स्यति रुचि-
प्रसार संहारं लघु मलविहारस्य कुरुते ॥ २६९ ॥

दधि—दही उष्ण, दीपन, कफहर, रक्त-पित्त और शोथ करने वाला, मधुर, अम्ल, कषाय, रुचिकर, अभिष्यंदी तथा ग्राही है। गाय का दही सभी प्रकार के दही में अधिक गुणयुक्त कहा गया है। यह विपाक मे मधुर, बल्य, वातहर तथा परम पवित्र माना जाता है। माहिष दही कफकारक, अत्यंत स्निग्ध तथा वात-पित्तनाशक है। बकरीका दही ग्राही, त्रिदोष-नाशक तथा लघु है। यह श्वास, क्षय, अर्श और खासी को दूर करता है। शक्कर युक्त यही दही मधुर तथा पिपासा, रक्त-पित्त विकार दाह और क्षय का नाश करने वाला होता है। मारसहित दूध का दही पवन को उस पार धकेलनेवाला तथा दाहको भारसहित (गुरु, भारी) हा[1] पूर्वक प्रचुर धिकार देनेवाला है। असार दूध का दही मनुष्य के जठरजन्य विकार को तोडता है तथा रुचि का प्रसार और लाघवतापूर्वक अनीसार का सहार करता है ॥ २६७–२६९॥

तक्रम् ।

तक्रं ग्राहि कषायमम्लमधुरं वीर्योष्णमग्निप्रदं
दोषघ्नोपि लघुप्रियं ग्रहणिकाकृच्छ्राश्मदुर्नामजित् ।

तक्र (छाछ) ग्राही, कषाय, अम्ल, मधुर, वीर्य मे उष्ण, अग्निप्रद, त्रिदोष-नाशक तथा लघु है। यह ग्रहणी, मूत्र-कृच्छ्र और अर्श को नष्ट करता तथा पाण्डु,

---

१–गुरु । २–हा अरम् इति च्छेद । ३–अग्निमान्द्यादिकम् । ४–'षोऽन्तकर्मणि' इत्यस्य रूपम् । ५–अतिसारस्य ।

पाण्डुप्लीहगदप्रमेहजठराजीर्णोग्रगुल्मक्षय-
व्यापारं निरुणद्ध्यथो दधिसमं जानीहि शेषं गुणैः ॥ २७० ॥
सुरैः सदैव स्पृहणीयमच्छप्रभोज्ज्वलं[1] सारनिधानमेकम्[2] ।
भिनत्ति दोषान्[3] भजतां जनानां शक्रोपमं तक्रमुदाहरामि ॥ २७१ ॥
कपित्थमध्यस्य[4] रजांसि सप्तकृत्वः पयोभिः[5] परिभावितानि ।
निक्षिप्य नीरे मथितानि वाढं तक्रं किमद्धा न विडम्बयन्ति ॥ २७२ ॥

प्लीहा, प्रमेह, उदर, उदावर्त, उग्र गुल्म, अजीर्ण तथा क्षय के व्यापार को रोकता है। अपने अन्य गुणों मे यह दही के समान ही माना जाता है ॥ २७० ॥

देवताओ को सदैव स्पृहणीय, श्वेत (इन्द्रपक्ष मे प्रकाशमान प्रभा-मडलसे युक्त), सार (बल) का एकमात्र निधान तथा अपने सेवन करने वालो के (भक्तो के) दोषो को (दारिद्र्यादि दोषो को) हटानेवाला तक्र, शक्र (इन्द्र) के समान ही है ॥ २७१ ॥

कृत्रिम तक्र बनाने की विधि–कपित्थ के मध्य भाग-गत गूदे को सुखाकर उसका चूर्ण बनाले। इस चूर्ण मे दूध की अथवा घोल की सात भावनायें दें। इस तरह भावित चूर्ण को जल मे डालकर खूब मथकर छाछ बनाले। यह छाछ असली छाछ को भी परास्त करती है ॥ २७२ ॥

नवनीतम् ।

दीपनं सुरभिजं[6] नवनीतं रक्तपित्तपवनान् द्यति[7] शीतम् ।
ग्राहि वीर्यबहुलं जितकासं शस्तमर्शसि तनोति विकाशम् ॥ २७३ ॥
नवनीतं गुरु शीतं वातश्लेष्माणमुद्धुरं धत्ते ।
महिषीसम्भवमुच्चैः शुक्रं विस्रस्तपित्तास्रम् ॥ २७४ ॥

नवनीत–गाय का मक्खन दीपन, रक्तपित्त और वात का नाशक, शीतल, ग्राही, वीर्य-वर्धक, कासहर, अर्श मे प्रशस्त तथा तेजको बढाने वाला है। भैंस के दूध का मक्खन भारी, कफ-वात कारक, शुक्रल तथा रक्त-पित्त शामक है ॥ २७३–२७४ ॥

१–श्वेतम्, पक्षे प्रकाशमानप्रभामण्डलम् । २–सघृतम् । ३–वातादीन्, पक्षे दारिद्र्यादीन् । प्रसगात्तत्रान्तरीय तक्रवर्णनं लिख्यते—" कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिश किं नीलकण्ठो भवेद्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशव । इन्द्रो दुर्भगता क्षय द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गण, कुष्ठित्व च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति ॥" इति । ४–कृत्रिमतक्रकरणस्य प्रकार । ५–दुग्धे । घोलेनापि कपित्थगर्भसंस्कार इति प्रकारान्तरम् । ६–गव्यम् । ७–'दो अवखण्डने' इत्यस्य रूपम् ।

घृतम् ।

विपाकमधुरं वरं दवथुदारि गव्यं घृतं
प्रभञ्जनजयि प्रभामतिविकाशि वृष्यं स्मृतम् ।
बलासि महिषीघृतं रुधिरपित्तवातापहं
हितं कसनसंकटे सुखकृदाजमाज्यं दृशोः ॥ २७५ ॥

घृत—गाय का घृत सभी घृतों मे उत्तम, विपाक मे मधुर, दाह-शामक, वात-विनाशक, वृष्य तथा शरीर की कांति का अभिवर्धक है। भैंस का घी कफ-कारक तथा रक्त-पित्त और वात-नाशक है। बकरी का घी कास के कष्ट मे हितकर तथा नेत्रो को आरोग्यप्रद है ॥ २७५ ॥

---

[1]गोमूत्रम् ।

गोमूत्रं कटुतिक्ततीक्ष्णतुवरक्षारोष्णलघ्वग्निदं
मेध्यं पित्तकरं कफानिलहरं गुल्मोदरानाहहृत्
कण्डूशूलमुखाक्षिरोगकसनश्वासोग्रकुष्ठक्रिमि-
क्लेशप्लीहविबन्धपाण्डुगररुक्पामामशोथप्रणुत् ॥ २७६ ॥

गो-मूत्र कटु, तिक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, कषाय, क्षार-युक्त, लघु, अग्नि-प्रदीपक, मेध्य, पित्तकर तथा वात-कफहर है। यह गुल्म, उदर, आनाह, खुजली, शूल, मुख तथा नेत्र के विकार, कास, श्वास, उग्र कुष्ठ, क्रिमि-पीडा, प्लीहा, विबन्ध, पाण्डु, गर-वेदना, पामा, आमवात तथा शोथको दूर करता है ॥ २७६ ॥

---

[2]इक्षुः ।

संचूषितः पवननुल्लघुरिक्षुरस्रपित्तश्रमभ्रमविमोहविदाहहारी ।
स्वादुः सितेव रसतः कफमान्द्यमारी शीतः सरोऽधिकगुणो बलवीर्यकारी ॥
ग्राही कफाढ्यो रस आम इक्षूद्भवः सभारोऽथ सरोऽग्नितप्तः ।
विदाहि सुस्वादु गुरूष्णमक्ष्णोर्न शर्मदं फाणितं[3]माहुरार्याः ॥ २७८ ॥

इक्षु (गन्ना)—चूसा हुआ गन्ने का रस वात-हर, रक्तपित्त, श्रम, भ्रम, मोह और दाह का नाशक, मधुर, रस में शक्कर के समान तथा कफ-कारक, शीतल, सारक,

---

१—दुग्धादिभि सहैक्योनित्वाद्गोमूत्रगुणा । २—दुग्धवर्गे सितासहायमित्युपदिष्टम् अतस्तदनन्तर सितोपादानस्येक्षोर्गुणा गण्यन्ते । स च बहुविध , उक्त च तन्त्रान्तरे—"पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वशक शतपोरक । कान्तारस्तापसेक्षुश्च काण्डेक्षु सूचिपत्रक । नैपालो दीर्घपत्रोऽपि नीलपोरोऽथ कोशकृत् । इत्येता जातयस्तेषा गुणा बोध्या यथास्थलम् ।" ३—द्वितीयमिक्षुविकारम् । विकाराश्चास्य—"लसीका-फाणित-गुड-खण्ड-मत्स्यण्डिका-सिता । निर्मला लघवो ज्ञेया शीतवीर्या यथोत्तरम् ॥" इति ।

खण्डो विखण्डयति मारुतमायुदाहान्
का हानिरक्षिण भजतां तुहिनः सरोऽपि ।
श्वेतोपलाऽनिलवमिज्वररक्तपित्त-
दाहान्निहार्दयति सौम्यगुणा सशुक्रा ॥ २७९ ॥
नवः क्षारः स्वादुर्गुरुरनलदो वातमथनो-
ऽत्यभिष्यन्दी पित्तं कफरुधिरमौष्ण्यं द्रढयति ।
पुराणः पित्तघ्नः प्रथयति पृथुत्वं हुतभुज-
स्तुषारो दोषघ्नो लघुरपि बलं यच्छति गुडः ॥ २८० ॥

गुणों में अधिक तथा बल और वीर्य का वर्धक है । गन्ने का, यंत्र-निष्पीडित कच्चा रस ग्राही तथा कफकारक है । अग्नि से पकाया हुआ रस भारी, सारक, विदाही, मधुर, और उष्ण है- फाणित (राब) नेत्रों को अपथ्य है ॥ २७७-२७८ ॥

खण्ड (खांड) वात-पित्त तथा दाह को खंडित करनेवाली, नेत्रो को हितकारी, शीतल और सारक है । श्वेतोपला-मिश्री (सिता) वात, वमन, ज्वर, रक्तपित्त तथा दाह को मिटाती है । सौम्य-गुणो से युक्त तथा शुक्रल है ॥ २७९ ॥

नूतन-गुड कुछ क्षार-गुण-युक्त, मधुर, गुरु, अग्नि-वर्धक, वात-नाशक, अत्यंत अभिष्यंदी, उष्ण तथा पित्त, कफ और रुधिर को दृढ करता है । पुराना गुड पित्तहर, अग्नि-प्रदीपक, शीतल, त्रिदोष-नाशक तथा लघु होता हुआ भी बल-वर्धक है ॥ २८० ॥

मधु[1] ।

मधु लघु[2] मदश्वासास्रार्शस्त्रिदोष[3]वमिक्रिमि-
क्लमकसनतृण्मेदोमेहारुचिक्षयकुष्ठजित् ।
हरति मधुरं मान्द्यं हिक्कां विदाहहरं हिमं
स्वरबलकरं रूक्षं ग्राहि प्रभामतिदं परम् ॥ २८१ ॥

मधु (शहद) लघु, मधुर, शीतल, रूक्ष, ग्राही, अग्नि-वर्धक, स्वर्य और वृष्य है । यह मद, श्वास, रक्त विकार, अर्श, त्रिदोष, वमन, क्रिमि, क्लम, कास, प्यास, मेद, मेह, रुचि, क्षय, कुष्ठ, हिक्का और विदाह का नाश करता है । यह अत्यंत मेध्य

१-माधुर्यात्तया मधुनोऽपि शर्करा जायते इत्यतस्तदनु मधु प्रस्तूयते । २-चरके मधुनो गुरुत्वमत्र लघुत्वं, गुरुत्व गुणेन, लघुत्व पाकेनेत्यविरोध । चरको गुरुलघुगुणावेवेच्छति, सुश्रुत पाकात्पि । तत्र यच्चिरेण पच्यते तद् गुरुगुण, यच्छीघ्रं तल्लघुगुणम् । यत्पक्वं विण्मूत्रं सृजति श्लेष्माणं करोति तद्गुरुपाक, यद्विण्मूत्रे गृह्णाति वायुं करोति तल्लघुपाकम् । ३-इयं पुनरत्र बृहती विप्रतिपत्ति । चरक खलु "वातल गुरु शीत च" इत्यादिना ग्रन्थेन मधु वातल व्याजहार, कथमत्र त्रिदोषजिदुक्तमिति ? नैवं, चरकवचनमससृष्ट-

तथा वर्ण को उत्तम करनेवाला माना जाता है । (ग्रंथकारने मधु को त्रिदोष-नाशक कहा है । सुश्रुत ने भी मधु को त्रिदोष शामक माना है । चरक मधु को 'वातलं गुरु शीतं च' वातल बताते हैं । यही वाग्भट का मत है—'वातल मधु'। ग्रंथकार और सुश्रुत तथा चरक और वाग्भट में परस्पर जो विरोध भासता है—वह केवल विषय-भेद को लेकर। हेमाद्रि ने इसका युक्ति-युक्त निर्णय किया है । वस्तुत, केवल वात-दोष में, केवल मधु का प्रयोग वातवृद्धि करेगा, किंतु पित्तादि-दोषों से संश्लिष्ट वायु को वातघ्न-द्रव्यों से युक्त मधु, अवश्य नष्ट करेगा । शुद्ध वायु को नहीं, किंतु पित्तयुक्त अथवा कफयुक्त अथवा कफ पित्त युक्त वायु को, मधु अवश्य दूर करता है । इसी अभिप्राय को लेकर ग्रंथकार और सुश्रुत ने मधु को त्रिदोषशामक कहा है ।) ॥२८१॥

जलम्[१] ।

सामान्यमम्बु मदमोहविदाहनिद्रातन्द्राश्रमक्लमवमिभ्रमतर्षधर्षि ।
मन्दाग्न्यजीर्णगलरोगविनाशि शीतं संजीवनं लघु निलीनरसं प्रहर्षि २८२
तोयं तटिन्यास्तनुते समीरं रूक्षानभिष्यन्दि कृशानुकारि ।
कटु प्रपाके विशदं सुमिष्टं कफं सपित्तं कवलीकरोति ॥ २८३ ॥

जल—सामान्य रूप से जल मद, मोह, विदाह, निद्रा, तंद्रा, श्रम, क्लम, भ्रम, तृषा, मदाग्नि, अजीर्ण और कंठ-रोग का विनाशक, शीतल तथा लघु है । जल में छहों रस अव्यक्तरूप से स्थित हैं । यह आल्हाद जनक तथा प्राणि-मात्र के लिये सजीवन है ॥ २८२ ॥

गगा आदि नदियों का जल वातकारक, रूक्ष, अनभिष्यंदी, अग्निवर्धक, पाक से कटु, विशद, मधुर और कफ को पित्त सहित नष्ट करनेवाला होता है । निर्झर का जल रुच्य, अग्नि-प्रदीपक, रूक्ष तथा कफहर है । (पृथ्वी की सतह को फाडकर निकला हुआ जल-औद्भिद जल कहलाता है) औद्भिद-जल पित्तघ्न, शीतल, पवित्र

वातविषयम्, अत्र तु संसृष्टवातविषयत्वेन त्रिदोषजिदिति विषयभेदात् । तथा च सुश्रुत—"त्रिदोषशमनम्" इत्यारभ्य "तत्तु लघुत्वात्कफघ्नं पैच्छिल्यान्माधुर्यात्कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम्" इति । किं च यत्र शुद्धो वायु शुद्धं मधु तत्र वातलत्वं, यत्र वातघातिभिर्मिश्रं मधु पित्ताद्यैर्वा मिश्रो वायुस्तत्र वातघ्नत्वम्, उभयोर्योगवाहित्वात् । सुश्रुतेन हि पित्तश्लेष्मघ्नत्व पठित्वा त्रिदोषशमनं पठता पित्तश्लेष्माणौ शुद्धौ वातमिश्रौ वा वायु मिश्रमेव मधु हन्तीति द्योतितम्' इत्यायुर्वेदरसायनम् । वोपदेवेन तु मधु पित्तकफघ्नवातोदासीनवर्गमध्ये पठितम् । तत्पाठस्तु विस्तरभयादुपेक्षित इति ।

१—सर्वद्रवपारिशेष्यादधुना जल जल्प्यते । २—जीवनहेतुत्वात् । यदुक्तम् "जीवन जीविना जीवो जगत्सर्वं तु तन्मयम् । अतोऽत्यन्ततया सुज्ञो न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ इति । ३—अव्यक्तषड्रसमित्यर्थ । ४—गङ्गादिनद्या ।

रुच्यं नैर्झरमम्बु दीप्तिजननं रूक्षं बलासापहं
पित्तघ्नं हिममौद्भिदं शुचि लघु स्यात् सारसं श्लेष्मलम्।
ताडागं कटु वातलं लघु हिमं वाप्यं मरुच्छ्लेष्मजित्
स्वादुश्लेष्महृदग्निकारि रुचिदं स्वल्पानिलं चौञ्ज्यजम् ॥ २८४ ॥
पानीयं स्वादु कौपं त्रिमलनुदनलोद्बोधि पथ्यं प्रदिष्टं
शीतं स्वच्छं कषायं त्वथ लघु विकिरं दोषविप्लोपदक्षम्।
कैदार्यं पाल्वलं वा जलधिजमथ वा गुर्वभिष्यन्द्यपथ्यं
सिप्राम्भोधेस्तु पथ्यं लघुगुणममलं श्रूयते शुक्रकारि ॥ २८५ ॥

प्रतिश्याये श्वासे ज्वररुजि विरेके सतिसिरे
ग्रहण्यां गुल्मार्तौ व्रणजठरहिक्काप्रभृतिषु।
शृतं तोयं शस्तं मरुति बहुपित्ते कफगदे
क्रमादेवैकद्वित्रिलवपरिहीनं सुखकरम् ॥ २८६ ॥

और हलका होता है। सरोवर का जल कफ-कारक, तडाग-जल कटु, वातल, लघु तथा शीतल, वापी का जल वात-कफ-नाशक तथा चौञ्ज्य जल स्वादु, कफहर, अग्नि-प्रद, रुचिकारक तथा किंचित् वात प्रकोपक है। (ऊंचे-प्रदेश से आया हुआ तथा निम्न भूमि में शिलादि से बद्ध किया गया जल 'ताडाग' जल कहलाता है। शिलादि से बिना बाधा गया सहजही प्राप्त होनेवाला, 'चौञ्ज्य'-जल होता है।) कूप-जल स्वादु, त्रिदोषनाशक, अग्नि-प्रदीपक तथा पथ्य है। विकिर जल (नदी आदि के निकट ही रेतीली भूमि को खुदवाने से जो जल निकल आता है, उसे विकिर जल कहते हैं) शीतल, स्वच्छ, कषाय, लघु तथा त्रिदोष-नाशक होता है। (खेत के जल को केदार-जल कहते हैं। तथा सूर्य जब मृगशिर नक्षत्र पर आता है, तब जिस तलाई में पानी सूखकर अल्प रह जाता हो—उस तलाई के जल को पाल्व कहते हैं।) केदार तथा पाल्व दोनों प्रकार के जल तथा समुद्र-जल, गुरु, अभिष्यंदी तथा अपथ्य कहे गये हैं। वर्षा का-स्वच्छ तथा मधुर-जल पथ्य, लघु-गुण-युक्त और शुक्रवर्धक सुना गया है। उकाला हुआ जल प्रतिश्याय, श्वास, ज्वर, अतिसार, तिमिर, ग्रहणी, गुल्म, व्रण, उदर, हिक्का, आदि विकारों में प्रशस्त है। उकालकर तीन भाग, दो भाग तथा एक भाग अवशिष्ट जल क्रमशः वात में, पित्त में तथा कफ में स्वास्थ्य-

---

१—उच्चप्रदेशात् प्रस्रवजलम्। २—निम्नप्रदेशादुत्तिष्ठज्जलम्। ३—तट उच्चप्रदेश, तस्मादागो गतिर्यस्य स तटाग', स चोच्चप्रदेशादागच्छज्जलस्य निम्नदेशे बन्धनाद्भवति, तत्र भवम्। ४—इष्टिकादिबद्धसोपाना दीर्घिका वापी, तत्रभवम्। ५—चौञ्ज्यो नवोऽबद्धकूप प्रत्यासन्नजलः—"चौञ्ज्यमुक्तो वृहत्कूपो न बद्धो य शिलादिभि।" इत्युक्तस्वरूप। स पुनर्नद्यादिसमीपे तत्कालकृता लघुकूपिका। ६—वालुकादीन् विकीर्य गृह्यमाणजलस्थानं विकिर, तदुद्भवं जलमपि विकिरम्। ७—तृणाद्याच्छन्नजलं मन्दसरस्तदुद्भवम्।

प्रसूनकुक्षेरधिवासितानि वलक्षमृत्स्नाकरकस्य खण्डैः ।
नवीनमृत्कुम्भभृतानि भीष्मे ग्रीष्मे यथेच्छं पिव रे पयांसि ॥ २८७॥

इति दुग्धादिवर्ग ॥ ११ ॥

प्रद माना जाता है । मिट्टी के नूतन घट मे भरे हुये जल को, श्वेत मिट्टी के करवे मे रखे हुये पुष्पों से सुगधित करके तथा सिता-मिलाकर, प्रचड ग्रीष्म मे यथेच्छ मात्रा मे पीयें ॥ २८३–२८७ ॥

दुग्धादि वर्ग समाप्त ॥ ११ ॥

पारदादिवर्गः ।

रसायनः सर्वरसो विशारदः पराक्रमासौ भजतां विहारदः ।
त्रिदोषनुद्योगवहोऽर्तिपारदः करोति कुष्ठक्षपणानि पारदः ॥ २८८ ॥
कटुकतुवरतिक्तमुष्णवीर्यं शिथिलयति क्षणमात्रतो विबन्धम् ।
क्रिमिपवनकफक्षयोग्रकुष्ठप्रभृतिषु पूजितमालपामि गन्धम् ॥ २८९ ॥
स्थाली चीनमृदुत्थिता तदुपरि स्फीता त्रिपादी ततः
पात्रे पूरितकोकिले च चषकं तत्रापि गन्धस्ततः ।

पारदादि–वर्ग ।

पारद छहों रसो से युक्त, रसायन तथा सभी रसों मे प्रतिष्ठित है, अष्टादश सस्कारो से सिद्ध किये गये पारद का सेवन करने से आकाश आदि मे तथा तरुणियो के साथ विहार करने की यथेच्छशक्ति प्राप्त होती है । यह त्रिदोष-शामक' योगवाही, रोग-मात्र से उद्धार करने वाला तथा सभी प्रकार के कुष्ठो को नष्ट करने वाला माना गया है ॥ २८८ ॥

गन्ध (गन्धक) कटु, कषाय, उष्ण-वीर्य, विबंध को शिथिल करने वाली क्रिमि, कफ, वात, क्षय, उग्र कुष्ठ आदि रोगों मे पूजित है ॥ २८९ ॥

गंधक मे से तैल निकालने के यंत्र का वर्णन इस श्लोक में दिया गया है । इस

१–प्रसूनानि कुक्षौ यस्येति करकविशेषणम् । २–त्रिविध हि द्रव्यम् । तदुक्तं चरके–"तत् पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ।" तत्र मासदुग्धदधितक्रमधुप्रभृति जाङ्गम-मुक्तमेव सक्षेपेण, तथोद्भिदमपि हरीतक्यादिवर्गेण फलपुष्पधान्यादिवर्गेण च दर्शितमेव, तदधुना पारिशेष्यात्पार्थिवद्रव्यमभिधीयते । पार्थिवद्रव्यसग्रहोऽपि तत्रैव "सुवर्णं समला पञ्चलोहा· ससिकता सुधा ।मन शिलाले मणयो लवणं गैरिकाञ्जने । भौममौषधमुद्दिष्टम्" इति । तत्रापि प्रधानत्वेन प्रथमं पारद । ३–बन्धनादिना व्योमविहरणादीननेकान् विहारान् ददातीति । ४–अर्ते रोगमात्रस्य पारमन्तं ददातीति । ५–गन्धकतैलोपयोगियन्त्र-प्रतिपादनमिदम् । यन्त्रस्थापन निर्वातदेशे कार्यमित्युपदेश· ।

न्युब्जास्यं चषकं त्रिदण्डयवसतौ किं च त्रिदण्ड्यास्तिरो-
धानं सान्द्रपटेन हस्ततुलितो यन्त्रस्य सर्वोदयः ॥ २९० ॥
कफपित्तहरं नेत्र्यं हृल्लासज्वरकुष्ठजित् ।
प्लीहामवातदरद दरदं सरमीरितम् ॥ २९१ ॥

अभ्रं स्वादु हिमं कषायमुदरव्यापत्त्रिदोषव्रण-
ग्रन्थिप्लीहविषक्रिमीन् प्रशमयत्यायुष्करं शुक्रलम् ।
तद्भस्म प्रमदाशतं रमयति प्रौढप्रभावं नरं
कुर्यान्मृत्युभयं नियच्छति सुधातुल्यं गुणैः स्यात् परम् २९२
स्निग्धमुष्णकटुकं सकषायं कच्छुकुष्ठहरणं हरितालम् ।
श्लेष्मपित्तमुखरोगविषास्रं संनिगृह्य कुरुते करतालम् ॥ २९३ ॥

यंत्र की ऊंचाई चौडाई एक हाथ भर होनी चाहिये । अर्थात् सर्वतः एक हस्त प्रमाण माप का यह होना चाहिये । चीनी मिट्टी की रकाबी के ऊपर एक मजबूत तिपाई रखदें । तिपाई पर अंगार पूर्ण एक पात्र फिर इस पात्र पर गंधक से भरा हुआ एक चषक तथा इस चषक पर (पेंदे में छिद्रयुक्त) एक दूसरा चषक औंधा ढकदें । (दोनों चषकों की मुख संधि को संपुटित कर देना चाहिये। औंधे ढके हुये चषक छिद्र में एक नली लगाकर, छिद्र तथा नली के मुख को संपुटित करके नली के दूसरी ओर के मुख को रकाबी में स्थापित करदें ।) तिपाई के नीचे हवा लगने से तैल के उड जाने की संभावना रहती है। अतः इस तिपाई को सान्द्रपट द्वारा चारो ओर से अच्छी तरह ढक देना चाहिये । इस यंत्र को त्रिदंड सन्यासी के मठ जैसे एकांत तथा निर्वात प्रदेश में रखकर उपयोग में ले । जिससे अंगाराग्नि एक समान प्रज्वलित होती रहे तथा तैल की उग्र गंध से किसी को आपत्ति अथवा असुविधा न हो ॥ २९० ॥

दरद (हिंगुल) हृल्लास, ज्वर और कुष्ठ को नष्ट करने वाला, प्लीहा और आमवात का दारण करने वाला, वात-पित्त-नाशक, नेत्र्य तथा सारक कहा गया है ॥ २९१ ॥

अभ्र (अभ्रक) मधुर, शीतल, कषाय, आयु और शुक्रवर्धक तथा उदर, त्रिदोष, व्रण, ग्रन्थि, प्लीहा, विष और क्रिमि का विनाश करने वाला है। इसकी भस्म शतश प्रमदाओं के साथ रमण करने की शक्ति देती तथा मनुष्य को यौवन प्रभाव से संपन्न करती है। यह अमृततुल्य परमोत्तम गुणों से युक्त अतएव मृत्यु के भय से मुक्त करती है ॥ २९२ ॥

हरताल स्निग्ध, उष्ण, कटु, कषाय तथा खुजली, कोढ, कफ, पित्त, मुखरोग और रुधिर-विकार को पकडकर हस्त-गत कर लेती है ॥ २९३ ॥

१–हिङ्गुलम् ।

व्रणज्वरार्धाङ्गमहोपदंशवलासवैरी शतमल्लसंज्ञः।
पित्तास्रधारी पुरुषार्थकारी बलं विधत्ते शतमल्लतुल्यम् ॥ २९४ ॥
मरुद्बलासज्वरमान्द्यकासश्वासार्तिदद्रूव्रणशैत्यहारी।
वितीर्णकामस्मृतिमल्लतैलं मार्तण्डमुद्रा[2] नलिकाऽत्र यन्त्रम् ॥ २९५ ॥
असृक्कफश्वासविबन्धभूतचातुर्थकक्ष्वेडपुरःसराणाम्।
गर्वी गदानां चतुराननेन मनःशिलाऽकारि मनःशिला[3] सा ॥ २९६ ॥

शतमल्ल (सोमल, सखिया) शतमल्लो के तुल्य बल देने वाला, व्रण, ज्वर, पक्षाघात, उग्र उपदंश और कफ का शत्रु, रक्तपित्त कारक तथा पुरुष के सभी अर्थ संपादित करने वाला कहा गया है। ताम्रमुद्रा नामक नलिका यन्त्र मे से निकाला गया शतमल्ल का तैल काम एवं स्मृति को अर्पण करनेवाला तथा वायु, कफ, ज्वर, अग्निमाद्य, कास, श्वास, दद्रु, व्रण और शीतका विनाशक होता है ॥ २९४–२९५ ॥

मन शिला (मैनसिल) का निर्माण ब्रह्मा ने मन की शिला (गिरा) मे से किया है। यह रक्तविकार, कफ, श्वास, विबध, चातुर्थिक ज्वर, भूतबाधा और विष आदि अग्रगण्य विकारों को मिटानेवाली तथा गुरु (भारी) है। (हरताल वस्तुत सखिया तथा गधक का यौगिक है। भूगर्भ मे अनन्त दिनो तक पास पास पडे रहने से सखिया तथा गंधक हरिताल का रूप धारण करते है। रासायनिक विश्लेषण द्वारा हरताल मे सखिया तथा गधक २।३ के अनुपात मे उपलब्ध होते है। हरिताल कृत्रिम रूप से भी बनाया जाता है। मन शिला उपधातु है। यह भी सखिया तथा गधक का यौगिक है तथा दोनो के समान अनुपात मे होने के कारण, यह लाल रग की होती है। गंधकाधिक्य से हरिताल का वर्ण पीत रहता है। शतमल्ल के विषय मे मतभेद है। सर्पादिविषाक्त जन्तुओ के दश से भस्मीभूत पत्थर को शतमल्ल कहते है। सुश्रुत ने दो प्रकार के धातु-विषो का उल्लेख किया है एक फेणाश्म-भस्म दूसरा हरिताल। यही फेणाश्मभस्म शतमल्ल है। इससे उपरोक्त कथन को पुष्टि मिलती है। अमुक रस-वैद्यो

१–'सोमल, तथा 'सखिया' इति नाम्ना लोके प्रसिद्ध । स च श्वेतकृष्णपीतादिभेदाद्बहुविध । तस्य वर्णन च निघण्टुसारे यथा–"महाविषो माखनिज शाङ्खिकश्चाखुहारक । व्रणज्वरोपदशार्धाङ्गादिवातामयान् हरेत् ॥ अपरादिशिदेशेषु रुक्मरूप्यखनेर्मलम् । वदन्त्येके सित ताल परे क्षार तु निश्चितम् ॥ युक्तिसिद्धे नृणा दत्तं शतमल्लसम बलम् ॥ पर यशोर्थिना ज्ञेन न देय राजमन्दिरे ॥" इति । महाविषकीटदंशनाद्भस्मीभूत प्रस्तरविशेष इति च जनश्रुति । तेन सुश्रुतकल्पस्थाने यत् "फेणाश्म भस्म हरिताल च द्वे धातुविषे" इत्युक्तं तत्र फेणाश्मभस्मनाम्ना अयमेव सभवेत्, इत्येके। य खलु रसशास्त्रे गौरीपाषाणसज्ञया गीयते सोऽय शतमल्लसार इत्यपरे। २–ताम्रमुद्रा। ३–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध उपधातुविशेष लक्ष्मीवीर्यमिति यावत्। यदुक्त शब्दार्थचिन्तामणौ–"हरिताल हरेर्बीज लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला। पारद शिववीर्यं च गन्धक पार्वतीरज" इति।

प्रहरति गरं मेदो मेहं कफं कृमिसंकटं
श्वयथुंदवथू[1] शूलप्लीहौ हलीमकसंगतौ ॥ ३०७ ॥
मेहं कर्पति यत् समस्तविपदां गेहं[2] शरीरव्यथां
सद्यो यद्गुणभास्करस्य पुरतः खद्योतवद्द्योतते ।
श्वासं जन्तुहलीमकौ विजयते कासं वलासं क्षणात्
कं गम्भीरगुणं न यच्छति रुजां रङ्गं सरं गञ्जनम्[3] ॥ ३०८ ॥
वङ्गोपमगुणो नागो[4] युक्त्या संततसेवितः ।
नागाधिकं वलं दत्ते हन्ति मेहं विशेषतः ॥ ३०९ ॥
जसदं हिमतिक्तकषायरसं कफपित्तविकारविनाशकरम् ।
श्वसनं कसनं नयनार्तिसखं सहलीमकमेहमपि क्षिपति ॥ ३१० ॥
स्यान्माक्षिकं[5] स्वादुरसं सतिक्तं स्वर्यं च वृष्यं च रसायनं च ।
शोफक्षयार्शस्त्रिमलप्रमेहवस्त्यर्तिकुष्ठं ग्रसते सकण्डु ॥ ३११ ॥
रसे कटुक्षारकषायशीतं दृश्यं सरं वामकलेखनं च ।
विषार्तिकुष्ठाश्मविलासपामापित्तानि तुच्छानि करोति तुत्थम् ॥ ३१२ ॥

कृमि-रोग, शोथ, दाह, शूल और प्लीहा सहित हलीमक नामक पाण्डु और विष का संहार कर देता है ॥ ३०७ ॥

रङ्ग (रांगा) –विकारो को तोड देनेवाला तथा सारकगुण से युक्त रांगा, किसको अचिंत्य-गुण अर्पण नहीं करता ? समस्त आपत्तियो के एक मात्र निवास स्थान प्रमेह को यह गिरा देता है। इसके गुणरूपी सूर्य के आगे शरीर की पीडा खद्योत के समान क्षीण हो जाती है। यह एक ही क्षण मे श्वास, कृमि, हलीमक, कास तथा कफ पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ३०८ ॥

नाग (सीसा).–नाग गुणधर्म मे रांगे के समान ही है। निरतर युक्ति-पूर्वक इसके सेवन से हाथी से भी अधिक वल की प्राप्ति होती है। यह विशेषतया प्रमेह को नष्ट कर देने वाला माना जाता है ॥ ३०९ ॥

जसद (जस्ता) शीतल, तिक्त, रस मे कषाय तथा कफ पित्त के विकार का विनाशक है। यह श्वास, कास, नेत्र-पीडा, हलीमक और प्रमेह को भी दूर फैंक देता है ३१०

माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक तथा रूप्यमाक्षिक) रस मे मधुर, तिक्त, स्वर्य, वृष्य तथा रसायन है। यह शोफ, क्षय, अर्श, त्रिदोष, प्रमेह, वस्ति-गत व्यथा, कोढ तथा खुजली का ग्रास कर जाती है ॥ ३११ ॥

तुत्थ (तूतिया) रस मे कटु, कषाय, सक्षार, शीतल, नेत्र की ज्योति को

१–द्वितीयाद्विवचनम् । २–समस्तविपदा गेहं मेहमिति योजना । ३–रुजा गञ्जनमिति योजना । ४–सीसक । ५–द्विविधं हि तत् पीतश्वेतभेदात् स्वर्णमाक्षिकरूप्यमाक्षिकसञ्ज्ञमुपधातुरूपम् ।

तुत्थं कटाहकुक्षौ तदुपरि वसनं ततोऽपि रचय वराम्[२] ।
पूरय कटाहमद्भिस्तदन्तरर्कं निरीक्षस्व ॥ ३१३ ॥

कटुकमहिमं तिक्तं छेदि क्षयक्षपण कफ-
क्रिमिमरुदपस्मारोन्मादप्रमेहभराश्मजित् ।
श्वयथुजठरश्वासास्रार्शोहलीमकमूत्ररु-
ग्विवृद्धसिकताकुष्ठं वल्यं निहन्ति शिलाजतु[३] ॥ ३१४ ॥

सौरक्षारो मल्लतालादिरोधी शीतस्पर्शो व्योमधूपोपयोगी ।
शङ्खद्रावद्रव्यवर्गे प्रधानं कृच्छ्रप्रायं मूत्रकृच्छ्रं निहन्ति ॥ ३१५ ॥

निश्चारकप्रतिश्यायप्रमेहगदगञ्जनः ।
दद्रूस्नायुकविध्वंससादरो नवसादरः ॥ ३१६ ॥

इति पारदादि-वर्ग ॥ १२ ॥

बढानेवाला, सारक, वामक तथा लेखन है। तुत्थके आगे विष की पीडा, कुष्ठ, अश्मरी, कफ, पामा तथा पित्त आदि तुच्छ (नगण्य, मानों अस्तित्व ही नहीं—ऐसे) हो जाते हैं ॥ ३१२ ॥

तुत्थ मे से अर्क निकालने की विधि[१]—एक घट में तुत्थ डालदें। फिर उसपर एक वस्त्र बिछाकर उस वस्त्रपर तुत्थ से द्विगुणित त्रिफला फैलादें। अब इस पात्र को पानी से भरदें। फिर सभालकर अर्क निकाल लेवें ॥ ३१३ ॥

शिलाजतु (गिलाजीत) कटु, उष्ण, तिक्त, छेदन, तथा वल्य है। यह क्षय को क्षीण कर देता है। यह कफ, क्रिमि, वात, अपस्मार, उन्माद, प्रमेह तथा अश्मरी को जीतनेवाला तथा शोथ, उदर, श्वास, रुधिर-विकार, अर्श, हलीमक, मूत्रकृच्छ्र तथा अत्यत वृद्धि को प्राप्त सिकता नामक कोढ को नष्ट करनेवाला कहा गया है ॥ ३१४ ॥

सौरक्षार (कलमी सोरा) शतमल्ल, हरिताल आदि रसों को रुद्ध करने के लिये तथा आतशबाजी में उपयुक्त होता है। यह स्पर्श में शीतल एव शख-द्राव आदि द्रव्य-वर्ग की प्रधान औषधि है तथा कृच्छ्र प्राय मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ ३१५ ॥

नवसादर (नोसादर) प्रतिश्याय को बाहर निकालने वाला, प्रमेह-रोग का विनाशक तथा दद्रु और स्नायुक के विध्वस मे परमोत्सुक कहा गया है ॥ ३१६ ॥

— पारदादि वर्ग समाप्त —

१—तुत्थादर्काकर्षणप्रकारोऽयम् । २—त्रिफला तुत्थाद्द्विगुणमिति रहस्यम् । ३—"हेमाद्या सूर्यसतप्ता स्रवन्ति गिरिधातव । जत्वाभ मृदुमृत्स्नाच्छं यन्मल तच्छिलाजतु ॥" इत्युक्तरूपं हेमरजतताम्रलोहसभवत्वाच्चतुर्विधम् । तत्रायस सर्वोत्तमम् । यदुक्तम्—"यत्तु गुग्गुल-

श्रीलल्लुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि तस्य ।
भैपज्यरत्नस्रजि सद्गुणायां गुच्छो द्वितीयोऽगमद्द्वितीयः ॥

इति हरीतक्यादिवर्णनं नाम द्वितीयो गुच्छः संपूर्णः ।

श्री लल्लुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकार-वृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण-कवि-द्वारा गुम्फित इस सुदर-गुण-युक्त (गुण-सूत्र) भेषज-मणि-माला का द्वितीय के समान ही यह द्वितीय गुच्छ (अर्थात् यह अनुपमेय द्वितीय-गुच्छ) सपूर्ण हुआ ॥ ३१७ ॥

हरीतक्यादिवर्णन नामका द्वितीय गुच्छ समाप्त ।

सकाग तिक्तक लवणान्वितम् । विपाके कटु शीत च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ॥" इति । तत्परीक्षा च—"लोहकीटायते वह्नौ विधूमं दह्यतेऽम्भसि । तृणाग्रे कृत सर्वमयो गलति तन्तुवत् ॥" इति । ४—लोके 'कलमीसोरा' इति । ५—वह्निक्रीडापरपर्याय. । खधूप- लोके "आतिशबाजी' इति ख्यात । "उक्षाप्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान् ध्वजान् ववन्धुर्मुमुचु- खधूपान्" इति भट्टि । ६—'नोसादर' इति प्रसिद्ध ।

१—अनुपम इत्यर्थ , पूर्तिमिति शेष । लेशोक्त सुधियः स्वय सुबहुधा ह्यर्थं स्फुटी- कुर्वते—मन्दानामधिक प्रजल्पितमनुत्साहस्य सर्वकम् । इत्येव करुणाकरेण गुरुणा सचिन्त्य सक्षेपत —प्रोक्त द्रव्यकदम्बकं सुभिषजा हर्षाय बोभूयताम् ॥ य प्राचा भिषजा विवेद महतास्तिस्रोऽपि ता सहिता —साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी स एप भिषगाचार्यप्रशस्ति वहन्—श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छ द्वितीय परम् ॥

इति लक्ष्मीरामसुधीकृते सिद्धभेपजमणिमालाव्याख्याने
द्वितीयो गुच्छः समाप्तः ॥



अथ स्वास्थ्यसंरक्षणप्रकरणं नाम तृतीयो गुच्छः ।

तृतीयो गुच्छः ।

रिपुंहृदयं भित्त्वा नखैस्त्रातः प्रह्लादस्तु ।
जत्रूपरि हरिलक्षणं वस्तु स्वस्तिकृदस्तु ॥ १ ॥

उत्तिष्ठेदगदः प्रभातसमये रक्षार्थमेवायुषो
दृष्ट्वा दर्पणरत्नबिल्वसुरभिस्रग्वैद्यदध्यादिकान् ।
स्मृत्वा किं च हरिं हरं गणपतिं देवीं रविं श्रीगुरुं
नत्वा वृद्धजनांस्ततः सुखतया शौचं विदध्यात् कृती ॥ २ ॥

तृतीय–गुच्छ

नखन फारि रिपु हृदय किय, दैत्य पुत्र परित्राण ।
सिंहाकृति वह जत्रु गत वस्तु करहु कल्याण ॥ १ ॥

स्वस्थ पुरुष को, प्रात उठकर, आयु की रक्षा के लिये दर्पण, रत्न, बिल्व, सुगंधित पुष्पमाला, वैद्य, दधि आदि के दर्शन करने चाहिये । फिर, विष्णु, शिव, गणपति, देवी, सूर्य तथा अपने श्रीगुरु का स्मरण करके वृद्ध जनों को नमस्कार करना चाहिये । तदुपरांत, सुख पूर्वक शौचादि क्रिया से निवृत्त हो जाना चाहिये ॥ २ ॥

(क) सार्वसप्तमुखं सार्धद्वाविंशतिविलोचनम् । अष्टादशभुजं वन्दे स्त्रीपुंसाकृतिमीश्वरम् ॥१॥
(ख) गत्वाऽऽयुर्वेदोदधेः पारं सारमभाणि । नत्वा तं श्रीगुरुमिमां टिप्पणिकां करवाणि ॥२॥

१–अथो द्रव्यगुणाभिधानानन्तरं चमत्कारचञ्चवः श्रीगुरवश्चतुरचिकित्सकचेतांसि चन्दयितुं रुग्णजनमनांसि नन्दयितुं चमत्कारचञ्चद्विचित्रवस्तुजातं कियदपि समुच्चिन्वन्ति । तत्रापि प्रथमं चित्राकारस्यैव श्रीसिंहावतारस्य वर्णनरूपं समुचितमङ्गलमाचरन्ति दोहानामच्छन्दसा–रिपुहृदयमिति । हरिलक्षणं सिंहाकृति । २–अधीतसर्वायुर्वेदस्य विज्ञातद्रव्यगुणागुणस्य चिकित्सां कर्तुं प्रवृत्तस्य भिषजः कार्यं धातुसाम्यं भवति । यथोक्तं चरकविमाने–"इह कार्यप्राप्तौ कारणं भिषक्, करणं पुनर्भेषजं, कार्ययोनिर्धातुवैषम्यं, कार्यं धातुसाम्यं कार्यफलं सुखावाप्तिः" इत्यादि । तच्च स्वास्थ्यरक्षाव्याधिमोक्षाभ्यां भवितुमर्हति । तत्र स्वल्पवक्तव्यत्वात् सूचीकटाहन्यायेन वा प्रथमं स्वास्थ्यरक्षणमेव वाच्यम् । तस्य च चर्याधीनत्वात् प्रथमं चर्यामेवाचक्षते । तथाहि–"दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम् । आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ।" स्वस्थलक्षणं च सुश्रुतादवगन्तव्यं यथा–"समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।" इति ।

(क) अत्र भगवती दशास्या त्रिंशल्लोचनाऽष्टादशभुजा विवक्षिता । भगवांश्च पञ्चास्यः पञ्चदशलोचनोऽष्टादशभुज इति । "बिभ्राणं शुभ्रवर्णं द्विगुणनवभुजं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्" इति श्रुतेः । (ख) येनेति शेषः ।

प्रत्येकं हव्यवाहाः समभृशयुगलैः खेचरा निर्भरैक-
द्वन्द्वेषण्मध्यवृद्धैस्त्रिभिरनलनिशानाथसंख्याः क्रमेण ।
इत्येते वृद्धिभेदाः सह गगनशराः क्षीयमाणैर्द्वयेक-
क्षीणोच्चैः क्षीणमध्याभ्यधिकसमुदया द्वादशैवं द्विषष्टिः ॥ ६३ ॥

दूसरे को रखदें। फिर सतरह को चार से और आठ से योग देने पर एकवीस तथा पचीस आते है। दोनों ही अंक आचुके है। अतः इन्हें छोड दें। अब, सतरह के अंक को बत्तीस से जोडने पर उन्चास के अंक को एकचालीस (४१) के अंक के नीचे लिखलें। अब, उद्दिष्टांक के नीचे तृतीय कोष्टक को तथा उसके नीचे दिये गये शेष कोष्टको को भरें। उद्दिष्टांक चार को आठ से जोडने पर वारह के अंक को आठ के अंक के नीचे रखे। पुन. चार को सोलह से तथा बत्तीस से जोडने पर आने वाले वीस तथा छत्तीस के अंको को, वारह के नीचे वाले कोष्टकों मे यथाक्रम आलेखित करदें। अब, पुन उद्दिष्टांक चार के अंक के नीचे छह के अंक को उद्दिष्टाक आठ से जोडने पर चौदह के अंक को छत्तीस के अंक के नीचे भरदें। इसी तरह, उद्दिष्टांक को अपने से अग्रिम उद्दिष्टांक के साथ जोडने से जो अंक आवें उन अंको से, एकके नीचे दूसरे के क्रमद्वारा सभी कोष्टको को पूर्ण करदे, कोष्टक के अपूर्ण रहने पर, उसी उद्दिष्टाक के नीचे वाले कोष्टकों के यथाक्रम अंको को उद्दिष्टांक से जोडकर, उसे भर दें। एक वार सिद्ध हुये अंको को छोडते जायें। चौसठ से अधिक अंक को भी ग्रहण न करें। इसी युक्ति से पताका सपूर्ण भरलें ॥ ६१–६२ ॥

मधुरादि रसो के तरेसठ भेद होते हैं—प्रत्येक रस के उदाहरण की तालिका नीचे दीजाती है। इसका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करें—

१ मधुर—मलाई गोदुग्ध आदि। २ अम्ल-आम्र, कमरख आदि। ३ लवण—रोमक आदि। ४ तिक्त-नीम, पर्पट आदि। ५ कटु-चव्य आदि। ६ कषाय-कमलगट्टा, वट के अंकुर आदि। ७ मधुराम्ल—कपित्थ फल आदि। ८ मधुरलवण-ऊंटनी

१-रसभेदानभिधाय तत्प्रयोगार्थं दोषभेदानपि दरीदर्श्यन्ते। तत्र दोषाणा वृद्धिक्षयस्थानरूपा त्रिविधा गतिर्भवति। तत्र वृद्धिभेदा पञ्चविंशति, तावन्त एव क्षयभेदा। द्वादशस्थानगतिभेदा, स्थानशब्देनात्र समत्वम्। समोऽपि दोष आशयापकर्षवशात्तथाऽन्यदोषस्य क्षयवृद्धिसभवे च रोगारम्भको भवत्येव। लक्षणानि चैषाम्– "यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते। रूपाणि जहति क्षीणा समा स्वं कर्म कुर्वते ॥" इति वृद्धिक्षीणाना वाग्भटोक्तानि द्रष्टव्यानि। एकक्षयद्विसाम्यद्विक्षयैकसाम्यैकवृद्ध्यैकक्षयैकसाम्यादिभेदानां च चरके कियन्त शिरसीयाध्याये विलोक्यानि। "प्रकृतिस्थं यदा पित्त मारुत श्लेष्मणः क्षये। स्थानादादाय गात्रेषु यत्र यत्र विसर्पति ॥ तदा भेदश्च दाहश्च तत्र तत्रानवस्थिताः। गात्रदेशे भवन्त्यस्य श्रमदौर्बल्यमेव च ॥ साम्ये स्थितं कफ वायु क्षीणे पित्ते यदा वली। कर्षन् कुर्यात्तदा शूलं सशैत्यस्तम्भगौरवम् ॥" इत्यारभ्य "पित्तश्लेष्मक्षये वायुर्मर्माण्यतिनिपीडयन्। प्रणाशयति सज्ञा च वेपयत्यथवा नरम् ॥" इत्यन्तेन ग्रन्थेन।

का दूध, भेड, मत्स्य आदि का मांस आदि । ९ मधुरतिक्त–देवदारु, सर्ज आदि का निर्यास आदि । १० मधुर कटु–कुत्ता तथा शृगाल का मांस आदि । ११ मधुरकषाय–तैल तथा धामन का फल आदि । १२ अम्ललवण–उरण तक्षा क्षार मृत्तिका आदि । १३ अम्लतिक्त–सुरा आदि । १४ अम्लकटु–चुक्र आदि । १५ अम्ल कषाय–हथिनी के दूध का दही तथा शुकमांसादि । १६ लवणतिक्त–तांबा, सीसा आदि । १७ लवण कटु–गोमूत्र, स्वर्जिका आदि । १८ लवण कषाय–समुद्रफेन आदि । १९ तिक्तकटु–कपूर, जायफल आदि । २० तिक्तकषाय-लवलीफल, हथिनी का घी आदि । २१ कटु-कषाय-भिलावे की मज्जा, हरिताल आदि । २२ मधुरअम्ल लवण–हथिनी का मांस आदि । २३ मधुराम्लतिक्त–गेहूं की सुरा आदि । २४ मधुराम्लकटु–शल्यमासादि । २५ मधुराम्लकषाय–मस्तु तक्र आदि । २६ मधुरलवणतिक्त–शम्बूकमांसादि । २७ मधुरलवणकटु–अपूप, मृगमास आदि । २८ मधुरलवणकषाय–तावा, कासीस आदि । २९ मधुरति कटु–कटुका आदि । ३० मधुरति कषाय–गुडूची, बदर का मांस आदि । ३१ मधुर कटु कषाय-गोधामास, एरंडतैल आदि । ३२ अम्ललवणतिक्त–हाथी, मृग मूषक आदि का मांस आदि । ३३ अम्ललवणकटु–चांदी, शिलाजित आदि । ३४ अम्ललवणकषाय–हथिनी के दूध का दही । ३५ अम्लतिक्तकटु–मरिच युक्त सुरादि । ३६ अम्लति कषाय–तोते के मांस युक्त सुरादि । ३७ अम्लकटुकषाय–अमलवेत आदि । ३८ लवणति कटु–भेड का मूत्र आदि । ३९ लवणति कषाय–समुद्र मे स्थित समुद्रफेन आदि । ४० लवणकटुकषाय- भिलावा, आसव, रोमक लवण आदि । ४१ तिक्त कटु कपाय–कृष्ण-अगुरु, देवदारु आदि का तैल । ४२ मधुरलवणतिक्त–गोमूत्र, घोडी आदि का दूध । ४३ मधुराम्लल कटु–गोमूत्र युक्त शिलाजित आदि । ४४ मधुराम्लल कषाय–सैंधवयुक्त तक्र आदि । ४५ मधुराम्लति कटु–लहसुन सहित सुरा । ४६ मधुराम्लति-कषाय–शख आदि । ४७ मधुराम्लकटुकषाय–काजियुक्त एरंडतैल । ४८ मधुराम्लति-कटु–उदुम्बर युक्त यव आदि । ४९ मधुराम्लति.कषाय–समुद्र फेन, शर्करा युक्त चंदन आदि । ५० मधुरलवण कटुकषाय–गोमूत्र युक्त तैल । ५१ मधुरति. कटुकषाय–तिल, गुग्गुल आदि । ५२ अ. ल. ति. कटु–सैंधव सौवर्चल युक्त हस्तिनी आदिका मांस तथा सुरा आदि । ५३ अ.ल.ति. कषाय–उद्भिदलवण युक्त शुक मांस । ५४ अ ल कटु कषाय–सौवर्चल युक्त हस्तिनी दूध का दही । ५५ अ ति कटुकषाय–बालमूली युक्त हस्तिनी दूध का दही । ५६ ल ति कटु कषाय–रोमक नमक कच्चा विल्व आदि । ५७ मधुराम्लल ति कटु–आम्र, कमरख युक्त स्विन्न वार्ताक फल आदि । ५८ मधुराम्लल. ति कषाय–उद्भिद् नमक युक्त तक्र । ५९ मधुराम्लल कटुकषाय–त्रिकटु, यव युक्त तक्र । ६० मधुराम्लति कटुकपाय–हरीतकी फल आदि । ६१ मधुरल ति कटुकषाय–लहसुन आदि । ६२ अम्लल ति.कटुकषाय–भिलावा, रजत, शिलाजतु मिश्रित निंब आदि । ६३ म अ ल ति.कटुकपाय–पारद, मृग मास आदि ।

रसो के भेदो का सविस्तर वर्णन करके इनके प्रयोग के लिये ग्रथकार दोषो के भेदो का वर्णन प्रारभ करते है ।

दूतादिप्रकरणम् ।

सदंण्डशस्त्रो रुधिरोक्षिताङ्गो व्यङ्गो विजातिः स्रवदश्रुधारः ।
शिरोरुहश्लिष्टकरो विवर्णः खरोष्ट्रवाही स्तुतकृच्छ्रवास्यः ॥ ६५ ॥
तैलप्रलिप्तावयवोऽथ पण्डः पाषण्डयुक्तोऽशुभदीनभाषी ।
एतेऽतिनिन्द्या इतरे तु दूताः सुजातयः सन्मतयः प्रशस्ताः ॥ ६६ ॥

द्वाभ्यां दूतवचो हत्वा भजेद्धूर्जटिलोचनैः ।
व्योम्नि मृत्युः समे कष्टं विषमे सुखसाध्यता ॥ ६७ ॥

यात्रासु वैद्यस्य शुभाय सौम्यं दूतस्य दीप्तं शकुनं शुभाय ।
युतो निजैर्वर्णबलस्वभावै रोगी जितात्मा भिषजा चिकित्स्यः ॥ ६८ ॥

धातुओं के भेदों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म सविस्तर व्याख्या करते हुये, अब, इस प्रकरण में, रोग निदान मे साहाय्यभूत चिकित्साचतुष्पाद, नाडी मलमूत्रादि की परीक्षा तथा अरिष्टादि विषयोंपर विचार प्रदर्शित करते हैं। प्रथम, वैद्य को बुलाने के लिये आये हुये दूत के लक्षणो का वर्णन किया जाता है। दूत के लक्षणो से भी अरिष्टादिका निर्णय किया जा सकता है ॥ ६४ ॥

दण्ड अथवा शस्त्रधारण किये हुये, रुधिर से सिक्त अंगो वाला, व्यङ्गयुक्त, कुलहीन, रुदन करता हुआ, मस्तक पर चिपके हुये केशवाला, विवर्ण, गदहे अथवा ऊट की सवारी किये हुये, कठिनता से दीर्घ उच्चार करनेवाला (अर्थात् तोतली वाणीवाला) तैल लिप्त देहवाला, नपुंसक, पाखडी, अशुभ तथा दीनभाषी दूत अत्यंत निंदनीय हैं। तदतिरिक्त, कुलीन तथा सम्यक् मतिवाले दूत प्रशंसनीय होते हैं ॥ ६५–६६ ॥

दूत से कहे गये वाक्य के अक्षरो की सख्या को दो से गुणा करके तीन से भाग दें। यदि शून्य आये तो समझना कि रोगी का मरण होगा, सम अंक आये तो रोगी को कष्ट होगा, यदि विषम अंक आये तो रोग सुखसाध्य है ऐसा जानना ॥ ६७ ॥

यात्रा करते समय वैद्य के लिये सौम्य शकुन तथा दूतको दीप्त शकुन शुभ का सूचक माना गया है। वैद्य को उसी रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये जो जितात्मा हो, अपने स्वाभाविक वर्ण तथा बलसे युक्त एवं स्वस्थ प्रकृतिवाला हो ॥ ६८ ॥

१–सक्षेपत स्वस्थरक्षणमभिधाय ततश्चिकित्सककौतुकार्थं रसदोषधातुभेदान् चिकित्साबीजभूतान् प्रदर्श्याधुना चिकित्साचतुष्पादास्तथा रोगज्ञानसहायका नाडीमूत्रादिपरीक्षाश्च सक्षेपतोऽरिष्टादि च प्रदर्श्यन्ते। तत्र प्रथमं वैद्याह्वानायागतस्य दूतसज्ञा गतस्य विचार । २–शकुनविचार । ३–वैद्याह्वानाय गन्तुं प्रवृत्तस्येति शेष । ४–चतुष्पादेषु रोगिगुणकथनम् । गुणयुक्ता हि पादा कार्यकरणसमर्था भवन्ति । यदुक्तं चरके–" भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् । गुणवत् कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये ॥" इति ।

अधीतायुर्वेदो विविधरसकर्ता मधुरगीः
स्पृहाशून्यः शुद्धो नवविशदवासा धृतिधरः।
कृपासिन्धुर्विप्रः शिवचरणसेवी बहुवयाः।
सुधाहस्तो वैद्यो नरवरचिकित्सास्वधिकृतः ॥ ६९ ॥

वाताद्वक्रतराऽतितीव्रगमना पित्तात्कफान्मन्दगा
तीव्रोष्णा ज्वरतः कृशा हिमतमा वेगाकुला मृत्युदा।
नाडी तृप्तिमतः स्थिरा कुशलिनो गुर्वी तु सामाऽसृजा
कोष्णाऽतिक्षुधया चला कफसमा क्षीणाग्निरेतोबला ॥ ७० ॥

पुंसः सिरा दक्षकरप्रकोष्ठे वामेऽबलायास्तु परीक्षणीया।
अतद्वयीधर्मतया युतस्य मन्ये द्वयोरेव नपुंसकस्य ॥ ७१ ॥

वामदक्षिणयोर्नाड्योर्या नाडी बलवत्तरा।
ततः स्वरबलं विद्यात्तेन दोषं च वैद्यराट् ॥ ७२ ॥

अब वैद्य के गुण सुनिये.—आयुर्वेद का विद्वान्, विविध रसक्रियाओ मे कार्यदक्ष, मधुरभापी, निर्लोभी, शुद्ध अन्त.करण वाला, नूतन तथा स्वच्छ वस्त्रो को धारण करने वाला, धैर्यवान्, कृपालु, ब्राह्मण, वृद्ध, आस्तिक, अमृतपूर्णहस्त अर्थात् अभय देनेवाला, शिवचरणों का उपासक वैद्य, श्रेष्ठ मनुष्यो की चिकित्साकार्यों मे नियुक्त किया जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

नाडीपरीक्षा.—वातप्रधान—नाडी वक्र गति, पित्तप्रधान शीघ्रगामी, तथा कफ-प्रधान मद गति होती है। ज्वर से पीडित की नाडी तीव्र गति तथा उष्ण होती है। कृश, अत्यंत शीतल और वेगाकुल नाडी मृत्यु की सूचक मानी गयी है। भोजनादि से तथा वैभवादि से सतृप्त मनुष्य की नाडी स्थिर, सामावस्था मे भारी, रक्ताधिक्य से उष्ण, अत्यंत क्षुधा से चपल, एवं अग्नि, बल तथा शुक्र से क्षीण की नाडी, कफ प्रधाननाडी के समान, मंदगति होती है ॥ ७० ॥

पुरुष के दक्षिण हस्त के प्रकोष्ठ की तथा स्त्री के वाम हस्त के प्रकोष्ठ की नाडी देखनी चाहिये। नपुसक मे पुंस्त्व तथा स्त्रीत्व दोनों धर्मों के विद्यमान होने के कारण उसमे जब स्त्रीभाव प्रकट हो तब वाम हस्त की, पुंभाव प्रकट हो तब दक्षिण हस्त की नाडी की परीक्षा करनी चाहिये। अथवा—उसके दोनो ही हाथो की नाडी देखनी चाहिये ॥ ७१ ॥

वाम तथा दक्षिण नाडी मे से जो नाडी बलवत्तर हो उस से स्वरबल तथा स्वरबल से, चतुर वैद्य, रोग बल को पहिचान लेता है ॥ ७२ ॥

१—पादप्रधानस्य वैद्यस्य गुणाभिधानमिदम्। २—नाडीपरीक्षारम्भ। ३—स्त्रीपुंस-धर्मविलक्षणमिश्रधर्मवत्त्वेनेत्यर्थः। नपुसकस्य तु स्त्रीपुसयोरन्यतराकारप्रकटतामपेक्ष्य परीक्षा, "साम्यं तु न स्यादेव कृत्रिमस्य तु प्रकृतिस्थता" इति नाडीप्रकाश। ४—नाडीगत्या स्वरविचार।

यः स्वप्नमध्ये विबुधान्मुनीन्द्रान् तीर्थानि धेनूर्नृपतीन् वयस्यान् ।
पुष्पाणि वासांसि सितानि पश्येत्त्यक्तो गदैः शर्म लभेत रोगी ॥ ८३ ॥
तोयानि तीर्त्वा मलिनानि जित्वा रिपून्मनोज्ञानि फलानि लब्ध्वा ।
स्थित्वा द्विपेऽश्वेऽपि भृशं रुदित्वा विष्ठां च लिप्त्वा कुशली नरः स्यात् ८४
साधारणानूपकजाङ्गलाख्या[2] देशास्त्रयस्तत्र समान आद्यः ।
बलासवातप्रचुरो द्वितीयो व्यम्बुद्रुमो मायुरुजाकरोऽन्त्यः ॥ ८५ ॥
वयोऽपि कौमारयुवत्ववार्धक्यभेदात्त्रिधैवेति वयं वदामः ।
कफोपपन्नं प्रथमं सपित्तं द्वितीयमन्त्यं पवनप्रधानम् ॥ ८६ ॥
वातेन पित्तेन कफेन युक्ता क्रमेण पुंसां प्रकृतिस्त्रिधा स्यात् ।
रूक्षः कृशश्चञ्चलहृस्वकेशः स्वप्ने खगामी पवनस्वभावः ॥ ८७ ॥
अकालपालित्ययुतोऽतिगौरः प्रकोपनः स्विन्नतनुर्बुधोऽपि ।
स्वप्नेषु नक्षत्रगणावलोकी प्रोद्दामपित्तप्रकृतिर्मनुष्यः ॥ ८८ ॥
महाबलः स्निग्धविलम्बिकेशः सुश्यामलस्थूलकलेवरश्च ।
आलस्ययुक्तोऽतिगभीरबुद्धिः स्वप्नेऽम्बुदर्शी सुमना विलासी ॥ ८९ ॥

स्तोत्रो का पारायण करते हुये रात्रि के समय देवालयों मे निवास करना चाहिये । यदि रुग्ण, स्वप्न में, देवता, मुनिश्रेष्ठ, तीर्थ, गाय, नृपति, मित्र, पुष्प, श्वेतवस्त्र आदि सौम्य पदार्थों को देखे तो वह रोग-मुक्त होकर स्वास्थ्य-लाभ करता है । मलिन जल-पूर्ण जलाशयो को तैरकर, शत्रुओ पर विजय प्राप्त करके, सुदर फलो को ग्रहण करके, गज अथवा अश्व पर आरूढ होकर, अत्यंत रुदन तथा विष्ठा का लेप करनेवाला मनुष्य नैरोग्य प्राप्त करता हे ॥ ८२-८४ ॥

(सफल चिकित्सा के लिये, वैद्यको, दूष्य, देश, वल, काल, अनल, प्रकृति, वय, सत्व, सात्म्य तथा आहार आदि अवस्थाओ का परिज्ञान होना आवश्यक है । इन्ही अवस्थाओ का यहां सक्षेप मे, उल्लेख किया जाता है ।) देश तीन प्रकार के होते है । तीनों दोषों की समान अवस्थावाला 'साधारण देश,' कफवात की बहुलता वाला 'आनूप' देश, जल और वृक्ष रहित पित्त प्रचुरता वाला 'जांगल' देश । वय भी तीन प्रकारके होते है—कफ प्रधान कौमार-वय, पित्तप्रधान युवा-वय और वायु-प्रधान वार्द्धक्य । वात, पित्त और कफ से युक्त मनुष्यों की यथाक्रम तीन प्रकार की प्रकृति होती है—वातप्रकृतिवाला रूक्ष, कृश, चंचल और अल्प केशवाला होता हे ।

१—शुभस्वप्न । २—चिकित्सायामवश्यज्ञातव्याना दशाना मध्ये पूर्वं केचिदुक्ता, केषाचिच्चात्राभिधानम् । ते दश च—"दूष्यं देशं बल कालमनलं प्रकृतिं वय । सत्त्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधा ॥ सूक्ष्मसूक्ष्मा समीक्ष्यैषा दोषौषधनिरूपणे । यो वर्तते चिकित्साया न स स्खलति जातुचित् ॥" इति । शेषा॰ सत्त्वसात्म्यानलादयो बुद्ध्या ग्रन्थान्तराद्वाऽनुसधेया सुधीभि ।

[1]मेहे श्लेष्मणि पीनसे गलगदे कुष्ठे विषे स्याद्वमि-
गर्भिण्यां तिमिरे शिरोरुजि मरुद्रुकपाण्डुके नो हिता ।
कुष्ठार्शःक्रिमिपाण्डुशोणितमरुद्वीसर्पविष्टम्भिनो
रेच्या दुर्बलगुर्विणी क्षययुजो नो रेकयोग्या मताः ॥ ९० ॥
[2]सुधार्द्रवक्षालितभित्तिभागरोचिष्णुधन्वन्तरिचारुचित्रम् ।
उच्चावचप्रोज्ज्वलकाचकूपीविन्यस्ततत्तद्रसदर्शनीयम् ॥ ९१ ॥
यथाभिषक्तन्त्रविचित्रयन्त्रं कोशस्फुरत्कङ्कमुखादिशस्त्रम् ।
दीप्तद्विपेन्द्रादिपुटं प्रलम्बिशिक्यस्थनानाविधलेह्यभाण्डम् ॥ ९२ ॥
पवित्रपट्टासनराजमानश्रीवैद्यराजेक्षितरुग्णहस्तम् ।
उपर्युपर्यापतदार्तसार्थप्रदीयमानोचितजायुजातम् ॥ ९३ ॥
विशालवातायनमन्दमन्दप्रवातवाताङ्कुरजोषजुष्टम् ।
लघुत्रयीं हन्त बृहत्त्रयीं वा स्पष्टं पठद्भिर्वटुभिः प्रघुष्टम् ॥ ९४ ॥

वातप्रकृतिवाले को आकाश मे उडने के स्वप्न आते है । पित्तप्रधान प्रकृतिवाला अकाल-पलित, अत्यंत गौर, क्रोधी, चतुर तथा पसीनों से स्विन्नगात्र युक्त होता है । वह स्वप्न में, नक्षत्रसमूह देखता है । कफप्रकृति मनुष्य बलिष्ठ, स्निग्ध तथा दीर्घकेशकलाप से युक्त, सुदर, श्यामवर्ण सहित स्थूलशरीरवाला, आलसी, गभीरबुद्धिवाला, विलासी एवं हृदय से शुद्ध होता है । स्वप्न मे वह जल देखता है ॥ ८५–८९ ॥

प्रमेह, कफ, पीनस, कुष्ठ, तथा विष और कण्ठ के रोगों से वमन प्रशस्त है। तिमिर, वात, पाण्डु और शीर्षरोग से पीडितों को तथा गर्भिणी को वमन कराना निषिद्ध है। कुष्ठ, अर्श, क्रिमि, पाण्डु, वीसर्प, वात, विष्टंभ और ऊर्ध्वग-रक्त-पित्त के रोगियो को विरेचन कराना चाहिये। दुर्बल और क्षयग्रस्त को विरेचन निषिद्ध है ॥ ९० ॥

— अब, चिकित्सालय कैसा होना चाहिये, इसका वर्णन करते है —

चिकित्सालय ऐसा होना चाहिये जिसकी चारो ओर की भित्तियां लिपी पुति हुयीं स्वच्छ चकचकित हो, जहा एक तरफ भगवान धन्वन्तरी का पवित्र चित्र सुशोभित हो रहा हो, जहां अनेक प्रकार की छोटी बडी स्वच्छ चमकदार, विविध रस रसायनो से परिपूर्ण काच कूपियां यथाक्रम सजा कर रखी हुयीं हो, जहा, एक तरफ भिषक् तंत्रोक्त अनेक प्रकार के यत्र तथा कोश गत चमकते हुये विविध प्रकार के शस्त्र स्थापित हो, अनेक प्रकारके अवलेहों से भरे हुये भाण्ड शिक्यो से रखे हुये हों, गजपुट आदि पुटों को देने के लिये जिसमे यथावत् स्थानों की व्यवस्था हो, जहां एक

१—पञ्चकर्मप्रधानभूते वमनविरेचनकर्मणी येषु विहिते महात्ययकारके सपद्येते तत्रावधानार्थं तद्योग्यपुरुषनिदर्शनम् । २—अधुना चिकित्सागृहस्य 'असपताल' इति प्रसिद्धस्य वर्णनम् । ३—उपर्युपर्यापतन्त आगच्छन्तो ये आर्तसार्था रोगिसमूहा । सुगममन्यत् । ४—निदानशार्ङ्गधरनिघण्टुरूपाम् । ५—चरकसुश्रुतवाग्भटरूपाम् ।

आच्छादनालम्बितलोहशङ्कुविलोलकाचद्रुचमत्कृताट्टम् ।
शिलाविभङ्गैश्चतुरस्रबद्धचतुष्कचञ्चत्कदलीकदम्बम् ॥ ९५ ॥
सर्वत्र सर्वर्तुसुखप्रदेशं समीपतः कूपतटीनिवेशम् ।
प्राचीमुखं तद्वदुदङ्मुखं वा तत्तादृगुत्सेधनिरुद्धखं वा ॥ ९६ ॥
उदूखलाभ्यर्णनिषण्णखल्वं ततान्तरं तत्तदुपस्करौघैः ।
अप्युच्चशालं परितो विशालं बुधाश्चिकित्सागृहमीदृगाहुः ॥९७॥ कुलकम् ।

पवित्र पट्टासन पर विराजमान वैद्यवर रोगियो की नाडी परीक्षा कर रहे हो तथा एक ओर, एक के पीछे एक आते हुये रुग्णसमुदाय को यथोचित ओषधिया दी जा रही हो, जो विशाल वातायनो मे से मन्द मन्द प्रवहमान पवन के मनोनुकूल झोंकों से युक्त तथा लघुत्रयी (माधव निदान, शार्ङ्गधर तथा निघण्टु) एवं बृहत् त्रयी (चरक, सुश्रुत, वाग्भट) का स्पष्ट उच्चारण करते हुये छात्रो के उद्घोष से प्रतिध्वनित हो, जहां, छत से लटकते हुये लोहमय शंकुओ पर अवलंबित हिलते हुये काच के फानूस आदि से सुसज्जित अतएव मनोग्राही प्रतीक्षालय की व्यवस्था हो, जहां, हवा मे झूमते हुये कदली वृक्षो की कतारो से युक्त तथा शिलाखंडों से आबद्ध सम चतुष्कोणवाला बाहरी प्रागण हो, जहां, सर्वत्र सभी ऋतुओं के अनुकूल निवास कक्ष हो, तथा निकट ही मे कूप के परिसर पर एक शिबिर की व्यवस्था हो, चिकित्सागृहद्वार पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो एवं जिसके ऊपर का अत्युच्च विवरभाग निरुद्ध कर दिया गया हो, जहां औषधीय द्रव्यादि से परिपूर्ण खरल तथा निकट ही उदूखल रखे हुये हो तथा चारो ओर से विशाल और ऊची छतवाले कमरे हों, पंडितो ने इस प्रकार के चिकित्सा गृह को आदर्श माना है ।

फुटकर रचनाओ का सग्रह –(विषाद से रोग मे वृद्धि होती है 'विषादो रोगवर्धनानाम् ।' मन के प्रसन्न होने पर विषाद स्वयमेव शान्त हो जाता है । परिणामत ज्वरादि रोगो के शमनपूर्वक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है । चरक के मतानुसार, ज्वरित को, चमत्कारिक, विलक्षण, कौतुकमय तथा आल्हाद जनक साधनों और प्रसगो द्वारा मनोरजन पूर्वक, ज्वर की वेला तथा वेग आदि की विस्मृति करा देनी चाहिये । वैद्य को, इस प्रकार के मनोविनोद आदि साधनों से सुसंपन्न करने के लिये ही 'मुक्तकसग्रह' की अवतारणा की गई है । इसमे अमुक प्रसग वस्तुत चमत्कार पूर्ण एवं अद्भुत है । अटपटे प्रसगो का आर्जव गुणोपेत रसमय शैली मे जो सहज एवं सुरम्य वर्णन किया गया है वह अपूर्व है ।)

(मुक्तकसंग्रह के प्रथम श्लोक द्वारा उस सांकेतिक भाषा तथा व्याकरण का *दिग्दर्शन किया गया है जिसमे प्रकट किये गये भाव और अर्थ को वही समझ सके* जिसे उस भाषाआदि का पूर्व से ही परिचय हो । इस प्रकार की भाषा का प्रयोग तभी होना चाहिये जब प्रसगवशात् अपने खास मित्र को ही वह भाव अथवा अर्थ अभिव्यक्त करना अभिप्रेत हो, अन्य को नहीं ।) प्रस्तुत श्लोक में शिव की स्तुति है ।

मुक्तकसंग्रहः ।

श्रीमृडः प्रौढखट्वाङ्गो झषाङ्कारिः फणीशधः ।
भसिताच्छोऽथ जयदो घनाक्षश्च वली हठी ॥ ९८ ॥

[सुवर्णरूप्यत्रपुतुत्थबीजबद्धस्य बीजस्य पुरारिजस्य ।
[यथारुचि क्रीडनकानि चित्राकृतीनि कुर्वन्तु कृतिप्रकाण्डाः ॥९९॥

सर्पिश्चिक्कणचषके निःक्षिप्य बलिं द्रवं घनेऽथ बलौ ।
गर्भगबलिं द्रवं लघु निरस्य गृह्णीत बलिचषकम् ॥ १०० ॥

बलवान, हठी स्वभाववाले, सपूर्ण शरीर में श्वेत भस्म रमाये हुये, सर्पराज को (गले मे) धारण किए हुये, मेघसदृश गंभीर नेत्रवाले, खट्वांग (एक ऐसी गदा जिसके सिरे पर नरमुंड हो) नामक विशाल आयुध से सुशोभित, कामदेव के रिपु भगवान् मृड (शंकर) तुम को विजय प्रदान करें। (इस श्लोक के प्रत्येक अक्षर का सांकेतिक अक्षर है। जैसे श्री का क, मृ का ख, ड का ग—इत्यादि। सांकेतिक अक्षरो में यह श्लोक इस तरह भी लिखा जा सकता है। 'कखगाघौ, चच्छजझा, टाठाडाढाणतौ-सथदौ-धनपाफो बभमायो रोल. श प. सहोक्षश्री) ॥ ९१–९८ ॥

स्वर्ण, रजत, रागा तथा तुत्थ के योग से प्रथम, पारद, को यथाविधि सिद्ध करके पिण्डित बनालें। अब, निर्माणक्रिया मे निपुण व्यक्ति इस पिण्डित पारद से विविध आकृतिवाले खिलौने बनाले। इन खिलौनो को गधक द्रवयोग से पकाकर सुदृढ कर लेना चाहिये ॥ ९९ ॥

प्रथम, एक पात्र को उसके भीतर घृत चुपड कर चिकना कर लें। फिर इसमे गंधक चूर्ण भरकर, उसको अग्नि से पिघलाले। जब गधक पूर्णतया द्रवित हो जाये

१–अथ चित्रगुच्छानुगुणा सहृदयचेतश्चमत्कारावहा विजातीया अपि केचन प्रकारा वैद्यानामपि कवितारसलवास्वादनार्थं स्वरसिकताप्रकटनार्थं चाभिधीयन्ते गुरुभि प्रयोजनानि चैषामातुरस्वान्तप्रसादकतया ज्वरवेगविस्मरणादीनि बहूनि कल्पनीयानि स्वय सुधीभि । सति खलु प्रहृष्टे मनसि विषादनाशोऽवश्यंभावी, विषादो हि रोगवृद्धिहेतु, "विषादो रोगवर्धनानाम्" इत्यागमात्। तन्नाशाच्च स्वास्थ्यमिति। चरकेऽप्युक्तम्—"ज्वरकाल च वेगं च चिन्तयञ्वर्यते तु य । तस्येष्टैस्तु विचित्रैश्च विषयैर्नाशयेत् स्मृतिम् ॥" तत्रैव च—"ऋत्वहोरात्रदोषाणा मनसश्च बलाबलात्। कालमर्थवशाच्चैव ज्वरस्तं त प्रपद्यते ॥" इत्यादि। तत्रादौ सभाया पत्रे च स्वमित्रं प्रति भाषणाय लेखनाय गुह्यार्थस्य निगूहनप्रकार । २–खट्वाङ्ग आयुधविशेष । ३–झषाङ्को मदन, तच्छत्रुरित्यर्थ । ४–अस्य व्याकरणमपि विरचितं तैरेव। (इत. पर प्रकरण प्राप्ता टिप्पणी परिशिष्टे प्रतीयताम्।) ५–सुवर्णादीनि चत्वारि बीजानि, तै सह यथाविधि पाकात् सजातपिण्डकस्य पारदस्य यथेच्छ प्रतिमा-गुटिकाकटोरादीनि खेलनकानि विधेयानि, गन्धकद्रवपाकाद्दृढानीति शेष. । ६–अग्नियोगाद् द्रुतम्। ७–गन्धके। ८–शीघ्रम्।

कर्पूरमुड्डाप्य गुरूक्तयन्त्रयुक्त्या शनैरामसृदः शरावे ।
अद्भिः पृथक्कृत्य मृदः शरावं गृह्णन्तु कर्पूरशरावमच्छम् ॥ १०१ ॥

चूर्णेन सैन्धवसितादिसमुत्थितेन बब्बूलगुन्दसलिलोक्षणपिण्डितेन ।
नानाविधानि चषकप्रभृतीनि काम पात्राणि रुग्णरुचये रचयन्तु वैद्याः १०२

लाक्षासत्त्वं पलं चेच्छितर सकृदपामाढकं क्वाथहेतो-
र्मध्येक्वाथं त्रिकर्षं प्रविकिर मसृणं टाङ्कणं चूर्णमेव ।
क्वाथे त्वर्धावशिष्टे भ्रमय समुचितां पोट्टलीं कज्जलस्य ।
प्रायः प्रक्षालनेऽपि स्थिरलिपि लिख रे कागदं काऽत्र शङ्का १०३

तब पात्र को उतारलें । कुछ शीतल होने पर जब पात्र के चारों ओर लगा हुआ गंधक घनभाव को प्राप्त होने लगे तब मध्य भाग गत तरल गंधक को, घनीभूत होने के पूर्व ही शीघ्र बाहर नितार ले । इस तरह, पात्ररूपी बीबे में निर्मित तत पात्राकृति गंधकमय पात्र को सावधानी से निकाल लें । इसे बलि-गंधक-चषक (सकोरा) कहते हैं ॥ १०० ॥

कपूरचूर्ण को एक तवे पर फैलादें तथा उस पर मिट्टी का कच्चा सकोरा औंधा ढकदें । नीचे मंदाग्नि योग से कपूर को इस कच्चे सकोरे में धीरे धीरे उडालें । इस तरह सकोरे के चारों ओर कपूर लग कर चोंट जायेगा । सकोरे को उतार कर उसके भीतर चारों ओर भेड का दूध चुपड दें । इस तरह करने से कपूर दृढ हो जायेगा तथा उडेगा नहीं । अब, जल से कच्चे सकोरे को पिघला दें (गला दें) तथा भीतर से स्वच्छ कपूर शरात्र को ग्रहण करें ॥ १०१ ॥

बबूल के गूंद को पानी में मिलाकर उसके द्रव से, सैंधव, शक्कर, लौंग, जायफल आदि में से किसी के भी चूर्ण को, पिंडित बनालें । कुशल वैद्य इस पिंड से अपने रोगी की रुचि के अनुसार अनेक प्रकार की आकृतिवाले पात्रों का निर्माण करें ॥ १०२ ॥-

करीब २५६ तो पानी में चार तोलाभर लाक्षा सत्व मिलाकर उकालें । इस उकलते हुये क्वाथ में तीन तोला टंकणक्षार का सूक्ष्म चूर्ण मिलादें । जब क्वाथ आधा ही रह जाये तब उसमें काजल की पोटली डुबोकर चारों ओर घुमावें । इस तरह

१—सच्चूर्णितं कर्पूरं तवके समास्तीर्य उपर्यपक्वमृच्छराव दत्त्वाऽधो मन्दाग्निर्देतव्य इति । तथा मेषीदुग्धेन सह म्रक्षणादपि पिण्डीभूतस्य घटनीयम् । २—आदिशब्देन लवङ्गजातीफलादीना ग्रहणम् । एतेषामपि मेषीदुग्धेन सम्भवति । ३—पक्कमपीविधिरयम् । ४—कागदशब्दो नपुंसके, अभिधायकतया च 'कागज' इत्यरबीभाषाया 'कागल' इति गुर्जरभाषाया प्रसिद्धे शणपत्रे । यथोक्त मन्त्रकल्पद्रुमोक्तहनुमत्कवचे—"भूर्जे वा वसने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके । कागदे वाऽष्टगन्धेन पञ्चगन्धेन वा पुनः ॥ त्रिगन्धेनाथवैकेन विलिख्य धारयेन्नर ॥" इति ।

लाक्षां साक्षात् काथयेत् साधु धौतां स्वर्जीपट्टीटङ्कणैः षोडशांशैः ।
काथस्यायःपात्रघृष्टस्य वट्यो वारिक्लिन्नाः स्युर्मषीमातरस्ताः ॥ १०४ ॥

[2]शतमल्लकसौभाग्यनवसादरधूलिताः ।
घर्मन्यस्ता विनश्यन्ति मषीवर्णा दलस्थिताः ॥ १०५ ॥

रविदुग्धघृताक्षरमपि निरक्षरमिव प्रतीतमज्ञेन ।
पत्रं कृशानुतप्तं तदक्षराणि व्यनक्ति सहसैव ॥ १०६ ॥

कदलीरसेन वसने विन्यस्तान्यक्षराणि लेखिन्या ।
सुचिरं स्थिरीभवन्ति क्षारैः प्रक्षालितानि शतशोऽपि ॥ १०७ ॥

सोर[3]कसादरटङ्कणतुत्थस्फटिकाकसीसमिति तुल्यम् ।
निम्बवम्बुघृष्टमयसि व्यनक्ति चित्राणि घर्मसंवन्धात् ॥ १०८ ॥

वीज[4]पूरजठरे रजः कुरु लोहस्य विशिष्य ।
त्रिचतुर्भिर्दिवसैर्द्रवं तस्य विलोकय शिष्य ॥ १०९ ॥

निर्मित स्याही से आलेखित अक्षर, प्रक्षालित होने पर भी प्राय. स्थिर रहते है । यदि शंका हो तो पत्र लिखकर परीक्षा करले ॥ १०३ ॥

जल से अच्छी तरह स्वच्छ की गयी लाक्षा को, उससे सोलह भाग जितने, सज्जी खार, पठानी-लोध तथा टंकण के चूर्ण के साथ, क्राथ विधि से उकाल लेवें । फिर, इस क्राथ को लोह के खरल में खूब घोटकर गाढा होने पर उसकी टिकियां बनाले । स्याही की साक्षात् जननी रूप, इन टिकियो को पानी मे पिघला कर उपयोग मे लेवें ॥ १०४ ॥

शतमल, सुहागा तथा नौसादर के चूर्ण को पत्रगत स्याही के अक्षरो पर भुरकाकर सूर्य के ताप में रखदें । इससे अक्षर विलीन हो जायेंगे । अर्क दूध से पत्र पर लिखे गये अक्षर, अनभिज्ञ के अक्षर ज्ञान की तरह अत एव निरक्षर (मानो अक्षर है ही नहीं) जैसे प्रतीत होगे । किंतु पत्र को अग्नि तप्त करते ही वही अक्षर उस पर सहसा प्रकट हो जायेगे । कदली रस से वस्त्र पर आलेखित अक्षर दीर्घ काल तक स्थिर रहते हैं तथा क्षार से शतश. बार धोने पर भी नष्ट नहीं होते । सोरा, नौसादर, टकण, तुत्थ, फिटकरी और कासीस इनका सम भाग सूक्ष्म चूर्ण बनालें । फिर इसको निंबू रस मे अच्छी तरह खरल करें । लोहपट्ट पर इस रस से आलेखित चित्रादि सूर्य ताप में ही प्रकट दीख पडेंगे ॥ १०५–१०८ ॥

विजौरा निंबू के भीतर लोह चूर्ण भरदे । तीन चार दिवस मे ही वह चूर्ण पिघल कर द्रवरूप हो जायेगा ॥ १०९ ॥

१–पट्टिकारोध्र 'पठाणी लोद' इति प्रसिद्ध । २–पत्रलिखितमषीवर्णोत्सादनप्रकार । ३–लौहे वर्णोत्पादनप्रकारोऽयम् । ४–अयोद्रवीकरणप्रकार ।

सारैस्फटीसादरटङ्कणानि कासीसटुर्वर्णलसन्महांसि ।
संसाध्य निम्बूकपयोभिरारपात्राणि घृष्ट्वा कुरु रौप्यभांसि ॥ ११० ॥
चेलं समास्तीर्य रवेण वेणोराहूय लोकं कुतुकोपजीवी ।
नितम्बमास्फोट्य निपीड्य कुक्षिं मुखात्मुखं ष्ठीवति गोलकानि ॥ १११ ॥
आवेष्ट्य वेगादसकृद्भिमर्पितप्रान्तद्वयीकेन गुणेन घर्षिता ।
हंहो क्षणादेव यथामनोरथं द्वेधा भवेत् काचन काचकूपिका ॥ ११२ ॥
कागदकृतं कटाहं सतैलमारोप्य चुल्लिकामूर्ध्नि ।
अवतारय निश्शङ्कं पूरीकचवल्यपूपादीन् ॥ ११३ ॥
मधूकतैलप्रतिसंस्कृतस्य गोधूमचूर्णस्य विधाय लोप्त्रीम् ।
पूरीस्तदीयास्तलयन्तु बाढमावर्तमानाम्भसि सत्कटाहे ॥ ११४ ॥
जपाप्रसूनप्रकरप्रमार्जितच्छुरीसुतच्छिन्ननवीननिम्बुकम् ।
क्षतादलं लोहितलोहितच्छवीन् रसस्य बिन्दून् कियतोऽपि वर्षति ॥११५

कलमी सोरा, फिटकरी, नौसादर, टंकण, कासीस तथा रजत इन सबके चूर्ण को निंबू रस में सिद्ध करके इनका मुलम्मा-गिलेट-देने से पीतल के पात्र चांदी के समान चमकने लगते है ॥ ११० ॥

एक वस्त्रखड को जमीन पर बिछाकर, बासुरी के स्वर से अपने इर्द गिर्द मनुष्यो को एकत्रित करता हुआ, दोनो हाथो से अपने नितंब प्रदेश को बारबार फटा फट फटकारता हुआ, बाजीगर अपने पेट को दबा दबा कर मुख मे से, सभी को आश्चर्य मग्न करता हुआ सरलता पूर्वक, एक के पीछे एक, गोलो को निकालता है ॥ १११ ॥

काचकूपी को एक सूतली से लपेटकर तथा सूतली के दोनो छोर पकड अत्यत वेग से पुन पुन घर्षण करने से अहो! एक ही क्षण मे वह काचकूपी दो भागो मे विभक्त हो जायेगी ॥ ११२ ॥

कागजका, कटाह जैसा एक पात्र बनाकर उसे तैल से परिपूर्ण भरदें । फिर इसे चूल्हे पर रखकर उसमे पूरी, कचौरी, अपूप आदि तल तल कर उतार लें ॥ ११३ ॥

मधूक तैल का मोमन देकर, गेहूं के आटे को पानी से गूध कर लोये बनालें । एक कटाह मे पानी भर कर उकालें । इस उकलते हुये जल मे उपरोक्त आटे की पूरियां बेलकर तल लेवें । (पानी मे पूरी तलने का यह चमत्कारिक तरीका है ।) ११४

जपापुष्पो से चाकू को खूब घिसकर साफ करलें । अब इस चाकू से ताजा नींबू को सवारें । सवारते समय रक्तवर्ण के बहुत से रसबिंदु उसमें से टपकेंगे ॥ ११५ ॥

१–रजतस्वर्णान्यतरलेपनप्रकार । स च लोके 'गिलेट, मुलम्मा' इति प्रसिद्ध. २–रजतम् । ३–'बादीगर' इति प्रसिद्ध ऐन्द्रजालिक । ४–काचकूपीद्वैधीकरणप्रकार ५–'सूतली' इति प्रसिद्धेन । ६–प्रसङ्गात् कानिचित्तत्सदृशाश्चर्यकारीणि प्रदर्श्यन्ते खेलन कानि । तैलं चात्रामुखं पूरणीयमन्यथा तद्दाह । ७–'चाकु' इति प्रसिद्धि. ।

पटेन पीतदुग्धेन द्वित्रिकृत्वः पवित्रितम् ।
पानीयमप्यलं धत्ते दुग्धभावं न संशयः ॥ ११६ ॥
क्वथिते चीनघासेन पयसी द्वे सहैव च ।
उररीकुरुतश्शीघ्रं स्त्यानभावं न संशयः ॥ ११७ ॥
शुद्धकट्टीरनिर्यासप्रतिसारणतो मनाक् ।
तक्रमप्येति दधितां दुग्धस्य तु कथैव का ॥ ११८ ॥
पुष्पयोरश्वमारस्य लोहितार्जुनयोः क्रमात् ।
स्याद्गन्धगुडधूपाभ्यां वर्णव्यत्ययकौतुकम् ॥ ११९ ॥
मध्येभ्राष्ट्रं भृष्टः स्नुहीपयोभिर्विभावितश्चणकः ।
सकृदेव जलोक्षणतस्तत्क्षणमङ्कुरमहो समुद्गिरति ॥ १२० ॥
प्रत्यग्रमृत्करकयोः शुचि दीर्घसूक्ष्मं मध्यस्थनिर्व्यथनयोरवचार्य सूत्रम् ।
वक्त्राग्रदत्तकरकेण यदुक्तमारात् कर्णाग्रदत्तकरको लघु तच्छृणोति ॥१२१॥
दरान्तरं लिप्तदशोऽधिखल्वं पिष्टेन योग्याम्भसि गन्धकेन ।
प्रवर्तितो हन्त निशि प्रदीपः प्रतिक्षणं प्रज्वलति प्रशाम्यति ॥ १२२ ॥

एक स्वच्छ वस्त्र मे दूध को सोख लें । फिर इस वस्त्र को दो तीन बार पानी में डुबोकर निचोड लेने मे पानी निःसंदेह दुग्ध ही बन जाता है ॥ ११६ ॥

पानी अथवा दूध को चीनी घास में उकालने से दोनों ही निःसदेह जम जाते हैं ॥ ११७ ॥

कनीरे गूद को किंचित् मात्रा में मिला देने से तक्र भी दही हो जाता है, फिर दूध की तो बात ही क्या ? ॥ ११८ ॥

करवीरका रक्तपुष्प, गधक की धूप से, श्वेतवर्ण का, तथा श्वेतपुष्प, गुडकी धूप से रक्तवर्ण का हो जाता है ॥ ११९ ॥

स्नुही दूध से चने को भावित करले । भाड मे भूने गये इस चने पर पानी छिकडते ही उसमें से उसी क्षण अंकुर प्रस्फुटित हो आता है ॥ १२० ॥

(सुदूर स्थित होने पर भी परस्पर वार्तालाप का यह प्रकार सुस्पष्ट है । आधुनिक विज्ञानयुग की 'टेलीफोन' पद्धति का, बालकों के कौतुकार्थ, यह एक निराला ही अनुकरण है ।) ॥ १२१ ॥

गधक को यथामात्रा जल से खरल करले । वत्ती के कुछ भीतर इसका प्रलेप करें । इस वत्ती से रात्रि को प्रदीप्त किया गया प्रदीप प्रतिक्षण प्रज्वलित तथा प्रशमित होता रहेगा । कपास और एरंड के बीज, गंधक, तिल, अलसी तथा राल की, एक दो या अधिक घटो में धूप देकर उन्हें धूमित करलें । प्रत्येक घट के पार्श्व में पहिले से ही

१–पानीयस्य दुग्धीकरणप्रकार । २–लोहितकरवीरपुष्पस्य गन्धधूपेन श्वैत्यं, सितस्य गुडधूपेन लोहिताभासत्वमिति । ३–दूरस्थितेन सह भाषणप्रकार ।

कर्पासपञ्चाङ्गुलबीजगन्धतिलातसीनिर्जरधूपधूमः ।
घटद्वयीपार्श्वनिखातनालीवान्तः प्रदीपीभवति प्रदीमः ॥ १२३ ॥
पात्रस्य पृष्ठवलये विततं खण्डमाम्बरम् ।
अङ्गारो नदहत्येव किमतःपरमद्भुतम् ॥ १२४ ॥
न चोष्णतैले विरुञ्चकशूकभस्मावकीर्णस्य करस्य दाहः ।
आश्चर्यमेतत् पुरुषोत्तमेन विद्यार्थिना मह्यमिह प्रदत्तम् ॥ १२५ ॥
गर्भधृतसौधशकलं हुक्कायन्त्रं जलेन परिपूर्णम् ।
शब्दायते गुडगुडं वमति च धूमं विनैव पातारम् ॥ १२६ ॥
अम्भोभृतामर्जुनकाचकूपीं निस्तन्द्रमालोकयतां शिशूनाम् ।
भूतं भवद्भावि च वस्तुजातं प्रत्यक्षवद्भाति पुरो निषण्णम् ॥ १२७ ॥

खधूपवर्णनम् ।

सौरात् प्रस्थः साद्विरांशाणि पञ्च गन्धात्ते च द्वे शिलातोऽश्मसिन्दो. ।
सर्वं पिष्ट्वा न्यस्तमन्तश्शरावं चन्द्रज्योतिर्जाज्वलत्यग्नियोगात् ॥ १२८ ॥

लगाई गयी नलिका से बाहर निकलने हुये इस धूम को प्रज्वलित करने से यह दीपक के समान प्रदीप्त रहेगा। यह प्रकार 'गैस लाइट' का अनुकरण है ॥ १२२–२३ ॥

पात्र के बाहरी भाग के वलय पर कपडे का टुकडा लपेट दें। अंगार से यह कदापि दग्ध नहीं होगा। इससे अधिक अद्भुत और क्या हो सकता है। बिच्छु के डंक की भस्म लगाकर हाथ को गरम तैल में रखें। वह जलेगा नहीं। यह आश्चर्य पूर्ण प्रयोग मुझे मेरे छात्र पुरुषोत्तम ने बताया है। पानी से परिपूर्ण हुक्के मे कलिकाखंड डाल दें। पीनेवाले के विनाही, उसमें से गुडगुड ध्वनि पूर्वक धूम इस तरह निकलता रहेगा मानो सचमुच उसे कोई पीरहा हो। जलपूर्ण श्वेतकाचके पात्र को सात आठ वर्षीय बालक के सम्मुख रखदे। अब, निर्निमेषदृष्टि से इसकी ओर देखते हुये बालको का भूत भविष्य तथा वर्तमान–वृत्त इसके सामने बैठे हुये को प्रत्यक्ष दिखाई देगा[1][2][3] ॥ १२४–१२७ ॥

आतशबाजी का वर्णन.–एक सेर सोरा, पाव भर गंधक, सवा सेर मन शिला

१–इङ्ग्लेण्डवासिचतुरजनप्रचारितग्यासाख्यधूमदीपनिर्माणप्रकारस्य दिक्प्रदर्शनमिदम्। अत्र कर्पासैरण्डयोर्बीजानि ग्राह्याणि। निर्जरधूपो 'राल' इति प्रसिद्ध शालनिर्यास। घटद्वयीत्यत्र द्वयीत्युपलक्षणम्। तेन यावत्प्रयोजन घटवृद्धि कार्या। तत्र प्रथमघटस्यैकपार्श्वे द्वितीयादीनां द्वयोरपि पार्श्वयोर्नलिकारोपणमिति। २–काचकूपी कुमारात् प्राग्दिशि स्थाप्या, कुमारश्च सप्ताष्टवर्षदेशीय, एव च दिवैव रात्रावाल्पयिके कर्मणि एषेतिकर्तव्यता। यथा मदनफलमूर्वे दग्ध्वा तत्कोकिलानि तैलघृष्टानि कांस्यपात्रे हस्ते वा आलिप्यानिमेषं दीपसविधे तद्दर्शने तथैव चमत्कृति। ३–अग्निसंपर्कज्वलत्खेलनकाना सञ्ज्ञेयम्। तथा च शब्दार्थचिन्तामणौ–"खधूप पुंसि अग्निक्रीडाविशेषे। 'हवाई' इति भाषायाम्"। तथा "उक्षाप्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान् ध्वजान् ववन्धुर्मुमुचु खधूपान।" इति भट्टि। भाषायाम् 'आतशबाजी' इति श्रीमन्माधवक्षितीशविवाहवर्णने गुरुभिरपि वर्णनं व्यधायि तद्विशेषा-

आग्नेयक्षोदसारैर्निरवधिनिभृता पिच्चिता पुच्छभागे
वह्निस्पर्शेन तेजोमयकुसुमझरीरुच्चकैरुद्गिरन्ती।
नेत्रानन्दं विधत्ते निशि दलनलिका सस्पृहं सुन्दरीभि-
र्हस्ते न्यस्ता प्रकीर्णस्फुटकनककुसुमस्तोमवर्षेव वल्ली॥ १२९॥
आकाशतः काञ्चननिम्नगायाः पतेत् सपुष्पो यदि शीकरौघः।
तेनाप्नुयुः सारचमत्कृतानि तुलां ज्वलत्पुष्पझरीमहांसि॥ १३०॥
पश्यत पश्यत हाहा स्वाहापतिचुम्बिताधरप्रान्ता।
पुष्पझरी पुष्पझरीं वर्षति मिषतां प्रहर्षाय॥ १३१॥
इह विलसन्ति विलासा युवतीनां युवविशेषमासाद्य।
पश्यत पुष्पझरीयं विकसति निशि पावकादेव॥ १३२॥

तथा कपूर एक तोला, इन सबको पीसकर एक शराव में ठसाठस भरदें। इसको प्रज्वलित करने से 'चंद्रज्योति' खिल उठेगी॥ १२८॥

आग्नेयद्रव्यों के चूर्ण से खूब लिप्त, पुच्छ भाग में चिपटी, अग्नि के स्पर्शमात्र से तेजोमय पुष्पों को ऊंचे उछालती हुई–सुंदरियों द्वारा सस्पृह हाथ में ग्रहण की गई, चारों ओर मानो स्वर्ण के पुष्प गुच्छों की वर्षा करने वाली लता के समान यह पुष्पझरी रात्रि मे किसके नेत्रों को आल्हादित नहीं करती? ॥ १२९॥

स्वर्ण की सरिता के जलबिन्दुओं का घोघ यदि पुष्पगुच्छों सहित आकाश से पतित हो तो वह देदीप्यमान पुष्पझरी के सारभूत चमत्कृत तेज से समता प्राप्त कर सकता है॥ १३०॥

ओ हो! देखिये, देखिये, देखने वालों को आनन्दित करती हुयी यह पुष्पझरी अग्नि से अधरप्रांत पर चुंवित होते ही पुष्पों की झरी का अभिवर्षण कर रही है। जिस तरह युवकविशेष के समागम से, युवति अपने विलास को उन्मुक्त होकर अभि-

---

णाम्। यथा हि–"उच्चैर्दुर्गमदुर्गवप्रनिहितादाग्नेययन्त्रात्समुद्गच्छद्गोलविकासविप्रसृमरा व्योम्नि स्फुलिङ्गोत्कराः। भान्ति क्ष्माधवमाधवस्य सुभग द्रष्टुं विवाहोत्सवं तारानाथगिराम्बरादवतरत्तारानुकारा सखे। भवनच्छवीनि दहनक्रीडानकानि समुद्यदर्चींषि। अयि राजन् स्मरयन्ति त्वदीयरिपुभवनदाहस्य॥" इत्यादि। तद्विशेषाणां केषाचिन्निर्माणप्रकारस्तथा केषाचिद्वर्णनमत्रापि प्रदर्श्यते तत्रादौ चन्द्रज्योतिःप्रकारः। लोके च 'चन्द्रज्योति' तथा 'महताव' इति प्रसिद्धिः। ४–पलानि।

१–'फूलझडी' इति प्रसिद्धाया वर्णनम्। २–अत्र काञ्चननिम्नगातोऽसद्धानामपि पुष्पझरीमहसा तत्सवद्धत्वेनाध्यवसायादसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरलङ्कारः। तथा चोक्तं दर्पणे–"सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते। भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽसम्बन्धस्तद्विपर्ययौ॥ पौर्वापर्यात्ययः कार्यहेत्वोः सा पञ्चधा ततः।" इति। अभूतोपमा वा। ३–अत्र प्रस्तुतायां पुष्पझर्यामप्रस्तुतरजस्वलाव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिरलङ्कृतिः। तल्लक्षणं च यथा–"समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः। व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥" इति। ४–इह सामान्यस्य विशेषेण समर्थनादर्थान्तरन्यासः।

अर्धोदञ्चितचारुचन्द्रमसृणज्योत्स्नावलक्षच्छवि-
वेल्लद्व्यालकरालफूत्कृतिचलद्गङ्गातरङ्गाकुलः ।
मन्दारस्फुरिताशयः सरभसं रामावबद्धाकृति-
र्भद्रं वो विदधातु धूर्जटिजटाजूटो नदीनच्छटः ॥ १३३ ॥
श्रीलल्लुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणायां गुच्छस्तृतीयोऽयमवाप पूर्तिम् ॥ १३४ ॥

इति तृतीयो गुच्छः समाप्तः ।

व्यक्त करती है—उसी तरह अग्नि-समागम से रात्रिकाल में पुष्पमञ्जरी भी विकसित हो उठती हैं ॥ १३१—१३२ ॥

(इस से अग्रिम श्लोक, ग्रंथकार के अप्रकाशित काव्य 'जयपुरमेलककुतुकम्' से सगृहीत किये गये हैं । इन मे से कतिपय श्लोको को हमने इस पुस्तक की प्रस्तावना में उद्धृत किये है । इस काव्य का शीघ्र ही प्रकाशन हो रहा है । अतः काव्यरसिक वैद्य इन श्लोको को अपने सपूर्ण सदर्भ मे वहां ही देखे ।)

प्रस्तुत श्लोक द्व्यर्थक है । इस मे श्रीशकर के जटाजूट के साथ समुद्र का रमणीय वर्णन किया गया है । यह मंगल श्लोक ग्रंथ के पूर्वार्ध की समाप्ति का सूचक है ।

चंद्रकला की (समुद्रपक्ष मे—मंथन के समय समुद्र में से उदित होते हुये-अर्धोदित चंद्रमा की) स्निग्ध ज्योत्स्ना से पाण्डुर-वर्ण शोभा को धारण किये हुये उछलते हुये कराल सर्पों की फूत्कार से विक्षुब्ध बनी हुई गगा की (पक्ष में-नदियें की) तरग मालाओं से भाराक्रांत (पक्ष मे परिपूर्ण), मंदार की (पक्ष में—मंथन वे समय बाहर निकलते हुये मंदार वृक्ष की) सुषमा से युक्त, अपनी रामा-भार्या स् शीघ्रता पूर्वक लपेट कर बाधा हुआ (पक्ष मे—राम से सेतु-बद्ध) भगवान शंक का, समुद्र की छटा जैसा—जटाजूट आपका कल्याण करे ॥ १३३ ॥

श्रीलल्लुरामजी के पुत्र कुन्दनरामजी से उत्पन्न, उपकारवृत्ति से युक्त श्रीकृष्ण कविद्वारा गुम्फित इस सुदर गुणयुक्त (गुणसूत्र) सिद्धभेषजमणिमाला का यह तृती गुच्छ सपूर्ण हुआ ॥ १३४ ॥ तृतीय गुच्छ समाप्त ।

सिद्धभेषजमणिमाला का पूर्वार्ध समाप्त ॥

१—पूर्वार्धसमाप्तिसूचक मङ्गलम् । द्व्यर्थोऽयं श्लोक । अत्र धूर्जटिजटाजूट समु इवेत्युपमालङ्कारः । भक्त्या निष्पादितं कर्म लोकोपकृतिहेतवे । आलोक्य करुणापारावार कृष्ण प्रसीदतु ॥ १ ॥ नानाभेदचमत्कृतिरसमलधात्वादिपूरितश्चित्र- । भेषजमणिमालाय गुच्छोऽच्छोऽय सुमेरुवद्भाति ॥ २ ॥ यः प्राचा भिषजां विवेद महितास्तिस्रोऽपि त सहिता साहित्य च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी· स ए भिषगाचार्यप्रशस्तिं वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छे तृतीयं परम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो गुच्छकः ।

[1]निष्कलङ्ककलं धत्ते यः कपर्दे तमीश्वरम् ।
भुजङ्गभूषितभुजं वन्दे देवं तमीश्वरम् ॥ १ ॥
सिद्धप्रयोगगुरवो विशिष्य गुरुगौरवाः ।
श्रीकृष्णरामभिषजा प्रणम्यन्ते पुनः पुनः ॥ २ ॥
प्रत्यक्षसिद्धिसंयोगा रोगानीकविमर्दिनः ।
विश्वेषामुपयोगाय सिद्धयोगाः समर्थिताः ॥ ३ ॥
श्रीकृष्णाख्यो व्यासो विहिताभ्यासो बृहत्त्रयीपठने ।
नातिसमासव्यासं कलयति सिद्धप्रयोगविन्यासम् ॥ ४ ॥

– चतुर्थ गुच्छ –

मंगलाचरण –

हरण निखिल बलि के, निपुण, भव तारण-अभिराम ।
साधु-शरण श्रीकृष्ण के प्रणमहुं चरण-ललाम ॥ १ ॥

(श्री स्वामीजी के टिप्पणीगत श्लोक का यह अनुवाद है । यह श्लोक स्वामीजी की कवि-सुलभ प्रौढ प्रतिभा का दिग्दर्शन कराता है ।)

अपनी जटाजूट में निष्कलंक चंद्रकला को धारण किये हुये भुजंगविभूषित भुजाओं वाले अधक के सहारक भगवान शंकर को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

मैं श्रीकृष्णराम, विशेष गौरवसे युक्त तथा सिद्ध प्रयोगोमे सपूर्ण अनुभवी गुरुजनोको पुन पुनः नमस्कार करता हू ॥ २ ॥

सिद्धप्रयोग, प्रत्यक्ष सिद्धि देनेवाले, रोगसमूह का नाश करनेवाले तथा प्राणी-मात्र का हित करनेवाले माने गये है ॥ ३ ॥

बृहत्रयी के सपूर्ण ज्ञानसे युक्त मैं व्यास श्रीकृष्ण, सिद्धप्रयोगो का, अतिसक्षेप और अतिविस्तार से रहित वर्णन करता हू ॥ ४ ॥

---

१ बले (क) सर्वस्वहरणं (ख) प्रवण भवतारणे (ग) । साधूनामेकशरण श्रीकृष्ण-चरणं नुम. ॥ १ ॥ सदा शिवाराधनतत्परोऽपि (घ) भूय शिवाराधनतत्परो (ङ) य । सदा शिवाराधनतत्पर. (च) स भूयाच्छिवाराधनतत्परो (छ) न ॥ २ ॥ अथ खलु सिद्ध-भेषजमणिमालापूर्वार्धसमाप्त्यनन्तरमाविर्भूतदीनार्तसतापजिहीर्षा प्रकृष्टप्रयासप्रगुणीकृतत-त्प्रयोगगुरुप्रसादप्राप्तनवनवप्रयोगमणिभिरारभन्ते तदुत्तरार्धमाकलयितुं गुरवः । चिकित्सा-लक्षणं चालोकनीयं चरकखुड्डाकचतुष्पादे–"चतुर्णां भिषगादीना शस्ताना धातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ॥" तत्र पादत्रयं सक्षेपेणाभिहितमेव, अत. परिशिष्टभेषजपादाभिधानस्यौचित्यमिति । २–"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि

भक्तिं कृत्वा खनित्रं गुरुहृदयनिधिस्थानमञ्जः खनित्वा
तत्र प्राप्य प्रयोगद्रविणमनुपमं वैद्यदारिद्र्यहारि ।
श्रीकृष्णः कीर्तितृष्णः सहृदयहृदयारञ्जनैर्वृत्तैः सुवृत्तैः
संदर्भं तत्त्वगर्भं विरचयति गदग्रस्तलोकोपकृत्यै ॥ ५ ॥

आचार्यैरधिनिगमं निगूहितानि प्रत्यक्षस्फुटविभवानि भेषजानि ।
तान्यस्मिन् गुरुवदनात्कियन्त्यवाप्य वैद्यानामुपकृतये निवेशितानि ॥ ६ ॥

तत्र तावद्गदं बुद्ध्वा बुद्धिमान् दोषलक्षणैः ।
एषामन्यतमं कंचित् प्रयोगं योक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

आतङ्कप्रत्यनीकेषु प्राप्तेषु कृपया गुरोः ।
सिद्धयोगेषु नो न्याय्या विचिकित्सा विपश्चिताम् ॥ ८ ॥

मैंने भक्तिरूपी खनित्रद्वारा, गुरु के हृदयरूपी खानमेंसे, वैद्यो के दारिद्र्य को दूर करने वाला अनुपम रत्न प्राप्त किया है। यश की अभिलाषा से मैं अब रोगग्रस्त मानव जाति के उपकारार्थ सहृदयो के हृदयको रसमय कर देनेवाले सुदर पद्यो में सारपूर्ण सदर्भ का प्रारभ करता हूं ॥ ५ ॥

प्राचीन आचार्योंने प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाने वाले बहुत से सिद्ध प्रयोगो का उल्लेख अपने अपने शास्त्रो मे किया है। किंतु वह निगूढ है। उनमे से कतिपय प्रयोगो के रहस्यका ज्ञान मैंने साक्षात् गुरुमुख से प्राप्त किया है। उन्हीं का वर्णन वैद्यजनोपकारार्थ इस ग्रथ मे किया जायेगा ॥ ६ ॥

अत. बुद्धिमान वैद्य, सर्व प्रथम, दोष एवं लक्षणो द्वारा रोग का निर्णय करके, फिर इनमे से किसीभी एक सिद्धप्रयोग का उस रोग पर निर्भय उपयोग कर सकता है। केवल गुरुकृपा से प्राप्य इन सिद्धप्रयोगो मे रोगके दमन करने की अचिंत्य शक्ति है। अत इस विषय मे किसी को जरा भी शका नहीं करनी चाहिये ॥ ७-८ ॥

शास्त्राणि प्रथन्ते" इति वचनात् पुनर्मङ्गलाचरणम् । ३–चन्द्रम् । ४–चरकसुश्रुतवाग्भटसहितात्रयीपठन इत्यर्थ ॥

(क) बलिराजस्य, पक्षे गन्धकस्य । (ख) वामनरूपेण, पक्षे जारणादिविधिना । (ग) भव' ससार, पक्षे पारद । (घ) ईश्वरध्यानपर इत्यर्थ । (ट) शिवा धनुर्धरीसज्ञका कुलदेवी, तदाराधनतत्पर, अथवा शिवस्य पारदस्याराधने तत्तत्संस्काराचरणे कुशल । (च) शिवा हरीतकी, अशिवस्याकल्याणस्यावारणे प्रवण इति वा । (छ) नोऽस्माकं श्रेयश्चिन्तनपरो भूयादिति ॥

तत्रादौ ज्वरचिकित्सितम् ।[1]

रुद्रावतार इति यं विबुधाः स्तुवन्ति दक्षं हि योऽदमयदीश्वरहासदक्षम् ।
पथ्यद्विषो व्यथयति ज्वरनामधेयो वीरः कृपां मयि करोतु स वीरभद्रः ॥१॥

ज्वर-चिकित्सा

(निदानादिसे रोगका निर्णय करके, चतुर्थ गुच्छमे उल्लिखित सिद्धप्रयोगों का उपयोग करना चाहिये । प्रत्येक रोग की सद्य चिकित्सा मे उपयुक्त सिद्धप्रयोगों का निर्देश करनेके पूर्व मुनिकल्प श्रीभट्टजीने, प्रारभमे, उस रोग की आकृतिका सक्षेप किंतु निगूढ वर्णन अपनी सहज काव्यमय शैली से अवश्य किया है, तथापि, यहां इस छोटेसे निबंध मे, प्रत्येक रोग का उसके लक्षणों और प्रकारों सहित उल्लेख, रोगोंके स्वरूप को अपेक्षाकृत अधिकाधिक स्पष्ट समझाने के आग्रह से ही, किया जा रहा है । महर्षि अग्निवेश प्रणीत अंजननिदानम्' आयुर्वेद का रोगविज्ञान पर एक उत्तमोत्तम सक्षिप्त ग्रथ है । यहा इसी आर्षग्रंथ का हिंदी रूपातर दिया जाता है ।

हेतु, प्राग्रूप, रूप, उपशय और सप्राप्तिसे अथवा इन सभी मे मुख्य केवल 'रूप' से ही रोग का निर्णय करना चाहिये । अजीर्ण से प्रकुपित दोष कोष्ठाग्निको, त्वचा की ओर, बाहर धकेलकर ज्वरोत्पत्ति कर देते है । वातज, पित्तज, कफज, द्विदोषज, त्रिदोषज तथा आगुन्तज भेद से ज्वर आठ प्रकार के होते हैं । जृंभा, और अंगमर्द, अरति और नेत्रदाह, भारीपन और अरुचि ये क्रमश वातज, पित्तज, एवं कफज ज्वर के पूर्वलक्षण है । ससर्गज और सन्निपातज ज्वर मे क्रमश दोनो दोषो के तथा तीनो दोषो के लक्षण मिलेंगे । कंठ और ओष्ठ मे शोष, मल की शुष्कता, कंप, छींक का अभाव, मस्तक, उदर और शरीर मे वेदना, कभी शीत एव कभी दाह की प्रतीति, निद्रानाश, विरसता तथा जृभा यह वातज्वर के रूप है । देहका पीला पडजाना, दाह, प्यास, स्वेद, मूर्छा, अल्पनिद्रा, मुह मे कडवापन, वमन, भ्रम, प्रलाप तथा विरेक यह पित्तज्वराकृति है । स्तैमित्य (आर्द्रवस्त्र से वेष्टित हो जाने जैसी जडता) कास, अरुचि, गुरुता, उत्क्लेद, मुख मे मीठापन, प्रतिश्याय, आलस्य, तृप्ति, श्वेतवर्णता, शीतता, यह श्लेष्मज्वराकृति है । कण्ठ और मुख मे शोष, प्यास, मूर्च्छा, दाह, अनिद्रा, वमन, भ्रम, तम, सधि और सिर मे पीडा यह वातपित्तज्वराकृति हे । स्तैमित्य, कास, सताप, गुरुता, सधि और सिर मे वेदना, निद्रा, स्वेदोत्पत्ति, प्रतिश्याय यह वात श्लेष्मज्वराकृति है । शीत, दाह, वारवार तद्रा, मोह, कास, अरुचि, प्यास, मुख मे चिपचिपापन और कटुता पित्तकफज्वराकृति है । जिह्वा मे खुरदरापन, नेत्रों में वक्रता,

---

१—सर्वरोगप्रधानत्वादादावभिधान सर्वत्र क्रियतेऽस्य, अतस्तदनुसारतोऽस्मिन्नपि तन्त्रे कृतमिति । प्रधानत्व च वाग्भटोऽपि वर्णयति—"ज्वरो रोगपति पाप्मा मृत्युरोजोशनोऽन्तक । क्रोधो दक्षाध्वरध्वसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भव ॥ जन्मान्तयोर्मोहमय सतापात्मा-ऽपचारज. । विविधैर्नामभि क्रूरो नानायोनिषु वर्तते ॥" इति ।

आरक्तता और जलमयता, प्यास, अस्थियों मे वेदना, चेष्टाओ में असम्बद्धता, स्वेद, निद्रा, कभी शीत, कभी दाह, तन्द्रा, प्रलाप, मोह, अंगो मे शिथिलता, कंठ में कंटकाकीर्णता, थूंक में रक्त इत्यादि सन्निपातज्वराकृति है। तीनो दोषो के प्रकोप वाला, सभी इन्द्रियों की चेष्टाओ से हीन, अभिन्यास ज्वर कहाता है। दोषो की अतिवृद्धि तथा अग्निक्षीणता के कारण सन्निपातज्वर असाध्य होता है। वात, पित्त और कफप्रधान सन्निपातज्वर क्रमश' सात दिन, दस दिन और बारहवें दिन अथवा इनसे क्रमश. द्विगुणित दिन, प्रबल होकर या तो शात हो जाता है अथवा रोगी की मृत्यु कर देता है। सन्निपात ज्वर के प्रारभ, मध्य तथा अंत मे, कर्णमूल-गत भयंकर शोथ क्रमश. सुख साध्य, कष्ट साध्य तथा असाध्य माना जाता है।

प्रकुपित दोष, रस को, रक्त को, मांस को, मेद को, तथा अस्थि और मज्जा को दूषित करते हुये यथाक्रम सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक ज्वर को उत्पन्न कर देते है। इन ज्वरो के तथा इनके भेदादि ज्वरों के प्रारभ, काल और क्रिया विषम होते है अत. इन्हे विषमज्वर भी कहते हैं। सात, दस या बारह दिवस पर्यंत वेगवाला सन्तत, अहोरात्र मे दो वेग वाला सतत तथा एक ही वेग वाला अन्येद्युष्क, प्रति तीसरे दिन आनेवाला तृतीयक तथा प्रति चतुर्थ दिवस आने वाला चतुर्थक कहलाता है। दिन रात मे किसी एक काल को छोडकर शेष समय में ज्वर का रहना 'अन्येद्युष्क' विपर्यय, तीन दिवसो मे, आदि तथा अन्त में न आकर मध्य मे एक दिन आनेवाला तृतीयक विपर्यय, दो दिवस निरतर रहकर एक दिवस उतरकर पुन आनेवाला चतुर्थक विपर्यय होता है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्रगत ज्वर क्रमश. हृत्पीडा, रक्त-वमन, दाह, देहमे दुर्गंध, अस्थिपीडा, क्लम तथा शुक्र स्रवण आदि लक्षणो से युक्त होता है। इनमे, रसरक्ताश्रित तथा मांस-मेदो-गत ज्वर साध्य, अस्थि-मज्जा गत कष्टसाध्य एव शुक्रगत असाध्य है। गौरव युक्त तथा पसीनो से शरीर को लिप्त सा कर देने वाला तथा नित्य रहनेवाला मन्द ज्वर 'प्रलेपक' कहा गया है। यह राजयक्ष्मा में होता है। आगन्तुज ज्वर चार प्रकार के हैं। अभिशाप, अभिचार, अभिषंग और अभिघात। सर्वत्र विस्फोट तथा मोह ये लक्षण प्रथम दोनों ज्वरों शापज तथा अभिचारजके है, आवेश-ज्वर में, भूतादि आवेश जन्य पीडा होती है। कामावेश ज्वर मे लज्जा, बुद्धि तथा निद्रा आदि का नाश हो जाता है। दाह तथा अतिसार के लक्षणो से युक्त विषसबधि ज्वर तथा अभिघातज ज्वर-अभिघात (चोट) के अनुसार-वातप्रधान लक्षणो वाला होता है। बहुत अधिक एव बलवान कारणों से उत्पन्न, शैत्य, स्वेद, अन्तर्दाह आदि लक्षणों की प्रचुरतावाला, धातुक्षीणता तथा इन्द्रियो की दुर्बलतायुक्त ज्वर असाध्य है। अल्प उपद्रवोवाला ज्वर 'लघु' तथा अधिक उपद्रवो से युक्त 'गुरु' कहा जाता है। वर्षा, शरद् तथा वसंतऋतु में होने वाले यथाक्रम वातज, पित्तज और कफज ज्वरों को प्राकृत कहते हैं, इनसे अतिरिक्तों को वैकृत। अजीर्ण, लालास्राव, छींक का अभाव, तंद्रा, अरुचि, भारीपन, विरसता, आलस्य और बहुमूत्रता ये आमज्वर के लक्षण होते हैं; इनसे विपरीत लक्षणों वाला निराम ज्वर

होता है । अन्तर्दाह, प्रलाप, प्यास, सन्धिपीडा, मलावरोध, भ्रम, श्वास, स्वेदाभाव, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं; बहिर्वेग ज्वर के लक्षण इन से विपरीत होते है । लघु, निराम, प्राकृत, बहिर्वेगवाला ज्वर साध्य एवं साम, वैकृत और अन्तर्वेग वाला ज्वर असाध्य होता है । मलकी प्रवृत्ति अथवा अवरोध, प्यास, कास, श्वास, शरीरमें पीडा, वमन, हिक्का, मूर्छा और अरुचि ये ज्वर के दश उपद्रव है । निद्रानाश, अरुचि, अरति, प्यास, बलका नाश, गुरुता, विष्टंभ, नाभी और हृदय के मध्य में जकडाहट, वेदना आदि ये धातुपाक के लक्षण है । अत्यंत प्यास, उग्र श्वास, ज्वर का तीव्र वेग और भ्रम ये पच्यमानज्वर के लक्षण है । दोषों मे, ज्वरमें और शरीर में लघुता ये दोषपाक (मलपाक) के लक्षण हैं । शरीर मे दाह, स्वेद, भ्रम, प्यास, वमन, मलभेद (अतिसार), सज्ञानाश, कराहना, सिर मे खुजली, मुखपाक, छींक और भूख का आगमन ये ज्वरमुक्त होने के लक्षण है । इस तरह, विधिभेद से ज्वर दो प्रकार का होता है शारीर और मानस, सौम्य (शीत पूर्व) और आग्नेय (दाह पूर्व) । इसी तरह, अन्तर्वेग और बहिर्वेग, साध्य और असाध्य, प्राकृत और वैकृत आदि भेदों से भी ज्वरो के दो दो प्रकार है । दोष तथा काल के बलाबल से ज्वर के सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क तृतीयक एव चतुर्थक ये पांच भेद है । सातों धातुओंके आश्रय भेद से सात प्रकार के तथा दोषादि एवं अभिशापादि उत्पादक कारणो के अनुसार आठ प्रकार के ज्वर माने गये है ।

प्रकुपित जलीयधातु (रस, रक्त, मूत्र, कफ, स्वेद आदि 'अप् धातु') पाचकाग्नि को मन्द करके, शकृत मे मिलकर, अधोमार्ग से, वायुद्वारा धकेला जाकर, प्रचुरमात्रा में बाहर निकलता है । अत एव इस व्याधि को अतिसार कहते है । वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और आमज भेद से यह छ प्रकार का होता है । वातज में रूक्ष और अरुण झाग युक्त, पित्तज मे पीत, रक्त और श्यामवर्णवाला, कफज में शीतल, श्वेत, कफयुक्त और गाढा त्रिदोषज मे तीनो दोषो के लक्षणो से युक्त मल का नि सरण होता है । शोकज मे शोकतप्त मनुष्य के नेत्र, नासा तथा गले से स्रवित अतिबाष्प (जल) त्याग से उत्पन्न उष्माद्वारा क्षुभित रक्त, मल सहित अथवा रहित, निकलता है । आमज मे, अजीर्ण से प्रकुपित दोष, कोष्ठ को तथा रक्तादिधातु और मलों को दूषित करके अनेक वर्णयुक्त यथादोष शूल सहित मल को निकालते है । जब कोष्ठगत सचित मल से युक्त कफ, वायु से प्रेरित होकर निरतर बाहर निकलता रहता है तब इस अवस्था को प्रवाहिका कहते है । पित्तवर्धक पदार्थों के सेवन से रक्त का निःसरण रक्तातिसार कहलाता है । वमन, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, कास, श्वास, प्यास, शोक, सर्वांगपीडा, हिक्का और अरुचि ये लक्षण अतिसारी की मृत्यु के सूचक होते हैं । अतिसार के निवृत्त हो जाने पर भी, अपथ्यादि के कारण पुनः मन्दीभूत जठरानल से दूषित ग्रहणी, भुक्तपदार्थ को आमावस्था मे ही अथवा कभी कभी पक्वावस्था में, वातानुबन्ध से बद्ध एवं पित्तानुबन्ध से द्रवरूप में, अनेक बार त्याग करती है । यह ग्रहणी रोग कहाता है । ग्रहणी में शोथ, अग्निमांद्य, वैवर्ण्य, ज्वर, अजीर्ण, अरुचि, बलक्षय,

वीर्यक्षय, प्यास, आध्मान, उद्गार आदि उत्पन्न होते है। वात, पित्त और कफ से तथा त्रिदोप से उत्पन्न यह चार प्रकार की होती है। इसके लक्षण, अतिसार के लक्षणों जैसे ही होते है। अति दुर्गंध युक्त, कुछ पतला, पिच्छिलतायुक्त, वेदना कारक, तथा पानी मे डूब जाने वाला मल आम मल कहलाता है।

वातादि दोष त्वचा, मास एव मेद को दूपित करके गुदा आदि मे विविधाकृति मास-अंकुरो को उत्पन्न कर देते है। इन्हें अर्श कहते है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोपज, सहज और रक्तज भेदसे ये आठ प्रकारके होते है। शोथ, अग्निमाद्य, विष्टभ, जघाओ मे वेदना, मलाल्पता, पाण्डुता, रक्तक्षीणता, निर्बलता, आध्मान, उदगार ये सभी अर्श के विकार है। अर्शगत दोषोंका निर्णय दोप के अपने अपने लक्षणोद्वारा करलेना चाहिये। सहज अर्श, त्रिदोपज के लक्षणोवाला होता हे। रक्तस्रावी अर्श रक्तज कहलाता है। गुदा की सवरणी नामकी वाह्य वलि मे होने वाला, नवोत्पन्न, एकदोपोल्बण अर्श सुखसाध्य, विसर्जनी नाम की दूसरी वलि मे उत्पन्न, दो दोषोल्वण, कृच्छ्रसाध्य तथा प्रवाहणी नाम की अन्त स्थित तृतीय वलि मे होने वाला त्रिदोपज अर्श असाध्य कहा गया है।

आहार की विपमता से उत्पन्न अजीर्ण तीन प्रकार का होता है। वात से, शूल तथा मलावरोध वाला विष्टब्ध, पित्त से, खट्टी डकारों से युक्त तथा मुह को धूमितसा करदेनेवाला विदग्ध और कफ से, भोजनोपरात अम्लतारहित उद्गारवाला आमाजीर्ण। 'रसशेप' यह अजीर्ण का चतुर्थ भेद है। इसमे अन्न के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। प्रथम तीन प्रकार के अजीर्णों से विपूचिका की तथा अलसक एव विलविका की भी उत्पत्ति होती है। वमन, अतिसार, प्यास, शूल, भ्रम, तोदयुक्त उद्वेष्टन (Painful cramps), मूत्राघात, अनिद्रा, कप, अरति और मोह आदि लक्षणो से युक्त विपूचिका असाध्य हे। वात की वृद्धि, पित्त की अतिवृद्धि तथा कफ की क्षीणता से भस्मक रोग उत्पन्न होता है जिस मे उपभुक्त सभी अन्न शीघ्र-भस्मसात् हो जाता है। ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग, श्वास, भ्रम, भोजन से अरुचि तथा मलातिप्रवृत्ति क्रिमि-रोगोत्पत्ति के लक्षण हे। अतिमैथुन, मद्य, अम्ल पदार्थोंका अति सेवन, दिवा-स्वप्न तथा मिट्टी आदि भक्षण करने से, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोपज तथा मृद्भुव ये पाच प्रकार के पाण्डुरोग उत्पन्न होते है। पांडुरोगी के त्वचा, नेत्र, मूत्र, मल तथा नाखून पीले पड जाते है। वह शोथ, वमि, ज्वर, श्वास, कास, मंदाग्नि आदि से ग्रस्त रहता है। हाथ-पैर मे शोथयुक्त तथा मध्य भाग मे क्षीणतावाला, अथवा इससे विपरीत अर्थात् मध्य में शोथयुक्त तथा हाथ पैर में क्षीणतावाला, तीव्रज्वर एवं अतिसार-पीडित पाण्डुरोगी असाध्य है। अत्यत पित्त-वर्धक पदार्थों के अतियोग से, पित्त, रक्त और मास के अत्यधिक दूपित होने पर कामलारोग उत्पन्न होता है। इसमे त्वचा, मूत्र, मल, नेत्र, नाखून आदि पीले पड जाते हैं। वृद्धिंगत यही कामला, पीत एव कृष्णत्वचा आदि से युक्त, कुंभ-कामला कहलाता है। प्रकुपित-पित्त, रक्त को दूषित करके, इसी

रक्त के साथ, ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्ग से निकल कर ऊर्ध्वग एवं अधोग भेद से दो प्रकार के रक्तपित्त को उत्पन्न कर देता है। कभी कभी अत्यत कुपित होने पर यह शरीर के समस्त रोम-कूपो मे से भी निकलने लगता है। मुख आदि ऊर्ध्व-भाग से निकलने वाला रक्तपित्त कफानुबन्धी, गुदाआदि अधोमार्ग से प्रवृत्त, वातानुबधी एव दोनो मार्गों से युगपत् नि.सरित रक्तपित्त कफवातानुबधी होता है जो क्रमश , साध्य, याप्य और असाध्य माना गया है।

ज्वर, अपचन, वमि, श्वास, तृषा, कास, निर्बलता, पाण्डुता, भोजनोत्तर प्रबल दाह, शिर सताप, अतिसार, अबुभुक्षा ये रक्तपित्त के उपद्रव है।

अतिमैथुन, अति व्यायाम, व्रण, शोक, ज्वर, अत्यत मार्गाटन आदि से प्रकुपित कफ-प्रधान तीनो दोष यक्ष्मा को उत्पन्न कर देते है। हाथ-पैर मे दाह, पार्श्व तथा स्कंध-प्रदेश में पीडा, मुख मे से कफ तथा रक्त का निर्गमन, वमन, ज्वर, वैस्वर्य, क्षुद्रश्वास, कास, मस्तक में भारीपन, नेत्रो मे श्वेतवर्णता, मास-भक्षण एव स्त्री से रमण करने की प्रबल इच्छा ये सब यक्ष्मा के लक्षण है। उर क्षत से उत्पन्न यक्ष्मा, वेदनासहित दुर्गंधमय कफ, पूय तथा रक्त की वान्ति से युक्त होता है। कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभेद, अरुचि तथा ज्वर इन छ. लक्षणो से युक्त अथवा ज्वर, कास और रक्तष्ठीवन इन तीनो लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा असाध्य होता है। प्रकुपित प्राण वायु उदानवायु से मिलकर, जब, ध्वनिपूर्वक, कफ-पित्त दोषोसहित सहसा मुख से बाहर निकलता है, तब इस अवस्था को कास कहते है। वात-पित्त तथा कफ से, क्षत से तथा क्षय से उत्पन्न कास पाच प्रकार की होती है। वात से शुष्क, पित्त से कटु और पित्तसहित पीले वमनवाली एव कफ से मुख को कफ से लिप्त कर देने वाली खासी आती है। क्षतज एव क्षयज कास असाध्य, किंतु बलवान रोगी को साध्य अथवा कभी कभी याप्य भी होती है। कास की तरह हिक्का भी प्रकुपित-प्राण-वायु से उत्पन्न होती है। अपनी-गति के क्रम से इसके भी पाच भेद है। यथा–अन्न के अधिक खाने से अन्नजा, एक बार मे दो वेगवाली यमला, जत्रुमूल (कंठ और उर स्थल का सधि-स्थान) से उठनेवाली मदवेग युक्त क्षुद्रा तथा नाभिप्रदेश से गभीरध्वनिपूर्वक निकलने वाली गभीरा तथा मर्मो को पीडित करती हुई सपूर्ण देह को कपित कर देनेवाली महाहिक्का। अतिम दो हिक्कायें असाध्य है। कफ-प्रकोप-पूर्वक चारो ओर से, कफ द्वारा सरुद्ध गति होकर प्रकुपित-वायु, जब वारवार ऊपर तथा नीचे उठता तथा आने लगता हो, तब श्वास रोग की उत्पत्ति होती है। हेतु-लक्षण-भेद से श्वास पाच प्रकार के होते हैं। महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्न, तमक और क्षुद्र। महाश्वास में निरतर फुफकार शब्दयुक्त वेदनासहित श्वास उठता है। ऊर्ध्वश्वास मे श्वास केवल ऊपर की ओर ही देर तक उठता है नीचे की ओर बहुत कम खिचता है। छिन्नश्वास मे पूर्ण शक्ति लगाने पर भी रुकरुक कर श्वास लिया जाता है। तमक श्वास ग्रीवा और मस्तक मे तीव्र वेदना युक्त होता है। क्षुद्रश्वास अल्प-हलके वेगवाला होता है। क्षुद्र और तमक साध्य एव अन्य तीनों श्वास असाध्य हैं।

बहुत ऊचे स्वर में बोलने से, विष-सेवन से तथा अभिघात सदृश अन्य प्रकोपक कारणो से प्रकुपित-वायु स्वरवाही स्रोतो में अधिष्ठित होकर स्वर को नष्ट करती हुई स्वर-भेद रोग की उत्पत्ति कर देती है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, मेदोज और क्षयज भेद से स्वरभेद छह प्रकार का होता है। ये अपने अपने उत्पादक दोषों के लक्षणो से युक्त रहते हैं। अंतिम तीन स्वरभेद असाध्य माने गये हैं। जब स्वाद-पूर्ण अन्न भी मुख में स्वादु न प्रतीत हो तब अरोचक होता है। यह वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्रोधज एव भयज-भेद से पांच प्रकार का है। अंतिम प्रकार के दोनो अरोचक आगन्तुज है। इसमे मुखस्वाद दोपानुसार होता है, किन्तु आगन्तुज मे मुखास्वाद स्वाभाविक रहता हुआ भी अरुचि बनी रहती है। मन के प्रतिकूल घृणा उत्पन्न करने वाले, नमकीन और चिकने पदार्थों के अतिसेवन से अजीर्ण एव अतिभोजन से, गर्भवती तथा अतिशीघ्र भोजन करने वाले को, वमन-रोग होता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज एवं घृणोत्पादक प्रसगो को देखने से पाच प्रकार के वमन उत्पन्न होते है। वात से श्याव, पित्त से पीत, कफ से श्वेत तथा त्रिदोष से, बीभत्सवस्तु से और गर्भवती को अनेक वर्णों से युक्त वमन होता है। कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, जीका मिचलाना, हृद्रोग, तमक-श्वास आदि वमन के उपद्रव हैं। निरतर पानी पीते रहने से भी जब तृषा का शमन न होता हो, प्रत्युत अधिकाधिक पानी पीने की इच्छा बनी रहती हो, तब तृष्णा रोग की उत्पत्ति होती है। रस के क्षय से उत्पन्न, हृदय में पीडा करनेवाली, नमकीन पदार्थों के तथा भोजन के अधिक करने से मोह, ज्वर, श्वास और कास को उत्पन्न करने वाली तृष्णा असाध्य है। वात-सहित प्रकुपित पित्त, तालु का आश्रय लेकर, तृषा को उत्पन्न करता है। तृष्णा के सात भेद हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयज, आमज और भक्तज। पित्त की प्रधानता वाले प्रकुपितदोष सज्ञावाही नाडियो को रुद्ध करके जब ज्ञानेन्द्रियों में प्रवेश करते है, तब मनुष्य चेतनारहित होकर मूर्छित हो जाता है। वात, पित्त, कफ, रक्त, मद्य तथा विष से उत्पन्न यह मूर्छा रोग छह प्रकार का होता है। जिस दोष की मूर्छा हो, उसमें उसी दोष के वर्ण से युक्त आकाश को देखता हुआ रोगी मूर्छित हो जाता है। मद्यज मूर्छा में रोगी विक्षिप्त चित्त होकर प्रलाप करता है। विषज मूर्छा में दाह, हृत्पीडा तथा वमन होता है। रक्त की गंध-मात्र से आनेवाली रक्तज मूर्छा के लक्षण पित्तज मूर्छा के समान जानने चाहिये। शरीर तथा मन के व्यापार को अवरुद्ध कर देनेवाला रोग सन्यास कहलाता है।

विधि-रहित मद्य पान करने से पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण तथा पानविभ्रम नामकी व्याधिया उत्पन्न हो जाती हैं। वमन, मूर्छा, दाह, ज्वर, प्रलाप, भ्रम, अरुचि, मल-प्रवृत्ति, अरति और कफाधिक्य आदि पानाजीर्ण आदि के लक्षण हैं। विधिरहित पान करने से शरीरस्थ ऊष्मा, पित्त तथा रक्त से निकल कर जब त्वचा में पहुंचती है तब भयकर दाह उत्पन्न होता है। इसे मद्यज-दाह कहते है।

विरुद्ध, दुष्ट और अपवित्र भोजन से, पूज्य व्यक्तियों का अपमान करने से, काम, भय, और शोक से मनोवाही स्रोतों के दूपित हो जाने पर उन्माद रोग की उत्पत्ति होती है। उन्माद रोगी किसी भी जगह विना प्रयोजन हंसने तथा गाने लगता है। बुद्धि और स्मृति दोनो ही खो बैठता है। विचित्र स्वप्न देखता है। भ्रम और उद्वेग से ग्रस्त रहता है। मन की छिपी बात को भी कह डालता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोपज, शोकज, और विषज भेद से उन्माद छह प्रकार का होता है। देव, दैत्य, पिशाच, राक्षस, सर्प, गधर्व, यक्ष, ग्रह और पितरों से यथाक्रम आविष्ट उन्मादरोगी पवित्र रहता है, देवताओ से विद्वेष रखता है, नग्न फिरा करता है, सर्प के समान पेटके वल सरकता है, अत्यत भोजन करता है, गाता है, पिण्डदानादि देता और तर्पण करता है। जो कापता रहे, जिसे निद्रा अधिक आये, फेनयुक्त वमन करे, अथवा पर्वत, वृक्ष, वाहन आदि से गिरकर पागल हुआ हो वह असाध्य होता है। इसी तरह तेरह वर्ष पुराना उन्माद रोग भी असाध्य माना जाता है। चिंता और शोक आदि से प्रकुपित दोप मस्तिष्क-गत स्रोतो को दूषित करते हुये स्मृतिनाश-पूर्वक अपस्मार रोग को उत्पन्न करते हैं। अंधकार, मुख में से फेनोद्गम, कंप, नेत्रादि की विकृति ये इस व्याधि के लक्षण हैं। वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज भेद से अपस्मार चार प्रकार का है। वातिक, पैत्तिक तथा श्लैष्मिक अपस्मार यथाक्रम बारह दिन, पंदरह दिन और एक मास पश्चात् अथवा त्रिदोषज किसी भी समय दौरा करता है।

वात से, आक्षेपादि अस्सी प्रकार की व्याधियां उत्पन्न होती है। उनमे से अति प्रसिद्ध कितने ही रोगो का यहा उल्लेख किया जाता है। यथा—आक्षेपक इससे शरीर में पुन पुन झटके आते हैं, खल्ली-पैर और जघाओ मे, ऊरु और हाथ के मूल मे ऐंठन उत्पन्न करनेवाली व्याधि, अष्ठीला-नाभि के नीचे मलमूत्रकी अवरोधक वेदना-पूर्ण ग्रंथी यदि यही ग्रथी उदर मे तिरछी उठी हुई रहे तथा पीडा युक्त हो तो प्रत्यष्ठीला कहाती है। आध्मान-उदर में पीडायुक्त आटोप, प्रत्याध्मान पार्श्व में, हृदय को छोडकर आमाशय मे, पीडायुक्त आटोप, तूनी-मलाशय और मूत्राशय से प्रारंभ होकर गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय का भेदन करने वाली पीडा, प्रतितूनी-गुदा तथा मूत्रेंद्रिय से प्रारभ होकर पक्वाशय की तरफ आवेगपूर्वक गति करने वाली पीडा, अर्दित-प्रकुपित वात से मुख के अर्धभाग का टेढा हो जाना तथा उसमे वेदना उठना, गृध्रसी-स्फिक् प्रदेश से प्रारभ होकर क्रमश: कटि के पिछले भाग, ऊरु, जानु, पिण्डली तथा पैरतक जाने वाली पीडा, क्रोष्टुशीर्ष (गीदड के मस्तक के समान स्थूलता)—घुटनो मे वात और रक्त की विकृति के कारण तीव्र पीडा युक्त शोथ, विश्वाची-बाहु के पृष्ठभाग से अंगुलियों के पृष्ठभाग पर्यंत तथा प्रकोष्ठ और हस्त तल-गत-भाग की कडरा को दूषित करके भुजा मे पीडा करने वाली व्याधि, खंज-जघा के ऊर्ध्व भाग गत कंडरा के आक्षेप पूर्वक टाग को अकर्मण्य बना देने वाली व्याधि, पङ्गु-दोनो टागों को अकर्मण्य करने वाली व्याधि, ऊर्ध्ववात-डकारों को प्रचुरमात्रा में उत्पन्न करने वाला रोग, मूकता वाणी को नष्ट कर

देती है, कलायखंज रोग मे व्यक्ति चलता हुआ कांपता तथा लंगडाता है तथा संधि-बंध शिथिल पड जाते है। अवबाहुक मे अंसप्रदेश गत सिराओं का संकोचन-प्रसारण स्थगित हो जाता है। हनुग्रह-इस मे मुख पूर्णतया खुला रहता है, अथवा सर्वथा बंद ही हो जाता है। सर्वांग की तथा शरीर के अर्ध भाग की चेष्टा नष्ट कर देने वाला रोग सर्वाङ्ग अथवा एकाङ्गघात कहलाता है। अंगों को धनुष्य के समान झुका देने-वाली तथा उनमे मूर्छा और आक्षेप उत्पन्न करनेवाली व्याधि अपतन्त्रक मानी गयी है। जिह्वास्तंभ मे जिह्वा के स्तंभित होने से रोगी अन्न पान करने मे तथा बोलने मे असमर्थ हो जाता है। शरीर को बाहर (पीठ) की तरफ झुका देने वाला तथा भीतर (उदर) की तरफ धनुष्य के समान झुका देनेवाला रोग क्रमश: बाह्यायाम और अन्तरायाम कहलाता है। वातजन्य रोग अत्यंत वृद्धिगत होने पर, मांस, बल और अग्नि से क्षीण व्यक्ति को मार डालते है।

अत्यंत मार्ग चलने से, अधिक सवारी करने से, विदाही अन्नादि के सेवन से, क्रोध करने से, वात तथा रक्त दूषित होकर वातरक्त नामका रोग उत्पन्न कर देते हैं शरीर मे भारीपन, तोदन, खुजली, त्वचा का विवर्ण हो जाना तथा चकत्तों का पड़ जाना, उदर्द, अङ्गों मे संकुचन और शोथ ये वातरक्तके लक्षण हैं। वातरक्त मे वाताधिक्य से तीव्र वेदना, पित्ताधिक्य से दाह तथा रक्त मे अधिक सुर्खी, कफाधिक्य से शरीर मे भारीपन उत्पन्न होता है। द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज वातरक्त दोनो तथा तीनों दोषो के लक्षणो से युक्त होते है। मोह, दाह, ज्वर, अनिद्रा, पङ्गुता, अंगुलियों मे टेढापन, मर्म (सिर, हृदय और वस्ति में) पीडा, भ्रम और अर्बुद ये वातरक्त के दस उपद्रव है। अपने अपने प्रकोपक कारणो से आम-रस तथा वायु युगपत् प्रकुपित होकर आम-वात रोग उत्पन्न करते है। यह शोथ-युक्त होता है तथा संधियो मे पीडा उत्पन्न करता हुआ उनको जकड देता है। ज्वर, अजीर्ण, अग्निमांद्य तथा तृष्णा ये आमवात के लक्षण है। वात-जन्य प्रवृद्ध आमवात मे वेदना, पित्तज मे दाह कफज मे स्तैमित्य एवं देह मे भारीपन, तथा त्रिदोषज आमवात में तीनो दोषों के लक्षण होते है। अंगों मे जडता, अन्त्र-कूजन, आनाह, प्यास, वमन, बहु मूत्रता शूल तथा निद्रानाश ये आमवात के आठ उपद्रव हैं।

शरीरके किसी एक ही प्रदेश मे अत्यंत वेदना को शूल कहते हैं। मटर, मूंग अरहर, शिंबीधान्य आदि के अत्यंत सेवन से प्रकुपित दोष—वातज, पित्तज, कफज द्वन्द्वज, त्रिदोषज, और आमज भेद से आठ प्रकार के शूलों को उत्पन्न करते है। पित्त से नाभि मे, वात से वस्ति, हृदय तथा पार्श्व मे, कफ से एव आम से आमाशय में शूल उठता है। इसी तरह दो दो मिलित दोषो से उत्पन्न शूल दोनो दोषों के स्थानों मे तथा त्रिदोषज, तीनो दोषों के स्थानो मे उत्पन्न होता है। वेदना, आनाह, सर्व प्रकार के मूर्छाय, तृषा, मूत्रकृच्छ्र, भारीपन, अरुचि, कास, श्वास और हिक्का ये शूल के दश उपद्रव हैं। अपने स्थान से प्रच्युत कफ, पित्त मे मिलकर वायुसहित, भोजन परिपाक काल मे जिस शूल को उत्पन्न करता है, वह परिणाम-शूल कहलाता है।

अधोवायु, मल, मूत्र, जृंभा, अश्रु, छींक, उद्गार, वमन, शुक्र, श्रमश्वास तथा निद्रा के वेग को रोकने से उदावर्त रोग की उत्पत्ति होती है। वात के निरोध से आध्मान, मल से मल की ऊर्ध्व प्रवृत्ति, मूत्र से बस्ति में शोथ तथा वेदना, जृंभा से शीर्ष-पीडा, अश्रु से नेत्र-रोग; छींक से इन्द्रियदौर्बल्य तथा ग्लानि; उद्गार से वात-रोग, वमन से कुष्ठ आदि, शुक्र से शुक्राश्मरी आदि, क्षुधा से दृष्टि की मंदता, प्यास से अत्यधिक तृषा, श्रमश्वास से हृदय-रोग, निद्रा से आलस्य आदि विकारों की उत्पत्ति होती है। मल का वमन करने वाला, बेचैन, क्षीण, शूलयुक्त, तथा तृषा पीडित उदावर्त रोगी असाध्य है।

हृदय और नाभि के बीच मे चल अथवा अचल, कभी घटने और कभी बढने वाली गोलाकार ग्रन्थि को गुल्म कहते है। यह दोनो पार्श्व, हृदय, नाभि और बस्ति इन पांच स्थानो में होता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा रक्तज भेद से पाच प्रकार के गुल्म होते है। वातज गुल्म अन्न के जीर्ण होने पर, पित्तज अन्न की पच्यमान अवस्था मे तथा कफज अन्न के खाते ही प्रकुपित होता है। त्रिदोषज गुल्म हमेशा प्रकुपित रहता है। नवीन-प्रसव होने पर, गर्भ-स्राव होने पर, अथवा आर्तव के प्रवृत्ति काल में मिथ्या आहार-विहार से गर्भाशय-गत प्रकुपित-वायु रक्त को अवरुद्ध करके पैत्तिक-गुल्म के समान ही गुल्म की उत्पत्ति कर देता है। यह गुल्म अंगों से रहित, किंतु स्पंदन से युक्त, पीडा तथा दाह करने वाला, पिण्डित आकार का, लक्षणो मे गर्भ से मिलता जुलता होता है। इसकी चिकित्सा दसवां मास व्यतीत होने पर ही करनी चाहिये। जिस गुल्म का मूल दृढ हो, जिसमे श्वास, शूल, पिपासा तथा भोजन आदि से अरुचि हो जाये तथा दुर्बलता उत्पन्न हो गयी हो वह गुल्म असाध्य है। प्रकुपित दोष हृदय मे अवस्थित होकर रस को दूपित करते हुये हृदय मे विकार उत्पन्न कर देते है। इसी को हृदय-रोग कहते है। वातज, पित्तज, कफज, और त्रिदोषज तथा क्रिमिज भेद से हृद्रोग पाच प्रकार का होता है। क्लम, अवसाद, भ्रम, शोष ये हृद्रोग के उपद्रव है।

मूत्र नलिका के मूल, मध्य अथवा अग्र भाग मे रुकरुक कर दाह एवं पीडा युक्त एक एक बिंदु जब मूत्र उतरने लगे तब वह मूत्रकृच्छ्र रोग कहलाता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शल्याभिघातज, पुरीषज, शुक्रज और अश्मरीजन्य इस तरह यह आठ प्रकार का माना गया है। वात से पीडा, पित्त से दाह और कफ से मूत्रेन्द्रिय मे भारीपन आदि लक्षण उत्पन्न होते है। त्रिदोषज मे सभी दोपो के लक्षण उपलब्ध होते है। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र मे मूत्र दो धाराओ मे विभक्त होकर उतरता है। विड्-क्षोभ से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र मे पुरीष की दुर्गंध आती है। शल्याभिघातज में मूत्र भयंकर वेदना सहित उतरता है। शुक्रज मे शुक्रसहित, अत्यत वेदना पूर्वक मूत्रत्याग होता है। बस्ति तथा मेढ्र मे वेदना और दाह युक्त, आटोपवाला मूत्रकृच्छ्र असाध्य कहा गया है। मलमूत्रादि के वेग को रोकने से प्रकुपित वायु के कारण जब मूत्र रुक

रुक कर धीरे धीरे उतरता हो तब मूत्राघात की उत्पत्ति होती है। जब वायु बस्तिगत शुक्र, मूत्र, पित्त अथवा कफ को दूषित करके सुखा देता है तब गाय के पित्ताशय में रोचना के समान क्रमशः अश्मरी की उत्पत्ति होती है। सभी अश्मरी त्रिदोषज कही गयी हैं। नाभी, सेवनी या अण्डकोष एवं गुदा के मध्य में तथा बस्तिशिर (पेडू) में पीडा होना, अश्मरीद्वारा मूत्रमार्ग के अवरुद्ध हो जाने पर मूत्र का अनेक धाराओं में विशीर्ण होकर निकलना, गोमेद के समान कुछ रक्तवर्ण मूत्र का कष्टपूर्वक त्याग करना, ज्वर का रहना आदि ये अश्मरी के लक्षण हैं। दोषज अश्मरियां प्राय बालकों में ही पायी जाती हैं। शुक्राश्मरी–शुक्र का वेग धारण करने से युवा पुरुषों को ही होती है जिस रुग्ण के अण्डकोष वा नाभि में शोथ आ गया हो, मूत्र रुक गया हो, जिसे अत्यधिक पीडा होती हो तथा अश्मरी के साथ शर्करा अथवा सिकता का अनुबन्ध हो उसे असाध्य समझना चाहिये। अधिक बैठे रहने से, विधिरहित शयन करने से, दही, सुरा, आनूप मांस, नवान्न तथा गुडनिर्मित एवं कफवर्धक सभी पदार्थों के अति सेवन से प्रमेह रोग उत्पन्न होता है। मूत्रगत वर्ण एवं गंध आदि के भेद से प्रमेह के भेद कहे गये हैं। कफोत्थ प्रमेह, चिकित्सा सौकर्य के कारण, पित्तज, चिकित्सा की विषमता के कारण तथा वातज, चिकित्सा की महा असफलता के कारण क्रमश साध्य याप्य एवं असाध्य माने जाते हैं। कफज प्रमेह दस हैं–उदक, इक्षु, सान्द्र, सुरा, शुक्र, पिष्ट, लाला, शनैः, सिकता, और शीत। पित्तज प्रमेह छ हैं–माजिष्ठ, हारिद्रक, नील, काल, रक्त और क्षार। वातज प्रमेह चार हैं–मज्जा, वसा, हस्तिमेह और मधुमेह। प्रमेह के उपद्रव, दोषों के प्रकोपलक्षणों के समान ही होते हैं। प्रमेह की उपेक्षा करने से, शरावी, कच्छपी, मसूरी, विनता, पुत्रिणी, जालिनी, अलजी, विदारिका, विलेपी, आदि अपने नामानुरूप आकृति वाली विद्रधियां-प्रमेह पिडिकायें-उत्पन्न होती हैं। प्रमेह में श्लेष्मोत्पादक आहार विहार करने से मेदोवृद्धि पूर्वक मनुष्य के उदर, नितंब, स्तन आदि स्थूल हो जाते हैं एवं वह किसी भी कार्य करने की शक्ति तथा उत्साह से रहित हो जाता है। रोग से दुर्बल की चिकित्सा हो सकती है किंतु जो स्वभाव से भी दुर्बल बनगया हो उसकी चिकित्सा नहीं है।

अहित अन्न के सेवन से, अग्नि के मंद हो जाने पर, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर तथा जलोदर भेद से आठ प्रकार के उदर रोगों की उत्पत्ति होती है। अधोवात तथा मल का अवरोध, दुर्बलता, उदर का फूल जाना, अग्निमांद्य, बस्ति में वेदना, दाह, आध्मान आदि सभी प्रकार के उदरों के लक्षण हैं। वात, पित्त एवं कफ से, उदरगत सिरायें, क्रमश· कृष्ण, पीत तथा श्वेत हो जाती हैं। दुष्टजल, नख, मल, लोम, स्त्रियों का, अन्यद्वारा (वशीकरणार्थ) प्रदत्त आर्तव, दूषी-विष, कृत्रिमविष आदि से नाभी के ऊपर मेरुवत् उभरा हुआ दाहयुक्त सन्निपातोदर उत्पन्न होता है। जीर्णज्वर से वामपार्श्वाश्रित प्लीहोदर की तथा शोणित से दक्षिणपार्श्व में यकृत् दाली नामक उदर की उत्पत्ति होती है। वेदनापूर्ण जिस उदर में, वात से

गुद के बद्ध हो जाने पर मलमूत्रादि बाहर न निकलते हों वह बद्धोदर कहलाता है। भोजन गत-तृण-कण्टकादि तीक्ष्णशल्यो के कारण छिद्रित-अंत्रों मे से जल गुदामार्ग-द्वारा बाहर निकलता रहता है। जो निःसरित नहीं होता वह भीतर ही सचित होता हुआ नाभी से नीचे उदर को बढाता रहता है। इसे परिस्रावी अथवा छिद्रोदर कहते हैं। स्नेहपानानन्तर, अति शीतल जल पीने से, वमन से और विरेचन से, जल-पूर्ण पखाल के तुल्य, नाभी के नीचे के भाग मे जलोदर उत्पन्न होता है। बद्धोदर तथा क्षतोदर पंदरह दिवस पीछे मृत्यु कर देते हैं। इसी तरह अतिम अवस्था में जलोदरता को प्राप्त सभी प्रकार के उदर प्राय मृत्यु सूचक माने गये हैं।

नमकीन, अम्ल, दूषितजल, विरुद्धभोजन, दही, मिट्टी और विष से, वमनविरेचनादि पंचकर्मजन्य क्षीणता से तथा अपचारादि कारणों से मनुष्य को श्वयथु हो जाता है। सिराओं का सूक्ष्म हो जाना, निर्बलता, रोमांच, शरीर मे उभरापन, भारीपन, दाह तथा अनवस्थितता ये सभी श्वयथु के लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोपज, अभिघातज और विपज इस तरह श्वयथु नौ प्रकार का होता है। इन श्वयथुओ के लक्षण, इनके प्रकोपक दोषों के लक्षणों से, तथा अभिघातज के लक्षण उसके उत्पादक-हेतु लक्षणो से समझ लेने चाहिये। (जैसे भिलावे से उत्पन्न श्वयथु पित्त लक्षणवाला होता है)। विषैले प्राणियों के दंश, मल, मूत्र आदि से उत्पन्न श्वयथु विपज कहलाता है। अनेकों उपद्रवो से युक्त शोथ, पैरों से ऊपर की ओर फैलनेवाला, पुरुप का शोथ, मुख से नीचे की ओर फैलनेवाला, स्त्री का शोथ, कुक्षि तथा गुह्यभाग में उत्पन्न शोथ मृत्यु के सूचक है। प्रकुपित वायु अभिसरण करता हुआ जब वंक्षण से अंडकोपों को प्राप्त होता है तब वह अंडकोषों की सिराओं में पीडा उत्पन्न करता हुआ उनकी 'वृद्धि' कर देता है। इसे वृद्धिरोग कहते हैं। अभिघातादि से प्रकुपित वायु वक्षण के नीचे क्षुद्रान्त्र को धकेल कर वेदना तथा ध्वनि युक्त अंत्रवृद्धि रोग की उत्पत्ति करता है। वायु से उत्पन्न वंक्षणगत-ग्रन्थि को वध्म-कहते हैं। पादगत शोफ श्लीपद कहाता है। उपेक्षित व्रण जब नाडी में दूरतक फैल जाता है, तब वह नाडीव्रण कहलाता है। गुदा के आस पास दो अंगुल परिसर में वेदनायुक्त, भिन्न मुख वाली पिडिका (व्रण) को भगंदर समझना चाहिये। वात से अनेक मुखवाला, वेदना और क्लेद से युक्त शतयोनक; पित्त से उष्ट्रग्रीव, कफ से परिस्रावी, त्रिदोष से शंबूकावर्तक और उन्मार्गग इस तरह भगंदर पांच प्रकार के होते है। अत्यंत गहरा, शुक्र और मूत्र के स्राव से युक्त, भगंदर असाध्य है। गले के एक ही भाग में उत्पन्न अपक्व श्वयथु गलगंड कहलाता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज और आगन्तुज भेद से ग्रंथि छह प्रकार की होती है। यह अपक्व ही रहती है। पक्व होने पर यही अर्बुद कहाता है। मेद तथा कफ से गले में उत्पन्न गंडे जैसी अनेकों ग्रंथियां गण्डमाल रोग कहलाता है। यह ग्रंथियां चिरकाल तक अपक्व अवस्था ही में रहती हैं। दाह तथा वेदना युक्त मुष्टिप्रमाण-शोथसह ग्रंथी, विद्रधि कहलाती है।

भीतर और बाहर उत्पत्तिभेद से यह दो प्रकार की मानी गयी है। वातज, पित्तज, कफज, रक्तज और क्षतज भेदसे विद्रधियां छह प्रकार की हैं। ग्रथितोन्नतबाह्यविद्रधि नाभी आदि प्रदेश मे, आन्तर विद्रधि वस्ति, यकृत्, प्लीहा, क्लोम, हृदय, कुक्षि, वंक्षण, वृक्क आदि स्थानों में कहीं भी उत्पन्न हो सकती है। पायुगत विद्रधि अपानवायु तथा मल का रोध करती है। कुक्षिगत विद्रधि वातजन्य वेदना को, नाभि गत हिक्का को, हृदयगत श्वास को, प्लीहागत श्वासावरोध को, यकृत् गत निरतर खांसी को तथा वक्षण गत कटि-ग्रह को उत्पन्न करती है। युवास्त्रियो के स्तनगत रक्तविद्रधि को स्तन-विद्रधि कहते है। यह विद्रधि शोथ, पीडा, दाह और पाक से युक्त होती है।

विरुद्ध आहार, पापकर्म, वमनविरेचनादि पचकर्म मे अपचार, कलुपित स्त्री से रति, मद्य, मांस, दुष्ट जल आदि कुष्ठ को उत्पन्न कर देते है। वात से रूक्षतायुक्त कापाल, पित्त से औदुंबर, कफ से श्वेतवर्ण युक्त मडल और विचर्ची, त्रिदोष से गुजा के समान वेदनापूर्ण काकण, वातपित्त से कफयुक्त तथा रक्त और श्वेतवर्णवाला ऋक्षजिह्व, कफपित्त से श्वेत-कमल-दल के समान पुडरीक, दद्रु, शतारुपी, विस्फोट, पामा और चर्मदल तथा वातकफ से चर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलस, विपादिका नाम के कुष्ठ उत्पन्न होते है। इनमे कपाल, औदुवर, मडल, दद्रु, काकण, पुंडरीक तथा ऋक्षजिह्व ये सात महाकुष्ठ कहलाते हैं। हस्तिचर्मवत्-चर्मकुष्ठ, किण (दाने) के समान, किटिभ, त्वचा का दारण करने वाला-चर्मदल, पाणि-तल-गत-पामा, खुजली तथा अरुचि उत्पन्न करनेवाला-विचर्ची, सभी कुष्ठों के लक्षणो से युक्त काकण, मेढ् के आस पास होने वाला कच्छू, पैरो का दारण करने वाला विपादिका, ऊर्ध्व देह मे होनेवाला, अलाबु-पुष्प के वर्ण जैसा, सिध्म, स्थूल-मूलवाला तथा अनेको व्रणो से युक्त शतारु, शोण-मडलवाला अलस तथा मत्स्य के टुकडे के समान एककुष्ठ कहलाता हे। श्वेतवर्ण के चकत्तोवाला श्वित्रकुष्ठ माना गया है।

शरीर पर, भ्रमरी से दष्ट शोथ के समान, शीतपित्त के कारण खुजली से युक्त वमन तथा ज्वर उत्पन्न कर देने वाला रोग उदर्द कहलाता है। अरुचि, अजीर्ण, क्लम, गुरुता, उत्क्लेद युक्त, तिक्त और अम्ल उद्गारो सहित तथा हृदय और कण्ठ मे दाहोत्पादक अम्लपित्त रोग कहा गया है। अत्यंत दाह, पीडा, अरति, रक्तस्राव तथा अरुचि को उत्पन्न करने वाला, क्षुद्र व्रणो से युक्त, शरीर मे सर्वत्र परिसर्पण (फैलने) करने वाला विसर्प रोग होता है। ज्वर, वमन, और भ्रम से युक्त, बालको के हस्त-पाद-तल पर होने वाली छोटी छोटी फुन्सियों को मसूरिका रोग कहते है। मंदाग्नि से ग्रस्त होने पर यह रोग असाध्य कहलाता है। अग्निदाह-जन्य स्फोट के समान अत्यधिक वेदनावाला, विष के सदृश मृत्युकारक विस्फोट, स्वनाम से प्रसिद्ध रोग है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज भेद ये पाच प्रकार के होते है।

वयस्कों को होने वाले रोग छोटे बच्चों को भी होते है। कितु देह, अग्नि तथा दोषादि की अल्पता के कारण वे अल्प-वेग वाले ही रहते है। क्षीरालसक,

लालास्राव, अतिरोदन, गुदा और मुख में पाक, दन्तोद्भेद, ग्रहादि से ग्रस्तता आदि खास बालको के रोग है जिनके कारण बालक अनिद्रित रहते हैं, रोते है तथा कृश हो जाते हैं। चतुर्थ मास तक गर्भ-पात, गर्भस्राव कहलाता है। इससे आगे के महिनो मे अपने स्थान से च्युत किंतु बाहर न निकलने वाले गर्भ को मूढगर्भ कहते है। अपचारादि से गर्भ के नष्ट हो जाने के कारण, बुद्धि-विनाशपूर्वक गर्भिणी का गर्भ स्पंदन से रहित हो जाता है। इसमे, मलकी अत्यंत प्रवृत्ति, शैत्य, प्यास, कप तथा ज्वर इन लक्षणो से युक्त होने पर गर्भिणी असाध्य कही जाती है। अंग मर्द, ज्वर, कप, प्यास, शरीर में भारीपन, दाह, शोथ और अतिसार ये सूतिका-रोग के लक्षण है। योनि से रक्त-स्राव प्रदर रोग कहाता है। अनार्तव रोग मे वेदना, अंगमर्द, दुर्बलता, प्यास, क्षुधा, पाण्डुता और दाह उत्पन्न होते है। शशक के रक्त जैसे वर्ण वाला एव पानी से धोने पर जिसका रग वस्त्र पर से हट जाये वह शुद्ध आर्तव कहलाता है। अत्यंत मैथुन परायण तथा वाजीकरण औषधियों का सेवन न करने वाले को शुक्र-क्षय के कारण ध्वजभग-रोग हो जाता है। सहज एव मर्मच्छेद से उत्पन्न नपुसकता असाध्य है। अन्य साध्य क्लैव्य मे वाजीकरण चिकित्सा हितावह है।

धूलि, धूप तथा धूम के अतियोग से, अम्ल और तीक्ष्ण पदार्थों का तथा शाको का प्रचुर मात्रा मे सेवन करने से, अत्यत स्त्रीप्रसग से, अधिक जागरण से, गडूष, अंजन, नस्य आदि न लेने से मनुष्य को नेत्र के विविध रोग हो जाते है। तिमिर, पटल, काच, अभिष्यंद, अधिमन्थ, पक्ष्मकोप, व्रणकोप आदि नेत्ररोग कहे गये है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रक्तज भेद से पाच प्रकार के नेत्रकोप होते है। यह रोग आमावस्था में वेदना, अश्रु-स्राव, रताश, शोथ आदि से तथा पक्वावस्था मे इनसे विपरीत लक्षणो से युक्त होता है। तिमिर में एकरूप तथा पटल में सभी रूप अस्पष्ट दीख पडते हैं। काच-रोग मे दृष्टि सूक्ष्म-वस्त्र से आच्छन्न जैसी हो जाती है। इसमें नेत्र ऊपर की ओर ही देखते है—नीचे की तरफ नहीं।

अकालपालित्य, पीडायुक्त सूर्यावर्त, अर्धावभेदक, इन्द्रलुप्त, केशपात आदि शिरोरोग है। प्रकुपित वायु कफ को साथ मे लेकर कर्ण-मल को दूषित करता हुआ, कर्ण-पाक, बाधिर्य, शूल, कर्ण-स्राव, आदि कान के रोगो की उत्पत्ति कर देता है। अर्श, रक्तस्राव, पिडिका, पूयस्राव, पीनस, प्रतिश्याय, छिक्का इत्यादि नासिका के रोग है। कफ, रक्त से युक्त होकर, दन्तार्श, दन्तचालन आदि दात के तथा दौर्गन्ध्य, पिडिका, पाक, मूकता आदि मुख के रोगो का हेतु बनता है। जिह्वागत जडता, शीर्ष-पीडा, दाह, भ्रम, उन्माद, अरुचि, ज्वर, श्वास, हिक्का और दंतहर्ष ये स्थावरविष के लक्षण है। दंश स्थल की विवर्णता और शोथ से, सेक, विरेक, तम और भ्रम से, निद्रा, नेत्र-गत रक्तता और जिह्वा की जडता से, सर्प-विष के लक्षण जानने चाहिये। वृश्चिक के दंश से, प्रज्वलित अंगार से दग्ध हो जाने जैसी-वेदना होती है। इसी तरह अन्य विषोका भी दाह, वेदना, मोह आदि अपने अपने लक्षणोद्वारा, निर्णय कर लेना चाहिये।)

क्षुधाऽथवा दोष इति स संशये कांस्यं सतोयं ह्यधिनाभि वर्तयेत् ।
स्वास्थ्ये मनाक् पथ्यमरं प्रदापयेन्नो चेत् पुनर्लङ्घनमेव कारयेत् ॥ १० ॥

योगसंख्या

१ एरण्डरास्नामिसितीक्ष्णपत्रकैः[1] सकृष्णजीरत्रुटिनागकेसरैः ।
कषायकः पाचनदीपनः परः पितामहैर्मेऽयमुदाहृतो नवः ॥ ११ ॥
२ अमृताचपलाङ्घ्रि[2]विश्वतोयं पिबतः स्यात् पवनज्वरः कुतोऽयम् ।
३ अथ नागरधान्यदेवदारुबृहतीसाधिततोयमत्र चारु ॥ १२ ॥
४ पीयूषव्रततिवरीजलं गुडेन पीतं सञ्जयति मरुज्ज्वरं क्षणेन ।
५ गोपी[3]स्त्रीमिपिर्मधुराभिधोपकुल्याकौन्त्यः[4] स्युस्तरलतराक्षि ! पूर्वतुल्याः[5][6]
६ द्राक्षामिपिक्लीतकलार्वनप्साशम्पाकपोटासुमकन्दसिद्धः[7][8][9][10] ।
सितासहायः कुरुते कषायः पित्तज्वरानाहविदाहहानिम् ॥ १४ ॥

रुद्रावतार के रूप मे जिसकी स्तुति देवगण भी करते हैं, जिसने भगवान शकर का उपहास करनेवाले दक्ष का दमन किया, वह ज्वरनामधारी, अपथ्य सेवी को अत्यत त्रास देने वाला परम वीर 'वीरभद्र' मेरे ऊपर कृपा करे। जब यह शका हो कि यह मनुष्य क्षुधा से पीडित है, अथवा रोग से तब उसकी नाभिप्रदेश पर जलपूर्ण कांस्य-पात्र रखना चाहिये। यदि जल मे कुछ भी विकृति न हो तो समझ लेना चाहिये कि वह क्षुधार्त है तथा शीघ्र ही पर्याप्त मात्रा में उसे पथ्य भोजन कराना चाहिये। जल के विकृत होने पर उसे रोगार्त जानकर लंघन ही करना उचित होगा ॥ ९-१० ॥

एरड, रास्ना, सौंफ, पोदीना (अथवा तेजपत्र), काला जीरा, इलायची और नागकेसर इनका कषाय उत्तम पाचनदीपन है। यह नूतन प्रयोग मुझे मेरे पूज्य पितामह विष्णुरामजी से प्राप्त हुआ है ॥ ११ ॥

गुडूची, पिप्पलीमूल और शुंठि से सिद्ध जल का पान करनेवाले को वातज्वर कहा हो सकता है? अथवा शुंठि, धनिया, देवदारु और कण्टकारी से सिद्ध किया गया पानी वातज्वर मे प्रशस्त कहा गया है ॥ १२ ॥

शतावरी एवं गुडूची से साधित जल मे गुड मिला कर पीने से वातज्वर क्षण में नष्ट हो जाता है। हे अतिचपल नेत्रवाली! सारिवा, सौंफ, द्राक्षा, पिप्पली तथा रेणुक-बीजद्वारा सिद्ध-जल भी पूर्ववत् गुणकारक होता है ॥ १३ ॥

द्राक्षा, सौंफ, मुलेठी, खूबकला, बनप्सा, अमलतास, चिरपोटा और गुलकंद इनसे सिद्ध कषाय मे मिश्री मिला कर पीने से पित्तज्वर, आफरा और दाह क्षीण हो जाते हैं ॥ १४ ॥

१-तीक्ष्णपत्र 'पोदीना' इति प्रसिद्धम् । २-पिप्पलीमूलम् । ३-सारिवा । ४-द्राक्षा । ५-सबुद्धि । ६-मरुज्ज्वरघ्न । ७-मधुकम् । ८-'खूबकला' इति लोके यवनवैद्यै प्रचारितनामधेया । ९-'चिरपोटा, मको' इति ख्याता । १०-गुलकन्द । स च गुलाबपुष्पजो व्याधिघातपुष्पजो वाऽत्र शस्त ।

७ प्रेयस्याह्वय पद्मजं दयित ! (क)स्वर्णोपमेयद्युते !
संबुद्धिं वद दुर्जनस्य किमु(रे)कः सूक्ष्मवाच्यस्त्वणुः [अणुः] ।
त्रातः को हरिणा (करेणु)रथ स त्यक्त्वाऽधुनाऽऽद्याक्षरं
वक्तव्यो हरिणाक्षि ! (रेणु)रिति तत्क्वाथोऽस्ति पित्तज्वरम् ॥ १५ ॥

८ नयनचुलुकनीये ! तानि पेयानि पुंसा
ज्वरस्यरुजि चत्वार्यौषधानि प्रपाच्य ।
रसिक ! कथय तेषां नामधेयानि मह्यं
शृणु शशिमुखि ! 'मिश्री, सौंफ, मक्को, वनप्सा' ॥ १६ ॥

९ वादरदलकल्कं जललुलितं पूतं प्रमथ्य फेनान्तम् ।
लवणं किमपि विकीर्य क्वथितं पिव विहितपित्ततापान्तम् ॥ १७ ॥

पित्त-ज्वर मे रेणु (कमल-केसर अथवा पित्तपापडे) का क्वाथ-प्रशस्त माना जाता है। इसी प्रयोग को प्रस्तुत श्लोक मे विलक्षणरूप से व्यक्त किया गया है। किसी पित्तज्वरित की चिकित्सार्थ एक युवति वैद्य के पास जाती है। वैद्य-मस्त-प्रकृति के हैं–वह सीधी रीति से उपरोक्त प्रयोग न बताते हुये पूछते है। हे सुदरी ! रूग्ण के लिये पद्मज (कमल-रेणु अथवा पित्तपापडे) का आह्वान करो'। स्त्री बराबर न समझने के कारण पूछती है। 'यह स्वर्ण-वर्ण-तेज वाला' का (ब्रह्मा) है क्या ? (पद्मज का अर्थ ब्रह्मा भी होता है।) वैद्य उसकी अज्ञानता समझ गये, अत फिर पूछते है। अच्छा, कहो, दुष्ट का क्या सबोधन है ? सुदरी कहती है 'रे'। वैद्य पुनः प्रश्न करते है। 'सूक्ष्म-वाच्य कौनसा शब्द है' ? उत्तर मिलता है 'अणु'। इस तरह 'क रे अणु' यह तीन शब्द कहलवा कर, वैद्यराज, युवती को अपने अभिप्रेत औषधीय द्रव्य-वाचक शब्द के और भी निकट लाते हुये पुन· पूछते है 'अच्छा, बताओ भगवान् 'हरि ने किस की रक्षा की' ? उत्तर मिलता है 'करेणु' (हाथी) की'। वैद्य महोदय प्रसन्न होते हुये कहते है, हे सुंदरी ! रोगी से कहो कि 'करेणु'के आदि अक्षर 'क' को छोडकर अवशिष्ट शब्दवाच्य 'रेणु' का क्वाथ पीएं, यह पित्तज्वर को मिटा देगा। (चरक ने पद्म-किजल्क-केसर को रक्त-पित्त-हर औषधियो मे प्रधान माना है। यथा– 'उत्पलकुमुदपद्मकिंजल्क सग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्'–च सू अ २५) ॥ १५ ॥

हे चपल-नेत्रवाली ! 'ज्वर-वेग से पीडित को चार औषधियो का क्वाथ सिद्ध करके पीना चाहिये'। हे रसिक ! 'उनके नाम तो कहिये' हे चद्रमुखी ! उनके नाम ये है 'मिश्री, सौफ, मक्को और बनप्सा' ॥ १६ ॥

बैर के पत्तो को महीन पीस उसमे पानी मिला कर छानलें। फिर उसे तब तक

१–अस्य योगस्य प्रसिद्धत्वेऽपि विच्छित्तिविशेषदर्शनार्थमभिधानम्। २–इदं सस्कृत-प्राकृतजातेरुदाहरणम्। यदुक्त विदग्धमुखमण्डने–"भाषाभिश्चित्रितं यत् स्यात् सस्कृत-प्राकृतादिभि । सन्तश्चित्रं तदिच्छन्ति सशुद्ध त्वेकभाषया ॥" इति। एवमग्रेऽप्यनेकभाषा-निबद्धाना पद्यानां तथा चित्रगुच्छकोक्तचतुर्भाषानिवद्धपद्यस्यापि चित्रत्वमवधेयम्।

१० भार्गीकुलिञ्जनकिरातशटीमरीचदेवद्रुदीप्यचविकानलकुष्ठविश्वैः ।
सिंहीसुधाव्रततिपौष्करशृङ्गिकाद्यैः कृतः कफज्वरजयी सकणः कषायः ॥ १८ ॥
११ देवदारुबृहत्यग्निशुण्ठीपौष्करसाधितः ।
कषायो वारयेद्वायुसहायं श्लैष्मिकं ज्वरम् ॥ १९ ॥
१२ मौक्तिकसुवर्णगिलनं लवङ्गमण्डूकपर्णिकातोयम् ।
मक्षीगीतकषायो वज्रान्नं मौक्तिकज्वरे शस्तम् ॥ २० ॥
१३ संचूर्ण्य भुक्तमसकृन्नवमृदुलसिलिन्दमोदिनीमूलम् ।
मौक्तिकञरज्वररुजं जयति न किं झटिति गाढतरमूलम् ॥ २१ ॥
१४ वनप्सिकाशार्करसंगतात्मना किरातपीयूषलताशृतेन यः ।
द्विसंध्यमासप्तदिनं पिबेत् कलां न तस्य जीर्णज्वरनिर्मिता रुजः ॥ २२ ॥
१५ धान्यनागरनिर्यूहः सनिम्बूकाम्बुशर्करः ।
शारदं ज्वरमह्नाय प्रसह्य हरतेतराम् ॥ २३ ॥

मथते रहे जब तक फेन न निकलने लगे। जब फेन खूब उभर आयें तब उसमें थोडा सैंधव डाल कर उसे उकाल कर पी जावें। इससे पित्त-जन्य ताप का अन्त हो जाता है ॥ १७ ॥

भारगी, कुलिंजन, चिरायता, कपूरकाचरी, मिर्च, देवदारु, अजवायन चव्य, चित्रक, कूठ, शुण्ठि, बडी कण्टकारी, गुडूची, पुष्करमूल और अति-विषा (अथवा काकडासींगी) इनके कषाय में थोडा पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से कफ-ज्वर पर विजय प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

देवदारु, बृहती (बडी कण्टकारी) चित्रक, सूंठ तथा पुष्कर-मूल से सिद्ध कषाय कफ-वात ज्वर को हटा देता है ॥ १९ ॥

मोती और स्वर्ण का निगलना, लौंग और मण्डूकपर्णी से सिद्ध जल का पान, दो या तीन मक्खियों का कषाय एवं बाजरे (बाजरे के फूले) का सेवन, मोतीझरे में प्रशस्त है। बबूल वृक्ष की नूतन कोमल जड को बारबार चूस कर, उसके रस सहित, चबाकर खाजाने से मोतीझरा ज्वर, जड सहित उखड जाता है ॥ २०-२१ ॥

चिरायता और गुडूची के कषाय से वनप्सा का शार्कर मिलाकर उकालें। इसके अनुपानपूर्वक खूबकला की फाकी ले। इस तरह सुबह साझदो बार, सात दिवस पर्यंत प्रयोग से जीर्णज्वर जन्य वेदना दूर होती है। (वनप्सिका शार्कर की निर्माण विधि अग्रिम श्लोक ४४ में देख ले।) ॥ २२ ॥

धनिया और सूठ के कषाय से निंबू का शर्बत मिलाकर पीने से शरद् ऋतु-जन्य ज्वर शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ २३ ॥

१-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धो वचाभेदः । २-गुडूची । ३-ब्राह्मी । ४-मक्षिकाहिमः । मक्षिकाया द्वय त्रय वा । ५-'बाजरा' इति प्रसिद्ध शालिविशेष । ६-'मधूरा, मोतीझरा' इति च लोकप्रसिद्धे सनिपातज्वरविशेषे । ७-बब्बूलविशेष । ८-शारद्रवम् ।

१६ पञ्चाशन्मरिचानि विश्वशकलं प्रस्थाद्विनीरे पचेत्
काथे सामिनिपेदुषि प्रविकिरेत् स्फोटान् सिताया बहून् ।
उत्पद्येत यदा पुनःक्कथनतस्तत्रार्धतन्तूद्गमः
सिद्धं सावृतिरुष्णमेव हि पिबेच्छीतज्वरोच्छित्तये ॥ २४ ॥

१७ द्राक्षाकलागुडूच्यः प्रत्येकं तोलकोत्तुलिताः ।
गद्याणः कासिन्याः क्काथः सर्वज्वरान् हन्ति ॥ २५ ॥

१८ कुडवकुलत्थक्कथितं पाथः कोष्णं विशिष्य निष्पीतम् ।
शीतज्वरं विजयते रेकं वा वान्तिमुद्भाव्य ॥ २६ ॥

१९ नीरे सितांशुहृदि तिष्ठति पादशेषे
निक्षिप्य कालजरणं त्रिपुटां त्वचं च ।
वाष्पं पिधाय नखरोष्णं निपीतमुच्चै-
रुद्भाव्य घर्मसलिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ २७ ॥

पचास मरिच और सूठ के एक टुकडे को सोलह तोला जल मे उकाले । अर्धावशिष्ट जल में बहुत से पतासे, कपाय मधुर वन जाये उतने, डालकर उसे पुन. उकालें । आधे तार जितनी चासनी हो जाये तव उसे उतारकर कुछ शीतल होने पर पीजायें । इसका पान करके एक चद्दर ओढकर सो जावें । इस तरह करने से शीतज्वर नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

द्राक्षा, खूवकला तथा गुडूची प्रत्येक एक एक तोला एव कासिनी छह माशा लेकर कषाय सिद्ध करलें । इससे सभी प्रकार के ज्वर नष्ट होते है । सोलह तोला भर कुलत्थ को पानी मे उकाल ले । इस क्काथ को कुछ गरम गरम ही पी जाने से विरेक अथवा वमनपूर्वक शीतज्वर उतर जाता है ॥ २५–२६ ॥

एक प्रस्थ जल में चार तोला मिश्री मिलाकर उसके चतुर्थ भागावशिष्ट क्काथ में एक तोलाभर काला जीरा, पांच इलायची तथा तीन गुंजा भर दालचीनी के चूर्ण को डाल कर शीघ्र ही ढकदें जिससे वाष्प न उड जाये। कवोष्ण होने पर उसे पी जायें । प्रचुर स्वेदपूर्वक शीतज्वर शीघ्र नष्ट होता है ॥ २७ ॥

१–अर्धावशिष्टे । २–'पतासा' इति प्रसिद्धान् । ३–यावद्भिर्माधुर्यं तावन्त इत्यर्थ । ४–क्काथ पीत्वा तूलवस्त्रावृत शयीतेति तत्त्वम् । ५–सायमिति शेष । ६–अष्टरक्तिकद्वादशमाषकैस्तोलकम् । ७–माषषट्कं, 'गद्याणो माषकैः षड्भि' इति वचनात् । ८–सामान्यपरिभाषया कुडवकुलत्थाना क्काथ कार्य । ९–प्रस्थप्रमाणे । १०–सिता पलप्रमाणा । ११–'कालाजीरी' इति प्रसिद्धमक्षप्रमाणम् । १२–एलापञ्चकम् । १३–वल्लप्रमाणम् । १४–कोष्णं लोके 'नोनिवाया' इति प्रसिद्धम् ।

२० पटपिहिते पात्रमुखे समं समाकीर्य कारवीमार्द्राम्।
तदुपरि विमुच्य गगनं शिखिनाऽर्कं पातयेज्ज्वरार्तिघ्नम् ॥ २८ ॥

२१ पुटस्विन्नामरिष्टस्य शरीणामेकविंशतिम्।
पिष्ट्वा तत्तुल्यमरिचैर्जलं दत्त्वा द्रवीकृताम् ॥ २९ ॥
ततमृद्भित्तनिक्षेपान्मनागशिशिरीकृताम्।
निपीय मुच्यते जन्तुर्ज्वरातङ्कान्न संशयः ॥ ३० ॥

२२ शतकृत्वो जलैर्धौता कारवी सकणापटुः।
पिष्ट्वाऽम्बुगालिता कोष्णा पीता जीर्णज्वरापहा ॥ ३१ ॥

२३ ननु रामसेनफाण्टः प्रविरलधान्याकदलधन्यः।
किं कुरुते वैद्यपते! ज्वरं झटिति जर्जरीकुरुते ॥ ३२ ॥

२४ रात्रावल्ला जले क्षिप्ता पिष्टा पीता सितायुता।
निहन्ति पित्तजं दाहं दुर्गा शुम्भासुरं यथा ॥ ३३ ॥

समान भाग मे आर्द्र (हरी) अजवायन एवं अभ्रक लेवें। एक पात्र के मुख पर वस्त्र वांध कर उस पर यवानी रखदें। यवानी के ऊपर अभ्रक का पट विछादें। फिर उस पर एक और पात्र रख कर सपुटित कर दे। ऊपर से अग्नि देकर, अध.-पातन यंत्रविधि अनुसार इनमे से अर्क टपकाले। इस अर्क से ज्वर वेदना दूर होती है ॥२८॥

निब की इक्कीस (२१) कोमल शाखाओं को पुट पाकविधि से स्विन्न करलें। इनमे इतनी ही काली मिर्च मिलाकर खूब वारीक पीसकर एक पल पानी मिला तरल बनालें। इसमे अग्नितप्त-ईंट का टुकडा डाल कर कुछ गरम करले। इसके पीने से मनुष्य नि.सदेह ज्वरमुक्त हो जाता है ॥ २९–३० ॥

एकमाशा भर अजवायन एव एक पिप्पली इन दोनों को सांझ के समय एकत्र जल मे भिगोकर रख देवें। सुवह पिप्पली को अलग निकालकर, अजवायन को शतवार जल से मर्दन करके धो डाले। इस तरह करने से वह निस्तुष हो जायेगी। अब, इसमे एक माशा भर लवण मिलाकर फिर (अलग निकाली गयी) पिप्पली सहित खूब बारीक पीस नौ तोले भर पानी से वस्त्रपूत कर लेवें। इसे कुछ गरम करके पीने से जीर्णज्वर से मुक्ति मिलती है। हरे धनिये की कुछ पत्तियों से युक्त चिरायते के फाण्ट को धन्य है। हे वैद्यराज! इसमे ऐसा क्या गुण है? अरे यह ज्वर को शीघ्र ही जर्जरित कर देता है। रात्रि को जल मे भिगोकर रखे हुये धनिये को प्रात. पीस

१–यवानिकाम्। २–अभ्रकपटलम्। ३–तदुपरिस्थितेनाग्निना। ४–निम्बस्य। ५–इपीकाणाम्। ६–पलमानम्। ७–विधिश्चायं माषोन्माना यवानिका पिप्पली चैका सायं जले स्थापयेत्, प्रातश्च पिप्पलीमपनीय, यवानिका जलै शतवारप्रक्षालनान्निस्तुषा विधाय, माषिक लवणं दत्त्वा, पिप्पल्या सह प्रपिष्य, पादोनत्रिपले जले पटेन पावयेत्, तत. पैत्तले पात्रे समुत्क्वाथ्य पलद्वयावशेषं शतशीत पिबेदिति। ८–किरातफाण्ट। ९–धान्यकम्।

२५ आस्तीर्य कियन्ति घटे कुनिम्बपर्णानि धान्यकान्युपरि ।
संभृतमम्बु निशोपितमपहरति कराङ्घ्रितलतापम् ॥ ३४ ॥

२६ पांशुजक्षारसमितांतुपक्षोदेन घर्षयेत् ।
पाणिपादतलान्युग्रतापार्तावनुपूर्वशः ॥ ३५ ॥

२७ लवणसहचरेण क्षीरसारेण लिप्त्वा
करचरणतलानि प्रौढपित्तज्वरार्तौ ।
अविरलमनुलोमं मर्दयेत् कांस्यपात्रैः
प्रतिविलसति यावच्छ्यामता क्षामता वा ॥ ३६ ॥

२८ 'चिञ्चाम्बुपूर्णघोपजपात्रं गात्रे विवर्तितं परितः ।
ज्वरमवतारयतितरां भीष्मग्रीष्मोष्णवात्योत्थम् ॥ ३७ ॥

२९ आम्रशलाटुभटित्रं जलैर्द्रवीकृत्य जीरपटुमरिचैः ।
प्रतिसार्य मात्रया पुनरातपदग्धः सुखाय पिबेत् ॥ ३८ ॥

कर उसमे मिश्री मिला शर्बत सा बनालें। यह पेय पित्तज्वर के दाह का उसी तरह सहार कर देता है जिस तरह दुर्गा ने शुंभासुर का किया था ॥ ३१–३३ ॥

एक घट में चिरायते के थोडे पत्ते बिछाकर फिर ऊपर कुछ पत्ते हरे धनिये के फैलादें। रातभर इन्हे पानी में भीजने दें। प्रातः पानी को कपडे में से धीरे धीरे टपकाकर उपयोग में लें। इससे हस्त एव पदतल-गत-दाह दूर होता है। पांशुज क्षार एवं चापड इन दोनों के चूर्ण को हस्त एव पांव की तलियो पर अनुलोम-गति (ऊपर से नीचे की तरफ) से मर्दन करे। इससे तत्काल उग्रदाह भी शमन हो जाता है ॥ ३४–३५ ॥

तीव्र-पित्त-ज्वर से पीडित के हाथ और पांव की तलियों पर नमक-मिश्रित (दूध में से निकाले गये) नवनीत का लेप करदें, फिर अनुलोम-गति से, कांसी के पात्र-तल से, तब तक अविरत घर्षण करते है, जब तक तलियां काली न पड जायें–अथवा उनपर छाले न दिखायी दें। इससे शीघ्र ही दाह का शमन हो जाता है ॥ ३६ ॥

इमली के पानी से भरे हुये कांस्यपात्र को शरीर के ऊपर चारो तरफ फिराने से प्रचड ग्रीष्म की लू से उत्पन्न ज्वर सपूर्ण दूर हो जाता है। कच्ची केरी (आम) को बाफकर पानी मे मसलकर छानले। उसमे यथामात्रा जीरा, नमक, मरिच आदि का चूर्ण मिलाकर पीये। इससे लू-जन्य सताप मे शान्ति मिलती है। ३७–३८ ॥

१–भूनिम्बपत्राणि। २–औद्भिदं 'खारी' इति ख्यातम्। ३–गोधूमतुषाणि 'चापड' इति प्रसिद्धानि। ४–अनुलोमरीत्या। ५–क्षीरोत्थनवनीतेन। ६–'आमली' इति प्रसिद्धा। तत्फलाम्बु ग्राह्यम्। तत्पूर्णं कांस्यपात्रम्। ७–'लू' इति प्रसिद्धा। ८–आम्रस्यामफलं 'कैरी' इति ख्यातम्। 'आमे फले शलाटुः स्यात्' इत्यमरः।

३० भूनिम्बनीरविकसन्कलिकारसेन वासःस्रुतेन परितो धवलीकृतान्ते ।
ह्रीबेरगुम्फिततिरस्करिणीसुगन्धे सौधे शयीत सुखमुष्णतरज्वरार्तः ३९
३१ दिवा दिवाकीर्तिकुटुम्बिनीभिः प्रमृष्टकेशा धृतपुष्पवेषाः ।
क्लमं कथाभिः श्लथयन्तु कान्ताः समीरलीलालुलितालकान्ताः ॥ ४० ॥
३२ पित्ततापितशरीरवल्लरी सा सखी वद 'हकीम दवाई' ।
औषधं शृणु मृगाक्षि ! मनोज्ञं 'जा गुलाबगुलकन्द खवादे' ॥ ४१ ॥
३३ ज्वरार्दिता या कटुकान् कषायान्न चेत् पिबेत् किं वद वैद्य ! देयम् ।
निबोध हंसीमधुरप्रचारे ! 'वहां बनप्सासरबत् पिलावे' ॥ ४२ ॥
३४ बनप्सिकामष्टगुणे निशायां नीरे निधायाथ विपाच्य चुल्ल्याम् ।
अष्टावशेषं शृतमाकलय्य संगालयेद्गाढपटेन युक्त्या ॥ ४३ ॥
चतुर्गुणां तत्र पचेत् सिताख्यां तन्तूद्गमो राजति यावदस्याम् ।
बनप्सिकाशार्करमेतदाहुः पित्तज्वरे देयमतीव सौम्यम् ॥ ४४ ॥

शार्करपरिभाषा-

अम्भस्यष्टगुणे निधाय च निशि द्रव्यं पलं कुट्टितं
प्रातर्मन्दकृशानुना परिपचेदष्टांशशेषं नयेत् ।

चिरायते के जल से बनाये गये सुधारस (कली) से लिपे पुते हुये तथा उशीर विनिर्मित पडदों (खसकी टट्टियों) से महकते हुये महल में सुख-पूर्वक शयन करने से, प्रखर-ग्रीष्म-सताप-जन्य ज्वर की पीडा का शमन हो जाता है। कुशल-दासियोंद्वारा सपादित केश-रचनाओ से सुशोभित, पुष्पो के आभूषणो से सुसज्ज तथा मंद मंद पवन से अस्तव्यस्त किये गये केश-कलापों से मनोरम प्रियतमायें, मधुर कथाओंद्वारा दिवस भर के ग्रीष्मजन्य सताप को दूर कर देती है ॥ ३९-४० ॥

"हे हकीम ! मेरी सखी की देह-लता पित्त-ताप से झुलस रही है, कुछ दवा बताइये'। "हे मृग-नयनी ! मै तुम्हे इसकी मन प्रिय औषधि बताता हू। तुम उसे गुलाब के गुलकन्द का सेवन कराओ'। 'हे वैद्य ! विकट समस्या है। मेरी सखी पित्तज्वर से पीडित है किंतु कटु-कषाय लेने के लिये इन्कार करती है। आप ही कहें किस औषधि की व्यवस्था की जाये !' 'हे मधुर-आकृति (आचरण) वाली हसी ! ध्यान से सुन, उसे बनप्सा का शर्बत पिला दे' ॥ ४१-४२ ॥

बनप्सा को आठ गुने पानी मे भिगोकर रातभर रहने दे-प्रात. मन्द अग्निद्वारा इसे उकाले। अष्टावशेष जल रहने पर उतारकर घट्ट-वस्त्रसे छानलें। द्रव से चतुर्गुण शक्कर मिलाकर इसकी गाढी, तार बधने लगे ऐसी, चासनी बनालें। इसे 'बनप्सिका

१-सुधाघोलेन। २-उशीरम्। ३-'चिक, पडदा' इति ख्याता। ४-दिवाकीर्तिर्नापितस्तत्स्त्रीभि। ५-इदमपि तथैव चित्रजातिकाव्यम्। ६-इदमपि तथा। ७-बनप्सा-शार्करविधिरेवाभिधीयते। ८-त्रिगुणां वा। ९-सामान्यत शार्करपरिभाषेयम्।

तत् संगाल्य पटैश्चतुःपलसितां निक्षिप्य भूयः पचे-
द्यावत्तन्तुभवोऽवतार्य तदिदं प्राहुर्बुधाः शार्करम् ॥ ४५ ॥

३५ [1]श्रीखण्डस्थलपद्मकेतकजले पक्त्वा सितां संक्षिपे-
देलाशीतमरीचचन्द्रमधुकत्वक्क्षीरिका क्षीरकाः ।
पश्चाद्रूप्यदलान्यपि प्रविकिरेत् सिद्धो द्रवः स्यन्दलो
भैष्मीं कृष्ण इव प्रसह्य हरते पीडां परां पैत्तिकीम् ॥ ४६ ॥

३६ श्रीखण्डश्रपितजलेन साधितायां तन्तुल्यां चिरमुषितानि शर्करायाः ।
खण्डानि प्रवितर मोचगर्भजानि[2] द्रागेव प्रशमयितुं द्वितीयधातुम्[3] ॥४७॥

३७ दयिताधरपीयूषे पित्तज्वरनाशके जयति ।
यदितरभेषजकरणं सति चूतफलेऽम्लिकाभ्यासः ॥ ४८ ॥

शार्कर' कहते है। यह सौम्य, पित्तज्वर में निर्भय उपयोग मे लाने योग्य औषधि है। जिस द्रव्य का शार्कर बनाना हो, उसको एक पलभर मात्रा मे लेकर जौकुट कर लें। फिर इसे अष्टगुण पानी मे रातभर भिगोकर रखदें। प्रात' मन्दाग्नि से उकाल अष्टमाश जल शेष रहनेपर उतारलें। इस द्रव को एक घट्ट कपडे मे बांधकर एक एक बूंद टपकालें। अब इस जल मे चतुर्गुण शक्कर मिलाकर ति-तारी, चार-तारी चासनी बनालें। विद्वानों ने इसे ही शार्कर कहा है ॥ ४२-४५ ॥

चार तोले भर श्वेत चंदन के चूर्ण को गुलाब और केवडे के सोलह तोला भर अर्क में साझ के समय, भिगोकर रखदे। प्रात सोलह तोले जल इस मे और मिलाकर उकाले। अर्धावशेष जल रहने पर, उतार कपडे से छान उसमे बत्तीस तोला शक्कर मिलादे। अग्नियोग से चासनी को कुछ गाढी बना कर स्वागशीतल होने पर इसमें इलायची, शीतल मिर्च, मुलेठी और गुडूची सत्व प्रत्येक एक एक तोला, वंशलोचन एवं तवाखीर प्रत्येक छह मापा, थोडा कपूर, सोने चांदी के वरक सब यथामात्रा यथाक्रम डालकर अच्छी तरह मिलालें। इस तरह निर्मित इस द्रव को 'स्यदल' कहते है। यह पित्तजन्य तीव्र पीडा को उसी तरह बलात् हर लेता है, जिस तरह कृष्ण ने सत्यभामा को हर लिया था ॥ ४६ ॥

चदन चूर्ण मे उकाले गये पानी की चासनी बनाले। इसमे, कदली-स्तभ के अन्तर-गत कद-स्तंभ के, उसके चारों ओर आच्छन्न सूत्रो को अलग निकालकर, टुकडे डाल कर कुछ दिवसों तक रहने दें। यह पित्तजनित वेदना को दूर करते हैं। पित्तज्वर

१-तरुणीकेतकजलकुडवे श्वेतचन्दनक्षोदपलं सायमाप्लाव्य, प्रातर्जलकुडव क्षिप्त्वा, पक्त्वा, अर्धावशेष पटपूतं शरावशर्कराया परिपाकघने द्रवे स्वाङ्गशीते निक्षिप्य, दर्व्या प्रचाल्यैलायष्टीशीतलमरिचामृतासत्त्वानि प्रत्येकं तोलकमितानि वशलोचनतवक्षीरयो पृथग्गद्याण मनाक् कर्पूरं समेलयेद्रूप्यदलानि स्वर्णदलानि चेत्यस्य 'स्यन्दल' इति प्रसिद्धस्येतिकर्तव्यता । २-नि शेषमाकृष्टसूत्राणि कृत्वेति रहस्यम् । ३-द्वितीयधातुं पित्तं रक्तं च ।

४२ किराततिक्तकप्रस्थं पुराणचपलापलम् ।
पचेत् पयसि[1] निक्षिप्य यावत् सर्वपयःक्षय. ॥ ५६ ॥
किराततिक्तसात् कृष्णाः पृथक्कृत्य विशोषयेत् ।
तद्रजो मधुना लिह्याज्जीर्णज्वरपराजितः ॥ ५७ ॥
४३ रामसेनभवं सत्त्वं सर्वज्वरनिवारणम् ।
४४ गुडूचीभवमप्येकं किमन्यैरौषधक्रमैः ॥ ५८ ॥
४५ पच पलतुलितं क्षीरं चपलात्रितयं चतुःपलं नीरम् ।
निःशेषदग्धनीरं जीर्णज्वरहारि तत् कणाक्षीरम् ॥ ५९ ॥
४६ स्वर्णं मुक्ता च दरदं मरिचं भागवृद्धितः ।
खर्परश्चाष्टौ कलांशं स्यान्नवनीतं पयोभवम ॥ ६० ॥
निम्बूकैर्मर्दयेत्तावद्यावत् स्नेहो लयं व्रजेत् ।
मालती प्राग्वसतोऽयं रसो धातुज्वरं जयेत् ॥ ६१ ॥
मात्रा गुञ्जाद्वयोन्माना कणामधुचमत्कृता ।
[3]कुञ्चपञ्चके पञ्चनवतिनिम्बुकान्यलम् ॥ ६२ ॥

करके उसे तुलसी-रस में पीस, पिप्पली और लवण चूर्ण मिला, कुछ नियाया करके सेवन करे। यह सभी-प्रकार के ज्वरों को नष्ट कर देता है ॥ ५५ ॥

[1] चिरायता और कुटकीचूर्ण प्रत्येक एक एक प्रस्थ, पुराणी भावित पिप्पली चार तोला इनको चतुर्गुण जलमें उकाल लेवें। जब पानी पूरा जल जाये तब किरातादि चूर्ण किट्ट में से पिप्पलीयो को निकाल लेवें। इन्हे छायाशुष्क करके चूर्ण बनाकर मधु के साथ लेने से जीर्ण-ज्वर पराजित हो जाता है। चिरायते का सत्त्व सर्व प्रकार के ज्वर को दूर कर देता हे। गुडूची का सत्त्व भी यही कार्य करता है। इस सत्त्वके रहते अन्य औषधियो से प्रयोजन ही क्या? एक पल दूध में चार पल पानी मिलाकर उसमें तीन नग पिप्पली के उकाले। जब दूधमें से जलांश निःशेष हो जाये तब इसे उतार लें। यह 'कणाक्षीर' कहलाता है तथा जीर्ण ज्वर को नष्ट करता है ॥ ५६—५९ ॥

स्वर्णभस्म १ तोला, मुक्तापिष्टी २ तोला, हिंगुल तीन तोला, मरिच चार तोला और खर्पर आठ तोला इन सब को एकत्र करके, इनमें गाय के दूध में से निकाला गया नवनीत १२½ माशा (करीब दो तोला) मिला देवें। इन सब को निंबू के रस में तब तक खरल करते रहें जब तक स्नेहांश विलीन न हो जाये। इस तरह वसंत-मालती नामक रस सिद्ध होता है, इसकी मात्रा २ रत्ति है। मधु और पिप्पली के साथ सेवन करने से चमत्कार पूर्ण असर दर्शाता है। यह धातु-गत ज्वर को नष्ट कर देता है। वीस तोले भर द्रव्य के लिये करीव ९५ निंबू का रस पर्याप्त होता है। क्योंकि इतने रस से खरल करने पर प्राय. नवनीत की चिकनाहट निकल जाती है ॥ ६०-६२ ॥

१—द्विगुणे चतुर्गुणे वा जले। २—वसन्तमालतीनाम्ना प्रसिद्धस्य रसस्य विधि। ३—पलपञ्चके।

४७ निर्वाप्य जसदं तप्तं निम्बुकाम्बुनि सप्तधा ।
निःक्षिप्य तत्र चैपलं पचाध्यग्नि कटाहगम् ॥ ६३ ॥
क्षेपं क्षेपं सिताक्षोदं द्रेकाकाष्ठेन घर्षय ।
सुजातं देहि तद्भस्म शार्करेण ज्वरापहम् ॥ ६४ ॥
४८ गोमयशतद्वयेन प्राक् तदनु तदर्धगोमयैर्युक्त्या ।
कन्यारसेन सिद्धं माक्षिकमुक्तं ज्वरादिजयि ॥ ६५ ॥
४९ अभ्रसंपुटगं तालं किंचिदङ्गारसाधितम् ।
वातश्लेष्मज्वरे शस्तं माणिक्यरसशब्दितम् ॥ ६६ ॥
५० तालं कुट्टितमभ्रपत्रपुटगं संस्थाप्य मृत्खर्परे
तद्रन्ध्राणि नवीनकोलदलजैः कल्कैः कृती पूरयेत् ।

जसद को तपा तपा कर सात बार निंबू के रसमे बुझावे । फिर एक लोह कटाह मे इस जसद को तथा इतने ही वजन भर पारद को रखदें । तीव्र अग्नि से इनको पकावें । पारद द्रवीभूत हो जाये, तब बीच बीच मे मिश्री के चूर्ण को कटाह मे डालते हुये महानिंब की एक मोटी स्थूल शाखा से इन सभी द्रव्यों को हिलाते रहे । मिश्री का चूर्ण जैसे जैसे जलता जाये, तैसे तैसे पुन पुनः यही चूर्ण डालते रहे एवं उपरोक्त शाखा से निरतर हिलाते रहे । भस्म बन जाने पर इसे उतार ले । इसकी मात्रा एक रत्ति है । इस ज्वरघ्न उत्तम भस्म का सेवन 'शार्कर' के साथ करें । (शार्कर निर्माण विधि श्लोक ४५ मे देख लें) ॥ ६३–६४ ॥

शुद्ध माक्षिक को ग्वारपाठेके रस मे मर्दन कर, प्रथम, दोसो गोमय की अग्नि दें । स्वागशीतल होने पर, पुन कन्यारस मे मर्दन करके दूसरी बार, एक सो गोमय की अग्नि दें । इस तरह करीब दस पुट देने से 'माक्षिक' सिद्ध होता है । इसकी मात्रा एक रत्ति है । सामान्य ज्वर, मौक्तिक ज्वर तथा श्वास, कास, क्षय आदि मे इसका प्रयोग करें । इसके ऊपर, इक्कीस पतासे तथा सात या नौ मरिच के चूर्ण को, सोलह तोले जल मे उकाल अर्धावशेष क्वाथ को वस्त्र पूत करके, अनुपान रूप से पीये । पुट देते समय पुट-गर्त को एक बडे सच्छिद्र मिट्टी के सकोरे अथवा ठीकरे से ढक दे । इस तरह करने से अग्नि शात न होती हुयी एकरूप से लगेगी । पत्राख्य (तबकी) हरिताल के सूक्ष्म पटलों को, अभ्रक के दो पत्तों के बीच मे संपुटित करके अग्नितप्त बना ले । यह 'माणिक्यरस' कहलाता है, तथा वात-श्लेष्म-ज्वर में प्रशस्त है ॥ ६५–६६ ॥

हरिताल के सूक्ष्म-चूर्ण को अभ्रक पत्रो मे सपुटित करदे । अभ्रक पुट के

१–पारद जसदतुल्यम् । २–महानिम्बकाष्ठेन । ३–रक्तिप्रमाणमिति शेष । ४–पुटगर्तोपरि सच्छिद्रमृत्खर्परपिधानम् । मात्रा रक्तिमिता । उपरिष्टादेकविंशतिसितावुद्बुदानि सप्त नव वा मरिचानि कुडवजले समुत्क्वाथ्यार्धावशेषं पटपूतमनुपिबेत्, इति युक्तिशब्दार्थः । ५–सामान्यज्वर मौक्तिकज्वर च । आदिशब्दात् श्वासकासौ । ६–अभ्रपटलद्वयमध्यस्थितं सूक्ष्मपटलीकृतं पीततालम् । ७–अभ्रपुटरन्ध्राणि ।

प्रकारः–

तैलोपयोगि यन्त्रं तु शस्तमत्र रसातलम् ।
सहायो नारिकेलस्य मज्जा पन्था गुरूदितः ॥ ७४ ॥

५७ राले चतुःपलमिते द्रविते॰ऽग्नियोगात्
संमेल्य शुक्लविषमर्धपलप्रमाणम् ।
खल्वे क्षिपेत् सपदि पर्पटिकारसोऽयं
हन्यात् कफानिलमतिभ्रमवान्तिवेगान् ॥ ७५ ॥

५८ इष्टीमध्यविशोभिकूपपिहितं सप्ताहमार्के स्थितं
क्षीरे शम्बलमष्टयाममनिशं चुल्ह्याग्निना पाचयेत् ।
सिद्धोऽयं हिममूर्छनो रस इति प्रस्तूयते पण्डितै-
र्दत्तस्तन्दुलतोलितः समयतो वेलाज्वरज्वालनः ॥ ७६ ॥

५९ स्फटिकां मल्लजठरां विपाच्य गुरुमार्गतः ।
ज्वरी पर्णेन भुञ्जानो लभते सुखमुच्चकैः ॥ ७७ ॥

जायेगा। मन.शिला का तैल, किसी अनुभवी वैद्य गुरु की देखरेख के नीचे, पातालयंत्र द्वारा निकाल लेना चाहिये। तैल निकालने से पूर्व मन शिला में परिपक्व नारियल की भीतरी मज्जा का चूर्ण अवश्य मिला देवे ॥ ७३–७४ ॥

/ सोलह तोले भर राल को अग्नि से पिघला उसमे दो तोला शतमल्ल मिलाकर शीघ्र ही खरल मे डाल देवे। इस तरह सिद्ध किया गया यह 'पर्पटिकारस' कफ, वात, मतिभ्रम और वमन के वेग को दूर कर देता है ॥ ७५ ॥

एक पुराणी ईंट के बीच में खड्डा करके उसमे आकडे का दूध भर, सखिया डाल कर ताम्रपात्र से ढकदें। इस तरह सात दिन तक रहने दें। कदाच् अर्क-दूध ईंट से शोपित हो जाये तो उसमें पुन दूध भरदे। सात दिवस पीछे उस ईंट को आठ प्रहर निरतर चुल्हे की अग्नि से पकावे। इस तरह पडितों से प्रशंसित 'हिममूर्छन रस' सिद्ध होता है। समयानुसार प्रयुक्त इसकी एक चांवल भर मात्रा वेलाज्वर को जला देती है ॥ ७६ ॥

सोलह तोलाभर लाल फिटकरी तथा अठारह माशाभर शतमल्ल लेवें। प्रथम स्फटी के आधे चूर्ण को एक शराव में दवा दबा कर भरदें। फिर इसके मध्य में–

१–शतमल्लसज्ञम्। २–इष्टिका च पुराणा ग्राह्या, पिधानं च ताम्रपात्र्या। ३–शोणस्फटिकां कुडवमिताम्। ४–अशुद्ध एव शतमल्लोऽष्टादशमाषप्रमाणो यस्यामिति। ५–स्फटिका सर्वा चूर्णयित्वा तदर्धचूर्णं मृत्करके समावाप्याङ्गुल्या गाढं निष्पीड्य मध्ये मल्लसमावेशयोग्य गर्तं कृत्वा तत्र मल्लचूर्णं धृत्वोपरि शेषं स्फटिकाचूर्णं समावाप्य तथैव दृढतरं निष्पीड्य मुखे चैका मुद्रा दत्त्वाऽध्यर्धप्रस्थवनोपलैः पुटेत्। मात्रा चैका रक्ति-रिति गुरुमार्ग ।

६० मृत्स्नापात्रगतं विमृद्य पलिकं शङ्खामलं शम्बल-
क्षोदं सप्तपलारुणस्फटिकया संक्षुण्णया गर्भितम् ।
अष्टप्रस्थवनोपलैः परिपुटे दद्यात् प्रपक्वं पुन-
स्तं गुञ्जाप्रमितं ज्वरे रसवरं सद्द्राक्षया भक्षयेत् ॥ ७८ ॥
मूषायां मल्लमावाप्य कलसौरेण[1] गर्भितम् ।
भस्त्रया विधमेद्वह्नि[2] यावत् स्याद्द्रवसंक्षयः ॥ ७९ ॥

प्रकार –

तन्दुलोत्तुलितं[3] युक्त्या देयं चातुर्थके ज्वरे ।
किं तु सुस्निग्धमधुरं पथ्यं किंचित् प्रकल्पयेत् ॥ ८० ॥

६१ गर्भस्थमल्लशकलं भस्मप्रस्थं पुटेद्द्विपेन्द्रपुटे[4] ।
मसृणीकृत्य कफानिलशीतज्वररुक्षु मात्रया देयम् ॥ ८१ ॥

६२ मल्लमक्षं जलप्रस्थे पक्त्वाऽम्भःक्षपणावधि ।
दीयतां तन्दुलोन्मानं गैरिकेण ज्वरार्तिषु ॥ ८२ ॥

शतमल्ल समा जाय इतना गहरा-एक गर्त बना उसमें शतमल्ल ठूंस ठूंस कर भर देवे । इसके ऊपर अवशिष्ट स्फटीचूर्ण को पुनः दबाकर भरदें । शराव के मुख को ताम्रपात्र से सपुटित करके डेढ प्रस्थ गोवरी में फूक दें । नागरवेल पान के साथ, एक रत्तिभर मात्रा में लेने से ज्वरित सपूर्ण स्वस्थ हो जाता है ॥ ७७ ॥

शख के समान श्वेतमल्ल चार तोला भर लेवें । इसे अट्ठावीस तोला रक्तस्फटी के चूर्ण में रख कर पूर्वोक्तविधि से सपुटित करके आठ प्रस्थ वनोपल की अग्नि देवे । एक गुजाभर मात्रा में द्राक्षा के साथ सेवन करने से यह रसश्रेष्ठ ज्वर को दूर कर देता है । एक भाग मल्ल तथा दो भाग कलमी सोरा लें । एक मूषा में, पहिले आधे भाग जितना सोरा डाल कर उस पर मल्ल रख कर उसके ऊपर पुनः अवशिष्ट सोरा भर दें । अब धोंकणी से अग्नि दें । जब तक सोरे का द्रव सपूर्ण न जलजाये तब तक अग्नि देते रहें । इस तरह मल्ल सिद्ध हो जायेगा । इसके प्रयोग की विधि–दूध की मलाई के साथ एक चावल भर मात्रा में लेने से चातुर्थिक ज्वर दूर हो जाता है । इसके प्रयोग काल में पथ्यरूप से मलाई, शक्कर, कलाकन्द, खूब उकाला हुआ मधुर दूध आदि स्निग्ध एवं मधुर द्रव्यों का भोजन करें ॥ ७८–८० ॥

चुल्हे की एक प्रस्थ राख में शतमल्ल के टुकडे को रखकर गजपुट में फूक देवें । स्वांग शीतल होने पर इसे निकाल खरल करके खूब मुलायम बनालें । यह भस्म कफ, वात एवं शीतज्वर में मात्रापूर्वक देने से लाभ करती है । एक तोला भर मल्ल को एक प्रस्थ जल में तब तक उकालें, जब तक पानी निःशेष न हो जाये । ज्वरपीडित को गैरिकचूर्ण के साथ एक चावल भर मात्रा में देवें ॥ ८१–८२ ॥

१–अस्मिन् पुनर्मानभेद एव केवल प्रकारश्च पूर्वोक्त एव । २–मल्लापेक्षया द्विगुणेनेति तत्त्वम् । ३–कलाकन्दशर्करापावकदुग्धसतानिकायन्यतमोपहितमिति । ४–गजपुटे ।

८३ हरीतकीशम्बल्लवेल्लजानां कुर्याद्वटीं वारिणि सर्षपाभाम्।
वेगं रुणद्धि प्रथमं प्रदत्ता ज्वरस्य वेलेव महाम्बुराशेः ॥ ८३ ॥

८४ वृन्ताकसिद्धमल्लं चपलां दरदं च तन्दुलीयाद्भिः।
घृष्ट्वा घटिता वट्यः शिशिरज्वरदर्पदारिण्यः ॥ ८४ ॥

८५ द्विगुणं दरदं मल्लाद्भृङ्गाद्भिश्चक्रिका तयोः।
घृताक्ते तप्ततवके शोषयेत्तां विवर्तयन् ॥ ८५ ॥
एवं पुनः पुनः कृत्वा सर्षपाभां वटीं कुरु।
निगीर्णाः समयात् पूर्वं शीतज्वरगतिच्छिदः ॥ ८६ ॥

८६ त्र्यहं विभाव्य दरदं स्नुहीक्षीरैः पलोन्मितम्।
सुधाश्मचूर्णमावाप्य भाव्यं तैरेव पूर्ववत् ॥ ८७ ॥
शरावसंपुटे रुद्ध्वा चक्रिकां द्विरदे पचेत्।
रसं गुञ्जाङ्घ्रिमानेन पर्णखण्डेन दापयेत् ॥ ८८ ॥

हरीतकी, शतमल्ल तथा काली मरिच इनके पृथक् पृथक समभाग चूर्ण को लेकर पानी में खूब बारीक पीस-घोटकर सर्षप-तुल्य गोलियां बनालें। वेला के पूर्व देने से यह भस्म महासमुद्र की वेला के समान वेलाज्वर के वेग को रोक देती है ॥ ८३ ॥

बैंगन में सिद्ध किया गया मल्ल, पिप्पली तथा हिंगुल इन तीनों को चौलाई के स्वरस में खरल करके गुटिकायें बनालें। यह शीतज्वर के दर्प का दलन कर देती है। मल्ल, इससे द्विगुणित हिंगुल इन दोनों को भृंग-राज के रस में खरल करके टिकियां बनालें। इन गोलियों को घृताक्त तवे पर तब तक सेकते रहें, जब तक टिकियों की आर्द्रता का शोषण न हो जाये। उन्हें उतार कर पुन भृंग-राज के रस में खरल करके पूर्ववत् टिकियां बना कर फिर तवे पर सेकें। इस तरह तीन बार करें। अन्त में सर्षपतुल्य गोलिया बनाकर वेला से दो घटी पूर्व ही इसे निगल जाने से शीतज्वर का पुनरागमन नहीं होता। यदि प्यास लगे तो केवल दूध ही पीना चाहिये। मात्रा एक गुटिका ॥ ८४–८६ ॥

चार तोलाभर हिंगुल को, तीन दिवस पर्यंत, स्नुहीक्षीर की भावना दें। अन्त में, चार तोलाभर चूने के सूक्ष्म चूर्ण को इसमें मिलाकर पुन. तीन दिवस पर्यंत स्नुही-क्षीर की भावनायें दें। तदनन्तर, इनकी टिकियां बना कर शराव मे सपुटित करके गजपुट की आच देवें। एक गुंजा के चतुर्थ भाग जितनी मात्रा मे नागरबेल पान के साथ इसका सेवन करना चाहिये। यह श्रेष्ठरस राजाओं के उपभोग के लिये है। पथ्य

१–वृन्ताकानि पञ्चविंशतिसख्यानि ग्राह्याणि। २–त्रिदिनमिति शेष। ३–भृङ्गराजरसैः। ४–त्रीन् वारानित्यर्थ। त्रिवार तद्रसेन घर्षण तप्ततवके युक्त्या शोषणमित्यर्थ। ५–सति तर्षे दुग्धपानमित्युपदेश.। ६–दरदसमं, पलमिति यावत्। ७–त्र्यह स्नुक्क्षीरैरेवेत्यर्थ। ८–गजपुटे। ९–ज्वरवेगाद् द्विघटिकापूर्वम्।

शीतज्वरगतिं हन्ति पथ्यमौधस्यमोदनम् ।
राजार्होऽयं रसश्रेष्ठः क्वापि किंचिद्विरेचयेत् ॥ ८९ ॥

६७ शतमल्लं मृदाऽऽमेल्य न्युप्ता तत्र तु मेथिका ।
शाकार्थं शस्यतेऽवश्यं ज्वरितानां यथासुखम् ॥ ९० ॥

६८ अध्यर्कदुग्धमुषिता शोणस्फटिका स्फुटाशुशुक्षणितः ।
कफकसनश्वसनसख सखे ! प्रसह्य ज्वरं जयति ॥ ९१ ॥

६९-७० अल्पाग्नियोगसंफुल्लं गुञ्जैकं नवसागरम् ।
भुक्तं पर्णेन शिशिरज्वरघ्नं टङ्कणं यथा ॥ ९२ ॥

७१ पलाण्डुमुत्कीर्य तदन्तराले यथायथं फेनमहेर्निधाय ।
आलिप्य पक्वं पुटपाकरीत्या संभुज्यं वेलाज्वरवान् सुखी स्यात् ॥९३॥

७२ गुग्गुलुना फणिफेनं विनीय वा किङ्किरातकोकिलकैः ।
कवलय गुञ्जामात्रं वेलाज्वरवारणाय सखे ! ॥ ९४ ॥

दूध और भात है । ज्वर की वेला के दो घटी पूर्व इसे लेना चाहिये । यह शीतज्वर के वेग को रोक देता है । कभी कभी इससे यत्किंचित् विरेचन भी हो जाता है ॥ ८७–८९ ॥

शतमल्ल को थोडे से प्रमाण मे, मिट्टी में मिलाकर उसमे मेथी के बीज बोदेवे । उसमे से उगी हुई मेथी का शाक, शीतज्वर मे, निर्भय अवश्य सेवन करना चाहिये । प्रशस्त है । (मिट्टी में अधिक विष-क्षेप से अकुर नष्ट हो जाने की सभावना रहती है । अत अल्प-मात्रा मे ही प्रक्षेप करना चाहिये) । आकडे के दूध की भावना देकर रक्तस्फटी को आग पर फुला लेवे । यह कफप्रधान कास और श्वास मे हितकारी एव बलात् ज्वर को दूर कर देने वाली है । एक गुजाभर नवसादर को मंद अग्नि देकर फुला लेवे । नागरवेल के पान में लेने से शीतज्वर नष्ट हो जाता है । इसी तरह सिद्ध किया गया टंकणक्षार भी यही गुण दिखाता है ॥ ९०–९२ ॥

एक प्याज को खुरचकर उसमे गर्त बना उस गर्त में जितनी अफीम समा सके उतनी भर कर उसपर खुरचकर निकाला गया प्याज का टुकडा पुन ढककर कपडमिट्टी करले । अब, इसे अग्नि में रख कर भूनले । तदनन्तर, इसमे से अफीम निकालकर शीतल होने पर प्रयोग करें । वेलाज्वर में यह प्रशस्त है ॥ ९३ ॥

अफीम को गुग्गुलु मे, अथवा बब्बूलवृक्ष की शाखाओ को जला कर उनके कोयलो की राखमे, अच्छी तरह मिलाकर, हे मित्र! एक गुजाभर मात्रा में, शीतज्वर

१–दुग्धम् । २–अधिकविषक्षेपेण मेथिकाङ्कुरोत्पत्तिर्न स्यादत किंचिदेव क्षेप्यमिति रहस्यम् । ३–'नवसादर' इति प्रसिद्ध क्षारविशेषोऽयम् । ४–पलाण्डुं शीत कृत्वा ज्वरात् पूर्वम् ।

७३ फणिफेनधर्मपत्तनवाम्बूलेङ्गालकानि संपिष्य ।
एकत्रिषड्भिभागं शीतज्वरमोपि मात्रया दत्तम् ॥ ९५ ॥

७४ अध्यर्धत्रीणि पत्राणि जानकीफलशाखिनः ।
पटुना कलितान्याशु निघ्नन्ति शिशिरज्वरम ॥ ९६ ॥

७५ भङ्गा सुभ्रष्टकचणकाश्चूर्णिता गुडयोजिताः ।
वेलातः प्रथमं दत्ता हन्ति शीतज्वरं जवात् ॥ ९७ ॥

७६ विमृद्य मर्कटीजालं गुडेन गुटकीकृतम् ।
निगीर्णं पूर्वमेव द्राग्घन्ति शीतज्वरं ब्रुवे ॥ ९८ ॥

७७ स्फटिकाब्धिफेनपटुविषभूतिमरीचविषमुष्टिकक्षोदः ।
ख्यातो ज्वराङ्कुश इति क्षिणोति गुञ्जामितो ज्वरं जवतः ॥ ९९ ॥

को रोकने के लिये, सेवन करें। अफीम, काली मरिच एव बब्बूल के कायलो को एकत्र पीसकर, वयमर्यादा के अनुसार एक, तीन अथवा छह भाग मात्रा में देने से मुद्दती ज्वर दूर होता है। प्रात काल कुछ नास्ता लेकर इसका सेवन करना चाहिये। यह अतिसार में भी लाभदायी है ॥ ९४–९५ ॥

सीताफल वृक्ष के साढे तीन पत्तों को नमक में बारीक पीस कर खाने से शीत ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ ९६ ॥

भांग एवं भूने हुये चनो के चूर्ण को गुड मे अच्छी तरह मिला कर, वेला से दो घटी पूर्व खिलाने से शीतज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है। (यह अनुभूत एव अद्भुत प्रयोग है !!! इसमें सभी चने फूले हुये होने चाहिये। छिलको को अलग करके चनों का उपयोग करें। अनुपान कवोष्ण जल है।) मकडी के जाले को गुड मे मिला कर गुटिका बना निगल जाने से पूर्वोक्त लाभ होता है। यह मैं दृढतापूर्वक कहता हू ॥ ९७–९८ ॥

फुलाई हुयी स्फटी, समुद्रफेन, सैंधव, शुद्ध शृंगीविष, मरिच एवं शुद्ध कुचला इनको समानभाग मे एक मृत्पात्र मे सपुटित करके गजपुट में फूंक दें। इसे ज्वराङ्कुश कहते है। यह शीघ्र ही ज्वर को क्षीण कर देता है। मात्रा एक गुंजाभर है। (यह शीतज्वर की अव्यर्थ अनुभूत औषधि है।) शुद्ध कुचला चार तोला, सौवर्चल तथा

१–बम्बूलकोकिलानि। २–वयोपेक्षया कल्पितया, किंचित्प्रातराशं कृत्वा देयमिति सम्प्रदाय। वेलाज्वरे तथाऽतिसारेऽप्येतद्धीयते। ३–गण्डगात्रस्य 'सीताफल' इति प्रसिद्धस्य वृक्षस्य। ४–'मकडी' इति प्रसिद्धस्य कीटविशेषस्य शुभ्रतरश्लक्ष्णजालकम्। ५–स्फटिका भ्रष्टा ग्राह्या, सेन्धव समुद्रफेनेन सह सपुटे पञ्चप्रस्थैरारण्यगोमयैर्भस्म कृत्वा ग्राह्यम्। शुद्धशृङ्गिकविषभस्म, शुद्धानि विषमुष्टिकानि वक्ष्यमाणरीत्या। मात्रा चैषा तोलकप्रमाणा पूर्वमेव ग्राह्या, ततो यथायथ भस्मादि कार्यम्।

७८ विषमुष्टिकतो मुष्टिः सौवर्चलमरिचतः पृथक्प्रसृति. ।
मसृणीकृतो रसः स्याज्ज्वराङ्कुशो नाम तथ्यार्थ ॥ १०० ॥
७९ संशोधितानां विषमुष्टिकानां तुल्यांशमारीचरजोयुतानाम् ।
वट्यो विशालाफलवारिवद्धा विबन्धवातज्वरमुद्धरन्ति ॥ १०१ ॥
८० धत्तूरवनसंफुल्लकलिकावेल्लजावटी ।
यामं निषिद्धपानीया वेलाज्वरनिवारिणी ॥ १०२ ॥
८१ कृष्णकुक्कुरमूत्रेण भाविताया मृदो वटी ।
निगीर्णा हन्ति समयज्वरं सत्यमिदं ब्रुवे ॥ १०३ ॥
८२ एकविंशतिपत्राणि तुलस्या मरिचान्यपि ।
कृत्वा तिस्रो वटीर्देया वेलाज्वरनिवृत्तये ॥ १०४ ॥
८३ करञ्जमज्जातिविषे मरीचं छदैस्तुलस्यास्त्रिगुणैर्विमर्द्य ।
चणप्रमाणा गुटिका हिनस्ति ज्वरातिसारानलमार्दवानि ॥ १०५ ॥

मरिच प्रत्येक ८–८ तोला, इनको एकत्र खूब बारीक पीसलें। इसे ज्वराङ्कुशरस कहते है एवं यथा नाम तथा गुण युक्त है ॥ ९९–१०० ॥ (कुचला का शुद्धिप्रकार –कुचले को गीली मिट्टी मे एक सप्ताहपर्यंत गाडकर रखदें। फिर, इसका छिलका उतार, बीच की जिह्वा को निकाल, घी में भून, लोह पात्र में चूर्ण बनाकर उपयोग मे लेवें।)

अच्छी तरह शुद्ध किया गया कुचला एव मरिचचूर्ण इन दोनो को समभाग एकत्र लेवें। इनकी इन्द्रवारुणी फल के रस से खरल करके गोलिया बनालें। ये मलावरोध सहित वातज्वर को दूर कर देती है ॥ १०१ ॥

धत्तूरा, ह्रीवेर, पानी में खिलाया हुआ सुधाखड और मरिच इन सब को समभाग लेकर गोलियां बनालें। ये वेलाज्वर को मिटाती है। इनको लेने के उपरात एक प्रहर तक, यदि प्यास लगे तो भी, पानी नहीं पीना चाहिये ॥ १०२ ॥

काली मिट्टी को, कृष्णवर्ण श्वान के मूत्र की भावना देकर गुटिका बनाले। इसे निगीर्ण करने से वेलाज्वर नष्ट होता है। यह सत्य कथन है ॥ १०३ ॥

कृष्णतुलसी के इक्कीस पत्ते और गिनती में इतने ही काली मिरच के दाने इनको एकत्र पीसकर तीन गुटिकाये बनालें। इसके प्रयोग से वेलाज्वर निवृत्त हो जाता है १०४

करज की मज्जा, अतिविषा और मरिच प्रत्येक एक एक तोला लेकर, तीन तोलाभर तुलसी के पत्तो के साथ इनको पीस कर, चने के समान वटिकायें बनालें।

१–विषमुष्टिकानि 'कुचिला' इति लोकख्यातानि शुद्धान्युपादेयानि। शुद्धिप्रकार-श्चाय–सर्वत्र सप्ताहं सजलमृत्स्नाया निधाय, पश्चात् विगतत्वञ्चि विधाय, मध्यस्थजिह्विका विहाय, किंचिदाज्येन सभर्ज्य, चूर्णयेल्लोहपात्रे इति। प्रोक्तमपि तन्त्रान्तरे–"किंचिदाज्येन सभ्रष्ट विषमुष्टि विशुध्यति।" इति। २–पलम्। ३–पलद्वयम्। ४–ज्येष्ठा मात्रा वल्लमिताऽस्य पर्णखण्डेन प्रात साय च देया। ५–कृष्णमृत्तिकाया। ६–कृष्णतुलस्या। ७–करञ्जमज्जादीनि त्रीणि प्रत्येकं कर्षमितानि, तुलसीछदास्त्रिकर्षमिता। ८–साय प्रात शीतजलेन देया ॥

८४ मज्जः करञ्जस्य कणामतल्लया माषाः पृथग्द्वादश कल्पनीयाः ।
वब्बूलपत्रं जरणो वलक्षो गद्याणगद्याणमितावुभौ स्तः ॥ १०६ ॥
जलेन वस्तून्यखिलानि पिष्ट्वा परूपकल्पा वटिका विधेयाः ।
वलासपित्तज्वरजर्जराय प्रातस्तथा सायमपि प्रदेयाः ॥ १०७ ॥
८५ करञ्जमज्जा प्रसृतिप्रमाणो गद्याणयुग्मं घुणवल्लभायाः ।
सितासहायान्यनयो रजांसि वल्लद्वयानि ज्वरमुज्जयन्ति ॥ १०८ ॥
८६ पक्वानि धत्तूरदलानि पिष्ट्वा पटेन पूतानि सितागुणितानि ।
वल्लप्रमाणानि निषेवितानि सर्वज्वरघ्नानि समीरितानि ॥ १०९ ॥
८७ हरितालशिखिग्रीवचूर्णैर्धूपः प्रयोजितः ।
वेलाज्वरं रुणद्ध्याशु वेलेव मकरालयम् ॥ ११० ॥
८८ आर्द्रं पाणितले क्षुण्णमलाबूपर्णमेककम् ।
पटावगुण्ठितं जिघ्रन्मुच्यते ना तृतीयकात् ॥ १११ ॥
८९ उलूकपक्षं परिवेष्ट्य तूलकात् प्रज्वालयेत् सर्षपतैलमञ्जितम् ।
तत्कज्जलेन स्वयमञ्जितेक्षणश्चातुर्थिकव्याधिभयाद्विमुच्यते ॥ ११२ ॥

ये ज्वर, अतिसार तथा अग्निमांद्य को नष्ट करती है । करजमज्जा तथा उत्तम पुराणी पिप्पली दोनों एक एक तोला, बबूल के पत्ते और श्वेत जीरा प्रत्येक छह छह माशा इन सब को एकत्र पानी मे पीसकर फालसे जितनी मोटी वटिकायें बनावें । प्रात तथा साझ को देने से कफ एव पित्तजन्य ज्वर जर्जरित हो जाता है । करज की मज्जा आठ तोला और अतिविषा एक तोला इन दोनो के एक माषाभर चूर्ण को मिश्री चूर्ण मे मिलाकर फाकने से ज्वर पराजित हो जाता है । धत्तूरे के परिपक्व पत्तो के वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण को तीन गुजाभर मात्रा मे चतुर्गुण मिश्री के साथ लेने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते है । (इसकी तीन गुजाभर मात्रा प्रबल रोग मे बलिष्ट व्यक्ति को ही देनी चाहिये । अल्प वेग मे इससे न्यूनमात्रा में ही प्रयोग करें ।) ॥ १०५-१०९ ॥

हरिताल और तुत्थ के चूर्ण को धूम का पान, समुद्र के उठते हुये ज्वार के समान वेगवाले वेलाज्वर को रोक देता है । इस धूमपान से कभी कभी वमन भी हो जाया करता है । वस्त्र मे लिपटे हुये कटुतुंबी के केवल एक पत्ते को हाथ मे मसल कर सूघने से तृतीयक ज्वर से मुक्ति मिल जाती है । उलूक पक्षी के पख को रुई मे लपेट कर सर्षप तैल से सिक्त करले । फिर उसे जला कर कज्जल पाडले । इस कज्जल को आजने मे चातुर्थिक ज्वर के भय से मुक्ति मिलती है । तीन दिवस पर्यंत प्रात. कवोष्ण

१-प्रशस्तकणाया, प्रशस्तत्व चास्या पुराणत्वादि, मज्ज मज्जाया इत्यर्थ । २-अतिविषाया । ३-सिताऽत्र चतुर्गुणा । ४-पूर्णमात्रेय प्रबलरोगे । तेन दुर्बलादावल्पमेव देयम्, अन्यथं वेग स्यादिति । ५-तुत्थम् । ६-धूपग्रहणात् कदाचिद्वमनमपि भविष्यति । ७-कटुतुम्बीपत्रम् ।

९० पीत्वा त्र्यहं वमति यः प्रातः कोष्णं पटूदकम् ।
तं कश्चातुर्थिकातङ्कः सहसा न विमुञ्चति ॥ ११३ ॥
९१ समुदञ्चति चश्चित्ते चातुर्थिकभयं यदि ।
भो ! जना भोजनं हित्वा पयः पिबत केवलम् ॥ ११४ ॥
९२ परिपिष्टया पयोभिर्भृशमधिशिलमेकपित्तकारिण्या ।
लिस्वा पाणिकनिष्ठाङ्गुलिपर्वयुगं पटेन परिवेष्ट्य ॥ ११५ ॥
जलभाजने निमज्ज्य दृढमपि चातुर्थिकं ज्वरं जय रे ।
मनसा गच्छ गिरीशं प्रयच्छ कापालिकाय वलिम् ॥ ११६ ॥
९३ ज्वरागमनतः पूर्वं तल्पे कल्पितरल्लके ।
मुशलं स्थापयित्वा द्राक् कुशलं विन्दति ज्वरी ॥ ११७ ॥
९४ वान्तिविरेककषायप्रभृतिभिरपि ये ज्वरा न शाम्यन्ति ।
दातव्यं तत्र घृतं परिणतफणिवल्लरीपलाशशृतम् ॥ ११८ ॥

लवणोदक पीकर वमन करनेवाले को चातुर्थिक ज्वर सहसा छोड कर चला जाता है। यदि आपका चित्त चातुर्थिक ज्वर के भय से आतकित रहता हो तो हे जनो ! तुम अन्य सभी भोजनो को छोड कर केवल दूध का ही पान करो। (दूध गाय का कवोष्ण, शर्करा सहित पीना चाहिये। भूख प्यास आदि लगने पर भी सात दिवस पर्यंत केवल इस तरह दुग्धपान ही करते रहने से चातुर्थिकज्वर चला जाता है।) एक लाल मिरच को शिला पर जल से सूक्ष्म पीस कर, उसकी पिष्टी से रुग्ण के हाथ की कनिष्ठ अंगुली के दो पर्व जितने भाग को लिप्त करदे और उसपर एक वस्त्र खंड लपेट दें। अब इस अगुलि को, ज्वरागमन की दो घटी पूर्व ही जलपूर्ण पात्र मे डुबोदे। इससे हठीला चातुर्थिक भी पीछे हठ जाता है। इस विधि मे भगवान शकर के शरण मन्त्र का मानसिक जप करते रहना चाहिये तथा विधि समाप्त होने पर किसी कापालिक को वलि अवश्य दे ॥ ११०–११६ ॥

ज्वरागमन से पहिले एक पलंग पर कवल विछा उसपर 'मुशल' रख दें। इस विधि से ज्वरित को शीघ्र ही नैरोग्य प्राप्त होता है। वमन, विरेचन, कषाय, आदि से भी यदि ज्वरो का शमन न होता हो तो नागरवेल के पक्व पत्ते मे घृत को सिद्ध करके दीजिये। गुडूची के पत्तो को अङ्गारो पर सेक कर करीब दो तोलाभर रस निकाल लेवें। इसमे दो तोलाभर एरड तैल एव तीन माषा भर फुलाई हुई स्वर्जिकाक्षार मिलाकर कुछ गरम करके पीजाये। इससे ज्वर, उदर एव कफ से

१–भोजनशब्देन पानमपि गृह्यते। २–गव्य कदुष्णमशर्करं च। अस्य प्रयोगस्य सप्ताहं परा काष्ठा, क्षुधि तृषि च दुग्धमेव पेयम्। प्रयोगगुरवस्तु कदाचिज्जलपानेऽपि न दोष इत्याहु, जल्वर्जने च गुणाधिक्यमिति। ३–ज्वरागमनतो द्विघटिकाया पूर्वमिति शेष। ४–नागवल्लीदलतलितम्।

९५ अङ्गारसंतप्तसुधाच्छदानां रसं सुखोष्णं रुबुतैल[1]मिश्रम् ।
सस्वर्जिके[2]क्षारमुदाहरामि ज्वरोदरश्लेष्मभवासु रुक्षु ॥ ११९ ॥

९६ सर[3]स्वती छिढव्व[4]ूका दिङ्मापा खरे[5]पर्णिनी ।
शङ्खिनी चापि दिङ्मापा गद्याणं धर्म[6]पत्तनम् ॥ १२० ॥
गोस्तनी बाणढव्वूका गुटिका मापगौरवा ।
हृत्कम्पश्वासनयनारुण्यजागरजृम्भणे ॥ १२१ ॥
पित्तावृते शीतवाते गिलेद्विस्त्रिर्यथायथम् ।
इच्छा चेदत्र तरुणीसेवन्तीकन्दमावपेत् ॥ १२२ ॥

९७ कुर्या[7]त्तृतीयकचतुर्थकयोः शमाय
वारे रवेर्विधिमिमं पुरचत्वरेऽथ ।
मृत्कुम्भखर्परतले वरधूपयुक्ते
विस्तीर्णपूपकृशरामदिरां निधाय ॥ १२३ ॥

उत्पन्न विकारो मे शीघ्र ही लाभ होता है । (यह परमोत्तम अनुभूत प्रयोग है । इसका उपयोग प्रबलरोग मे ही करना चाहिये ।) ॥ ११७–११९ ॥

ब्राह्मी तीन तोला, गावजवा और शंखावली प्रत्येक चार चार मापा, काली मरिच छ माषा इन सबको एकत्र करके खूब बारीक पीसकर करीब साडेसात तोलाभर द्राक्षा कल्कमें खरल करके अच्छी तरह मिला लेवें । एक एक माषाभर इनकी गोलिया बनालें । पित्तयुक्त शीत-वातज्वर मे दो या तीन गोलियो को निगल जावे । यदि आवश्यकता पडे तो इसके ऊपर गुलाब अथवा सेवन्ती के गुलकद का सेवन करना चाहिये ॥ १२०–१२२ ॥

(तृतीयक एवं चतुर्थक ज्वर में, युक्तिव्यपाश्रय कर्म (चिकित्साकर्म) के असफल होने पर, दैवव्यपाश्रयकर्म करने का आदेश महर्षि चरकने दिया है । 'कर्म साधारण जह्यात् तृतीयकचतुर्थकौ' । शास्त्र के इसी वचनानुसार ग्रथकार, अब यहा, दैवव्यपाश्रय कर्म का उल्लेख करते है ।)

तृतीयक तथा चतुर्थक ज्वर को वश में करने के लिये–रविवार के दिवस, शहर के चौराहे पर, निम्नविधि अनुसार बलि देनी चाहिये । मिट्टी के एक विशाल, धूप से

१–तोलकद्वयमितं तुल्यैरण्डतैलमिश्रितं च । २–अष्टस्वर्जिकाया माषत्रयम् । महाप्रयोगोऽयं सद्य फलद प्रबलरोगे प्रयोक्तव्य । ३–ब्राह्मी । ४–ढव्वूकशब्देनाष्टादशमापका । ५–'गावजवा' इति प्रसिद्धा गोजिह्वाभेद । ६–मरिचम् । सर्वाणि पिष्ट्वा द्राक्षाकल्केन सनीय गुटिका कार्या । ७–"कर्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थकौ" इति महर्षिवचनात् साधारणकर्मणि विषमज्वरनाशकत्वेन स्थिते युक्तिव्यपाश्रयं कर्म सप्रदर्श्याधुना दैवव्यपाश्रयं कर्मापि सप्रदर्श्यते । तत्रादौ कुर्यादित्याद्येन ब्रुवाण इत्यन्तेन बलिदानम् ।

संपक्वमत्स्यपिशितं लकुचात् फलं च
शाल्युत्थकण्डनविनिर्मितमल्लकाढ्यम् ।
पुष्पैः सुशोणकरवीरभवैर्जपोत्थै-
रुद्भासुरं घृतभृतं निदधीत दीपम् ॥ १२४ ॥
वैद्यो निशाततरखड्गविशोभिहस्तः
प्रत्युद्धरञ्ज्वरहिताय निवेदयेत्तत् ।
एवं बलिं प्रतिगृहाण महाज्वर ! त्वं
तुष्टो भवाशु कुरु सौख्यमिति ब्रुवाणः ॥ १२५ ॥

९८ ग्रन्थीन् सप्त शनावुलूकरसितावच्छिन्नकाले गुणे
दद्याद्देहलिकास्थिता विवसना नारी निशीथोत्थिता ।
प्रातः पर्युषिताननाप्रयतवाग्ध्यात्वा महाभैरवं
कण्ठे गुग्गुलुधूपितं ज्वरवतः सौख्याय तद्बन्धयेत् ॥ १२६ ॥

९९ त्रिंशद्द्रङ्क्षाणमानैः परिमितममलं राजतं वाऽपि ताम्रं
भासा देदीप्यमानं कनकमणिगणप्रायपुच्छाक्षिजिह्वम् ।
मीनं श्यामाम्बराढ्यं घृतभृतविलसत्कांस्यपात्रस्तिथार्द्धं
पाथोयुक् ताम्रपात्रस्थितमथ वितरेद्ब्राह्मणाय ज्वरार्तः ॥ १२७ ॥

सुगंधित ठीकरे में बडे बडे अपूप, खीचडी और मदिरा भर दें। मछली के पकाये हुये मास को और लकुच फल को भी यथास्थान रखदें। करवीर एवं गुडहल के रक्त-वर्ण पुष्पो की लालिमा से अधिक रक्तिम बने हुये प्रकाश से उद्दीप्त तथा शालिधान्य के कुट्टित कण-चूर्ण से बनाये गये—विशाल मालसे मे प्रज्वलित दीप को स्थापित करें। तदनन्तर, ज्वर को प्रसन्न करने के लिये, वैद्यराज, तीक्ष्ण-धारवाले कृपाण से शोभित अपने हाथ को ऊंचा उठाकर, उपरोक्त सामग्री, यह कहते हुये, समर्पण करदें 'हे महाज्वर' इस वलि को स्वीकार करके आप शीघ्र ही सतुष्ट हो जाये तथा रुग्ण को नीरोग कर दे' ॥ १२३—१२५ ॥

शनिवार के दिवस, वैद्य-पत्नी, मध्यरात को, एकान्त मे नग्न होकर अपने घर की देहलीपर बैठकर, अपने आगे धूप रखकर, उलूक की ध्वनि-समकाल मे ही एक सूत्र के पाच अथवा सात गांठ बाधले। फिर, प्रात काल मुह धोये बिना ही, मौन-धारण किये, महाभैरव का ध्यान करती हुयी, उस सूत्रको ज्वरित के गले मे बांध देवे। इससे ज्वर चला जाता है ॥ १२६ ॥

पंद्रह तोलेभर चादी अथवा ताम्र की मछली बनवाये। इसकी पूंछ, आंख और जिह्वा रत्न-जटित स्वर्ण की बनानी चाहिये। इस मछलीको कृष्ण वस्त्र से

१—वैद्यस्त्री वैद्यो वा निशीथे रहो नग्नीभूयावदेहलिस्थिता पुरो धूप प्रवर्त्य घूकोक्ति समकालं पञ्च सप्त वा ग्रन्थीन् विदधीतेति त्रोटकविधि । २—त्रिभिर्मीनप्रदानप्रकार ।

शैवैर्वा वैष्णवैर्मन्त्रैर्हविर्हुत्वा द्विजन्मने ।
दद्यात् पुराणपठितं मन्त्रमेनमुदीरयन् ॥ १२८ ॥
भक्त्याऽर्चितौ शङ्करवासुदेवौ स्वभक्तरक्षाकरणप्रवीणौ ।
मीनप्रदानेन विनाशयेतामेकान्तरादीन् सकलज्वरान्मे ॥ १२९ ॥
१०० 'स्वस्ति श्रीलङ्कातः समस्तकोणपपतिर्विभीषणराट् ।
आज्ञापयति ज्वरमिति यदस्य ([2]) देहम् ॥ १३० ॥
क्लिश्नासि त्वं वेगैर्मया श्रुतं तन्न शोभनं कुरुषे ।
किं बहुना मम लेखं दृष्ट्वा त्वरितं पलायस्व ॥ १३१ ॥
नो चेद्भवदीयशिरश्छिनद्मि खलु चन्द्रहासखड्गेन ।'
इति ह विभीषणलेखं दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्वरो याति ॥ १३२ ॥

इति ज्वरचिकित्सितम् ।

सजाकर, घृतपूर्ण कांस्यपात्र में अथवा जलपूर्ण ताम्र पात्र मे रखकर, ज्वर पीडित व्यक्ति, इसे ब्राह्मण को दे देवे। इस तरह मीन का दान करते समय, मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि मे आहुति देते हुये पुराणोक्त मन्त्रो का उच्चारण करना चाहिये। 'अपने भक्तो की रक्षा मे तत्पर, हे भगवान शकर और वासुदेव! मैंने आपकी भक्ति-भाव सहित अर्चना की है। इस मीन के दानसे आप प्रसन्न होते हुये मुझे इकातरा आदि सभी प्रकार के ज्वरो से मुक्त करदे' ॥ १२७–२९ ॥

"स्वस्ति श्री लका से समग्र राक्षसो के अधिपति विभीपण राज ज्वर को आज्ञा करते है कि तू (देवदत्त) की देह को बहुत कष्ट पहुचा रहा है। यह मैंने सुना है। तुमने यह अच्छा नहीं किया। अस्तु, मेरे इस लेख को देखते ही तुम शीघ्र उठन्तरी करदो। यदि ऐसा नही करोगे तो तुमारे सिर को मै 'चद्रहास' खड्ग से काट डालूगा"। विभीषण के इस लेख को देखकर अथवा सुनकर ज्वर भग जाता है। (ऊपर 'देवदत्त' की जगह ज्वरित का नाम लिख देना चाहिये) ॥ १३०–१३२ ॥

—ज्वर-चिकित्सा-समाप्त—



१—त्रिभिरेव ज्वरपलायनार्थं लेखप्रकार । स च लोके 'उठन्तरी' इति ख्यात ।
२—यदर्थं लेखस्तन्नामात्र निवेश्यमित्यर्थं ।

अथा[1]तिसारचिकित्सितम् ।

यः प्राप्यते वेग[2]निरोधशीलिभिर्निरन्तरं स्निग्ध[3]गुरूपसेवया ।
स संचितान्तर्[4]मलपातने पटुर्मयाऽतिसा[5]रः किल कोऽपि वर्ण्यते ॥१॥

१ सूर्प[6]मर्णः शनैः पक्त्वा शेषयेत्तिन्दुक[7]द्वयम् ।
तत् पीतं सर्वरोगघ्नं मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ २ ॥

२ धातुकीविश्वमालूरमोचमेघविषाशृतम् ।
[8]अतिसारप्रत्यनीकं मया कुत्रापि विश्रुतम् ॥ ३ ॥

–अतिसार-चिकित्सा (कुल प्रयोग ४०)–

(अतिसार सुपरिचित व्याधि का नाम है । अतिसार का दूसरा अर्थ 'अति-श्रेष्ठ पुरुष' अर्थात् 'पुरुषोत्तम' यह भी होता है । सार-शब्द 'बल, पुरुष, श्रेष्ठ, सत्य' आदि भिन्न भिन्न अर्थों में व्यवहृत होता है । सार का अर्थ यदि 'पुरुष' करें तो 'अतिसार' का अर्थ होगा 'अति पुरुष' अर्थात् 'पुरुषोत्तम'। महाकविश्री भट्टजीने इस तरह प्रस्तुत प्रथम श्लोक में, पुरुषोत्तम-स्तुति-परक मगलाचरण द्वारा अतिसार चिकित्सा का प्रारभ करते हुये, इस व्याधि के निदान आदि का सक्षिप्त किंतु सूचक निर्देश भी किया है ।)

वेगोके (मलमूत्रादि, पक्षान्तर मे-ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य आदि मानस वेगो के) निरतर निरोध से, स्निग्ध, गुरु, चिकने और भारी पदार्थों के सेवन से (पक्षान्तर मे, अनुराग-पूर्वक गुरु की सेवा से) वायु मलाशय मे व्याप्त होकर, जलीय धातुओंके स्राव-पूर्वक जठरानल को मंद करके जब चिर-सचित मल को सद्रव बनाता हुआ बाहर धकेल देता है (पक्षान्तर मे, हृदय के सचित-मल-किल्बिष बाहर निकल जाते है) तब अतिसार की (पुरुषोत्तम की) प्राप्ति होती है । इसी विषय का यहा वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

दो-द्रोण (२०४८ तोला) पानी को धीरे धीरे दो तोला शेष रहने तक उकाले । इस अवशिष्ट जलके पीने से सर्व रोगो का शमन होता है । यह धन्वन्तरी का मत है । धाय के फूल, सूंठ, विल्व, मोचरस, मुस्ता और अतिविषा इनके सम-भाग क्वाथ से अतिसार मिटता है । यह मैने कहीं भी सुना है ॥ २–३ ॥

१–सग्रहे चास्मिन् परस्परसाधर्म्ये रुग्विनिश्चयनिबद्ध क्रमोऽनुसरणीय इत्यत-स्तदनुसारेणैव ज्वरानन्तरमतिसाराभिधानम् । २–वातमूत्रपुरीषादिना प्रवृत्त्युन्मुखाना शारीराणा वेगाना, पक्षे मानसाना लोभेर्ष्यादीना वेगाना निरोधोऽवगन्तव्य , तद्वेगरोधाच्च भवति शिवप्राप्ति । यदुक्तं वाग्भटे–"धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च । लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीना जितेन्द्रिय ॥" इति । ३–स्निग्धाना पायसादीना गुरुणा च द्रव्याणा सेवया । पक्षे अनुरक्ताचार्यशुश्रूषया । ४–पुरीषादिकम्, अन्यत्र किल्बि-षादिरूपं मलम् । ५–रोगविशेषो, भगवान् पुरुषोत्तमश्च । ६–द्रोणद्वयमित जलम् । ७–तिन्दुक कर्षपर्याय , तथा च वाग्भट –"कर्षो बिडालपदक तिन्दुक. पाणिमानिका । शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे" इत्यादि । ८–तन्त्रान्तरे त्वतिसारहन्तृत्वमभिहितम्–"यथा शृत भवेद्वारि तथाऽतीसारनाशनम् । अतिसार निहन्त्येव शतभागशृत जलम् ॥" इति ।

३ मालूरनीरदमिसिस्थलपद्मपाकैः[२]
संपक्वमम्बु सितया सितया विमिश्रम् ।
आमातिसारमतिशोणितशोणभासं
हन्ति क्षणादिव पतङ्गमहस्तमिस्रम् ॥ ४ ॥

४ पिप्पलवल्काग्निकृतः सासितदङ्गारसंस्कृतार्णस्कः ।
तद्गोलजैः[३] कषायो निरुणद्धितरामतीसारम् ॥ ५ ॥

५ त्वक्सारत्वगुपरिगच्छल्लफलेन्द्रानवच्छदाः[४] पिष्टाः ।
सजलाः सनागफेनाः शृतशीताः पानतो[५]ऽतिसारहराः ॥ ६ ॥

६ जम्ब्वा वा शम्या वा मृदुलानि दलानि सोपणानि सखे ! ।
खल्वे प्रपिष्य पयसा पटपूतान्यतिसृतिघ्नानि ॥ ७ ॥

७ न्यस्तं घटे चणककञ्चुक[६]भाजि वारि विस्राव्य शङ्कुकृतनिर्व्यथनाद्यथार्तः[७] ।
योऽल्पं पिबेदविरतं विरतौषधोऽपि दाहातिसारविपदां न पदं भवेत् सः ८

८ जातीफलं सविश्वं जलघृष्टं शीतमेव दातव्यम् ।
बध्नाति पथ्ययुक्त्या मलं द्रवीभूतमताय ॥ ९ ॥

बिल्व, मोथा, सौंफ और गुलकंद इनमें जल को उकालकर छान लें। इसमें मिश्री मिलाकर पीने से रक्तपूर्ण आमातिसार उसी तरह विलीन हो जाता है जैसे सूर्य के तेज से अंधकार ॥ ४ ॥

पिप्पल के अर्ध-दग्ध अंगारो को एक चलनी में रख उनपर पानी डालकर बुझावें। इस पानी को, चलनी के नीचे रखे हुये एक पात्र में एकत्रित करलें। इस तरह संस्कृत-जल मे पिप्पल के फलों को कूट कर डाल देवे। फिर पिप्पल-वल्क की अग्नि से इसका कषाय-विधि से क्काथ करले। इस क्काथ से गर्भवती स्त्रीके अतिसार में उत्तमोत्तम लाभ होता है ॥ ५ ॥

वांस की छाल, जांवू के ताजे कोमल पत्ते और अफीम इन सबको एकत्र जल में खूब महीन पीसकर उबालले। शीतल होने पर इसको पीकर सोजावें। इससे अतिसार मे लाभ होता है। जांवू के अथवा शमी के कोमल पत्तोको मरिच सहित जल मे खरल करलें। फिर, वस्त्र-पूत करके पीने से अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ६–७ ॥

चनो के तुष को जल मे मिलाकर एक घडे में भरदे। इस जल को, घडे के पैंदे मे शङ्कु-कृत-छिद्र मे से बूंद बूंद टपकालें। अब, इस जल को एक एक घूट करके धीरे धीरे पीने से अन्य औषधियो से थका हुआ भी दाह एव अतिसार की विपदा से निरापद हो जाता है। जायफल एव सूंठ को जल मे घिसकर शीतल ही देने से तथा युक्ति पूर्वक पथ्य सेवन से शीघ्रही पतला मल बद्ध हो जाता है ॥ ८–९ ॥

१–बिल्व । २–गुलावगुलकन्दे । ३–अश्वत्थफल लोके 'गोल' नाम्ना व्यवह्रियते । तज्ज कषाय । अय गर्भिण्यै देय । ४–त्वक्सारो वश ,तस्योपरिस्थवल्कलम् । फलेन्द्रा जम्बू , तस्या नवपल्लवानि । ५–पीत्वा स्वप्यादिति तत्त्वमत्र । ६–चणकतुषाणि । ७–छिद्रात् ।

९ खाखसाख्यानि पञ्चैव तावतीर्धेनुदुग्धिकाः ।
नीरे[1] संनीय संमर्द्य तन्नीरं स्रावयेत् पटात् ॥ १० ॥
तत्र मृत्स्नां सितां सर्पिः क्षिप्त्वा कुर्वीत शार्करम् ।
तत् पीतं मात्रया द्वित्रिः सर्वातीसाररोधकम् ॥ ११ ॥
१० चिञ्चाबीजानि भूदंशि[7] तोयान्तर्मज्जयेच्छनौ ।
रवौ तानि हृतत्वञ्चि सामि शृङ्गाटचूर्णकम् ॥ १२ ॥
फणिफेनं ततः सामि सर्वमेकत्र कल्कयेत् ।
कल्कस्य चक्रिकां कृत्वा तवकोपरि भर्जयेत् ॥ १३ ॥
शकलं मात्रया तस्या वितीर्णं तन्दुलाम्बुना ।
अतिसारं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ १४ ॥
११ दाडिमीकलिकाकल्कः प्रलमाक्षिकसाक्षिकः ।
सकृदेव प्रयुक्तश्चेदतिसारस्य का कथा ॥ १५ ॥

पोस्त के पांच डोडे तथा इतनी ही सख्या मे कचरी (धेनुदुग्ध - फल) दोनों को पानी मे मसलकर वस्त्र-पूत करके फिर उसमे दो तीन माषा मुलतानी मिट्टी, दो तीन पल शर्करा और दो तीन माषा घृत मिलाकर उसका शार्कर बनालें । इसे यथामात्रा मे दो तीन बार पीने से सभी प्रकार के अतिसार शमन हो जाते है ॥ १०–११ ॥

शनिवार के दिवस इमली के इक्कीस बीजो को पानी मे भिगोकर रखदें, रविवार को दूसरे दिवस इन बीजो के छिलके निकालले । इनसे आधा वजन भर सिंघाडे का चूर्ण तथा इस चूर्ण से अर्ध मात्रा मे अफीम लेवे । अब, इन तीनो को एकत्र पीसकर उनकी टिकियां बना एक लोह के तवे पर सेकले । इनमें से एक चक्रिका को चावल के मड के साथ लेने से, विष्णु के चक्र से असुरो की तरह, अतिसारका नाश हो जाता है । दाडिम की कलियो के कल्क को पुराणे मधुके साथ एक ही बार लेने से अतिसार नामशेष हो जाता है । वटके कोमल अकुर तथा मिश्री प्रत्येक तीन तीन तोला लेकर इनके कल्क को, सर रहित, बत्तीस तोला भर दही के साथ लेनेसे घोर अतिसार भी प्रशमित होता है ॥ १२–१६ ॥

कृष्ण एवं श्वेत दोनो प्रकार के जीरे, मरिच और चित्रक इनके चूर्ण को दही मे मिलालें । यह प्रयोग अतिसार को उसी तरह पीजाता है जिस तरह अगस्त्य मुनि ने एक ही आचमन में समुद्र को पीलिया था । गुलाब का गुल्कद, सौंफ, इलायची, जीरा, रूमीमस्तगी इनके चूर्ण का सेवन करने से अहो ! तीन ही दिवस मे कष्ट-साध्य आमातिसार से मुक्ति मिल जाती है । गेहू के चूर्ण मे सौंफ मिला बाटियां बनाकर अंगारो पर सेक लें । अच्छी तरह सिक जाने पर इनका कूट पीसकर चूरमा जैसा बना-

---

१–'छोतरा, पोस्त' इति प्रसिद्धानि । २–खर्वाणि धेनुदुग्धानि 'कचरी' इति प्रसिद्धानि । तानि च मारवाणि शस्तानि । ३–द्वित्रिपले । ४–'मुलतानी' इति प्रसिद्धा द्वित्रिमाषाम् । ५–द्वित्रिपलमिताम् । ६–मृत्तुल्यम् । ७–एत्र विंशतिसख्यानि । ८–अतिरोहितार्थमिदम् ।

१२ वटाङ्कुरास्त्रिपिचवस्तावन्त्येव सिता द्वयोः ।
कल्को दध्ना निबद्धेन घोरातीसारनाशनः ॥ १६ ॥
१३ शितिजैरणजरणमरिचज्वलनक्षोदो विमिश्रितो दध्ना ।
अतिसारं चुलुकयति प्रसह्य सागरमिवागस्त्यः ॥ १७ ॥
१४ तरुणीसुमकन्दमिपित्रुटिजीरकरूमैगुन्द्रमुपसेव्य ।
आमातिसारकृच्छ्राद्विमुच्यते त्रिभिरहोभिरहो ॥ १८ ॥
१५ अध्यङ्गारविपक्वा पिण्डी गोधूमचूर्णमिपिबद्धा ।
क्षुण्णा सिताघृताक्ता हन्तितरामामवेदनां घोराम् ॥ १९ ॥
१६ शुण्ठी मज्जा रसालस्य मिपिः खाखसवल्कलम् ।
समभागानि संभर्ज्य घृते किञ्चिच्छनैः शनैः ॥ २० ॥
भागैकं जीरकं भ्रष्टं निक्षिपेद्द्विगुणां सिताम् ।
शाम्यत्यामातिसरणं चूर्णेनानेन निश्चितम् ॥ २१ ॥
१७ फलानि तिन्तिडीजानि भर्जिते मिपिजीरके ।
प्रत्येकमेकभागानि दाडिमी च द्विभागिका ॥ २२ ॥
शर्करा पञ्चभागैव चूर्णमेतदनुत्तमम् ।
घोरामामातिसारार्तिं विनिहन्ति न संशयः ॥ २३ ॥

कर, उसमें शक्कर और थोडा घृत मिला सेवन करे । यह आमातिसार की उग्र वेदना का संहार कर देता है ॥ १७–१९ ॥

सूंठ, आम की गुठली की अन्तर्मज्जा, सौंफ और पोस्त के छोतरे इनको सम-भाग लेकर घी से धीरे धीरे अग्नि के ऊपर भूनलें । फिर इसमें एक भाग भूना हुआ जीरा एवं इन सभी द्रव्यों से द्विगुणित मिश्री मिलादे । इससे आमातिसार निःसंदेह दूर होता है ॥ २०–२१ ॥

इमली, भूने हुये सौंफ और जीरा यह तीनो द्रव्य एक एक भाग, दाडिम दो भाग, शर्करा पाच भाग इनका बनाया गया उत्तम चूर्ण आमातिसार की उग्र वेदना को शांत करता है । इसमें संदेह नहीं ॥ २२–२३ ॥

कंकोल, देवदारु, दालचिनी, सैंधव, बिल्व, मरिच, जायफल, श्वेत और स्याहजीरा तथा जावित्री इनके कपड छान चूर्ण को बिजौरा के रस की भावना देकर गोलियां बनाले, यह कफ, वात, अरुचि तथा अतिसार को दूर कर देती है ॥ २४ ॥

सौंफ चार तोला, इलायची एक तोला इनदोनो के बराबर वजन में मिश्री चूर्ण इन सबको एकत्र मिलाकर लेने, जलकी हेर फेर से उत्पन्न आमातिसार नष्ट होजाता

१–शरावोन्मितेन सररहितेन च । २–कृष्णजीरकं । ३–रूमदेशोद्भवं गुन्द्रं लोके 'मस्तङ्गी' इति प्रसिद्धम् । ४–आम्रफलस्य । ५–सर्वसमभारतो द्विगुणा समाना वा ।

१८ कङ्कोलदारुसितिकापटुविल्वतीव्र-
जातीफलद्विजरणौषधजातिकानाम् ।
चूर्णानि लुञ्जरसेन विभावितानि
श्लेष्मानिलारुचिसरत्त्वहराणि सन्ति ॥ २४ ॥

१९ मिपेस्त्रुटेः पलं कर्षः सिता सर्वसमा रजः ।
निहन्यात् सामविड्भेदं पानीयपरिवृत्तिजम् ॥ २५ ॥

२० दध्ना सिचयबद्धेन तिन्तिडीकत्वचो रजः
अतिसारं पराजित्य रुचिमुच्चैः प्रयच्छति ॥ २६ ॥

२१ फणिफेनकत्थविश्वं दृगब्धिवसुरक्तिकं पिष्ट्वा ।
तिस्रो हरन्ति पुटिकास्त्रिभिर्दिनैस्तन्दुलाम्भसाऽतिसृतिम् ॥ २७ ॥

२२ अङ्गारसङ्गोद्गतगर्भतैले दत्त्वाऽहिफेनं शुचि नारिकेले ।
मनागुपेक्षेत ततोऽस्य खण्डं प्रातः प्रदद्यादतिसारशान्त्यै ॥ २८ ॥

२३ भ्राष्ट्रभ्रष्टे खाखसधात्रीफलवल्कले क्षुण्णे ।
निर्हतोऽतिसृतिं यद्वा खाखसफलवल्कमेथिके तद्वत् ॥ २९ ॥

२४ भ्राष्ट्रविभर्जितखाखसफलवल्कचूर्णतुल्यभागस्य ।
अतिसरणार्तिं स्विन्नामलफलकल्कस्य मोदका घ्नन्ति ॥ ३० ॥

है । वृक्षाम्ल की छाल के चूर्ण को वस्त्र में से पानी निकालकर गाढे दही के साथ लेने से अतिसार के शमन पूर्वक यथेच्छ रुचि उत्पन्न होती है ॥ २४–२६ ॥

आफीम दो रत्ती, खदिर चार रत्ती, इनका सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को चावल के धोवन की तीन भावनायें देकर सेवन करने से तीन दिन में ही अतिसार शमित होजाता है ॥ २७ ॥

एक अच्छे परिपक्व नारियल को अग्निपर तपाये । उसमें से जब अन्तर्तैल बाहर निकलने लगे तब उसमें अफीम डाल दें । कुछ क्षणों तक उसे इसी तरह रहने दें । फिर, उतार कर उस अफीम को, यथादोष, बल और काल के अनुसार मात्रा से प्रातः उपयोग में लेवें । इससे अतिसार का शमन होता है ॥ २८ ॥

आंवला और पोस्त की त्वचा को अग्नि के ऊपर भूनकर कपडछान चूर्ण बनालें अथवा इसी तरह पोस्त के छोतरे एवं मेथी का चूर्ण सिद्ध करले । यह दोनो ही अतिसार का नाश कर देते हैं ॥ २९ ॥

आंवलो को विना जल के मंदाग्नि से स्वबाष्प द्वारा स्विन्न करके, उसका कल्क बनालें । इस कल्क मे इसके समान भाग जितना अग्निपर भूने गये पोस्त के छोतरो का चूर्ण मिलाकर मोदक बनालें । यह मोदक अतिसार की वेदना को दूर करता है ॥ ३० ॥

१–गुडत्वक्, 'दालचीनी' इति प्रसिद्धा । २–मरिचम् । ३–देशान्तरीयदुष्टजलपानजम् । ४–पटबद्धेन स्रुतजलेन । ५–खदिरविशेष । ६–'हन हिंसागत्यो' इत्यस्य लट्. प्रथमपुरुषद्विवचनम् । ७–जल विना स्विन्नामलकफलानि ।

२५ अरुणधवलचल[1]किसलयनवकिसलयपुटविपक्वफणिफेनम् ।
अतिसरणमसुहरणमपि हरिस्मरणमिव रुणद्धि संसरणम् ॥ ३१ ॥

२६ पृदाकुफेन[2]भसितं लीढं माक्षिकयोगतः ।
अतिसारं रुणद्धि द्रागानाहं न करोत्यपि ॥ ३२ ॥

२७ एकनिम्बूकजैर्नीरैरवलेहीकृता सिता ।
संस्तम्भयत्यतीसारं वेलेव सरितां पतिम् ॥ ३३ ॥

२८ चलपर्णमूलवल्कलफाण्ट[3]ः पीतो यथा स्रुतिं जयति ।
२९ जन्तुफलपयो[4]र्वद्धा भङ्गावटिकाऽपि तथ्यमेव तथा ॥ ३४ ॥

३० पादांशदेवकुसुमं धौतं[5] विजया[6]विशेषदलम् ।
घृतसिद्धं गुँडमृदितं हन्त्यपि फणिफेनिनां महातिस्रुतिम् ॥ ३५ ॥

३१ गुडे घृतेन क्वथिते प्रणीय ससर्पफेनं क्रमुकस्य चूर्णम् ।
माषप्रमाणा गुटिका विधेया विट्सारकं द्वित्रिदिनैर्हरन्ति ॥ ३६ ॥

३२ यन्त्रेणं धूमंमौद्वेगं पिबन् द्वित्रिः शनैः शनैः ।
घृताशी[11] मुच्यते घोरादुच्चैरामातिसारतः ॥ ३७ ॥

वसन्तऋतु मे पिप्पलवृक्ष के नूतन, अरुणाभ श्वेत, कोमल पत्ते आते हैं। इन पत्तो के पुट में अफीम को पकावें। यथामात्रा मे इसके सेवन से प्राणघातक अतिसार भी उसी तरह स्थगित हो जाता हे जिस तरह हरिस्मरण से सांसारिक मायाजाल ॥३१॥

अफीम की भस्म को यथामात्रा मधु के साथ लेने से अतिसार के शीघ्र शमन के साथ साथ आध्मान में भी लाभ होता है। एक अच्छे पक्व निंबू रस के साथ मिश्री मिला कर चाटने से अतिसार का वेग उसी तरह रुक जाता है जिस तरह सीमा से समुद्रका। पिप्पल वृक्ष के मूल की त्वचा का फाण्ट बनाकर पीने से अतिसार परास्त हो जाता है। उदुंबर फलके रस में भाग को पीस कर गुटिका बनालें। यह भी, उपरोक्त प्रकार से, अतिसार को दूर कर देती है। गांजा एव गाजा से चतुर्थांश लौंग लेवें। प्रथम गांजे को हस्त तल मे लेकर सभाल पूर्वक मसलकर सो वार पानी से धो डालें। फिर, गांजे को और लौग को, दोनो को, घी मे सेक ले। इनमे गुड मिलाकर खरल मे खूब घोटें। इसके सेवन से अफीम खाने वालो का भी अतिसार शमन हो जाता है। इसकी पूर्ण मात्रा एक गुंजा भर ही है। गुड को घृत मे सेककर द्रव बनालें। फिर उसमे अफीम और सुपारी का चूर्ण मिला कर एक माषाप्रमाण मे गोलियां बनालें। इसके प्रयोग से दो तीन दिवस में ही अतिसार मिट जाता है ॥ ३२-३६ ॥

चिलम मे सुपारी के चूर्ण को रखकर उसके धूम को, धीरे धीरे, यथाक्रम,

---

१-चलकिसलयोऽश्वत्थ । २-अहिफेनभस्म। ३-'सद्योऽभिगृतपूतस्तु फाण्ट ' इत्याद्युक्तलक्षण । ४-उदुम्वररसवद्धा। ५-अधिहस्ततल जले शतकृत्वो धौतम्। ६-'गाजा' इति लोकप्रसिद्धम्। ७-खल्वे खल्वयित्वा गुडेन विनीय गुटिकीकृतमित्यर्थ । साधारणरोगिणे गुञ्जाधिका गुटी न देया। ८-जलार्द्रस्य प्रलपूगस्य चूर्णं, तत्राफूकं मकुष्टप्रमाणं देयम्। ९-धूमयन्त्रेण 'चिलम' इति प्रसिद्धेन। १०-पूगफलजम्। ११-गोघृतं मात्रया पोलिकादिषु प्राश्यम्।

३३ लेपो लवङ्गकाश्मीररूमगुन्द्रैः प्रकल्पितः ।
अतिसारं रुणद्ध्येव छगनेन निवेदितः ॥ ३८ ॥
३४ नवसादरस्य भागो द्वौ भागौ धर्मपत्तनस्यापि ।
पिष्ट्वा सलिलेन वटी हन्त्यतिसारं तनोति जठराग्निम् ॥ ३९ ॥
३५ वाह्लीककाकोदरफेनकत्थैर्वट्यो विधेया हरिमन्थसोदराः ।
उच्चैरतीसारमसुप्रहारं जलेन गीर्णा विनिवारयन्ति ॥ ४० ॥
३६ भ्रष्टामेकतरे पार्श्वे रामठाफूकचक्रिकाम् ।
अतिसारे गिलेदद्भिः शीताभिश्चणकोपमाम् ॥ ४१ ॥
३७ रूमजो मस्तगीसारः फणिफेनं सहिङ्गुलु ।
विट्सारे स्यात् कृता वर्तिर्जलैरीश्वरबोलजैः ॥ ४२ ॥
३८ गरलदरदमरिचकणाः सुधांशुचक्षुः समुद्रनयनांशाः ।
आनन्दभैरवः स्यान्निम्बूकरसैर्विभावनादसकृत् ॥ ४३ ॥

जोर से कस खींच खींच कर पीयें। इस तरह दो तीन दिवस धूम्र-पान करें। पथ्य में, गोघृत मिला कर पूरणपोली (वेढमी) आदि खानी चाहिये। इस तरह करने से घोर आमातिसार से भी मुक्ति मिल जाती है। लौंग, केसर और रूमी-मस्तगी इन तीनों का उदर पर शीतल लेप करने से अतिसार मिट जाता है। यह प्रयोग मुझे मेरे शिष्य छगन (सुरत निवासी) ने बताया है। (श्रीछगनकाका के दर्शन का सौभाग्य अनुवादक को भी मिला है। शतायु भोग कर इन्होने हमारे यहां ही देह-त्याग किया था) ॥ ३७–३८ ॥

एक भाग नोसादर, दो भाग मरिच, इनको एकत्र जल के साथ खरल करलें, एवं मरिच प्रमाण में गोलिया बनालें। यह अतिसार को मिटातीं एव जठरानल को प्रदीप्त करती है। हींग, अफीम और खैरसार इनका कपडछान सूक्ष्म चूर्ण करके, जल मे पीसकर चने के प्रमाण गोलिया बनालें। पानी के साथ निगीर्ण करने से प्राण-घातक अतिसार को भी ये दूर कर देती है ॥ ३९–४० ॥

हींग और अफीम दोनों को घोट कर अच्छी तरह मिला लेवें। इनकी टिकिया बनाकर उनको तवे के ऊपर एक तरफ से ही सेक लेवें। दूसरी तरफ का भाग नहीं सेकें। इस तरह एक ही पार्श्व मे सेकी गई टिकियों में से एक चने जितना हिस्सा लेकर शीतल जल के साथ निगल जावें। इससे अतिसार मे लाभ होता है। रूमी-मस्तगी, अफीम और हिंगुल इनकी ईसबगोल मे सिद्ध किये गये पानी से वर्ति बनालें। गुदामार्ग मे इसे रखने से अतिसार शमन हो जाता है ॥ ४१–४२ ॥

एक भाग शृगी-विष, दो भाग हिंगुल, चार भाग मरिच और दो भाग

१–उदरोपरि शीत एव कृत इत्यर्थ । २–गुर्जरवासिना गुरुशिष्येण । ३–मरिचस्य । ४–मरिचाभा । ५–हिङ्गु । ६–आफूकम् । ७–चणप्रमाणा । ८–शृङ्गीविषम् । ९–सप्तधेत्यर्थ ।

३९ अहिफेनमल्लदरदं विमर्द्य वटदुग्धगं वधान वटीम् ।
शोथातिसाररुजि सा प्रशस्यते क्षुधि तृषि क्षीरम् ॥ ४४ ॥
४० क्षिप्रार्थमव्ययं किं शिथिलयति रयेण किं नदीपूरः ।
वितरन्ति कं बलासे बिल्ववटी कं रुणद्ध्यतीसारम् ॥ ४५ ॥
सोऽसाध्यः परिकीर्तितोऽतिसृतिमान् यस्यातिसार्येत वि-
ण्नीलाभाऽधिकनिर्मला प्रविलसत्सौरभ्यसंभारयुक् ।
अन्तर्दुष्टितयाऽतिविभ्रमलिना वद्धा सिरातन्तुभि-
र्जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवत् ॥ ४६ ॥

इत्यतीसारचिकित्सितम् ।

पिप्पली इनको एकत्र करके नींबू के रस की सात भावनाये दे । इसे आनन्दभैरव रस कहते है । यह अतिसार मे परम उपकारक है । अफीम, मल्ल और हिंगुल इनको एकत्र लेकर वटदुग्ध मे खरल करके गोलिया बांधले । ये शोथ एवं अतिसार की वेदना मे प्रशंसनीय असर दिखाती है । इसके प्रयोगकाल में भूख तथा प्यास लगने पर, पथ्य रूप में, केवल दुग्ध-पान ही करना चाहिये । अन्न और जल का सेवन निषिद्ध है ॥ ४३–४४ ॥

शीघ्र के अर्थ मे किस अव्यय का प्रयोग किया जाता है ? (अरम्), नदी का वेग किस को शिथिल बना देता है ? (तीरम्), कफ को पतला करके बाहर निकाल देनेवाला कौनसा द्रव्य है ? (सारम्-नवसादर), बिल्व-वटी किस को रोकती है ? (अतीसारम्) । (व्यस्तरूप में प्रत्येक प्रश्न के क्रमश उत्तर है 'अरं, तीर, सार= अतीसारम्' । समस्त रूप मे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर 'अतिसार' इस शब्द से दिया गया है ॥ ४५ ॥

(प्रस्तुत श्लोक की अंतिम पंक्तिगत समस्या की पूर्ति महाकवि श्रीकृष्णराम ने, वैद्योचित ढग से, अतिसार के असाध्य लक्षणो के वर्णन द्वारा की है । महाकवि यदि सिद्ध वैद्य भी हो, तभी यह सभव है ।)

अतिसार पीडित रोगी का मल यदि नीलाभ, स्वच्छ, सुगंधयुक्त, मलिनता लिये, सिराततुमय अतएव जांबू जैसे वर्ण का (नीलाभ), जल बिंदुओं जैसा (स्वच्छ), कमल जैसा (सुगध-युक्त), काई जैसा (मलिन), तथा तृण घास आदि से सकुल (सिराततुमय) जैसा हो तो उस अतिसार को असाध्य समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

– अतिसार चिकित्सा समाप्त –



१–अर, तीर, सारम्, इति व्यस्तोत्तराणि, अतीसारमिति च समस्तोत्तरम् ।
२–ऽय समस्या अतिसारासाध्यलक्षणवर्णनेन पूरिता ।

अथ ग्रहणीचिकित्सितम् ।

१ उत्स्वेद्य किमपि कंदलीफलानि संनीय कल्पिता पोली ।
संतानिकाविरहिणा दध्ना सह सेविता जयेद्ग्रहणीम् ॥ १ ॥

२ उदुम्बरशलाटूनि स्विन्नानि जलबाष्पतः ।
दध्ना विनीय भुञ्जीत ग्रहणीग्लपितो नरः ॥ २ ॥

३ तक्रे प्रस्थं रसगुणे वासयेत् सिंहचर्मणः ।
तत्तक्रं मानतो हन्ति ग्रहणीं दुस्तरामपि ॥ ३ ॥

४ जातीफलयवमुस्ताविल्वरजस्तक्रलोलितं पीतम् ।
संधुक्षयति ज्वलनं ग्रहणीं सद्यो निगृह्णाति ॥ ४ ॥

५ वृक्षाम्लफलप्रस्थं सितोपलायाः पडेव विल्वानि ।
लवणं द्विपलमजाजीत्रिपिचू रुचिरं रजो द्यति ग्रहणीम् ॥ ५ ॥

६ कुञ्जरभक्ष्यच्छल्लकचूर्णं ससितं जलानुपानेन ।
ग्रहणीरुधिरातिस्रुतिग्रसनग्रहिलं विजानीयात् ॥ ६ ॥

— ग्रहणी-चिकित्सा (कुल प्रयोग १०) —

कच्चे केले को थोडा स्विन्न करके उसके अंदर का गूदा निकाल, उस मे गेहू का आटा मिलाकर अच्छी तरह गूध ले-आटा उतनाही ले जितना गूदे से बराबर वंधजाये। फिर इसकी भाखरी (बाटी) बना कर अंगीठी मे सेकले। मलाई रहित दही के साथ इसे खाने से ग्रहणी वश में आ जाती है ॥ १ ॥

उदुंबर के कच्चे फलो को जल की बाष्प से स्विन्न करके ग्रहणी रोग से परिक्षीण व्यक्ति को दही में मिला कर सेवन करना चाहिये । एक प्रस्थ छाछ मे उससे चतुर्गुण अरडूसे की अन्तर्छाल मिला कर मिट्टी के पात्र मे भर एक सप्ताह पर्यंत छत पर रहने दे। फिर, इसे वस्त्रपूत करके एक पल भर मात्रा मे पीयें, यह दु.साध्य ग्रहणी को भी वश मे कर लेता है। जायफल, जौ, नागरमोथा और विल्व इनके सूक्ष्म कपडछान चूर्ण को तक्र मे मिला कर पीने से जठरानल प्रदीप्त होती है तथा ग्रहणी शीघ्र ही शांत हो जाती हे। कोकम चौसठ तोला, मिश्री चोवीस तोला, सैंधव आठ तोला, जीरा तीन तोला इनका कपडछान सूक्ष्म चूर्ण रुचि उत्पन्न करता तथा ग्रहणी को मिटाता है ॥ २–५ ॥

पिप्पल-वृक्षकी छाल के सूक्ष्म चूर्ण मे मिश्री मिला कर जलानुपान पूर्वक लेना चाहिये। यह चूर्ण ग्रहणी एव रुधिर के अजस्र-स्राव को अडग होकर ग्रास कर जाता है। (पीपल की छाल स्तभक, रक्तसग्राहक एव पौष्टिक भी है। इसके कोमल पत्ते प्रथम विरेक करा के पीछे से स्तभन करते है।) ॥ ६ ॥

१—अपक्वानि। २—षड्गुणे। ३—मृद्भाण्डे सप्ताह हर्म्यपृष्ठे स्थापयेत्। ४—आटरूपान्तरत्वच। ५—पटपूत पलप्रमाणम्। ६—पलानि। ७—पिप्पलवल्कलचूर्णम्।

७ प्रत्येकरसंगद्याणौ[1] शिवयोर्वेल्कतल्लजौ ।
सप्तकं विषमुष्टीनां गोघृते भर्जयेत् क्रमात् ॥ ७ ॥
चूर्णमेषां कृशरया खादतां तूर्णमेव हि ।
प्रयाति ग्रहणीरोगो योगः श्यामा[3]भिभाषितः ॥ ८ ॥

८ शुद्धं शिवां[4]शमेकांशमेकांशं फणिफेनकम् ।
द्व्यंशं गन्धमिति त्रीणि पिष्ट्वा कुर्वीत पर्पटीम् ॥ ९ ॥
विष[6]मुष्टिकधत्तूरबीजजातीफलान्यपि ।
एकांशानि पृथक् तत्र दत्त्वा मसृणतां नयेत् ॥ १० ॥
दाडिमीतिन्तिडीतोयैर्भावयेत् सप्तधा पृथक् ।
वटीर्बध्नीत जरणक्षौद्रैस्ता ग्रहणीच्छिदः ॥ ११ ॥

९ स्वादुस्निग्धवलक्षकोमलकणा घ्राणेन्द्रियग्राहिणी
मृत्स्ना देवतरङ्गिणीपुलिनजा कृत्स्नापदुद्धारिणी ।

हरीतकी और आंवला इन प्रत्येक की तीन तीन तोलाभर छाल एवं सात नग कुचले इन को क्रमशः पृथक् पृथक् गाय के घी में भूनलें । फिर, इनके एकत्र चूर्ण को खीचडी में मिलाकर लेने से ग्रहणी मे शीघ्र आराम मिलता है । यह प्रयोग श्यामजी (ग्रथकार के विद्वान शिष्य) ने बताया है ॥ ७–८ ॥

शुद्ध किया हुआ पारद और अफीम प्रत्येक एक एक भाग, गंधक दो भाग, इन तीनों को पीस कर, बोर की शाखाओ की अग्नि से पर्पटी-निर्माण-विधि द्वारा पर्पटी बनालें । फिर, शुद्ध कुचला, शुद्ध धत्तूरे के बीज और जायफल प्रत्येक एक एक भाग लेकर उपरोक्त पर्पटी में मिला बारीक पीस कर मुलायम बनालें । अब, इस चूर्ण को दाडिम तथा इमली के रस की पृथक् पृथक् सात सात भावनाये देकर टिकियां बनाले । इनको पुराणे शहद के साथ लेने से ग्रहणी रोग का उच्छेद हो जाता है ॥ ९–११ ॥

घ्राणेन्द्रिय को प्रिय अर्थात् अत्यत उग्र-गंध से रहित, स्वादु, स्निग्ध, श्वेत, तथा कोमल पिप्पली लें । सपूर्ण विपदाओं से मुक्ति देने वाली भगवती भागीरथी नदी तट की मिट्टी लेवें । इन दोनों को स्वर्ण-गैरिक के साथ पानी मे घोलकर अच्छी तरह मिला वस्त्र से छान लेवें । अब इस जल को मंदाग्नि से खूब उकाल कर नि.शेष करदे । अवशिष्ट तल-लग्न शुष्क द्रव्य को लेकर खरल करके चूर्ण बनाले । इस चूर्ण

१–षड्गद्याणौ । २–शिवा हरीतकी शिवा धात्री चेत्येकशेष । ३–इमे श्रीगुरुशिष्या एव वैद्यतल्लजा । ४–पारदम् । ५–बादराग्निनेति शेष । ६–शुद्धानि विषमुष्टिकानि धत्तूर-बीजानि च । धत्तूरबीजशोधनं च यथा–“धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुन । खण्डितं निस्तुषं कृत्वा योगेषु विनियोजयेत् ॥” इति ।

साकं काञ्चनगैरिकेण सलिलैरालोल्य विस्राविता
　　सिद्धा मन्दकृशानुना ग्रहणिकापित्तास्रवित्ता न किम् ॥ १२ ॥

१० द्विजीरव्योपमुस्तैलापुष्पं[3]जातीफलच्छदम्[4] ।
मुकूलैलैं[5]र्नवातामनारिकेरनृपादनम्[6][7] ॥ १३ ॥
श्रीखण्डं दाडिमीवांश्यो तालीसं जातिपत्रिका ।
गुडत्वग्विद्रुमं कोलं शृङ्गाटकवितुन्नके ॥ १४ ॥
प्रत्येकं शाणमानानि शाणार्धं कुङ्कुमोत्तमम् ।
त्रितोलं चिक्कणं पूगं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ॥ १५ ॥
शनैः शरावपयसि पाचयित्वा घनावधि ।
क्षिपेत् सितोपलां सर्पिः पृथक्कुडवमात्रया ॥ १६ ॥
सिद्धोऽवलेहराडेष विधुनोति गदानिमान् ।
ग्रहणीमसृगर्शांसि निर्बलत्वमरोचकम् ॥ १७ ॥

इति ग्रहणीचिकित्सितम् ।

को मधु में मिलाकर फिर, जल में घोलकर पीये । अथवा शक्कर की चासनी बनाकर इस चूर्ण को उसमें मिला देवें । फिर इसमें से यथामात्रा पानी में घोलकर पीजायें । अथवा चूर्ण को केवल शक्कर में ही मिलाकर जल के साथ ही फांक लेवें । गंगा-तटकी मिट्टी की मात्रा एक तोलाभर है । पथ्य में सांझ को दूध तथा गेहूं का दलिया सेवन करें । इससे ग्रहणी, रक्तपित्त, हैजा आदि शमन होते हैं ॥ १२ ॥

श्वेत और श्याह दोनो प्रकार के जीरे, त्रिकटु, मोथा, इलायची, लौंग, जायफल, तेजपत्र, पिस्ता, चिलगोजा, बादाम, नारियल, प्रियालफल की मज्जा, चंदन, दाडिम, वंशलोचन, तालीसपत्र, जावित्री, दालचीनी, प्रवाल, बौर, सिंघाडा, धनिया प्रत्येक तीन तीन माशा, केसर १½ माशा, चिकनी सुपारी तीन तोला इन सब को एकत्र लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को बत्तीस तोला दूधमे उकाल कर गाढा करले । अब, इसमे घृत तथा मिश्री प्रत्येक सोलह तोला प्रमाण मे मिला देवें । इस तरह से सिद्ध किया गया यह अवलेहराट्, ग्रहणी, रक्तार्श, निर्बलता और अरुचि का संहार कर देता है ॥ १३-१७ ॥

– ग्रहणी-चिकित्सा समाप्त –

१—पटेन छानिता । २—मधुना विनीय लेहीकृत्य जलेन घोलयित्वा पाययेत् । अथवा सिता सजला विपाच्य तन्तुमत्त्वं विज्ञाय तत्र क्षिपेत् । किंवा शर्करासहितस्यास्य चूर्णमेव जलेन गिलेत् । मात्राप्रमाण तोलकावधि मृत्स्नाया । पथ्यं सायं दुग्धं गोधूमदलिका (दलिया) । ग्रहणिकापित्तास्रेत्युपलक्षणं, वान्तौ हैजाख्ये पैत्तिकेऽप्यवचार्येति । ३—लवङ्गम् । ४—तेजपत्रम् । ५—'पिस्ता' इति प्रसिद्धं दन्तीबीजसदृशम् । ६—'लौंजा, चिलगोजा' इति प्रसिद्धम् । ७—प्रियालफलमज्जा ।

अथार्शश्चिकित्सितम् ।

मूलद्वारप्रतीहारी शूलधारी भयङ्करः ।
बलिदत्तोदवसितैः शत्रूनर्शोगदः स्यतु ॥ १ ॥

१ गुदचक्रं मार्जय रे तर्जन्या वदनलग्नवालुकया ।
स्यादर्शसां विनाशो मित्र ! विनाशोकमत्र वर्तस्व ॥ २ ॥

२ विषमुष्टिकप्रलेपश्चत्वारिंशद्दिनैर्निहन्त्यर्शः ।
३ अथवेन्द्रवारुणीफलशटितजलक्षालनमपि तथा ॥ ३ ॥

४ मूत्रेण मुहुरभ्यक्तान्यर्शांसि प्रद्रवन्ति हि ।
स्वस्य वा भिषजो मूत्रमेकमासावधिर्विधिः ॥ ४ ॥

५ उपदेहोऽर्शसि शस्तः कोष्णैः सागरैपलाण्डुजैः कल्कैः ।
६ मधुना कपोतविष्ठावलक्षसंतानिकाप्रलेपोऽपि ॥ ५ ॥

—अर्श-चिकित्सा—(कुल प्रयोग ४२)—

प्रस्तुत श्लोक में अर्श के स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह मूल-द्वार का सतरी है (मूलद्वार अर्थात् गुदामार्ग, पक्षान्तर मे नगर का सिंहद्वार)। भयंकर आकृति वाला है। शूलधारण किये हुये है (शूल उत्पन्न करने वाला, पक्षान्तर मे त्रिशूल हाथ मे लिये हुये)। प्रवाहिणी-आदि वलियो मे रहता है (पक्षान्तर में, वलि पुरुषोंद्वारा प्रदत्त स्थान-स्थल में निवास करने वाला है)—ऐसा अर्शरूपी प्रतीहारी-सतरी हमारे शत्रुओं का संहार करे ॥ १ ॥

अरे ! अपनी तर्जनी के अग्र भाग मे थोडा कपूर लगाकर उससे अपने गुदमार्ग का मार्जन कर, इस से अर्श का विनाश होने पर, विना शोक (शोक-विगत होकर) जीवन व्यतीत कर सकेगा। कुचले का चालीस दिवस तक लेप करने से अर्श का नाश हो जाता है। अथवा, इन्द्रवारुणी फल में से निकाले गये स्वरस द्वारा गुदा का प्रक्षालन करने से भी तद्वत् लाभ होता है। एक मास पर्यंत अपने अथवा वैद्य के मूत्रद्वारा पुन पुन सिक्त करते रहने से अर्श विलीन हो जाते है ॥ २–४ ॥

प्याज और एक वालभर नवसादर के कल्क का कोष्ण उपदेह (पुल्टिस्) अर्श

१—ग्रहण्यधिकारानन्तरमर्शोरोगेऽभिधेये प्रथम तत्स्वरूप प्रदर्श्यते—मूलेत्यादि। मूल· द्वार गुद, पक्षे प्रधानद्वारम्। २—प्रवाहण्यादिवलिभिः, पक्षे बलवद्भिर्दत्तमुदवसितं स्थान यस्मै स तथाभूत । ३—विधिरय सप्राप्तिनाशकतया दुर्नामघ्न , प्रायेण खल्वर्शांसि गुदादिषु मलातिसचयक्लेदभावात् सभवन्ति। यदुक्तम्—"इदशैश्चापरैर्वायुरपान कुपितो मलम् पायोर्वलीषु सधत्ते तास्वभिष्यण्णमूर्तिषु ॥ जायन्तेऽर्शांसि।" इत्यादि। तदेव मार्जनेन युक्तस्तदुपघात.। ४—सागर नवसादरम्। तच्च वल्लादधिक न ग्राह्यमिति। ५—कपोत· विष्ठाया उपरिस्थश्वेतभागस्य प्रलेप इत्यर्थ ।

७ पलाण्डूनूं पटमृल्लिप्तांश्चतुरो गोमयोपलैः ।
चतुष्प्रस्थमितैर्दग्ध्वा गृह्णीयाद्भस्म निर्मलम् ॥ ६ ॥
रसकर्पूरकं धौते घृते तद्भस्म मर्दयेत् ।
अर्शांसि[1] तेन लिप्तानि यान्त्यस्तं नात्र संशयः ॥ ७ ॥

८ तुत्थं[2] सुजातदध्ना लेपादर्शांसि हन्ति नव्यानि ।
कस्यापि कवीन्द्रशिशोरर्शांसि गतान्यनेन[4] लेपेन ॥ ८ ॥

९ जङ्गालसंज्ञं[5] मुलतानमृत्स्नया विघृष्य दध्ना विदधीत वर्तिकाः ।
तासां प्रलेपादपयान्ति पायुजा विघर्षितानां दधिसर्वतोमुखैः ॥ ९ ॥

१० शवार्श्मा पर्पटीकाथो जाशदं कज्जलं त्रुटिः ।
चतुर्भ्यो विधुरर्धांशः सर्पिः सर्वचतुर्गुणम् ॥ १० ॥
एष सिद्धो मलहरो[10] धौतो वारां[11] सहस्रशः ।
रक्तपित्तोल्वणार्शांसि निर्वापयति लेपतः ॥ ११ ॥

११ कृत्रिमैर्हिमोपलशिलाशकलस्य[12] विशिष्य बन्धनतः ।
स्रवदस्रनिर्झराणि प्रयान्ति विध्वंसमर्शांसि ॥ १२ ॥

में प्रशस्त है। कपोतविष्ठा के उपरिगत श्वेत भाग को शहद मे मिलाकर लेप करने से भी अर्श में लाभ होता है ॥ ५ ॥

चतुर वैद्य चार प्याज को कपडमिट्टी करके चार प्रस्थ गोवरी की आंच मे फूंककर उनकी निर्मल भस्म बनाले। इस भस्म में रसकर्पूर मिलाकर शतधौत घृत के साथ खरल करले। इसके प्रलेप से रक्तार्श निःसदेह अस्तंगत हो जाते है। अच्छी तरह जमे हुये दही के साथ तुत्थ को मिलाकर लेप करने से नूतन अर्श दूर हो जाते है। इस लेप से किसी कविशिरोमणि के पुत्र के अर्श में लाभ हुआ है ॥ ६–८ ॥

मुलतानी मिट्टी मे जंगाल को अच्छी तरह घिसकर दही मिला वर्तिकायें बनालें। इन वर्तिकाओ को दही के तोड मे घिसकर लेप करने से नूतन अर्श दूर हट जाते हैं ॥ ९ ॥

मुरदासींगी, कत्थे का क्वाथ, जसद से निर्मित कज्जल (सफेदा), इलायची तथा इन चारो द्रव्यो से अर्धभाग कपूर, इन सभी द्रव्यो से चतुर्गुण घृत, इन सब को यथाविधि मिलाकर, मलहम सिद्ध करले। इस मलहम को, फिर, शतबार धोकर लेप करने से रक्तोल्वण अर्श प्रशमित हो जाते हैं ॥ १०–११ ॥

बरफ के टुकडे को गुदा में रखकर उसे कसकर बाध देवे। इससे रक्तस्रावी

१–न किंचित्तिरोहितमत्र, द्वाभ्यामेको योग । २–रौधिराणीति शेष । ३–तुत्थमत्र गुआढ्यादधिक न ग्राह्यम् । ४–हतानीति पाठान्तरम् । ५–वास्त्वनुकारि द्रव्यविशेषम् । ६–अनतिक्रान्तसवत्सरा । ७–दधिजलै । ८–'मुरदासीगी' इति प्रसिद्ध. । ९–'पपडी कत्था' इति प्रसिद्ध । १०–'मरहम' इति यवनवैद्यै प्रचारिताभिधेय । ११–जलेन । १२–यन्त्रद्वारा निष्पादितस्य 'बरफ' इति प्रसिद्धस्य ।

१२ चक्रिका शुक्लमृत्स्नायाँ वद्धा पायुमुखोपरि ।
पित्तोद्रेकवतां हन्ति दुर्नाम्नां दाहमुच्चकैः ॥ १३ ॥
१३ निम्बपत्त्रैाणि कम्पिल्लं पारसीकयवानिका ।
प्रत्येकमेकभागानि वृषशृङ्गभवाङ्कुराः ॥ १४ ॥
मालिवौपचिका चेति द्वयं भागद्वयं पृथक् ।
एषां धूपो धुनोत्यर्शः शतधौतँघृताञ्चितम् ॥ १५ ॥
१४ पञ्चबाणमितं तुत्थं शल्लकीकण्टकत्रयम् ।
धूपो नाशाय दुर्नाम्नामङ्गारावैरणं मृदा ॥ १६ ॥
१५ यवतुषयुतया धूपो वृषदंर्शंविशा नियोजितो युक्त्या ।
दिनसप्तकप्रयोगात् कुरुते रुधिरार्शसां ध्वंसम् ॥ १७ ॥
१६ शाखाँमृगशकृद्योनिर्धूमो यन्त्रैण योजितः ।
अर्शस्संरम्भसंहारकर्मकर्मठ उच्यते ॥ १८ ॥
१७ मूँलगर्जरवीजाहिकञ्चुकीसिक्थधूपतः ।
त्रिभिर्दिनैः शमं यान्ति गुदजा रुधिरोल्वणाः ॥ १९ ॥

अर्श नष्ट हो जाते हैं । मुलतानी मिट्टी की टिकिया को गुदा मुख के ऊपर बाध दे । इससे पित्तोल्वण अर्श के उग्र दाह में लाभ होता है ॥ १२–१३ ॥

निंब के शुष्क पत्ते, कबीला, तथा खुरासानी अजवायन प्रत्येक एक एक भाग, बैल के सींग पर उत्पन्न शृगाङ्कुर और मालिवापची प्रत्येक दो दो भाग इनकी धूप लेने से तथा शतधौत घृत का प्रलेप करने से अर्श नष्ट हो जाते है । तीन तोला तुत्थ और शल्लकी के तीन काटे इनकी धूप देने से अर्शों का नाश होता है । यहा प्रज्वलित अंगारो को मुलतानी मिट्टी से थोडा ढककर फिर धूप लेनी चाहिये । मार्जार-विष्ठा मे यव के तुष मिलाकर युक्तिपूर्वक धूप लेवें । सात दिवस प्रयोग करने से रक्तार्शों का विध्वंस हो जाता है । वानर-विष्ठा की धूप को नाडीयन्त्र द्वारा लेवें । इस उत्तम क्रिया से अर्श-जन्य शोथ का अथवा अर्श के प्रचंड उत्पात का सहार हो जाता है ॥ १४–१८ ॥

मूली और गाजर के बीज तथा सर्पकंचुकी इनका सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनाकर इसमे सम भाग सिक्थ मिला अच्छी तरह कूट लेवे । यथामात्रा मे गुटिकाये बनाकर

१–मुलतानदेशीयया । २–शुष्काणि । ३–एतन्नाम्नैव लोके प्रसिद्धः सोमराजीभेद । ४–अर्शो घृताभ्यक्तं कृत्वा धूपो देय । ५–प्रथमं मुलतानमृदा किञ्चिदङ्गारानावृत्य ततो धूप गृह्णीयादिति । ६–मार्जारविष्ठया । 'ओतुर्विडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्' इत्यमर । ७–वानरविष्ठाविहितो धूप । ८–सच्छिद्रखर्परयन्त्रेण नाडीयन्त्रेण वा । ९–मूलकबीज-गर्जरबीजसर्पकञ्चुकीनां पटपूतं रज कृत्वा सिक्थेन समं सकुट्य मात्रया गुटिका कर्तव्या, प्रमाणमत्र समम् ।

१८ नवसादरं च पीतभ्रमरच्छत्रमसिताहिनिर्मोकः ।
द्विगुणो यथोत्तरमयं धूपोऽर्शस्सु प्रशस्ततरः ॥ २० ॥
१९ कल्कस्य देशिच्छदैकलिपतस्य धूपः सयन्त्रं भिषजा प्रयुक्तः ।
अर्शांसि बाह्यानि हठेन हन्ति हरिर्यथा दैत्यबलानि वेगात् ॥ २१ ॥
२० पादांशैलसहायस्य पीतमल्लस्य वर्तिका ।
गुदाध्वना विबन्धार्शःप्रणुदन्तःप्रवेशिता ॥ २२ ॥
२१ कपिशाखुजितः पिचुना पयःप्लुतेन त्र्यहं गुदस्थेन ।
वलिगा अपि गुदजा बहिरायान्ति बिलाद्यथा सर्पाः ॥ २३ ॥

धूप लेवें। तीन दिवस में ही रक्तार्श शमन हो जाते हैं। नवसादर एक भाग, पीत भ्रमर का छत्ता दो भाग, और कृष्णसर्प की कंचुकी चार भाग, इनको एकत्र कूटकर इनकी धूप लेवें। यह अर्शों में उत्तम लाभ देती है। देशी कागज का कल्क बनाकर, उसकी, वैद्य, यत्नपूर्वक, धूप देवे। विष्णु ने जिस तरह दैत्यसेना का संहार कर दिया था उसी तरह यह धूप शीघ्र ही बलपूर्वक बाह्य अर्शों का विध्वंस कर देती है ॥ १९–२१ ॥

पीतवर्ण का मल्ल और उससे चतुर्थांश जितना एलिया दोनों को एकत्र मिलाकर कनिष्ठ अंगुली जितनी मोटी तथा डेढ पर्व जितनी लंबी एक वर्तिका बना लेवें। इस वर्ति को घृताक्त बना गुदामार्ग से मलाशय के भीतर प्रविष्ट करके रख देवें। प्रविष्ट करते समय रुग्ण को चने का मोदक खिलाना चाहिये। यह वर्ति मलावरोध सहित अर्श में चमत्कारिक लाभ दिखाती है। जलोदर, उदावर्त आदि उग्र विकारो में भी यह आशु असर करती है। इमली वृक्ष की शाखा के निंब जल में बुझाये गये कोयलो की राख भी इसमें मिलानी चाहिये ॥ २२ ॥

प्रस्तुत तीन श्लोको से अर्शों को मूलसहित नष्ट कर देने वाले प्रयोग का वर्णन किया जाता है। एक तोलाभर पीतवर्ण मल्ल को पानी मे खूब महीन पीसकर उससे

१–पीतभ्रमरः 'टाक्या' इति प्रसिद्ध, तस्य छत्रम्। २–देशीयस्थूलकागदकलिपतस्य। ३–वर्तिका हस्तकनिष्ठाङ्गुलीपरिणाहा सार्धपर्वदीर्घा कार्या, घृतेन किंचिदिव विलिप्य प्रवाहणविस्फारितेन गुदमार्गेण मलाशये फलवर्तिरिव प्रवेशनीया, गुटिकाप्रवेशसमनन्तरमेव हरिमन्थमोदको भक्षणीयः महाफलेयं वर्तिका जलोदरोदावर्तादिमहाव्याधिष्वपि स्फुटचमत्कारा। निम्बजलनिर्वापितानि कोकिलानि तिन्तिडीकस्येह प्रक्षिपन्ति। ४–अथ त्रिभिः श्लोकैरर्शसा समूलमुत्खननप्रकारः सिद्धिदोऽभिधीयते। तत्र पूर्वं पीतमल्लचूर्णं सूक्ष्मं पानीये आप्लाव्य, तत्प्लुतेन सूक्ष्मवस्त्रखण्डेन विनापुरीषोत्सर्गकालं सर्वदा चतुर्विंशतिप्रहरान् गुदं समावृण्वीत, प्रक्षालनमपि सुखस्पर्शमेव कुर्यात्, एवं त्र्यहेऽतिक्रान्ते तदैव पश्चाद्वा अन्यतमवलिस्थगुदजजालं बहिर्निस्सरति, ततो निस्सरणानन्तरं गुञ्जादीनां लेपः, तत्समकालमेव करीरशलाटुचूर्णभक्षणमपि कार्यम्, आलेपात्तैलपित्तकारिणीप्रभृतितीक्ष्णद्रव्याणां परिहारः। एवमर्शांसि समूलमुत्पतन्तीति।

जलक्लिन्ना रक्तगुञ्जा संभ्रष्टं काकतिन्दुकम् ।
सावु चेति गुटी लेपाद्दुर्नामविनिपातिनी ॥ २४ ॥

संस्वेद्यं कोमलकरीरशलाटुकानि क्षिप्त्वा कटे खरतरातपतः प्रशोष्य ।
भुञ्जीत मेदुरसरेण सुजातदध्ना रक्तार्शसां प्रशमनाय वशी प्रभाते ॥२५॥

२२ कोऽपि न यं देवमृते सिञ्चति चूतस्य तस्य पत्राणाम् ।
परिपाकपिञ्जराणां धूमः पीतो निहन्ति रुधिरार्शः ॥ २६ ॥

२३ वज्रदन्त्याः प्रकुञ्चैकं शकलीकृत्य किञ्चन ।
घृतंक्षौद्रसमावापे द्वित्रिप्रस्थे जले पचेत् ॥ २७ ॥

एक सूक्ष्म किंतु स्वच्छ वस्त्रखंड को सिक्त करके, गुदामार्ग मे रख देवें। इस तरह इसे तीन दिवस पर्यंत रहने दे। तथा उपरोक्त मल्ल जल से, सुख-स्पर्श पूर्वक, गुदा का प्रक्षालन भी करते रहें। मलत्याग-काल के अतिरिक्त सभी समय तक, सर्वदा इस वस्त्रखंड से गुदामार्ग को आच्छादित रखना चाहिये। तीन दिवस व्यतीत होने पर वलिगत अर्शांङ्कुर, विल में से सर्प की तरह, बाहर निकल आयेंगे। अर्शों के बाहर निकल आने पर उनपर निम्नलिखित गुंजादिवटी का लेप करें। रक्तगुंजा को रातभर पानी में भिगोकर रहने दें। प्रात.काल, इन रक्तगुंजाओं में शुद्ध कुचला तथा देशी बनावट का साबुन मिलाकर उनको बारीक पीसकर गुटिका बनालें। अब, इसका लेप (उपरोक्त) अर्शांङ्कुरो पर कर देवें। इससे वे नीचे गिर जायेगे। अर्शों पर गुंजादिवटी का लेप करते समय रुग्ण को करीर के कच्चे फलो का चूर्ण खिलाना चाहिये। तथा गुंजा-वासित पानी भी पिलाना चाहिये। करीरफल-चूर्ण निम्न विधि से बनाकर उसे अच्छे जमे हुये तथा प्रचुर मलाई वाले दही के साथ मिलाकर प्रात काल देना चाहिये। करीर के कोमल कच्चे फलो को विना जल के स्विन्न करके सूर्य के उग्र ताप मे सुखा उसका चूर्ण बनाये। इस चूर्ण की एक मात्रा छ माशाभर है ॥ २३-२५ ॥

केवल मेघजल से परिसिंचित एव परिवर्धित अतएव एकात जगल मे उगे हुये आम्र के परिपक्व पीले पत्तो का चूर्ण बनाकर उसके धूम का पान करने से रुधिरार्श मिटता है ॥ २६ ॥

वज्रदती चार तोलाभर लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करलें। इनको दो तीन प्रस्थ जल में उकाल लेवें। इस जल मे, पहिले, चार तोलाभर घृत एव इससे आधी मात्रा मे शहद लेकर, मिला देना चाहिये। जब उकल कर पानी अर्ध भाग शेप रह

१-सर्वां रात्रिम्। २-'सावून्' इति प्रसिद्धं वक्ष्यमाणनिष्पत्तिप्रकारम्। तच्च देशीयमेवादेयम्। ३-जलयोगाद्वटी कार्या। गुञ्जावासितजलमप्यत्र देयम्। ४-जलं विनेति शेष। मात्रा चास्य गद्याणमिता। प्रयोगश्चाय केवलमपि प्रचरति। ५-मेघं विना। ६-मेपशृङ्ग्यपरपर्याया भवति वज्रदन्ती नाम काचिदौषधि, तस्या। ७-घृतमत्र पल, तदर्धं क्षौद्रं, समानयोस्तयोर्विरोधादिति।

क्वाथस्यार्धावशिष्टस्य भागाः कार्यास्त्रयः क्षमाः ।
तेष्वेकं प्रपिबेद्भागं द्वाभ्यां गण्डूषकांश्चरेत् ॥ २८ ॥
निरुध्यतेतरामस्रमर्शसां वेगवाह्यपि ।
दार्ढ्यं भवति दन्तानां भवितव्यं हिताशिना ॥ २९ ॥
२४ कलिकाः सविधविकाशा दाडिमजा द्विगुणशर्कराकलिताः ।
द्वादशगुणेन वारा लुलिताः पीता जयन्ति रुधिरार्शः ॥ ३० ॥
२५ चिञ्चाकिसलयकल्को जललुलितः पट्टपावितः सपटुः ।
रुधिरात्मकानि हन्यादर्शांस्यासामयोगिनिर्दिष्टः ॥ ३१ ॥
२६ द्वीपान्तरीयचूक्रकपत्राणि मरीचमिश्राणि ।
पिष्ट्वा लुलितानि जले रुधिरं रुन्धन्ति दुर्नाम्नाम् ॥ ३२ ॥
२७ कल्कमपामार्गमयं विमिश्र्य सुजाततक्रेण ।
सुवसनविलुलनगलितं पिब रुधिरार्शःसु भेषजं ललितम् ॥ ३३ ॥

जाये, तब इस क्वाथ के सममात्रा मे तीन भाग करलें । इसमें से एक भाग क्वाथ को पीयें । अवशिष्ट दो भाग क्वाथ से गंडूष लें । यह प्रयोग तीव्र वेगयुक्त रुधिरार्श को प्रशमित कर देता है । तदुपरान्त, पथ्यपूर्वक रहने से यही प्रयोग दांतो को भी मजबूत बनाता है ॥ २७–२९ ॥

अर्धविकसित दाडिम की कलियां दो तोलाभर (हस्तलिखित प्रतिवाले प्रयोग के अनुसार एकादश कलियों को प्रात.काल ही ग्रहण करके उपयोग मे लेनी चाहिये) तथा इनके वजन से द्विगुणित मात्रा में शर्करा इन दोनो को शिलापर चटनी की तरह महीन पीस लें। इनको बारह गुणित पानी से छानकर पीये । ग्यारह दिवस प्रयोग करने से रुधिरार्श मिट जाते हैं । पथ्यरूप में गाय का मक्खन, वेढमी आदि शस्त तथा तैल, लवण, अम्लादि वर्ज्य हैं ॥ ३० ॥

इमली के कोमल पत्तों के कल्क को पानी में मिलाकर वस्त्रपूत करलें । फिर थोडा सैंधव मिलाकर पीने से रुधिरार्श शांत होजाते है । यह प्रयोग आसाम के एक सन्यासी (योगी) का बताया हुआ है ॥ ३१ ॥

इंग्रेजी चूके में मिरच मिलाकर पीस लें । फिर जल में मिलाकर पीने से अर्शोगत रक्त-स्राव बंद होता है ॥ ३२ ॥

अपामार्ग के पंचांग कल्क को अच्छी तरह जमे हुये दही से बनाई गयी छाछ मे घोल लेवें। फिर, स्वच्छ वस्त्र से छानकर, रुधिरार्श में पीयें, यह उत्तम औषधि है ॥३३॥

१–विकाशोन्मुखा इत्यर्थः । मानं तोलकद्वयं, सप्तरात्र प्रयोगोऽयम् । पथ्यं गव्य नवनीत, तच्च द्वादशतोलकम् । पोलिकाऽपि देया लवणाम्लवर्जम् । पित्तानुबन्धे रक्तार्शसि देयम् । २–'इमली' इति प्रसिद्धवृक्षस्य दलकल्क । ३–आसाम इति प्रसिद्धो देशविशेष , तद्वासियोगिनोपदिष्ट । ४–'इग्रेजी चूका' इति लोके प्रसिद्धि ।

२८ कल्कं निम्बमहानिम्बसहस्रसुमपत्रजम् ।
पलोन्मितं गिलेदर्शस्स्रवदस्रनिवृत्तये ॥ ३४ ॥
२९ अभयातिलभल्लातैः कल्पयेत् कल्कमुत्तमम् ।
गद्याणं तस्य शाणं वा गिलेद्वातासृगर्शसि ॥ ३५ ॥
३० द्विगद्याणासुरीं ग्राह्या तत्रार्धा भर्जयेद्घृते ।
द्वयीं पिष्ट्वा गिलेत् प्रातर्जलैर्दुर्नामशान्तये ॥ ३६ ॥
३१ कम्पिल्लराजिकाचूर्णं दध्ना गद्याणगौरवम् ।
सप्ताहं पिबतां नृणां शुष्कमर्शो न तिष्ठति ॥ ३७ ॥
३२ कुटजत्वग्रजश्लक्ष्णं निगीर्यान्वेव चर्वयेत् ।
ससितान् भ्रष्टचणकाञ् शाम्येद्रुधिरमर्शसाम् ॥ ३८ ॥
३३ लघुचूर्णं त्रिगुणसितं प्राज्येनाज्येन संनय रे ।
रौधिरमर्शः शमयति निषेविता कतलिका तस्य ॥ ३९ ॥
३४ घृतकृतसितसंस्कारा रसगन्धककज्जली द्विगुणबोला ।
अरदस्पर्शं गिलिता सलिलैरसृगर्शसां प्रशमलोला ॥ ४० ॥

निंब, महानिब और हजारापुष्प इन तीनों के कोमल पत्तो का कल्क बनाले । इस कल्क को चार तोला भर अल्पाल्प मात्रा से निगल जाये । इससे अर्श-गत रुधिर स्राव निवृत्त होता है ॥ ३४ ॥

हरडे, तिल और भिलावा इनका खूब बारीक कल्क करलें । छ अथवा तीन माशा भर मात्रा मे इस कल्क को निगल जाने से वातप्रधान रक्तार्श मे लाभ होता है ॥३५॥

राई एक तोला भर लेवें । इसमे से अर्धभाग जितनी राई को घी में भूनलें । इस भूनी हुई राई को अवशिष्ट राई मे मिला बारीक पीसकर जल के साथ, प्रात. फांक जाये । इससे रक्तार्श शांत हो जाता है ॥ ३६ ॥

कबीला और राई के छ माशा भर चूर्णको, सात दिवस पर्यंत, दही के साथ लेने से वातश्लेष्मजन्य शुष्क अर्श निवृत्त हो जाता है । कुटज त्वक् के चार माशा भर सूक्ष्म चूर्ण को निगल उसके ऊपर मिश्री मिलाकर भूने हुये चनों को चबाने से रक्तार्श शमन होते है । चूर्ण लेने के पीछे तीन घटे तक जल नहीं पीना चाहिये ॥ ३७–३८ ॥

अगुरु के चूर्ण मे उससे त्रिगुणित मिश्री तथा प्रचुर मात्रा में घृत मिलाकर थाली मे जमा दे । इसकी कतलिका बनाकर खाने से रुधिरार्श शात हो जाते है ॥ ३९ ॥

पारद तथा गधक की कज्जली मे थोडा घी डालकर खरल करले, उसमे कज्जली से

१–सहस्रसुमं लोके 'गैदहजारा' इति प्रसिद्धम् । २–अल्पाल्प क्रमेण गिलेत्, जल चानुपिवेत् । ३–वातानुबद्धरक्तार्शांसि । ४–राजिका । ५–रक्तार्शश्शान्तये इत्यर्थ । ६–वातश्लेष्मजातमित्यर्थ । यदुक्तम्–"शुष्काणि वातश्लेष्मभ्यामार्द्राणि त्वस्रपित्तत ।" इति । ७–अत्र प्रयोगे याम जल न पिबेदिति रहस्यम् । ८–अगुरुचूर्णम् । ९–बोल. 'बीजाबोल' इति लोके प्रसिद्धिं गता ।

३५ घटे पटग्राहितृणान्तरस्थं पिधाय तुत्थं दह गोमयाग्नौ।
सिद्धं सितं पाटलखण्डगूढमर्शोनिवृत्त्यै गिलेे रक्तिमानम् ॥ ४१ ॥
३६ पूर्णान्तरं सौररसाञ्जनाभ्यां मूलं पृथग्बिल्वसमुद्धृताभ्याम्।
सम्यग्विपक्वं पुटपाकरीत्या दुर्नामरोगे हितमामनन्ति ॥ ४२ ॥
३७ मूलकमुत्कीर्य महत्तत्र पिधाय पिचुमन्दमज्ज्ञानम्।
पुटपाकरीतिपक्वं पिष्ट्वा गुटिकीकृतं निहन्त्यर्शः ॥ ४३ ॥

द्विगुणित हीरावोल भी मिला देवें। इसको पानी के साथ इस तरह से निगल जावे, जिससे दांतो का स्पर्श न हो। यह रक्तार्श को शीघ्र प्रशमित कर देती है ॥ ४० ॥

बिल्लीघास मे (बीज-कणों सहित इस घास का उपयोग करें) तुत्थ को लपेट कर एक घट मे भरदें। इस घट को गजपुट की अग्नि देवें। जब तुत्थ की श्वेतवर्ण भस्म हो जाये तब दोनो को लेकर उनको पृथक् पृथक् खरल कर लेवें। तुत्थभस्म के साथ पटग्राहि-तृण (उपरोक्त बिल्लीघास) की भस्म को मिलाकर जल के साथ निगल जाये। इसकी मात्रा एक रत्ति है। जबतक भस्म श्वेतवर्ण की न हो तब तक पुन पुन. गजपुट देवें। उपरोक्त भस्म-मिश्रण को छालखाड में लपेट कर देना चाहिये। इससे अर्श निवृत्त हो जाते है। इस भस्म के सेवनानन्तर शीघ्र ही शक्कर तथा दूध मिलाकर भात खिलाना चाहिये। विलब होनेपर रोगी को वमन हो जाने का भय रहता है। यदि तुत्थ एक तोला लेवें तो घास एक प्रस्थ (चौसठ तोला) लेना चाहिये। इस प्रयोग में वैद्य को, रुग्ण से द्रव्यादि ग्रहण करने का सर्वथा निषेध है ॥ ४१ ॥

सोरा और रसाजन प्रत्येक चार चार तोला लेवे। इनको एक बडी मूली मे अच्छी तरह भर देवें। मूली के बडे बडे टुकडे करके (जिस तरह वृन्ताक आदि को चीरकर उसमें मसाले आदि भरे जाते है, उसी तरह) उनको चीरकर उसमें सोरा और रसा-ञ्जन चूर्ण को भर उन टुकडों को कपडमिट्टी कर लेना चाहिये। इन टुकडों को पुट-पाकविधि से अच्छी तरह पकाले। पित्तप्रधान रक्तार्श मे यह प्रशस्त है ॥ ४२ ॥

एक स्थूल मूली को चीरकर उसमे निम्बोली की मजा भरकर उसको पुट-पाक विधि से पकालें। तदनन्तर उसे खरल करके गोलियां बना लेवें। ये अर्श को मिटा देती हैं ॥ ४३ ॥

१–'बिल्लीघास, कुतरीघास' इति ख्यातम्। तच्च सबीजकणमेवोपयोगि। २–गज-पुटे। ३–सितमिति सिद्धपरीक्षा, अन्यथा पुन. पुटनीयम्। ४–'छालखाड' इति प्रसिद्धम्। ५–जलेनेति शेष। अत्रेदं रहस्य–पटग्राहितृणभस्मापि तुत्थेन साकमेव देयम्। पथ्यं भक्तं सदुग्धसित, तच्च समनन्तरमेव देय, विलम्बे वमनभयम्। प्रयोगश्च त्रिदिना-वधि॰। तुत्थ कर्षमितं चेद् घासः प्रस्थमितो ग्राह्य। अत्र रोगिसकाशाद्द्रव्यं न ग्राह्यमित्यु-पदेश। ६–मूलककन्द, तच्च महद्ग्राह्यम्। ७–पलप्रमाणेनोद्धृताभ्यामित्यर्थ। ८–पित्तो-ल्वणे। ९–'निम्बोली' इति प्रसिद्धफलमज्जानम्।

तुल्यान्येतानि वृक्षाम्लं सर्वतुल्यमिदं रजः ।
दीपनं पाचनं रुच्यं ग्रहणीगदमोचनम् ॥ ५ ॥

५ मूत्रकृच्छ्रेऽभिधातव्यः सारो यः पिञ्जरच्छविः ।
आदित्यमाषकोन्मानं तं समादाय मेलयेत् ॥ ६ ॥
छिछिमाषैर्भृशं भ्रष्टैः पाक्यसामुद्रसैन्धवैः ।
विश्वैलाजीरमरिचैः पृथक् शाणमितैरपि ॥ ७ ॥
हिङ्गुना माषमात्रेण ततः सर्वं विचूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं मात्रया प्सातं मान्द्याजीर्णहरं परम् ॥ ८ ॥

६ सौवर्चलं सादरमर्कपुष्पं मरीचमेकत्र समं विमर्द्य ।
गुञ्जाप्रमाणा गुटिका विधेयाः कर्षन्ति कार्श्यं क्रमशः कृशानोः ॥ ९ ॥

७ आफूककृष्णाविषमुष्टिकानां जैवातृकक्ष्मानयनांशिकानाम् ।
विधाय वर्तीस्तरुणीसुमार्कैः क्षुन्मान्द्यकासश्वसनेषु दद्यात् ॥ १० ॥

धनिया, चित्रक और अम्लवेत इन सब को समान भाग में लेवें तथा इन सभी द्रव्यों के समान भाग से डाँसरिया-फल के चूर्ण को लेकर आपस में अच्छी तरह खरल करके मिला देवें। यह चूर्ण दीपन, पाचन, रुचिकर तथा ग्रहणी-रोग प्रशमक कहा गया है ॥ ४–५ ॥

लोह के तवे पर अग्नि योगसे अच्छी तरह सेके गये विड, सामुद्र तथा सैंधव, नमक प्रत्येक दो दो माशा, सूंठ, एला, जीरा और मरिच प्रत्येक तीन तीन माशा और हींग एक माशा इन सब को एकत्रित करके सूक्ष्म-चूर्ण बनालें। इस चूर्ण में, मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा में उल्लिखित 'पीतवर्ण-सार' बारह मासे भर, मिला देवें। इस चूर्ण को गुलाब के अर्क में खरल करके थोड़ा गूद मिला कर गोलियां बनालें। यथा मात्रा लेने से ये अग्निमांद्य तथा अजीर्ण को दूर कर देती है ॥ ६–८ ॥

सौवर्चल, नवसादर, अर्क-पुष्पान्तर्गत फुल्लिका (लवंगिका) और काली मिर्चें इनको समान भाग में घोटकर गुंजा-प्रमाण गुटिकायें बनालें। ये क्रमशः कृशानुकी कृशता को दूर कर देती है ॥ ९ ॥

अफीम और पिप्पली प्रत्येक एक एक भाग, कुचला दो भाग इनको गुलाब के अर्क से घोटकर गुटिकाये बनाले। अग्निमांद्य, कास, श्वास, अतिसार एवं ग्रहणी आदि रोगों में इसका उपयोग करें। उपरोक्त द्रव्यों को गुलाब-अर्क से एक सप्ताह पर्यंत भिगोकर पीछे, खरल में घोटने से सुविधा रहती है ॥ १० ॥

१–'डासरया' इति प्रसिद्धम्। २–तरुणीपुष्पार्के किंचिद्गुन्द्र प्रक्षिप्य अस्य गुटिकाऽपि रचनीया। ३–अर्कपुष्पान्तर्गतलवङ्गिका ग्राह्या। ४–'गुलाबजल' इति प्रसिद्धे। तरुणीसुमार्के सप्ताहमाप्लाव्य दिनमेकं पश्चाद्विमर्द्य गुटी रचयेदित्युपरिष्टादवगन्तव्यम्। ५–बहुवचनस्याद्यार्थवाचित्वादतिसारग्रहण्योरपि दाप्याः।

८ विषमुष्टिकनवसागरवाल्हीकैरम्लैर्भावितैर्बहुशः।
मन्दाग्निमूलविकृतीर्हरन्ति हरिमन्थमेदुरा वटिकाः ॥ ११ ॥
९ शतपोनैपावितानां जगदौषधलवणपूर्वदेवानाम्।
घटिता निम्बूकरसैश्चतुर्गुणैर्मोदकाः स्युरनलकराः ॥ १२ ॥
१० स्विन्नानि रविदलानि द्विजीरपटुपित्तकारिणीमरिचैः।
राजिकया धान्येन च लिह्वा देयान्यजीर्णेषु ॥ १३ ॥
११ सस्वर्जिकान्यर्कदलानि पीतान्युत्स्वेद्य धौतानि यथोपदेशम्।
निम्बुद्रवे क्षारपटूपणाढ्ये मन्दानलं घ्नन्ति चिरोषितानि ॥ १४ ॥

कुचला, नवसादर और हींग इनके चूर्ण को विजौरा, निंबू, दाडिम, जम्मीर प्रभृतिके अम्लरसो से दो तीन भावनाये दे। फिर इनकी चने जितनी मोटी गोलियां बनालें। ये मन्दाग्नि की मूल-भूत विकृति को नष्ट कर देती है ॥ ११ ॥

सूंठ, लवण और गन्धक को एकत्र पीसकर इनके चूर्ण को सूक्ष्म-छिद्रोंवाली चालनी में से छानकर निंबू का चतुर्गुण रस मिला मोदक बनाले। ये अग्नि-प्रदीपक हैं ॥ १२ ॥

अर्क के पत्तों को, किंचित स्फटी डालकर, जल में उबाल लेवें। सुस्विन्न होने पर उनको नीचे उतारले। दोनो प्रकार के जीरे, लवण, लाल मिर्च, काली मिर्च, राई और धनियां इनका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उससे निंबू रस मिला उनका लेह जैसा बनाले। इस लेह को उपरोक्त स्विन्न पत्तोपर चुपडकर सेवन करने से अजीर्ण मिटता है। इसी तरह इसी लेह मे आकडे के स्विन्न पुष्पो को सान कर खाने से अजीर्ण आदि मे प्रचुर लाभ होता है ॥ १३ ॥

अर्क के परिपक्व अत एव पीत-वर्ण पत्तों को थोडी सज्जीखार डालकर पानी में उबाल स्विन्न करलें। अब, एक काचपात्र मे क्षार, लवण एवं कणा चूर्ण से युक्त यथामात्रा निंबू का रस भरदे। इस निंबू के रस मे उपरोक्त स्विन्न पत्तो को अच्छी तरह साफ करके तथा कपडे से पोंछकर डाल देवें। एक दो सप्ताह पर्यंत उसी रस मे उन्हें रहने दे। ये मंदाग्नि को नष्ट कर देते है। अर्क-पत्रों को उबालते समय उनकी बाष्प आखों को न लगे इसकी सावधानी रखनी चाहिये। श्लोक-गत 'यथोपदेशम्' का यही अर्थ है ॥ १४ ॥

१–मातुलुङ्गनिम्बूकदाडिमजम्बीरान्यतमैरम्लैर्द्वित्रिवारं भावितैः। २–बहुच्छिद्रो यन्त्रविशेष 'चालनी' इति प्रसिद्धः। ३–पूर्वदेवो गन्धकः। ४–अर्कपत्राणि परिमिता स्फटिका दत्त्वा जले मन्दाग्निना स्वेद्यानि। ५–निम्बूकरसयोगेनेति शेषः। मात्रा चैषा नियता नास्ति, विभिन्नरुचित्वाल्लोकानाम्, अतो यथारुचि विधेया। उक्तप्रक्रियया रविपुष्पाण्यपि साधनीयानि। ६–सशब्द ईषदर्थे, तेनेषत्स्वर्जिकाणीत्यर्थः। ७–परिपाकपिञ्जराणि। ८–तद्बाष्पस्पर्शाद्दृष्टिं रक्षेदित्युपदेशः। ९–आप्लावनयोग्ये।

१२ निम्बूकनीरार्द्र[1]महौषधस्य कल्कः सिता[2]तन्तुलिकाप्रणीतः ।
त्रिजातकक्षेपविशेषहृद्यो रोचिष्णुरग्निं द्विगुणीकरोति ॥ १५ ॥

१३ निम्बूकतीक्ष्ण[3]च्छदनार्द्रकाणां प्रत्येकमम्बु द्विपलं कटाहे ।
रूप्ये निधाय द्विगुणं च खण्डं पचेदिदं फाणितमग्निबोधि ॥ १६ ॥

१४ कल्व[5]जीग्रन्थिपथ्यामिषिधन[6]हवुषादीप्यकुष्ठद्विजीर-
द्व्येलाक्षारद्वयाम्लै[7]स्त्रयगजकुसुमत्वग्लवङ्गाग्निपाठैः ।
पोटा[10]कङ्कोलगन्धागुरुलवणगणै[11]र्व्योषकर्चूर[12]मंक्षी-
विष्टातालीसपत्रैर्भवति पलमितैः कल्पितोऽर्कः क्षुधाकृत् ॥ १७ ॥

१५ पोदीनार्द्रकनिम्बूककुमारीरससंभवः ।
अर्को जीरत्रिजाताद्यै[13] रोचनो वह्निबोधनः ॥ १८ ॥

१६ भङ्गायवा[14]निकाकृष्टः कुर्यादर्को धनञ्जयम् ।
१७ अथवा निम्बुकरससौवर्चलसमुद्भवः ॥ १९ ॥

, निंबू रस को पीकर फूली हुई सूंठ के कल्क को उससे चतुर्गुण शक्कर की चासनी मे अच्छी तरह हलाकर मिलादेवे । इसमें त्रिकटु चूर्ण का ऊपर से प्रक्षेप करें यह लेह विशेष हृद्यगुणो से युक्त, रोचिष्णु, तथा जठरानल को द्विगुणित कर देनेवाला कहा गया है ॥ १५ ॥

निम्बू, पोदीना और आर्द्रक इन प्रत्येक के आठ आठ तोला रस को द्विगुणित शर्करा के साथ चादी के पात्र मे पकावे । यह सिद्ध फाणित जठरानल को प्रदीप्त करता है १६

/ कलोजी, ग्रथिपर्ण (अथवा पिप्पली मूल) हरडै, सौंफ, धनियाँ, हवुषा, लौंग, दालचीनी, अजवायन, कूठ, जीरकद्वय, एलाद्वय, क्षारद्वय (स्वर्जिका क्षार, यवक्षार) अम्लत्रय (दाडिम, अम्लवेत और इमली) नागकेसर, चित्रक, पाठा, काकमाची, कंकोल, कुलिंजन, अगुरु, लवणपचक, त्रिकटु, कर्चूर, पोदीना और तालीसपत्र प्रत्येक चार चार तोला लेकर, अर्क निकाल लेवें । यह क्षुधावर्धक है ॥ १७ ॥

पोदीना, आर्द्रक, निंबू और ग्वारपाठे के रस का अर्क रुचिप्रद एवं अग्निप्रदीपक है । इस अर्क मे त्रिजात (तज, तेजपात और इलायची) तथा लवण आदि का प्रक्षेप करके पीना चाहिये ॥ १८ ॥

भाग सोलह तोला तथा अजमोदा चौसठ तोला इनका अर्क निकाल लेवें । इस

१–निम्बूकरसवासादापादितातिशयस्थौल्यस्य। २–सिताऽत्र चतुर्गुणा । ३–तीक्ष्णच्छदन 'पोदीना' इति ख्यात । ४–फाणितप्रवरं ह्येतद्वान्तावप्यवचार्यते । ५–'कलौंजी' इति ख्याता । ६–धान्यकम् । ७–दाडिमाम्लवेतसतिन्तिडीरूपम् । ८–नागकेसर. । ९–काकमाचिका 'मको' इति प्रसिद्धा। १०–यद्यपि गन्धाशब्देनोग्रगन्धा प्रतीयते, तथाऽपि तस्या वामकत्वादत्र कुलिञ्जनं ग्राह्यम् । ११–गणशब्देन लवणपञ्चकम् । १२–'पोदीना' इति लोके । १३–आद्यशब्दाल्लवणमपि । प्रक्षेपश्चैषा निष्कृष्यमाणार्के यन्त्रस्थे एव पानसमये वा । १४–अत्र भङ्गा कुडवमिता, यवानिका प्रस्थमितेति सकेत ।

१८ तेजोप्सु सौधासु षड्रूपणाम्लजीरं चतुर्जातलवङ्गदीप्यम् ।
क्षारौ ससौवर्चलनिम्बुशुक्तौ संधाय साध्योऽग्निकृदर्क एषः ॥ २० ॥
१९ छिक्किकारससमग्नानां च्युतं पातालयन्त्रतः ।
सत्त्वं हन्ति लवङ्गानामजीर्णं सशिवायुधम् ॥ २१ ॥
२० राजजम्बूफलरसः सपट्वत्र्यूषणार्द्रकः ।
निपीतो मात्रया धत्ते क्षुधां दीपनपाचनः ॥ २२ ॥
क्वथनेन पृथग्भूतकल्कभागोऽधिकं तनुः ।
स्वरसः स्वच्छतां धत्ते वसनव्यूहविच्युतः ॥ २३ ॥
२१ राजजम्बूफलरसं सूर्यतापे निधापयेत् ।
प्रत्यहं वस्त्रपूतं तं कुम्भात् कुम्भे विवर्तयेत् ॥ २४ ॥

अर्क को 'धनंजय' कहते है। इसी तरह, निंबू रस और सौवर्चल दोनों का अर्क निकाल लेवें। ये सभी अर्क रुचिकर एव अग्निवर्धक है ॥ १९ ॥

कलिकाखंड के जल से निर्मित 'तेजी' नामक पानी में, षड्रूपण (चव्य, चित्रक, पिप्पली, पीपलामूल, सोंठ और मरिच), अम्लत्रय (अम्लवेत, दाडिम, तथा इमली), श्याह श्वेत जीरा, चतुर्जात (तज, तेजपाज, इलायची, और केसर), लौंग, अजमोदा तथा खुरासनी अजवायन, स्वर्जिक्षार, यवक्षार, सौवर्चल और नींबू का सिरका इनका अर्क सिद्ध करलें। यह अग्निको प्रदीप्त करता है। 'तेजी' जल चौसठ तोला लेवें तो सिरका सोलह तोला एवं उपरोक्त अन्य सभी सम्मिलित औषधीय द्रव्य भी सोलह तोलाभर ही लें ॥ २० ॥

नक छिंकनी के रस में निमग्न लविंग का पातालयंत्र विधि से सत्वपातन करलें। यह सत्त्व स-शूल अजीर्ण को नष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

उत्तम पके हुये राजजम्बू फल स्वरस मे आर्द्रक कल्क को घोलकर छान लेवें। फिर, उसमें लवण तथा त्रिकटु चूर्ण मिलाकर यथा मात्रा पीये। यह भूख बढाता तथा दीपन पाचन करता है ॥ २२ ॥ घट्ट-स्वरस को निम्न विधि से स्वच्छ बनालें।

स्वरस को क्वथित करने पर जब तत्-गत कल्क भाग पृथक् हो जाये तब उसके अधिक तरल भाग को, बहुतसी तहवाले वस्त्र में से छान लेवें। इस तरह प्राप्त घन-स्वरस स्वच्छ होता है ॥ २३ ॥

राज-जबू-फल के रस को सूर्य-ताप में रख दें। प्रतिदिन, उसे वस्त्रपूत कर,

---

१—कलिकाखण्डसवन्विजलेषु 'तेजी' इति ख्यातेषु। २—"पञ्चकोलं समरिच षड्रूपणमुदाहृतम्" इति परिभाषितम्। ३—अम्लवेतस दाडिम तिन्तिडीकमिति त्रितयम्। ४—जीरकद्वयमेव। ५—दीप्यशब्देनाजमोदायवान्यौ। ६—निम्बुशुक्तं 'सिरका' इति प्रसिद्धम्। अत्र तेजोपा प्रस्थश्चेत् कुडवं सर्वमौषधजात निम्बुशुक्तं पृथक् कुडवमिति परिमाणम्। ७—सशूलम्। ८—जम्बूफलरसे आर्द्रकल्कं घोलयित्वा वस्त्रपूतं च कृत्वा कृष्णलवणादिकं योग्यं प्रतिसार्य पाययेदिति। ९—घनस्वरसाना स्वच्छतापादनप्रकारोऽयम्।

दिवसेषु व्यतीतेषु विन्दुं तस्य क्षितौ क्षिपेत् ।
उद्गच्छेद्बुद्बुदस्तत्र तदा सिद्धं समादिशेत् ॥ २५ ॥
इत्येतज्जाम्बवं शुक्तं सितापङ्केन दीयताम् ।
विसूचिकाघ्नमत्यम्लं रुच्यं दीपनपाचनम् ॥ २६ ॥
२२ त्वक्कुसुमैलं सुवर्णार्धं मरिचं पित्तकारिणी ।
पृथगक्षं ततः क्वाथो विसूचीक्षपणक्षमः ॥ २७ ॥
२३ पलाण्डुकन्दपानीयमानीय द्विपलं पिबेत् ।
विसूचिकां विशेषेण निश्शेषयति निश्चितम् ॥ २८ ॥
२४ पिप्पलवल्काङ्गारप्रतिनिर्वापितपयोऽनुपानेन ।
भ्रष्टमसूरद्विदलक्षोदः शाणो विसूचिकां हन्ति ॥ २९ ॥
२५ पञ्चैव पित्तकारिण्यः सितावुद्बुदसप्तकम् ।
पिष्ट्वाऽम्भसा परिस्राव्य विसूच्यां प्रपिबेन्मुहुः ॥ ३० ॥

एक घट में से दूसरे घट में बदलते रहें । इस तरह कुछ दिवस व्यतीत होनेपर, इस रस की एक बूंद जमीन पर डालें । यदि इस बूंद में से बुदबुदे उठने लगें तो जान लेना यह सिद्ध हो गया है । इस विधि से सिद्ध जबू-फल-रस के सिरके को शक्कर की चासनी के साथ दें । यह विसूचिका-नाशक, अति अम्ल, रुचिकर और दीपन पाचन होता है ॥ २४–२६ ॥

तज, लौंग और इलायची प्रत्येक दोमाशा, काली मिर्च और लाल मिर्च प्रत्येक एक तोला इनका क्वाथ विसूचिका-रोग को क्षीण कर देने में समर्थ है ॥ २७ ॥

प्याज के सद्यस्क जल को, आठ तोला मात्रा में पीजाने से, विशेष करके, विसूचिका नि सदेह नामशेष रहजाती है ॥ २८ ॥

पिप्पल वृक्ष की छाल के अंगारों के बुझावे देकर सिद्ध किये गये पानी के साथ, भूनी हुई मसूर-दाल के तीन माशा भर चूर्ण की फाकी से विसूचिका और वमन शात हो जाते हैं ॥ २९ ॥

पाच लाल मिर्च और सात पतासे इनको पानी में पीसकर शर्बत-सा बनालें । इसे वस्त्रपूत करके दो दो तोला मात्रा में एक एक प्रहर ठहर ठहर कर पीयें । इससे विसूचिका नष्ट हो जाती है । उपद्रव शात होने पर यदि प्यास लगे तो लौंग का जल पीना चाहिये ॥ ३० ॥

१–कर्षार्धम् । २–पलाण्डुराजशतके विसूचिकया सहास्य युद्ध निबद्धं द्रष्टव्यं, तथा विसूचीस्वरूपवर्णनमपि । तदेकपद्यं यथा–"अत्यर्थमन्तर्गतनेत्रविम्बा प्रवर्तयन्ती वमिमुग्रवेगाम् । शूलातिसारादिभिरात्मवर्गैः साकं न सा कं विकलीचकार ॥" इति । इदं च पानीय सद्यस्कमेव ग्राह्यं, विलम्बे वैगुण्यात् । ३–सामान्यवमनमपि च । ४–कुडवमितेन । ५–पलार्धं पलार्धं पिबेदिति । उपद्रवे शान्ते तृषि लवङ्गाम्बु पिबेत् ।

२६ प्रत्नफणिफेनरामठमरीचशशिपित्तकारिणीवीजैः।
गुटिका हन्ति विसूचीमतिसारं वा निगृह्णाति ॥ ३१ ॥
२७ प्रत्येकं भर्जयित्वाऽग्नौ कुचेलाहिङ्गुसादरम्।
विमर्द्याद्भिः कृता वट्यो विसूचीविषयाः स्मृताः ॥ ३२ ॥
२८ छायाविशुष्कं रवमूलवल्कं विशिष्य निम्बूकरसैर्विमर्द्य।
वट्यो निवद्धाश्चणकप्रमाणा विसूचिकां घ्नन्ति कफानिलोत्थाम् ॥ ३३ ॥
२९ शोणकंसीसमतल्लीं मूलस्वरसैर्विमर्द्य दिनमर्धम्।
मितमेककाकणन्त्या कोष्णजलैर्वान्तिकृद्गाढम् ॥ ३४ ॥
३० गर्भे गुडस्य पिहितानि तनुत्रशिम्ब्यो
रोमाणि चक्रमभितो हविषा विलिप्य।

पुराणी अफीम, हींग, मिर्च, कपूर और लाल मिर्च के वीज इनकी गोलियां विसूची को हटाती और अतिसार को मिटाती हैं ॥ ३१ ॥

पाठा, हींग और नौसादर इन प्रत्येक को अग्नि से भूनकर, पानी से बारीक पीस गोलिया बनाऊें। ये गोलिया विसूची के भोग विलास रूप है। अर्थात् विषयों से-भोगविलास से-जिस तरह, मनुष्य क्षीण होजाता है, उसी तरह, उपरोक्त वटिका रूपी विषयों से विसूची क्षीण हो जाती है ॥ ३२ ॥

अर्क के मूल की छाल को छाया शुष्क बनालें। फिर त्रिकटु, त्रिजात तथा लवणादि मिलाकर उसको निंबू के रस से खूब बारीक पीसले। इसकी चने प्रमाण गोलिया करलें। ये कफ-वातप्रधान विसूचिका को नष्ट कर देती है ॥ ३३ ॥

रक्तवर्ण सीसे को, आधे दिन तक, मूलक स्वरस मे खरल करें। एक गुंजाभर मात्रा में कवोष्ण जल के साथ इसे लेने से पर्याप्त वमन होते हैं। यह प्रयोग, अलसक आदि वमनसाध्य रोगों में परम प्रशस्त है। इसके सेवन से यदि वमन अधिक मात्रा मे होने लगे तो मकई के सिरे से दाने निकाल कर उनकी भस्म बनालें। इसको दो माशा भर शीतल जल के साथ लेने से वमनातियोग मे शान्ति मिलती है ॥ ३४ ॥

कौंच की कोमल सेम के ऊपर आच्छन्न रोमावलि को गुड के भीतर रखकर उसको चारो ओर से घृत द्वारा लिप्त करदें (जिससे रोम का एक भी रेशा बाहर निकला हुआ न रहे)। इसको दिवस में दो तीन बार निगल जाने से क्रिमिजन्य पीडा, विसूचिका तथा तीव्र रक्त वमन मे भी लाभ होता है। (प्रस्तुत श्लोकगत-कौंच के कोमल लोम की औषधीय उपयोगिता को खौरी के इस कथन से मिलाइये-

---

१-त्रिकटुत्रिजातलवणादिक्षेपोऽत्र कार्यः। २-प्रशस्तारुणकसीसम्। अलसकादिषु तथा सर्वेषु वमनसाध्येषु प्रयोज्योऽयं प्रयोगो वमनकारी। अनेन वमनातियोगश्चेत् मक्किकान्न-कोषादन्नं निष्कास्य निरन्नकोपभस्म कृत्वा द्विमाषं शीतलजलैर्देयम्। ३-प्रसङ्गात् क्रिमिनि-ष्कासनप्रकारोऽभिधीयते। क्रिमिकृतजठरमसृणशूलेष्वप्ययं प्रयोगः। ४-कवचशिम्ब्योः।

द्विस्त्रिर्गिलेत् क्रिमिजरुक्षु विसूचिकाया-
नुद्रिक्तरक्तवमथावपि शर्मकामः ॥ ३५ ॥
इत्यग्निमान्द्यादिचिकित्सितम् ।

पाण्डुरोगचिकित्सितम् ।

कनकलेवरकान्तिः कपालधारी क्रमेण बलहारी ।
मुशलप्रयोगकुशलो वर्जितभोगः स कामलारोगः ॥ १ ॥
१ सितया कटुकीकर्षो द्रोणपुष्पीरसोऽञ्जनम् ।
देवदालीरजोनस्यं पाण्डुरोगं व्यपोहति ॥ २ ॥

"The hairs of the Pods are Vermifuge and given in round worms They work mechanically by injuring the worms and promoting their expulsion" अर्थात् शिम्बीरोम के चूर्ण को लेने से गोलकृमि नष्ट होकर बाहर निकल जाते हैं- Materia Medica of India-R N Khory कौंच के रोमो का स्पर्श करने से शरीर मे असह्य कण्डू उत्पन्न होता है। इसलिये गुड आदि मे मिलाकर लेने की यह योजना मौलिक एव युक्ति युक्त है ॥ ३५ ॥ —अग्निमाद्यादि चिकित्सा समाप्त—

—पाण्डुरोग – चिकित्सा (कुलप्रयोग १२)—

प्रस्तुत श्लोक मे पाण्डुरोग के स्वरूप का वर्णन है। स्वर्ण के समान पीताभ शरीरवाला, कपाल को धारण किये हुये, क्रमशः बल को हरने वाला, मुशलायुध के प्रयोग में कुशल तथा विषयोपभोग-सामर्थ्य से रहित इन्द्रियो वाला, कामला रोग कहलाता है। (कामला रोग का आयुध वस्तुत. 'मूशल' ही है। पाण्डुरोग से आक्रान्त मनुष्य का सपूर्ण देह मूशल से पुन पुन॰ कुट्टित की तरह छिन्न भिन्न सा हो जाता है। 'मृद्यमानैरिवाङ्गै'—वाग्भट के 'मृद्यमान' पद का निगूढ अर्थ—'मुशल-प्रयोग कुशल'-पाण्डुरोग के इस विशेषणद्वारा यथावत्-चमत्कृत शैली में अभिव्यक्त किया गया है) ॥ १ ॥

इस श्लोक मे कोष्ठ, नेत्र और नासा के विरेचनद्वारा पाण्डुरोग के प्रशमनप्रयोग कहे गये है। एक तोला कटुकी चूर्ण को मिश्री मे मिलाकर फाकने से कोष्ठ-विरेचन-द्वारा, द्रोणपुष्पी के रस को आंखो मे आंजने से तथा देवदाली के रस का नस्य लेने से पाण्डुरोग तिरोहित हो जाता है ॥ २ ॥

१-अथ क्रमेण पाण्डुचिकित्सिते वक्तव्ये आदौ तत्स्वरूपमेव वर्ण्यते—कनकेत्यादि। २-मुशलायुध इत्यर्थ । ३-अत्र त्रिभि पादै कोष्ठनेत्रनासाविरेचनद्वारा पाण्डुरोगघ्नास्त्रयो योगा अभिहिता । ४-द्रोणपुष्पी फलेपुष्पा, सा च 'दणघल' इति लोके ख्याता ।

२ रसेन नस्यं कटुतुम्बिकायाः[1] क्षिणोति कोपं किल कामलायाः।
योगो महानेष पितामहेन ममोपदिष्टः सदनुग्रहेण ॥ ३ ॥

३ पिष्टिका चूर्णसितयो[2]र्धूमयन्त्रा[3]म्भसा कृता ।
न्यस्ताधिपे[4] घृताभ्यक्ते पाण्डुं स्रावयति ध्रुवम् ॥ ४ ॥

४ रोगिमूत्रप्लुता[5] सप्त प्लोता[6] धार्या गृहोपरि ।
हृतेषु तेषु काकेन पाण्डुव्याधिः पलायते ॥ ५ ॥

५ तैलेन[7] तन्वतां प्रातः पुंसां गण्डूपसप्तकम् ।
आपत्तिः पाण्डुजा याति नाशं कतिपयैर्दिनैः ॥ ६ ॥

६ पलं वालकमूला[8]म्बु शर्करामधुरीकृतम् ।
अप्युच्चैर्दुर्जयं हन्ति पाण्डुं कतिपयैर्दिनैः[9] ॥ ७ ॥

७ माषान् द्वादश मार्कण्ड्याः[10] पिण्डखर्जूरषोडशीम्[11] ।
शाणिकां[12] मरुणां सायं जले[13] क्षिप्त्वोपरि[14] न्यसेत् ॥ ८ ॥

कटुतुवी के रस का नस्य लेने से कामला-प्रकोप क्षीण हो जाता है। यह महान प्रयोग मेरे पितामह ने कृपा करके बताया है ॥ ३ ॥

हुक्के के पानी से चूना और मिश्री को पीसकर पिष्टी बनालें। इस पिष्टीका मस्तक के 'अधिप' नामक मर्म पर लेप करने से निश्चयपूर्वक पाण्डु रोग द्रवित होकर निकल जाता है। पिष्टी का लेप करने से पूर्व अधिप-मर्म को घृतद्वारा अभ्यक्त कर लेना चाहिये ॥ ४ ॥

रूई के सात फोहों को, रोगी के प्रात कालीन मूत्र मे सिक्त करके घरकी छत पर रखदे। काकद्वारा इन फोहो के अपहरण के साथ ही साथ पाण्डुरोग भी अपहृत हो जाता हे ॥ ५ ॥

प्रात काल तिलतैल के सात गंडूप धारण करने से पाण्डु-विकार कुछ ही दिवसों मे नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

बाल-मूलि के स्वरस को शर्कराद्वारा मधुर बनाकर पीने से उग्र पाण्डुरोग भी सात अथवा नौ दिवसो में मिट जाता है ॥ ७ ॥

सनाय वारह मासे, पिंडखर्जूर सोलह तोला तथा मंजिष्ठा तीन माशा इन को जल में भिगोकर सायंकाल को घर की छत पर रखदें। (इनमें मञ्जिष्ठा को थोडी कूट

१–तिक्तालाब्वा । २–सुधाखण्डजचूर्णसितोपलयो । ३–धूमयन्त्र लोके 'हुक्का' इति प्रसिद्धं, तदभ्यन्तरस्थजलेन । ४–"आन्तरो मस्तकस्योर्ध्व सिरासधिसमागम. । रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून् ॥" इति प्रोक्तस्वरूपे । ५–मूत्र च प्रात कालिकं ग्राह्यम् । ६–कार्पासखण्डानि 'फोहा' इति च प्रसिद्धि । ७–तैलं चात्र सामान्योक्तत्वेन मुख्यमेव ग्राह्यम् । ८–वालमूलकाना स्वरसम् । ९–सप्तभिर्नवभिर्वा । १०–'सनाय' इति प्रसिद्धाया । ११–पलम् । १२–मञ्जिष्ठां मनाक् क्षुण्णामित्युपरिष्टात् । १३–कुडवप्रमाणे । १४–प्रासादस्योपरीत्यर्थ । इच्छा चेच्छर्कराया पलमपि क्षेप्यम् ।

प्रातर्निष्कम्पमास्राव्य तदम्बु परिशीलयेत् ।
पाण्डुपित्तास्रकण्डूतिज्वरघ्नं मूत्ररेकतः ॥ ९ ॥

८ वर्षासु यत्र यान्ति ग्रामप्रक्षालनोदकानि वहिः ।
तत्रत्यशमीकिसलयकल्क ससितं पिवन्तु पाण्डुरुजि ॥ १० ॥

९ शकटाक्षकिट्टवस्त्यः शनैः शनैः पाण्डुरोगघ्नाः ।
तदुपादानपदार्थं कथयामश्चाश्चवं तैलम् ॥ ११ ॥

१० कलसोरमरालपदं विडालपदकानि पञ्च मधुरायाः ।
चूर्णं गद्याणमितं पयसा सह पाण्डुमपहरति ॥ १२ ॥

११ मण्डूरपथ्याकटुकीरजांसि पीतानि गोमूत्रविलोडितानि ।
कुर्वन्ति मृत्स्ना परिपूर्णकोष्ठसंमार्जनं सत्यमिदं वदामि ॥ १३ ॥

लेनी चाहिये । अवशिष्ट द्रव्य यथावत् भिगो देने चाहिये ।) अब, प्रात काल, पात्र-गत जल को, हिलाये बिना, वस्त्र-पूत करके उपयोग मे लेवें । यह पाण्डु, पित्त, रक्तविकार, खुजली और ज्वर को प्रशमित करता है । इससे मूत्र प्रचुर मात्रा से खुल कर आयेगा । क्वचित् विरेक की भी सभावना है ॥ ८–९ ॥

वर्षाऋतु मे, गांव में से बहकर पानी जिस जगह एकत्रित होता हो उस जगह उत्पन्न होने वाले विशाल शमीवृक्ष की (दो तीन तोलाभर) कोमल पखुडियों को लेकर कल्क बनाले । इसको पानी मे घोलकर वस्त्रपूत करले । फिर शक्कर मिलाकर पीने से पाण्डुरोग मे लाभ होता है ॥ १० ॥

बैल-गाडी के पहिये की, एरड तैल से सिक्त धुरी के स्नेह-किट्ट की गोलिया बनाकर सेवन करने से पाण्डुरोग शनै शनै. शान्त हो जाता है । (धुरीगत एरड-तैल के अतिरिक्त अन्य द्रव्य के तैल का किट्ट यह प्रभाव नहीं रखता । इस 'स्नेह-किट्ट' को सौराष्ट्र मे 'मली' कहते है । वहा के ग्रामीण-जन पाण्डु-रोग मे इसका उपयोग करते है ।) ॥ ११ ॥

कलमी सोरा एक माशा, मिश्री सोलह माशा, इनको मिलाकर चूर्ण करलें । इसकी तीन माशाभर, शीतल जल के साथ फाकी लेने से पाण्डुरोग मिट जाता है ॥१२॥

मंडूर, हरडे और कटुकी इनको यथामात्रा में लेकर चूर्ण बनाले । इनको गोमूत्र मे घोलकर पीजाये । यह कोष्ठ-गत मिट्टी को बुहारकर बाहर फैंक देता है । यह सत्य है ॥ १३ ॥

१–उपलक्षणमिदं, तेन पुरीषरेकोऽपि भवतीति लभ्यते । २–शमी लोके 'खेजडा' इति ख्याता, सा च महती नाल्पेति । तस्या किसलयाना द्वितोलकमिताना कल्कं शर्करया जलेन लुलित पेयम् । ३–शकटस्याक्षे चक्रे स्थितं यत् स्नेहकिट्ट तन्निर्मिता वृत्य । ४–एरण्डोद्भवम् । ५–'कलमी सोरा' इति प्रसिद्धक्षारविशेषस्य मरालपदं सुवर्णम् । ६–सितोपलाया । ७–शीतलजलेन । ८–दोषदूष्यप्रकृत्याद्यनुसारं कल्पितमानानि ।

१२ भाण्डस्थमाढकं सार्द्धं गुडाद्दध्नोऽयसः पृथक्।
भूगूढं पच सप्ताहं स्यादर्कः पाण्डुरोगनुत्॥ १४॥
१३ पिचुमर्दविशालाभागृध्रनखीकोविदारनिर्यूहः।
शमयति गुडेन मधुरः पाण्डुविबन्धोपदंशार्तिम्॥ १५॥

— इति पाण्डुरोगादिचिकित्सितम् —

गुड २५६ तोला, तथा इससे चतुर्थभाग दही और इतनी ही मात्रा मे पुराणा-मलाढ्य-लोहचूर्ण, (ग्वारपाठे का रस और गोमूत्र प्रत्येक चोसठ तोला, सोरा सोलह तोला, ये द्रव्य अधिक लेवें) इन सबको एक पात्र मे भरदे। इस पात्र को खूब गहरे भू-गर्त में स्थापित करके उसके ऊपर अजा की शुष्क गोबरी तथा तुष आदि की अनवरत अग्नि दें। इस तरह सात दिवस पर्यंत अग्नि से इसे पकावें। यह सिद्ध अर्क पाण्डुरोग को नष्ट कर देता है॥ १४॥

निंब की अन्तर्छाल, इन्द्रवारुणी के मूल, बम्बूल के फल, कण्टकारी के मूल, कचनार की छाल, (और कटुकी, यह अधिक ले) प्रत्येक सोलह तोला लेकर जौकुट करले। फिर एक दिन भर बारह प्रस्थ जल मे भिगोकर रहने दें। दूसरे दिवस इसमें करीब बत्तीस तोला पुराणा गुड मिलाकर इसे उकाले। जब तीन प्रस्थभर पानी अवशिष्ट रह जाये, तब इसे उतार कर कुछ शीतल होने पर वस्त्रपूत करले। इस कषाय का रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा मे सात दिवस तक ही सेवन करें। इससे पाडु, मलावरोध, रुधिरविकार, उपदंश आदि उग्र व्याधिया प्रशमित हो जाती है। पथ्य मे चांवल, मूंग की खीचडी घी मिला कर ले। नमक की जगह सैंधव अल्पमात्रा में लेवें॥ १५॥

— पाण्डुरोग-चिकित्सा समाप्त —

१–अयश्चात्र पुराणतरं मलाढ्यमेव ग्राह्यम्। कुमारीगोमूत्रयो पृथक्प्रस्थं सौरकुडवमित्यधिकमत्र। २–तदुपरि छागकरीषचूर्णतुषादितापश्चानवरत रक्षणीय इत्युपदेशः। ३–पिचुमर्दो निम्ब, तस्यान्तरत्वग्ग्राह्या। विशालायाश्च मूलम्। आभा बम्बूल, तस्य फलम्। गृध्रनखी कण्टकारी, तस्या मूलम्। कोविदारः 'कचनार' इति ख्यातः, तस्य त्वग्ग्राह्येति। एतदौषधजात पृथक्कुडवमितं यवक्षुण्णं द्वादशप्रस्थे जले दिनमेक समावाप्य शरावसमित पुराणगुडं प्रक्षिप्य द्वितीयदिने पाकात् प्रस्थत्रयशेषेऽवतार्य पटपूतं काचभाण्डे विन्यसेत्। महाव्याधौ सर्वमेवैतद्यथायथ विभज्य सप्तदिनैरेव पिबेत्। अल्पव्याधौ च दोषानुसार मात्रा कल्पनीया। पथ्यमत्र तन्दुलमुद्गकृशरा सघृता अल्पसैन्धवा, अथवा अर्धचणकगोधूमफुल्लिका घृतप्लुता। इच्छा चेद्दुग्धमपि, केचिदत्र कटुकीमपि प्रक्षिपन्ति। रक्तविकारेऽप्ययं प्रचरति।

अथ रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

१ न्यस्यं सप्तौड्रपुष्पाणि द्वित्रिनिम्बूकपाथसि ।
तरुणीकेतकोत्थार्कं द्विपलं द्विपलं क्षिपेत् ॥ १ ॥
प्रसृतिप्रमितं खण्डं काचकूप्यां समावपेत् ।
दृढदत्तपिधानां तामाकण्ठं वारि विन्यसेत् ॥ २ ॥
त्र्यहादूर्ध्वं तु संगाल्य कूप्यां भृत्वा जले न्यसेत् ।
तमेतमौड्रपुष्पार्कं सिद्धं शोणितशोणिमम् ॥ ३ ॥
कर्षं कर्षं पिबेद्द्वित्रिः पित्तास्रक्षुभितो नरः ।
२ अनेनैव विधानेन कर्तव्योऽर्कः परूषकैः ॥ ४ ॥
३ वरा खर्वा शिवा मज्जा वितुन्नकसमुद्भवः ।
पृथक् सपादपलिकां चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ५ ॥

— रक्त-पित्त चिकित्सा (कुल बारह प्रयोग) —

गुडहलके ताजे सात पुष्पों को (छह पंखुडियों वाले अधिक गुण युक्त होते हैं) प्रात. दो या तीन निबूओं के रस में काष्ठ की कलछी से अच्छी तरह छूकर मिला देवें । फिर, एक काच की शीशी में भरकर रखदें । उसी दिन सांझ को, उसी शीशी में गुलाबअर्क, केवडाअर्क, स्वच्छ बूरा और जल प्रत्येक आठ आठ तोला लेकर आकंठ भरदें । शीशी के मुख को मजबूत डाट से बंध करें । तीन दिवस पीछे इस रस को वस्त्रपूत करके, पुनः मजबूत डाटवाली शीशी में भरकर उसे जलपूर्ण पात्र में रख देवें । इस तरह रक्तवर्णाभ औढ्र-पुष्पार्क सिद्ध होता है । दिवस में, एक-एक तोला दो तीन वार पीने से रक्तपित्त से पीडित मनुष्य को शान्ति मिलती है । इसी विधिपूर्वक, उपरोक्त गुणों से युक्त, फालसेका अर्क भी निर्माण करें । फालसा, यहां आठ तोला भर मात्रा में लेवें ॥ १-४ ॥

५ त्रिफला, जवाहरडे और धनिये के डठल का भीतरी रेशेदार भाग (मज्जा) प्रत्येक

१-पित्तोद्रेकसाधर्म्यात् पाण्डुरोगानन्तरं रक्तपित्तमभिधीयते । तत्रादौ न्यस्येत्यादि-चतुर्भिः श्लोकैरेको योगः । २-चतुर्थमिमिति शेषः । ३-पुष्पसंख्येयम् । ४-सद्योल्लूनानि जपापुष्पाणि । तानि च सप्तच्छदानि चेद् गुणाधिक्यम् । ५-अनुक्तमपि पट्पलं जलमत्र क्षिपेत् । ६-खण्डं च धौतमादेयम् । ७-समावापविधिश्च यथा-प्रातः काचपात्रे सुमानि योग्यैर्निम्बुरसैराप्लाव्य दारुदर्व्या सक्षोभ्य कूप्यां भृत्वा यावद्दिनं रक्षेत्, सायं तु पुष्पार्कं सखण्डं जलं च निक्षिप्य दृढं पिदध्यादिति । ८-सप्तम्यन्तम् । ९-विनान्यासे वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते, तेन च शिलादिना दृढं कूपी यन्त्रितव्येति ध्वन्यते, नोचेदर्कवेगादुत्फणनसंभवः । १०-पूर्ववद्दृढपिधानमत्राप्यावश्यकम् । ११-पित्तास्रस्योपलक्षकत्वात् सौजाकरक्तमण्डलादेरपि ग्रहणम् । १२-द्विपलप्रमाणैः, विधिश्च पूर्वोक्त एव । बहुवचनं चाद्यर्थोपलक्षकं, तेन राजजम्बूफलादीनामपि ग्रहः । १३-खर्वा शिवा चेतकीनामा हरीतकीविशेषः, 'जवाहरडे' इति लोके प्रसिद्धिः ।

वातामजेन तैलेन द्विगुणे माक्षिके क्षिपेत् ।
खादेट्टङ्कप्रमाणं तद्भुक्तस्यान्ते सुखप्रदम् ॥ ६ ॥
रक्तपित्ताक्षिरुक्कोष्ठदाहविष्टम्भनाशनम् ।
नास्त्यनेन समः कश्चित् प्रयोगो यावने मते ॥ ७ ॥

४ खार्जूरीफलानां परिचूर्णितानां प्रत्नत्वभाजा मधुनाऽवलेहः ।
असृग्विकार परिहृत्य पुष्ट्यै प्रकल्प्यते तथ्यमुदीरयामः ॥ ८ ॥

५ द्विगुणितसितानि पयसा किंशुककुसुमानि कुडवकलितानि ।
पित्तास्रखुनिहराणि स्त्रीणा तारुण्यमपि दधति ॥ ९ ॥

६ दुरालभाकिसलयैः कल्कं चिरलवेल्लजम् ।
सुखाय मेहतां रक्तं सर्वतोमुखगालितम् ॥ १० ॥

७ लवङ्गधूमपानेन रक्तवान्तिः प्रशाम्यति ।
मानं मन्ये लवङ्गानां शाणं गद्याणमेव वा ॥ ११ ॥

सगाचार तोला, इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनाकर इस मे इस चूर्ण से द्विगुणित दोनों माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक तथा रूप्यमाक्षिक) मिलादें । फिर इन सबको बादाम के तैल की भावना दे । भोजनोपरात, चार माशा भर मात्रा मे सेवन करने से स्वास्थ्य लाभ होता है । यह प्रयोग रक्तपित्त, आखो की पीडा, कोष्ठगत दाह तथा मलावरोध नष्ट करता है । इन रोगों मे, यावनमतानुसार, इसके समान कोई अन्य उत्तम औषधि नहीं है ॥ ५-७ ॥

छुहारों के सूक्ष्म चूर्ण में पुराणा शहद मिलाकर अवलेह बनाले । यह लेह रुधिर-विकार को दूर करता तथा पुष्टि देता है । यह तथ्यपूर्ण कथन है ॥ ८ ॥

पलाश के पुष्प सोलह तोले तथा इससे द्विगुणित मिश्री इनको पानी के साथ लेने से रक्तपित्त तथा रक्तस्राव में लाभ होता है । दूध के साथ सेवन से स्त्रियो को तारुण्य की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

जवासे की कोमल पत्तियो मे थोडी उत्तम जाति की काली मिर्च मिलाकर कल्क बनालें । इस कल्क को पानी मे छानकर पीने से मूत्र गत रक्तस्राव बन्द हो जाता है ॥ १० ॥

लौंग के धूम्रपान से रक्तवमन प्रशमित होता है । लौंग तीन अथवा छह माशा भर ही लेनी चाहिये ॥ ११ ॥

१—खर्जूरीफलाना 'छुहारा' इति लोकख्यातानाम् । २—मधुनश्च प्रत्नत्वेनैव गुणाधिक्यमित्यायुर्वेदसमय । ३—दुग्धेन जलेन चेत्यर्थद्वयमपि व्यवस्थितविकल्पविषयत्वेन सघटते, तथा च पित्तास्रस्त्रीविषये दुग्धेन, अतिसृतौ जलेनेति । पक्षावधि प्रयोगसेवा । किंच योगोऽय कोठोदर्दादिषु रक्तविकारे पाण्ड्वादिषु चाप्यवचारणीय । ४—धन्वयासपल्लवै । ५—सर्वतोमुखं जलम् ।

८ चिञ्चावल्कलकल्कं गौरीपाषाणमिश्रितं निहितम्।
अधिपोपरि तदनु वरास्वरसप्लोतं रुणद्धि नासास्रम्॥ १२॥
९ नासारुधिरनिरोधकरमिति योगं समवेहि।
खरीपुरीषभवं रसं नासिकयोर्लघु देहि॥ १३॥
१० सितासहायो मोरटो मायुज्वरजोषेषु।
सखे! यथारुचि पीयतां रुधिरारुचिशोषेषु॥ १४॥
११ गव्यं धारोष्णमौधस्यं यथेच्छं पिबतां नृणाम्।
रुधिरक्षोभजा रोगा जायन्ते न हि जातुचित्॥ १५॥
१२ भक्तं मिथो विभक्तं साधय सितशर्करासमासक्तम्।
तद्धरति रक्तपित्तं वेश्याचित्तं यथा वित्तम्॥ १६॥

इति रक्तपित्तचिकित्सितम्।

चीयाभाटा को इमली की छाल में मिलाकर कल्क बनालें। इस कल्क को मस्तक के 'अधिप' नामक मर्म पर कुछ देर के लिये रक्खें। फिर उसपर त्रिफला स्वरस से सिक्त फोहे को स्थापित कर देने से नासिका-गत रक्तस्राव बंद हो जाता है॥ १२॥

' गदही के लीद का थोड़ा रस नाक में डालने से, नासागत रुधिर स्राव रुक जाता है॥ १३॥

फटे हुये दूध के जल भाग में मिश्री मिलाकर पीने से, पित्त-ज्वर, रुधिर-स्राव, अरुचि और शोष में लाभ होता है॥ १४॥

गाय के धारोष्ण दूध को यथेच्छ मात्रा में पीने वाले मनुष्य को, ग्रंथि, दद्रु, विस्फोट आदि रक्त-दुष्टि जन्य रोग कभी उत्पन्न नहीं होते॥ १५॥

स्विन्न भात में समान भाग स्वच्छ बूरा मिलाकर भोजन करे। वित्तसे वेश्या के चित्त की तरह यह सिद्धभात, रक्तपित्त को हर लेता है॥ १६॥

रक्तपित्त-चिकित्सा समाप्त।

१—गौरीपाषाण 'गाईभाठा' इति नाम्ना प्रसिद्धः। २—मुहूर्तमात्रम्। ३—दोहा-वृत्तमिदम्। ४—इदमपि तथा। ५—नष्टक्षीरस्य द्रवभाग। ६—क्षीरम्। ७—ग्रन्थि-दद्रुस्फोटादिकाः।

अथ [1]राजयक्ष्मचिकित्सितम् ।

१ मुस्तामरिचचव्याग्नि निशाकृष्णाविडङ्गकम् ।
आमलोगीरशैलेयं[2]पूगलोध्रद्विपत्रकम्[3] ॥ १ ॥
कट्वीश्रीखण्डतगरमांसीदारुसिता[4]सुमम् ।
गुन्द्रणी[5]नागपुष्पाणि त्रिपिचूनि[6] पृथक् पृथक् ॥ २ ॥
प्रस्थार्धं धातकीपुष्पं द्राक्षा प्रस्थैस्त्रिभिर्मिता ।
पुराणः पञ्चदशभिः प्रस्थैः संकलितो गुडः ॥ ३ ॥
भाण्डे षड्विंशतिप्रस्थशम्बरे घृत[7]चिक्कणे ।
क्षिप्त्वा सर्वं पिधायाथ पक्षमात्रं निधापयेत् ॥ ४ ॥
प्रमृद्य गालितोऽस्यर्थं फाण्टः स्याच्चित्तचन्द्रिरः[8] ।
कासं श्वासं क्षयं मान्द्यं वन्धं हन्ति प्रकाशते[9] ॥ ५ ॥

— राजयक्ष्मा-चिकित्सा (कुल चार प्रयोग) —

नागरमोथा, मरिच, चव्य, चित्रक, हलदी, पीपल, वायविडंग, आंवला, खस, छाडछडीला, सुपारी, लोध, तमालपत्र, वर्कतिवाका, कटुकी, चदन, तगर, जटामासी, देवदारु, दालचीनी, गूदी, नागकेसर प्रत्येक चौवीस माशा लेवें । (पिचु, कर्षका अपर-पर्याय है। कर्ष एक तोला वजन का नाम है। आप्टे के कोष के अनुसार पिचु-तथा कर्ष दो तोलाभर वजन मे प्रयुक्त होते है। प्रस्तुत श्लोक मे पिचु से आठ मापा का ग्रहण किया है। अत त्रिपिचुका अर्थ चौवीस मापा हुआ।) धाय के फूल वत्तीस तोला, किसमिस दाख तीन प्रस्थ तथा पुराणा गुड पदरह प्रस्थ लेंवे। अब, एक मिट्टी के घट को भीतर घृत से चुपड कर चिकना वनालेवें। इस घट मे उपरोक्त सभी औषधीय-द्रव्य तथा छव्वीस-प्रस्थ जल डाल देवे। घट के मुख को अच्छी तरह बंद करके पदरह दिवस पर्यंत इसी तरह रहने दे। फिर, घट-गत द्रव्य को खूब मसलकर छानलें। इस तरह से सिद्ध किये गये इस फाण्ट को 'चित्तचन्द्रिर' कहते है। यह फाण्ट यथानाम तथा गुणवाला है (अर्थात्—चित्त चन्दयति-चित्त को आल्हादित करता है।) कुछ मादक गुण से युक्त यह फाण्ट कास, श्वास, क्षय, अग्निमांद्य, मलावरोध आदि को मिटा देता है ॥ १—५ ॥

१—राजयक्ष्मण्यपि शोणितनिर्गमनं भवतीत्यतो रक्तपित्तानन्तर शोषचिकित्सितमुच्यते। तत्रादौ पञ्चभि श्लोकैश्चित्तचन्द्रिरफान्ट । २—शिलापुष्पं 'छाडछडिला' इति लोके प्रसिद्धम् । ३—एकं तमालपत्रं 'पत्रज' इति नाम्ना प्रसिद्ध, द्वितीय च 'कश्मीरीपट्टा' इत्यपरप्राकृतं 'वर्कतिवाका' इति नाम्ना प्रसिद्धमिति द्विपत्रकम् । ४—गुडत्वक् 'दालचिनी' इति प्रसिद्धा । ५—गुन्दणी 'गून्दी' इति ख्याता । ६—पिचुरत्राष्टमाषो विवक्षित । ७—षड्विंशतिप्रस्थमितं शम्वर जल यस्मिन् तत्तथा । ८—'चित्त चन्दयति आह्लादयति' इति चित्तचन्द्रिरोऽन्वर्थसंज्ञ । मात्रा चास्य तोलद्वयोन्मिता, पथ्य च गोधूमफुल्लिका मुद्गसूपः पुरातनतन्दुलकृतभक्तम् । ९—किञ्चिन्मदयतीत्यर्थ ।

१ क्षुद्रामुकूलसुमदारुसिताटरूपभैपज्यपौष्करकुलिञ्जनजूफिकाभिः ।
संसाधितात् खदिरसारसखात् कषायादाप्नोति नो विकसनं कसनं कदाऽपि
२ मधुककुलिञ्जनवृहतीदारुसितापञ्चवैक्त्रसंभूतः ।
क्काथः सितासनाथः कासह्रासं समारभते ॥ ५ ॥
३ त्रुटिमरिचकषायः स्फीतखण्डासहायः कसनपरिभवाय स्याद्रुचेर्वैभवाय
गलगदशमनाय श्लेष्मणो निग्रहाय ज्वलनसमुदयाय च्छर्दिविच्छेदनाय
४ आफूकवीजानि पलोन्मितानि पानीयपिष्टानि सितासितानि ।
पृथक्पयांसि क्कथनाद्यदा स्युस्तदा पवित्राणि दृगूपणानि ॥ ७ ॥
प्रातर्निपीतानि दिनैः कियद्भिः शुष्कस्य कासस्य निवर्हणानि ।
पानीयविल्वं यदि वा द्विविल्वं सिता समाना यदि वाऽर्धमाना ॥ ८ ॥
५ अङ्गारतप्तकरके कीर्णमरिचचूर्णधूमसंस्कारे ।
भृतमुत्फणनजवाद्बहिरभिपतितं खलु पयोऽपि कासघ्नम् ॥ ९ ॥

१ छोटी कण्टकारी (अथवा पिण्डखर्जूरी - छुहारा), पिस्ताके फूल, दालचीनी, अरडूसा, सूंठ, पुष्करमूल, कुलिंजन और जूफिका इनको एकत्र करके कषायसिद्ध करलें। इस में खैरसार मिलाकर पीने से कास का विकास रुक जाता है ॥ ४ ॥

मुलेठी, कुलिंजन, वडी कंटकारी, दालचीनी और अरडूसा इनके क्काथ मे मिश्री मिलाकर पीने से कास का ह्रास होता है ॥ ५ ॥

स्वच्छ-शर्करा से युक्त, इलायची और मरिच का कषाय, कास को हटाने वाला, रुचि को बढाने वाला, गलेके रोगका शामक, कफका अवरोधक, जठरानल का वर्धक और वमन का विच्छेदक कहा गया है ॥ ६ ॥

८ करीव चार तोलाभर खसखस के दानो को, उनमें मिश्री मिला पानी से खूब वारीक पीसकर, दूध में उकालें। उकलते उकलते जव दूध फट जाये, तव वस्त्रपूत करके तथा इसमें दो तीन श्वेतमरिच का चूर्ण मिलाकर नियमित प्रात.काल पीये। इस तरह सात या नौ दिवस मे ही शुष्ककास की निवृत्ति हो जाती है। उपरोक्त योग मे खसखसके दाने तथा मिश्री प्रत्येक चार तोले एवं पानी चार या आठ तोले लेवें ॥ ७-८ ॥

मरिच-चूर्ण भुरकाकर उसकी धूम से सुवासित किये गये, अग्नि-तप्त सकोरे

१-मुकूल 'पिस्ता' इति लोके, तस्य पुष्पम्। २-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा। ३-पञ्चवक्त्र आटरुष। ४-'खसखसदाणा' इति प्रसिद्धानि। ५-सितया शुभ्राणि। ६-नष्टक्षीरवत् क्कथनाद्यदा पृथग्भूतपयासि भवेयुस्तदा पटपूतानि कृत्वा वौताना द्वित्रिमरीचानां रजोभिश्चमत्कृनानि पिवेदिति। ७-सप्तभिर्नवभिर्वा। ८-समासे गुणभूतस्यापि पानीयशब्दस्य वुद्ध्या विभज्योभयत्राप्यनुवृत्ति कार्या "अथ शब्दानुशासनं, केषां शब्दाना लौकिकाना वैदिकाना च" इतिवत्। ९-वीजसमाना जलसमाना वा। १०-'करवा' इति प्रसिद्धमृत्पात्रविशेषे।

६ निर्वाप्य खादिरोल्मुकमर्णसि संरुद्धधूमनिर्गमनम् ।
तत्पिब यथापिपासं कासं हातुं यदीच्छसि भ्रातः ॥ १० ॥

७ श्लक्ष्णां पिष्ट्वा जूफिकां वस्त्रपूतां कृत्वा पङ्के शार्करे मेलनीया ।
लोके सैषा स्याद्दयाकुञ्जनाम्नी कासं का संनाशयेद्यां विनाऽत्र ॥ ११ ॥

८ अच्छाच्छशर्कराशुक्लगुन्द्रजः शीतशार्करः ।
पित्तांशविद्धवातोत्थं शुष्ककासं नियच्छति ॥ १२ ॥

९ स्विन्नफणिफेनफलयुगरसजनुषि सितोपलाम्रतन्तुल्याम् ।
वाम्बूलो निर्यासो यष्टीसत्त्वं सवातामम् ॥ १३ ॥
प्रत्येकतोलतुलितं प्रणीय सान्द्राऽवलेहिका कार्या ।
लिह्यात् द्विसंध्यमेनामनिलोल्वणशुष्ककासार्तः ॥ १४ ॥

१० सिंहास्यरससंसिद्धहरिद्राखण्डचूर्णकम् ।
दुग्धसंतानिकालीढं शुष्ककासनिवर्हणम् ॥ १५ ॥

में उफान के वेग से छलक कर बाहर पडे हुये दूध को, भरदें। इस दूध के पीने से खासी नष्ट हो जाती है ॥ ९ ॥

अर्ध-दग्ध खदिर वृक्ष की जलती हुई शाखा को पानी में बुझादें। बुझाते समय पानीके पात्र-मुख को शीघ्र ही ढकदें जिससे धूम बाहर न निकल सकें। इस जल को, जब जब प्यास लगे, तब तब पीने से खांसी नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥

जूफिका को पानी से खूब बारीक पीसकर वस्त्रपूत करलें। फिर इसे शक्कर की चासनी मे मिला देवें। इस तरह से सिद्ध इस 'दयाकुंज' के अतिरिक्त भूतलपर खांसी को नष्ट करनेवाली अन्य कौनसी औषधि हे? ॥ ११ ॥

अत्यंत स्वच्छ बूरे के समान श्वेतवर्ण, बबूल के गुंद्र से निर्मित शीत 'शार्कर' के सेवन से, पित्तानुबन्ध-वातप्रधान-शुष्क कास मिटजाती है ॥ १२ ॥

पोस्त के डोडे नग दो लेकर उन्हे स्विन्न करके उसमें से रस निकाललें, इस रस में दो तोलाभर शक्कर मिलाकर चासनी बनालें। इस चासनी में बबूल का गूंद, मुलेठी का सत्व तथा बादाम प्रत्येक एक एक तोला मिलाकर अवलेह निर्माण करलें। इसको प्रतिदिन सुबह साझ लेने से वातप्रधान शुष्क कास की वेदना से मुक्ति मिलती है ॥ १३–१४ ॥

अरडूसे के रस में सिद्ध किये गये हरिद्रा खण्ड के चूर्ण को दूध की मलाई के साथ लेने से शुष्ककास शांत हो जाती है ॥ १५ ॥

१–ज्वलदर्धदग्धखदिरकाष्ठम् । २–या दयाकुञ्जनाम्नीं विना अत्र लोके का औषधिः कास रोगविशेष सनाशयेत्, न काऽपीति काकु । ३–वम्बूलगुन्द्र । ४–सिंहास्य आटरूप ।

२३ दीप्तच्छगणभस्मान्तः[1]सिद्धं क्लीतकं[2]सैन्धवम् ।
चूर्णितं कासनुत् पर्णक्षौद्रसंतानिकादिभिः ॥ २८ ॥
२४ कसनश्वसनवलासैर्बलवद्भिर्यदि विशिष्य परिभूतः ।
लवणहरिद्रासंभृतधत्तूरफलस्य[3] भस्म भुङ्क्ष्व सखे ! ॥ २९ ॥
२५ परिणाम[4]विदलितानां भस्म फलानां फलेन्द्रायाः[5] ।
कसनेषु श्वसनेषु प्रयोजयेत्तत्तदनुपानैः ॥ ३० ॥
२६ लोहितगुरुतरगैरिकं[6]मतल्लिकामर्धकोकिलां पिष्ट्वा ।
लुलितां पयोभि[7]रम्बरपूतां परिढालयेदधिस्थालि ॥ ३१ ॥
कलिता तत्कत्तलिका भिषजामुपकारिणी नियतम् ।
कसनश्वसनादिजये सारं[8] सर्वात्मना हसंति[9] ॥ ३२ ॥

– इति कासचिकित्सितम् –

मुलेठी को सैंधव-जल की भावना देकर सपुटित करके प्रदीप्त कण्डों की राख (भस्म) के भीतर रखदें। नागरवेल के पान के साथ अथवा मधु, मलाई आदि के साथ इस चूर्ण को लेने से कास का शमन होता है ॥ २८ ॥

धत्तूर-फल में से थोडे बीज निकाल उसमें नमक और हरिद्रा के चूर्ण को भर कर कपडमिट्टी करके कण्डों की अग्नि से उसकी भस्म बनालें। हे मित्र ! यदि आप श्वास, कास तथा कफ के उग्र-वेग से परिपीडित है तो इस भस्म का उपभोग करें २९

राज-जामुन के परिपक्व फलो को छाया-शुष्क करके उनकी भस्म बनाले। यथोपदिष्ट अनुपान-पूर्वक इस भस्म का उपयोग सभी प्रकारके कास और श्वास मे प्रशस्त कहा गया है ॥ ३० ॥

वजन में भारी एवं रक्त-वर्ण युक्त उत्तम स्वर्णगैरिक, तथा इससे अर्ध मात्रा में बादामी कोयले (soft cocke) इन दोनों को खूब बारीक पीस दूध में घोलकर तथा वस्त्र-पूत करके एक थाली में ढाल देवें। जमजाने पर इसकी छोटी छोटी चकत्तियां (कतलिका) चाकू से काटकर निकाल लें। ये कतलिकायें श्वास, कास आदि विकारो में परम हितावह अत एव वैद्यों की निःसदेह उपकारक तथा गुण और वर्ण मे, सभी प्रकार से, लोह-भस्म से भी उत्तम मानी गयी हैं ॥ ३१-३२ ॥

–कासचिकित्सा समाप्त–

१–भस्मान्तरेऽवकूलनात् सिद्धं पुटपाकरीतिसिद्धमिति यावत्। २–क्लीतकं यष्टीमधु। तच्च सैन्धवजलभावितम्। ३–किञ्चिन्निष्कासितबीजस्य। ४–पक्वतरपरीक्षेयम्। ५–राजजम्ब्वा। ६–प्रशस्तस्वर्णगैरिकम्। प्रशस्तत्वं च लोहितगुरुतरत्वमेव। कोकिलानि चात्र मार्तिकाणि 'भरावाकोईला' इति प्रसिद्धानि। ७–गोदुग्धै। ८–लोहभस्म। ९–तत्सदृशत्वादिति कूटलोहभस्मकरणप्रकारोऽयं वर्णित.।

अथ हिक्काचिकित्सितम् ।

१ पृथक् स्वादुसुरञ्जान[1]मृत्खण्डे[2] वार्धितोल[3]के ।
यासं[4] प्रस्थकला[5]मानं द्विप्रस्थेऽम्भसि साधयेत् ॥ १ ॥
अष्टमाशं समुत्तार्य पूतमल्पाल्पशः पिबेत् ।
कलांशखण्ड[6]मसकृद्दुग्धमुष्णं पिबेदपि ॥ २ ॥
समाप्यन्ते ततो हिक्काश्वासकासव्यथाकथाः ।
२ तैलप्लुता विवस्वत्प्र[7]सूनगर्भगलवङ्गिकैकैव ।
सहसा कण्ठे क्षिप्ता हिक्कां हन्ति महदेतदाश्चर्यम् ॥ ३ ॥
३ विनिवेश्य कुटीयन्त्रं[8] रहसि हसन्त्यां[9] विशिष्य विहसन्त्याम्[10] ।
तत्रस्थं सिहिर[11]दलं पच दान[12]वदुग्धिकाभित्तैः ॥ ४ ॥
एवं मुहुः कृते सति नभोनिभं भस्म तस्य जायेत ।
हिक्काकासश्वासक्षुन्मान्द्यबलासवातरुजि देयम् ॥ ५ ॥
द्राक्षापर्णक्षौद्राण्यनुपानान्यस्य रक्तिका मात्रा ।
भेषजमिदमर्पितवानन्तेवासी स मे सदानन्दः ॥ ६ ॥

इति हिक्काचिकित्सा ।

– हिक्का चिकित्सा (कुल प्रयोग–३) –

मीठा सुरजान, ठीकरी तथा जवासे के मूल प्रत्येक चार चार तोला लेकर, १२८ तोले पानी में अष्टमाश शेष रहने तक उकाल लेवें। फिर उतारकर वस्त्रपूत करके अल्प मात्रा से दिवस मे कई वार पीवें। साथ ही गरम गरम दूध को भी उसमे चतुर्थांश शक्कर मिलाकर पीते रहे। इससे हिक्का, श्वास और कासजन्य व्यथा की कथा का अन्त हो जाता है ॥ १–२ ॥ अर्कपुष्प के अन्तर्गत लवङ्गिका नग एक लेकर उसे तैल में सिक्त करके सहसा गले में डाल देवें। इससे हिक्का नष्ट हो जाती है। यह परम आश्चर्य पूर्ण प्रयोग है!! ॥ ३ ॥ छह माशाभर एक सूक्ष्म ताम्र पत्र को प्रतप्त अर्क दुग्ध मे सात वार बुझावे देकर शुद्ध वनालें। फिर निर्वात प्रदेश में, एक प्रज्वलित अंगीठी पर रखे हुये कुटीयत्र के भीतर इस पत्र को स्थापित करके उसपर करीव आठ

१–'मीठा सुरजान' इति प्रसिद्ध, तच्च मैसरो वन्यश्रृङ्गाटविशेषः। २–मृत्खण्ड 'ठीकरी' इति ख्यातम्। ३–कटपयादिक्रमेण सख्याभिधानमिदम्। तेन चतुश्चतुष्टोलके इत्यर्थः। प्रत्येकं चतुष्टोलके इति यावत्। ४–यासमूलम्। ५–पलमानमित्यर्थः। ६–दुग्ध-विशेषणम्। ७–अर्कस्य फुल्लिकान्तर्गतलवङ्गिका। ८–पार्श्वद्वये तिर्यगूर्ध्वीकृतकपालान्तरित-च्छगणकद्वयेन तन्निष्पत्तिः। ९–अङ्गारधानिकायाम्। १०–ज्वलदङ्गारकायाम्। ११–ताम्र-पत्र गद्याणमितं, तच्च शुद्धमादेयम्। शुद्धिश्चास्य कपालस्थस्य प्रतप्तस्य रविदुग्धे सप्तकृत्वो निर्वापणात्। १२–दानवो गन्धक, स च द्विपलः। दुग्धिकाशकलानि पलमितानि दुग्धिका चात्र सूक्ष्मपत्रा स्वल्पनरा चान्वेष्टव्या।

अथ श्वासचिकित्सितम् ।

१ शुद्धार्कपत्रचूर्णं विमर्द्य वाढं पयोभिरर्कोत्थैः ।
पुटपक्कं शतकृत्वः कासश्वासादिरुक्षु हितम् ॥ १ ॥
२ जम्बूफलरसे जम्ब्वास्तनुच्छल्लं कलांशकम् ।
विनीय स्थापयेद्धर्मे प्रचण्डे दिवसाष्टकम् ॥ २ ॥
अनातपे पक्षमेकं ततो द्विस्त्रिः पवित्रयेत् ।
अनेन लोहजं पिष्ट्वा जाम्ववासवतो रजः ॥ ३ ॥
पुटेत् पुनः पुनर्यावत् पुटाः स्युः पञ्चविंशतिः ।
इत्यदो लोहजं भस्म श्वासहृच्छूलसूदनम् ॥ ४ ॥
३ वन्यानां विंशतिप्रस्थाश्चूर्णं स्याल्लोहजं पलम् ।
कलसोरं खमिभपुटे पक्त्वा पूतं विमर्द्य रविपयसा ।
संशोष्य पक्कमिति खं कासश्वासेषु देयमनुपानैः ॥ ५ ॥

तोला भर गंधकचूर्ण का तथा दुग्धिकाक्षुप के छोटे छोटे शुष्क टुकडो का थोडी थोडी मात्रा में प्रक्षेप करते रहें। इस तरह पुन. पुन. करते रहने से ताम्रपत्र की आकाश-तुल्य नीलवर्ण की भस्म हो जायेगी। इस भस्म का, हिक्का, कास, श्वास, अबुभुक्षा, अग्निमांद्य, कफ और वातप्रधान विकारों मे प्रयोग करें। यह सिद्धप्रयोग मुझे मेरे शिष्य 'सदानन्द' ने बताया है। इसकी मात्रा एक रत्ती भर है। इसके अनुपान, द्राक्षा, नागरवेल का पान अथवा मधु है ॥ ४–६ ॥ — हिक्काचिकित्सा समाप्त —

— श्वासचिकित्सा (कुल प्रयोग ३०) —

शुद्ध ताम्रपत्र के चूर्ण को अर्क दुग्ध मे खूब खरल करे। सो पुट देकर इसकी भस्म बनालें। यह भस्म कास श्वास आदि विकारो में प्रशस्त है ॥ १ ॥ एक भाग जम्बूफल के रस में, जंबू वृक्ष की षोडशाश अन्तर छाल को थोडी कूट कर मिला देवें। इसे आठ दिवस पर्यंत सूर्य के प्रचड ताप मे, फिर, पंदरह दिन तक छाया में रखदें। तदनन्तर, इसे दो तीन वार वस्त्रपूत करके, इससे लोहचूर्ण को खरल में खूब घोटे। फिर इसकी टिकियां बना शराव सपुटित करके वन्यगोवरी की अग्नि से पुट देवें। इस तरह पुन पुन कुल पच्चीस पुट देकर उत्तम लोह भस्म निर्माण करलें। यह भस्म श्वास और हृदय शूल को निर्मूल कर देती है। इस प्रयोग मे लोह चूर्ण चार तोलाभर तथा वनोपल वीस प्रस्थ लेवें ॥ २–४ ॥ अभ्रक चूर्ण को कलमी सोरे में रखकर, शराव सपुटित करके गजपुट की आच देकर भस्म बनाले। इस भस्म को कपडे से छानकर

१–शुद्धताम्रपत्रस्य चूर्णम्। २–'अन्तरच्छाल' इति प्रसिद्धमाभ्यन्तरवल्कम्। ३–मनाक् सक्षुद्य। ४–तृतीयायामत्र तसि। ततोऽनेन जाम्बवासवत इति सामानाधिकरण्यम्। ५–वनोपलानाम्। ६–अभ्रकं कलसोरेणान्तरितं मृत्कोष्टीस्थ कृत्वेति शेष।

ग्रीष्मे द्राक्षा, प्रावृषि पर्णं, स्वाद्वीफलं च शिशिरतौं ।
तन्दुलमेकं शिशवे, यूने च त्रीणि तानि मात्राऽस्य ॥ ६ ॥
४ कन्याम्बुकल्कीकृतमेव हिङ्गुलं दहेदरण्योपलयुग्मसंपुटे ।
तद्धिङ्गुलं स्याच्छ्वसनेऽनु पावकं वन्योपलप्रस्थयुगी हि गौर्जरी ॥ ७ ॥
५ शङ्खः पूरितकुक्षिः शतमल्लयुजा दिनेशदुग्धेन ।
दन्तावलपुटसिद्धः श्वासे कासे ज्वरे प्रसिद्धोऽयम् ॥ ८ ॥
६ सुधार्खण्डचूर्णाद्यवानी द्विभागा दिवाकृद्दलेभ्यो विभागा दशैव ।
पचेन्यस्य चुल्यां द्वियामं पुनस्तत् पुटेत् कौञ्जरे श्वासकासौ निहन्तुम्
७ तेजोम्बुँनि निष्कृष्टे लवणक्षारादितीक्ष्णवस्तुभ्यः ।
तत्किट्टपिण्डखण्डं वल्लमितं श्वासहारि पर्णेन ॥ १० ॥

आकडे के दूध मे दिनभर खूब मर्दन करके टिकियां बनाकर उसे सुखा, शरावसपुटित करके पुन. गजपुट की अग्नि दें । इस भस्म को कास एव श्वास रोग में यथा निर्दिष्ट अनुपान सहित प्रयोग मे लें । ग्रीष्म ऋतु मे द्राक्षा के साथ, वर्षा में नागरवेल के पान के साथ तथा शिशिरऋतु में छुहारा के साथ सेवन करें । इसकी मात्रा, बालक को एक चांवल तथा युवक को तीन चावल भर है ॥ ५-६ ॥ एकतोला भर हिंगुल का ग्वार पाठे के रस से कल्क करके शराव संपुट मे रख एक प्रस्थ भर जंगली उपलो की अग्नि में फूक दें । यह हिंगुल श्वास रोग में प्रशस्त है । इसके ऊपर सीरेका (हलवेका) भोजन करना चाहिये । गुर्जरप्रदेश में बत्तीस तोले का एक प्रस्थ माना जाता है । प्रस्तुत श्लोक में दो प्रस्थ उपलो का ग्रहण इसी मान के अनुसार किया गया है । प्रचलित आयुर्वेदीय मानके अनुसार चौसठ तोले का एक प्रस्थ होता है । इसी गणना के आधार पर हमने एक प्रस्थ (चौसठ तोले) ही यहा ग्रहण किया है, जो गुर्जरदेश के दो प्रस्थ मान के अनुसार ठीक उतरता है ॥ ७ ॥ आकडे के दूध मे शतमल्ल को मर्दन करके उसको शंख के उदर में भर गजपुट की आच मे फूक दें । स्वांगशीतल होने पर बारीक पीसकर उपयोग मे लें । यह भस्म श्वास, कास, तथा ज्वर मे प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥ सुधा-चूर्ण एक भाग, अजवायन दो भाग, तथा आकडे के पत्ते दस भाग इनको एक पात्र में भर चूल्हे की आच से दो प्रहर तक पकावें । तदनन्तर, इन्हे शरावसपुटित करके गजपुट से फूंकदें । यह भस्म श्वास तथा कास को नष्ट कर देती है ॥ ९ ॥ लवण, क्षार आदि तीक्ष्ण द्रव्यों से तेजाब निकाल लेने पर इनके अवशिष्ट

७—अहरेकम् । ८—चक्राकार कृत्वा शरावसपुटे निरुध्य खडखडशब्देन तदन्त शुष्कमनुमाय पुटेत् ।

१—खर्जूरीफल लोके 'छुहारा' इति ख्यातम् । २—तोलकप्रमाणम् । ३—सयाव उपरिष्टद्भोज्य । ४—गुर्जरदेशप्रचरिता । तत्र चाष्टपलिक प्रस्थ प्रचरति । ५—गजपुटसिद्धः । ६—कलिकाखण्डचूर्णात् । तानि च लोके 'कलीटाटा' इति प्रसिद्धानि । ७—'तेजाप' इति प्रसिद्धे क्षारद्रवे । ८—यन्त्रविधिना । अस्य सेवनात् हृदुद्वेष्टनादौ सति दुग्धसतानिका शर्करा विना देया ।

८ चणकलवणमखणरजो मानदलजलेन गोलकं कृत्वा ।
पटपिहितं पुटदग्धं जग्धमरं श्वासघस्मरं भस्म ॥ ११ ॥
९ पक्वाम्लदाडिमीफलगर्भगतं लवणमर्जुनच्छायम् ।
पुटपाकरीतिपक्वं करालकफमाशु कृन्तति श्वासम् ॥ १२ ॥
१० येन स्वर्णदलानि प्रलिप्य वह्नौ विदिप्य शोध्यन्ते ।
तत्पक्वकल्ककिट्टं संतानिकया सह दयति श्वासम् ॥ १३ ॥
११ मूलकमूलविभूतिर्हेममिता श्वासकासकफरुक्षु ।
शार्करकवोष्णपावकैकवलेन करोति शर्म सह भुक्ता ॥ १४ ॥
१२ धूमयन्त्रच्युतं भस्म धूमवल्लीदलोद्भवम् ।
स्नुक्काण्डजठरे धृत्वा मृदाऽऽलिप्य दहेद्द्विपक्व ॥ १५ ॥
तत्काण्डतः पृथक्कृत्वा भस्म तद्यत् पुरा धृतम् ।
सखण्डं मात्रया दत्तं श्वसनं खण्डयेत् खलु ॥ १६ ॥

किट्ट खंड से एक वालभर गुटिकायें बनाकर पान के साथ लेने से श्वास मिट जाता है । इसके सेवन से कदाचित् हृदय-उद्वेष्टन आदि पीड़ा होने लगे तो शक्कर मिलाये बिना दूध की मलाई खानी चाहिये ॥ १० ॥ शाल्मली पत्तो के स्वरस में चणक लवण को खूब मुलायम पीस कर उसका गोलक बनालें । इसको एक शराव में रख कपड़मिट्टी करके कडो की अग्नि में फूंक दें । इस भस्म के खाने से श्वास का शमन होता है ॥ ११॥ पके हुये किंतु अम्ल दाडिमी-फल के भीतर स्वच्छ-श्वेत-सामुद्र-लवण को भरकर कपड़मिट्टी करके पुट-पाक विधि से स्विन्न करले । स्वांगशीतल होने पर इसे लेकर खरल करके मटर-प्रमाण में गोलियां बनावें । ये उग्र-कफ-युक्त श्वास को काट डालती हैं । ये गोलिया अत्यत रुचिकर भी होती है ॥ १२ ॥

जिस क्षार का लेप करके स्वर्ण-पत्रो का शोधन किया जाता है, उस परिपक्व क्षार के कल्क-किट्ट का, दूध की मलाई के साथ, सेवन करने से श्वास नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ छोटी मूली को छाया शुष्क करके उसकी भस्म बनालें । एक मापाभर इस भस्म के सेवन से श्वास, कास तथा कफजन्य विकार नष्ट होजाते हैं । इस भस्म के साथ शार्कर तथा कवोष्ण सीरे (सयाव) का भोजन करने से विशेष लाभ होता है ॥ १४ ॥ धूम-यंत्र (हुक्का) गत तमाखू अथवा गाजे की जली हुई 'गुल' भस्म को, स्नुही-कांड में भरकर कपड़मिट्टी करके अर्ध गजपुट की आंच में फूक दे । स्वागशीतल होने पर, स्नुही काड में से उपरोक्त भस्म अलग निकाल लेवें । रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा में, इस भस्म को खांड के साथ लेने से, श्वास खडित हो

१—शरावस्थं कृत्वा पटपिहितं कार्यम् । २—अनेन रक्तलवणव्युदास । ३—रुचिकारकमप्येतद्भवति । ४—क्षारविशेषेण । ५—मापमितेति यावत् । ६—पावकः सयाव । स च लोके 'सीरा, मोहनभोग' इति च प्रसिद्धो भक्ष्यविशेष । ७—'गुल' इति प्रसिद्धम् । ८—'तमाखू' इति प्रसिद्धा 'गांजा' इति वा ।

१३ अर्धदग्धां हरिद्रां द्राक् पिदधीत शरावतः ।
तत्कोकिलरजः क्षौद्रैर्द्विमाषं श्वासकासजित् ॥ १७ ॥
१४ व्युषिता पटुपयसि निशा भ्राष्ट्रभ्रष्टा मुखाम्बुजे धार्या ।
हिक्काकासश्वासश्लेष्मविकारापहाराय ॥ १८ ॥
१५ पिप्पल्येका त्रुटियुगलकं क्लीतकं द्वित्रिमाषं
द्वे गोस्तन्यौ दृषदि सकलं कल्कयेदार्द्रकाद्भिः ।
वह्नेर्योगान्मधुनि विकसद्बुद्बुदे शाणमात्रे
कल्कं क्षिप्त्वा मथितमसृणं श्वासनाशाय लिह्यात् ॥ १९ ॥
१६ स्वर्जिकाक्षारशकलं तप्तं निर्वापयेज्जले ।
तज्जलं पिबतां पुंसां श्वासः सद्यः प्रशाम्यति ॥ २० ॥
१७ परिणतदलं तमाल्याः प्राचीनगुडेन किंचिदधिकेन ।
विहितं विकुट्य भसितं श्वसितानाहौ निहन्ति तप्ताद्भिः ॥ २१ ॥

जाता है ॥ १५–१६ ॥ अर्धदग्ध हरिद्रा को एक शराव से शीघ्र ढक दें। इस हरिद्रा के कोयले की भस्म को दो माषा (अथवा एक माषा) प्रमाण में मधु के साथ लेने से श्वास और कास पराजित होजाते हैं ॥ १७ ॥ भट्टी मे हरिद्रा को भून कर उसे लवण-जलसे पूर्ण एक पत्तर-पात्र में डुबोकर एकवीस दिवस पर्यंत रहने दें। तदनन्तर, इसके सेवन करने से हिक्का, कास, श्वास तथा कफ-जन्य विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

पिप्पली नग एक, छोटी और बडी इलायची प्रत्येक एक एक माषा, मुलेठी तीन माषा, तथा गोस्तनी द्राक्षा नग दो, इन सबको एकत्र, शिलापर, आर्द्रक-रस से घोटकर, कल्क बनालें। अब, एक पात्र मे तीन माषा भर मधु को अग्नि पर रख गरम करें। जब बुद्बुदे उठने लगे, तब उपरोक्त कल्क इस में डालकर कडछी से हिलाकर अच्छी तरह मिला अवलेह जैसा बनालें। श्वास को मिटाने के लिये इस अवलेह का सेवन करें ॥ १९ ॥

स्वर्जिका क्षार के टुकडे को अग्नि से तपाकर पानी मे बुझावें। इस बुझावे के जल का पान करनेवाले मनुष्य का श्वास रोग शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ २० ॥ तमाखू के परिपक्व पत्तों मे, इनसे वजन मे कुछ अधिक पुराणे गुड को मिला दोनो को कूटकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को गरम जल के साथ लेने से श्वास एव आनाह शात होजाते है। यहा छह वर्ष पुराणा गुड लेवें। एक प्रस्थ भर तमाखू के पत्तो में डेढ प्रस्थ गुड मिलावे। इस योग मे पिप्पली, नागरबेल का पान, मरिच, चित्रक, गुड और

१–एकमाषमपि दीयते। २–एकविंशतिदिवसान् प्रस्तरपात्रे लवणजलेन भावितेत्यर्थ । ३–हरिद्रा। ४–'जरदा' इति प्रसिद्धि । ५–प्रायोऽतिक्रान्तवर्षषट्केन। ६–तमाल. प्रस्थश्चेद् गुडस्य सार्ध सपादो वा। "पिप्पल्या नागवल्ल्याश्च वेल्लजाग्निगुडत्वचाम्। महाप्रभावे योगेऽस्मिन् प्रक्षेपः केन वार्यते"।

१८ तमालपत्रस्वरसे समं गुडं विनीय संसाधय साधुतन्तुलीम्[1]।
तामेकतोलोत्तुलितां यथावलं प्रातः प्रयच्छ श्वसने महत्यपि ॥ २२ ॥
१९ मधुनैलेयं[2] लिहितां[3] तदनु मुहूर्त पयांसि नो पिवताम्।
श्वसनश्वयथुविवन्धा न भवन्ति भवन्ति शर्माणि ॥ २३ ॥
२० रसं[4] पिवेन्नागफणीफलोद्भवं समाक्षिकं श्वासगदे सटङ्कणम्।
तोलौ रसाद् द्वौ मधुनः स एकस्तैलाभिधं[5] टङ्कणमत्र वल्लम् ॥ २४ ॥
२१ गुञ्जाभां रचय गुटीं मरिचसिपीकास्नुहीदलं पिष्ट्वा।
निःशङ्कं वितर पुनः श्वसनेषु तथैव कसनेषु ॥ २५ ॥
२२ संशोधितानां[6] विषमुष्टिकानां कृत्वा शृतान्यष्टगुणैर्जलैस्त्रिः।
पुनः पचेत्तानि घनानि यावत्तत्किट्टचण्ट्याः[7] श्वसनं क्षिपन्ति ॥ २६ ॥
२३ साङ्गोपाङ्गं मृगपरिवृढं[8] क्षुण्णमुत्क्वाथ्य पाकात्
सान्द्रेऽमुष्मिंस्त्रुटिकणविषावंशजाताः कलांशाः[9]।
प्रत्तं फेनं शुचि फणिपतेस्तुर्यभागं विनीय
वद्धा वल्यश्चणकतुलिताः श्वासमुन्मूलयन्ति ॥ २७ ॥

दालचीनी इनके चूर्ण को मिलाने से अधिक लाभ होता है ॥ २१ ॥ तमाल पत्र के स्वरस मे समान भाग गुड मिलाकर उत्तम चासनी सिद्ध करलें। रोग और रोगी के बलानुसार इसको एक तोलाभर मात्रा मे प्रात. सेवन करायें। यह उग्र-श्वास को भी शमित कर देती है ॥ २२ ॥ एलिया में द्विगुणित मधु मिलाकर चाट जायें। फिर कुछ ठहर कर ऊपर से दूध पीयें। इस तरह करने से मनुष्य को श्वास, शोथ तथा विबन्ध नहीं होते। तथा इन विकारों से मुक्त होकर वह स्वास्थ्यलाभ करता है ॥ २३ ॥

थूहर-फल के दो तोले रस मे, दो तोलाभर मधु तथा तेलिया-टंकण के एक वालभर चूर्ण को मिलाकर चाटने से श्वास रोग नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥ मरिच और तुलिया थोर के पत्ते को पीसकर गुंजा-प्रमाण गुटिका बनालें। श्वास तथा कास मे इसका निर्भय उपयोग करें ॥ २५ ॥ पूर्व कही गयी विधि के अनुसार कुचलों को शुद्ध करके फिर घी में भूनकर उनके चार चार टुकडे करलें। अब इनको आठगुने पानी में तीन तीन वार खूब उकालें। अन्त मे, उन्हे फिर पानी से उकालने पर वे सीज कर अवलेह जैसे घट्ट हो जायेंगे। इनके इस सान्द्र-किट्ट की अर्ध-गुंजा प्रमाण मे गुटिकाये बनालें। ये श्वास को मिटा देती है ॥ २६ ॥

मूलसहित अरडूसे के क्षुप को उखाड उसे सूक्ष्म पीसकर उकाललेवें। जब उकलकर यह अवलेह जैसा घट्ट बन जाये तब इसमे छोटी इलायची, पिप्पली,

---

१—लोके यस्या 'चासणी' इति प्रसिद्धि। २—द्वैगुण्य स्यादौषधान्माक्षिकस्य। ३—लोके सज्ञा 'एलिया' चास्य, मात्रा ग्राह्या यावत्यङ्गुलीपर्वयुग्मात्। ४—तिरोहितं नात्र किंचित्। ५—प्रसिद्ध 'तेलिया' इति। ६—पूर्वोक्तविधिशुद्धानामन्तरा घृतभर्जन, चतु खडीकृताना च। ७—गुट्यो गुञ्जार्धमानिका। ८—आटरूष तदप्यार्द्रं ग्राह्यम्। ९—प्रत्येकशस्तथा।

२४ गुडकर्पूरगुटिका श्वासं सद्यो व्यपोहति ।
प्रभा प्रभाकरस्येव संकोचं सरसीरुहाम् ॥ २८ ॥

२५ पक्वं द्विधापाट्य फलं कदल्या निष्कास्य तद्गर्भसिरां समग्राम् ।
तोलांशमावाप्य मरीचचूर्णं श्वासेषु तस्य प्रथितं भटित्रम्[1] ॥ २९ ॥

२६ सेहुण्डपयोभ्यक्तं भ्रष्टं पर्पटकं[2]मेकमुपभुक्तम् ।
श्वसनं प्रसह्य शमयति भिनत्ति बन्धं वमिं प्रवर्तयति ॥ ३० ॥

२७ प्रातः पीत्वा तिक्ततुम्बी[3]रसं यः कुर्याद्वान्ति रज्जुनद्धप्रगण्डः ।
तस्य श्वासः शाम्यति श्लेष्मभङ्गाद्दध्ना भक्तं साज्यमत्रास्ति पथ्यम् ॥३१॥

२८ समिता[4]तस्योर्वसुगुणपयोभिरुत्कारिकां विपाच्य घनाम् ।
उरसि न्यसेत् सतैलां स्त्यान[5]बलासप्रवृत्तिफलसिद्ध्यै ॥ ३२ ॥

२९ पं[6]क्तीकृत्य पटुं तैले पटुस्तत्पुष्टपोट्टलैः ।
सुखोष्णैः स्वेदयेच्छ्वासक्लिष्टं जठरवक्षसोः ॥ ३३ ॥

अतीस तथा वंशलोचन इनके चूर्ण का प्रक्षेप करें। प्रत्येक द्रव्य अरडूसे के अवलेह से पोडशांश मात्रा में लेवें। फिर, चतुर्थांश मात्रा में शुद्ध की हुई पुराणी अफीम भी इसमे अच्छी तरह मिलादें। इसकी चने-प्रमाण वटियां बाधले। यह श्वास का उन्मूलन कर देती है ॥ २७ ॥

गुड-मिश्रित कर्पूरवटिका श्वास को उसी तरह हर लेती है, जिस तरह सूर्यकी प्रभा कमलो के सकोच को ॥ २८ ॥ एक पके हुये केले को दो भागों में सीधा काटकर तदन्तर्गत सिरा को अलग निकाल उसमें एक तोलाभर मरिच चूर्ण का प्रक्षेप करके फिर अङ्गारो मे ढक कर भडीता बनालें। श्वासरोग मे इस भडीते का उपयोग प्रशस्त माना गया है ॥ २९ ॥ मूंग के एक पापड को स्नुही क्षीर से चुपड अङ्गारोंपर सेककर खाजावें। इससे श्वास हठात् नष्ट हो जाता है। मलावरोध दूर होता है तथा वमन की प्रवृत्ति होती है ॥ ३० ॥ कटुतुंबी के रस को प्रात पीकर यदि कोई वमन करे तो उसका, कफ के छूटकर निकल जानेसे, श्वास रोग शमित हो जाता है। वमन करते समय प्रगड-प्रदेश को (केहुनी से स्कंध-प्रदेश पर्यंत भाग को) रज्जु से मजबूत बाध देना चाहिये। वमनोपरात, दही के साथ घृतयुक्त भात का भोजन पथ्य है ॥ ३१ ॥ मैदा और अतसी को आठ गुणे दूध मे खूब बारीक पीसकर अंगीठी पर पका गाढी लपरी बनालें। इस लपरी में किंचित् तैल मिलाकर छातीपर लेप करदे। इसके स्वेदन से घनीभूत कफ पिघलकर बाहर निकल आता है ॥ ३२ ॥ नमक को तैल से लथपथ करके एक पोटली मे बाधले। श्वास रोग से पीडित व्यक्ति के उदर तथा

१–अङ्गारेष्ववकूलनाद्भवति, यत् ख्यात 'भडीता' इति। २–लोके 'पापड' नामत प्रचलितम्। तच्चात्र मौद्ग वरम्। ३–तिक्तालावुरस पलं हि। ४–समिता 'मैदा' इति ख्यापिता। ५–तत्स्वेदेन विलीयते घनकफ। ६–स्पष्ट समस्तं पुर।

३० दीपोपरि चालनिका तदुपरि वसनं वितत्य तनुतन्तु ।
स्विन्नानि नागवल्लीदलानि बध्नीत वक्षसि श्वासी ॥ ३४ ॥

इति श्वासचिकित्सा ।

स्वरभेदचिकित्सितम् ।

१ तीक्ष्णानि सप्त पञ्चैलाः सार्धमापं कुलिञ्जनम् ।
यष्टी मापत्रयोन्माना समिता तुपातिन्दुकम् ॥ १ ॥
द्व्यक्षा सितोपला चेति क्वाथः कोष्णो निषेवितः ।
स्वरभेदं कण्ठरोगं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥ २ ॥
२ कृष्णायाः सुरभेर्मूत्रं पिबेत्तां मण्डलावधि ।
कोष्ठशुद्धिं पुरस्कृत्य स्वरभेदं नियच्छति ॥ ३ ॥

इति स्वरभेदचिकित्सा ।

वक्ष को इस सुखोष्ण पुष्टपोटली से स्वेदित करें ॥ ३३ ॥ प्रज्वलित-दीप के ऊपर एक चालनी रखदें । चालनी में सूक्ष्म वस्त्र का टुकडा बिछादें । इस वस्त्रखंडपर नागरवेल के पान रखकर उन्हे गरम करके श्वास रोग से पीडित व्यक्ति की छाती पर बाध दे । इस प्रक्रिया से श्वासी को आराम मिलता है ॥ ३४ ॥

– श्वासचिकित्सा समाप्त –

– स्वरभेद चिकित्सा (कुलप्रयोग २) –

१ सात मरिच, पाच इलायची, डेढ मापा कुलिजन, तीन मापा मुलेठी, एक तोला चापड तथा दो तोला मिश्री इनके कवोष्ण क्वाथ का सेवन स्वरभेद, कंठरोग और जुकाम को मिटाता है ॥ १–२ ॥ कृष्ण गाय के मूत्र को, दोष बल तथा प्रकृति के अनुसार यथामात्रा मे चालीस दिन तक पीते रहने से कोष्ठशुद्धि पूर्वक स्वरभेद रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

– स्वरभेदचिकित्सा समाप्त –

१–उदानदुष्टिसाधर्म्यान्निदानक्रमतस्तथा । कासाद्यनन्तरं युक्तं स्वरभेदचिकित्सितम् ॥ तत्र च स्वानुभूतत्वाद्योगयुग्ममेवोपदिशन्ति-तीक्ष्णानीत्यादि । २–मरिचानि । ३–समितातुषाणा 'चापड' इति प्रसिद्धाना कर्ष इत्यर्थ । ४–नासारोगविशेष लोके 'जुकाम' इति प्रसिद्धिं गतम् । ५–मात्राऽस्य दोषबलप्रकृत्याद्यनुसारत कल्पनीया । ६–चत्वारिंशद्दिनावधि ।

अथारोचकचिकित्सितम्[1] ।

१ गद्याणमारीचरजो द्विवल्लं सौवर्चलं मुष्टिमितेन[2] वारा ।
शनैः शनैः साक्षहविर्विपाच्य पिबेद्बलासारुचिमान्द्यमुग्धः ॥ १ ॥
२ अम्लदाडिमबीजानामञ्जलिर्हिङ्गुवल्लकम्[4] ।
लवणोषणजीराणि प्रत्येकं पलमात्रया ॥ २ ॥
पृथ्वीका[5] कर्षकलिता सर्वं स्थूलं विचूर्णयेत् ।
चूर्णं दाडिमषट्काख्यं रोचनं पाचनं परम् ॥ ३ ॥
अनुक्ताऽपि सिता देया चूर्णेऽस्मिन् पलमात्रया ।
वर्षाकालं विना देय एकनिम्बूकजो रसः ॥ ४ ॥
३ द्वीपान्तरीयवृक्षाम्ल[6]पोदीनानागरोषणम् ।
प्रत्येकमेकगद्याणं[7] पलं दाडिमसारतः ॥ ५ ॥
कणाशाणः सुमान्माषो[8] भद्रैला तु त्रिमाषिका ।
लवणात्तोलकं सार्धमजाजी तोलकैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥
सितोपला सर्वसमा चूर्णं कुर्याद्यथाविधि ।
तच्चूर्णमचिरादेव चूर्णयेदरुचिं पराम् ॥ ७ ॥

– अरोचकचिकित्सा (कुल प्रयोग १८) –

मरिचचूर्ण छह माशा तथा सौवर्चल एक माशा इन दोनों को चार तोला भर पानी में पकावें। पानी के निःशेष होने पर इन में एक तोला घी मिलाकर कवोष्ण ही पी जाये। इससे कफ, अरुचि तथा अग्निमांद्य दूर होता है ॥ १ ॥ खट्टी दाडिम के दाने सोलह तोला, हींग तीन गुंजा, लवण, सूंठ और जीरा प्रत्येक चार तोला तथा बडी इलायची के दाने एक तोला इन सब का स्थूल चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को 'दाडिम षट्क' कहते है। यह उत्तम रोचक तथा पाचक है ॥ २-३ ॥ इस चूर्ण में चार तोलाभर मिश्री भी मिलादे। तथा वर्षाऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं मे इस चूर्ण में एक निंबू का रस मिला कर सेवन करे ॥ ४ ॥

गोवा की कोकम, पोदीना, सूंठ और मरिच प्रत्येक छह माषा, दाडिम का स्वरस चार तोला, पिप्पली तीन माषा, लविंग एक माषा, बडी इलायची तीन माषा, नमक डेढ तोला, जीरा तीन तोला, तथा इन सभी द्रव्यों से समान वजन जितनी मिश्री इनको एकत्र मिला यथाविधि चूर्ण बनाले। यह चूर्ण शीघ्र ही परम अरुचिका चूरा

१–रुग्विनिश्चयक्रमादेवानन्तरमरोचकचिकित्सितमुच्यते। २–पलप्रमाणेन। ३–कुडव। ४–चतुर्गुञ्जाप्रमाण विवक्षितम्। ५–स्थूलैला, तस्या बीजानि। ६–द्वीपान्तरीयवृक्षाम्लं 'सीमाक' इति ख्यातम्। ७–"गद्याणो माषकैः षड्भिः" इति। ८–लवङ्गात्।

४ सेवा द्विसन्ध्यं मसृणीकृतस्य[1] कपित्थगर्भस्य[2] सितासखस्य ।
दुर्धर्षतर्षारुचिशोषचोषवैरस्यविट्सारविरोधिनी स्यात् ॥ ८ ॥
५ वितुषं[3] धनिकाविदलं किमपि भ्रष्टं शरावके युक्त्या ।
मरिचनिशापटुसरसैरम्लरसैः[4] प्रोक्ष्य चर्वयेदरुचौ ॥ ९ ॥
६ कुडवे कृष्णजरणे[5] सूर्पास्फालननिस्तुषे[6] ।
भ्राष्ट्रभ्रष्टे समाचान्तरुचिराङ्कूरचुक्रके[7] ॥ १० ॥
पृथग्गद्याणतुलितौ भद्रैलातीक्ष्णतलजौ[8] ।
गुञ्जैकं हिङ्गु लवणं तोलकैस्त्रिभिरावपेत् ॥ ११ ॥
ततस्तज्जरणं नीरैर्नभःपाण्डवनिम्बुजैः[9] ।
भावितं घर्मसंशुष्कं रोचिष्णु परमं स्मृतम् ॥ १२ ॥
७ शरावलवणक्षोदे द्विप्रस्थे निम्बुकाम्बुनि ।
स्वाद्वीफलानि[10] पुष्टानि प्रस्थमानानि मज्जयेत् ॥ १३ ॥

कर देता है ॥ ५–७ ॥ कपित्थ की मज्जा को छाया शुष्क करके बारीक पीस वस्त्रपूत कर मुलायम चूर्ण निर्माण करलें । इसमें मिश्री मिलाकर सुबह सांझ दो बार फांकी लेनेसे तीव्र प्यास, अरुचि, शोष, दाह, मुख की विरसता तथा अतिसार दूर होता है ॥ ८ ॥ धने की दाल को पानी में रातभर भिगोकर रखदें । प्रात इसे शतबार पानी से तब तक धोयें जब तक वह निस्तुष न हो जाये । तदनन्तर, इसको एक शराव मे रख धीरे धीरे भूनलें । फिर, इसमें मरिच, हरिद्रा तथा लवण आदि मिलाकर निंबू आदि के रस का प्रोक्षण कर मसल लेवें । इसको चवाने से अरुचि दूर होती है ॥ ९ ॥

सोलह तोलेभर काले जीरे को कूट फटक कर निस्तुष बनाले । फिर, चूल्हे पर भून इनको उत्तम अगूरों (द्राक्षा) का सिरका पिलादे । यहां, जीरे के समानभाग जितना सिरका लेना चाहिये । तदनन्तर, इसमे, बडी इलायची तथा अच्छी तरह धोकर साफ की हुई मरिच प्रत्येक छह माषा, हिंगु एक गुजा तथा लवण तीन तोला, इन सबके सूक्ष्म चूर्ण का, प्रक्षेप करें । तत्पश्चात् इस जीरे को पचास निंबुओ के रस की भावना देकर धूप मे सुखाले । इस तरह सिद्ध किया गया यह जीरक परम रुचिकर माना गया है ॥ १०–१२ ॥

बत्तीस तोले भर लवण मे १२८ तोला निंबू रस मिलाकर उसमें चौसठ तोले पुष्ट छुहारे डाल देवें । पिप्पली, मरिच, वडी इलायची तथा अकरकरा प्रत्येक तीन तीन

१–सूक्ष्मचूर्णीकृतस्य पटपूतस्य चेत्यर्थः । २–कपित्थमध्यभागस्य । ३–यवानीप्रक्रियया जलभावनादिकया धान्यकस्यापि निस्तुषताऽऽपादनीया । ४–निम्ब्वादीनां स्वरसैः । ५–'स्याह जीरा' इति ख्याते । ६–सूर्प 'छाज' इति प्रसिद्धो धान्यास्फालनयन्त्रविशेषः । ७–समाचान्ते भावनया पीते रुचिराणामङ्कूराणां द्राक्षाविशेषाणां चुक्रं 'सिरका' इति प्रसिद्धं येन तत्तथाभूते । चुक्रं चात्र जीरकसममेव । ८–प्रशस्तमरिचमतिप्रशस्तत्वं चैषां धौतत्वादिना । ९–पञ्चाशन्निम्बुरसैः । १०–'छुहारा' इति प्रसिद्धानि ।

कृष्णामरिचभद्रैलाकल्कं[1] गद्याणषट्ककम्।
सार्धाम्रे द्वे पृथग्जीरे[2] पत्रं वस्वेकमाषकम्[3] ॥ १४ ॥
कर्षं जातीफलं जातिपत्री जातीफलोन्मिता।
विश्वौषधं द्विपलिकं पटुस्त्रिपलिकस्तथा ॥ १५ ॥
स्वाद्वीफलान्यनस्थीनि पलान्यत्र षडेव हि।
स्थूलं संक्षोद्य निम्बूकनीरप्रस्थेन भावयेत् ॥ १६ ॥
प्रावृत्यं[4] समुपेक्षेत त्रिदिनं वा चतुर्दिनम्।
सर्वमेकत्र संपिष्ट पूरणं तेन पूरयेत् ॥ १७ ॥
निम्बूकनीरमग्नानि तानि स्वाद्वीफलान्यलम्।
उपर्युपरि संचिन्त्य पात्रे शेषं रसं क्षिपेत् ॥ १८ ॥
पक्षं प्रतीक्ष्य मतिमानेकैकं रसयेच्छनैः।
अरुचिग्रहणीच्छर्दिहृल्लासाध्मानवेदनाः ॥ १९ ॥
नश्यन्त्यास्वादमात्रेण नात्रेपदपि विस्मयः।
उदञ्चति चमत्कारो महानुद्गारशुद्धिजः ॥ २० ॥
८ निम्बूरसे पटुं साष्ट्रिप्रस्थे न्यस्य चतुःपलम्।
पचेत् स्तोकघृतक्षेपं[5] द्विपलं शेषयेद्रसम् ॥ २१ ॥

तोला, श्वेत और कृष्ण जीरक प्रत्येक साढे चार तोले, तेजपात डेढ तोला, जायफल तथा जावित्री प्रत्येक एक एक तोला, सूठ आठ तोला तथा सैंधव बारह तोला, इनको एकत्र लेकर सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनाले। अब, अंदर की गुठली रहित करीब चौवीस तोले छुहारो को स्थूल कूट कर निंवू के चौसठ तोला रस मे निमग्न कर पात्रमुख को वस्त्र से ढक तीन चार दिवस पर्यंत अलग रखदे। तरपश्चात्, इन कूटे हुये छुहारों को निवू रस मे से निकाले। निबू रस को अलग रखकर, इन छुहारो मे उपरोक्त औषधीय द्रव्यों के चूर्ण को मिला बारीक पीस, पूरण बनालें। इस पूरण को, निवू रस में मग्न उपरोक्त चौसठ तोला छुहारो को निकाल उनमें एक एक मे थोडा थोडा उपरोक्त पूरण भरकर पुन पात्र मे यथाक्रम चुन कर स्थापित करदे, तथा ऊपर से, अलग रखे हुये उपरोक्त निवू रस को, भर देवें। पदरह दिवस पश्चात् पात्र मे से एक एक छुहारे को लेकर धीरे धीरे चूसकर खावें। अरुचि, ग्रहणी, वमन, हृल्लास तथा आध्मानजन्य वेदनाये इसके आस्वादमात्र से नष्ट हो जाती है इसमे जरा भी सदेह नहीं, उद्गार शुद्धि मे यह महान् चमत्कार दर्शाता है ॥ १३–२० ॥

निंवू के अस्सी तोला रस मे, सोलह तोलाभर नमक मिला, तथा इसमें दो

१–'अक्करका' इति लोके ख्यातम्। २–द्वे जीरे पृथक् सार्धाम्रे इति सवन्य। जीरे च भ्रष्टे। ३–अष्टादशमाषकम्। ४–पटादिनेति शेष। ५–चतु पलावशिष्टे सिता तोलकद्वयमिता केचित् प्रक्षिपन्ति।

व्योषद्विजीरसौभाग्यं चतुर्विंशतिमापकम् ।
षट्त्रिंशन्मापमाकल्लं क्षिप्त्वा तत्र विमर्दयेत् ॥ २२ ॥
तत्किट्टवद्धवटका हरिमन्थविडम्बिनः ।
रोचन्ते पाचयन्त्याशु दीपयन्त्याशु शुक्षणिम् ॥ २३ ॥
९ चरणांशमरिचलवणां वरवी(डी) कामालिकां शरावतले ।
उत्क्वाथ्य निम्बुनीरैर्वद्धा वटका रुचेर्घटकाः ॥ २४ ॥
१० अत्यल्पपटुभिर्निम्बुनीरैर्निर्याससपिच्छिलैः ।
सितां संनीय घटिता वटिका रुचिवोधिनी ॥ २५ ॥
११ घृततलिता व्योषलवणधान्यैलाहिङ्गुजीररचितार्चाः ।
रुचिवीतिहोत्रघटका वत वटका ब्रह्मदर्भायाः ॥ २६ ॥

चार बूद घी डालकर अग्नि से पकावे । जब आठ तोला रस शेष रह जाये तब उसमे सूंठ, मरिच, पीपल, दोनों जीरा तथा फुलाया हुआ टकण प्रत्येक दो तोला एव तीन तोला अकरकरा, इन सभी द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को डालकर अच्छी तरह मिला देवें। तत्पश्चात्, इसकी चने-प्रमाण गोलिया बनाकर लेने से रुचि बढती है, अन्न पचता है, तथा अग्नि शीघ्र प्रदीप्त होती हे ॥ २१–२३ ॥

मरिच, लवण तथा डीकामाली प्रत्येक तीन माशा—इनके सूक्ष्मचूर्ण को, इनसे द्विगुणित निबू-रस मे मिला एक सकोरे मे भरकर उकाल लेवें। इनसे निर्मित वटिकाये रुचिवर्धक होतीं है ॥ २४ ॥ अत्यल्प-लवणयुक्त तथा गुन्द्र-मिश्रित अतएव पिच्छिल निबू-रस मे शर्करा मिलाकर वटिकाये बनाले । यह वटिकाये रुचिवर्धक तथा वमन, मुखशोष, तृषा आदि की प्रशमक कही जाती है। इसमे थोडा कपूर तथा इलायची चूर्ण भी मिलादेना चाहिये ॥ २५ ॥ अजवायन को पूर्वोक्त-प्रकार से निस्तुष करके उसकी पिट्ठी बना उसमे, त्रिकटु, लवण, धनिया, इलायची, हींग और जीरे का सूक्ष्म चूर्ण मिला देवे। अब, इनके वटक बनाकर घी मे तल लेवें। ये रुचिकर तथा अग्निवर्धक होते हे ॥ २६ ॥

१–व्योषस्यापि प्रत्येक चतुर्विंशतिमाषकत्व द्रव्यप्रधानत्वान्निर्देशस्य । २–टङ्कणं, तच्च भ्रष्टं ग्राह्यम् । ३–जठराग्निम् । ४–'वी(डी)कामालिका' अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धा । ५–तलशब्द उपरिवचनो भूतलवत् । ६–सर्वसभारतो द्विगुणै । ७–चन्द्रैले अप्यनुरूपे क्षेप्ये । अत्र लवण न क्षिपन्ति केचिद्, इतीच्छैव नियामिका । ८–निर्यास श्वेतगुन्द्र, स च पैच्छिल्यापादकमात्र । ९–रुचिवोधिनीत्युपलक्षण, तेन वमिजिह्वाजाड्यमुखशोषपिपासादीनां हारिणीत्यपि वोध्यम् । १०–वटका इत्युपलक्षण, तेन मोदकधानावर्तिकाकचवल्यादयो भक्ष्यविशेषा यथारुचि सपादनीया, किंतु तत्र व्योषादिकस्य नावश्यकत्वम् । ११–यवान्या पूर्वोक्तप्रकारेण निस्तुषीकृताया पुनश्च पिष्टीकृताया ।

१२ पयःसेकात् सद्यो विकसितसुधाखण्डजनुषि
द्रवे स्वर्जिक्षारोद्युजि विमलवादामगुलिकाः ।
चतुर्यामं धृत्वा पयसि पुनरुत्काल्य वितुषी-
कृताः कुर्युः केषां न रुचिमुपिताः शार्करसे[2] ॥ २७ ॥

१३ वांशीमरिचतो[3] द्वौ द्वौ तोलौ ते च त्रयस्त्रयः ।
धान्यप्रदीर्नजरणत्रुटिदाडिमसारतः ॥ २८ ॥
द्वीपान्तरीयवृक्षाम्लजरीष्कात्[5] पट्ट षडेव ते ।
शर्करातस्त्रिपष्टिः स्युर्लेहो[6] रोचनपाचनः ॥ २९ ॥

१४ निम्बूकमातुलुङ्गार्द्रकपोदीदाडिमीरसैः ससितैः[7] ।
जीरत्रुटिमरिचसखो वमिमरुचिं हन्ति शार्करो विहितः ॥ ३० ॥

१५ पोदीनागुरुकृष्णजीरलवणद्राक्षेभपुष्पोपणै-[8]
रेलादाडिमशृङ्गवेरकलितैः पाणमाषिकैः कल्पितम् ।
कल्कं जीरवितुन्नरामठयुतं निम्बूकनीरप्लुतं
स्वादिष्टं रुचिवह्निकारि वमिरुक्संहारि लोके श्रुतम् ॥ ३१ ॥

स्वच्छ चूर्णोदक मे स्वर्जिकाक्षार मिलाकर उसमे बादाम की गुलिकाये डाल देवें । चार प्रहर तक उनको उसी मे सिक्त होने दे । तत्पश्चात्, उनको निकाल कर पुन. पानी में उकाल, छिलके उतार, शक्कर की चासनी मे डाल देवें । इस तरह बादाम का मुरब्बा सिद्ध होता है । यह किस को रुचिकर नहीं है ? इसी विधि से चंदन, आर्द्रक, ईख, सालम-कद आदि के मुरब्बे भी निर्माण किये जा सकते है ॥ २७ ॥

वंशलोचन और मरिच प्रत्येक दो दो तोला, धनिया, पोदीना, जीरा, छोटी इलायची तथा दाडिमसत्व प्रत्येक तीन तीन तोला, वृक्षाम्ल और जरिष्क प्रत्येक छह छह तोला इनके सूक्ष्म चूर्ण को, छत्तीस तोला शक्कर की चासनी मे डालकर अवलेह निर्माण करें । यह अवलेह उत्तम रोचक और पाचक होता है । उपरोक्त चासनी को गुलाब अथवा केवडे के अर्क से सिद्ध करे । (दारुहरिद्रा के फल को 'जरिश्क' कहते है) ॥ २८–२९ ॥ निंबू, मातुलुंग, आर्द्रक, पोदीना और दाडिम इनके रस मे, रस से चतुर्गुण मिश्री-चूर्ण मिलाकर 'शार्कर' निर्माण करलें । इस शार्कर को, जीरा, इलायची तथा मरिच के सूक्ष्म-चूर्ण सह लेने से वमन तथा अरुचि दूर हो जाते हैं ॥ ३० ॥

पोदीना, अगरु, कालाजीरा, लवण, द्राक्षा, नागकेसर, मरिच, इलायची, दाडिम

१–वातादगुलिकालेहस्य 'बादामका मुरब्बा' इति ख्यातस्य प्रकारोऽयम्, अनया दिशा अन्येषामपि चन्दनार्द्रकेक्षुसालमकन्दप्रभृतीना कार्यम् । २–तन्तुल्यामिति । अयं योगश्चारोचकपठितोऽपि बल्यमेध्यबृंहणवृष्यक्षयहितत्वादिगुणयुक्तो बोध्य । ३–प्रत्येक तोलकद्वयम् । एवमग्रेऽपि धान्यादितस्तोलकत्रयादिकं बोध्यम् । ४–प्रदीनस्तीक्ष्णपत्र । ५–'जरिष्क' एतेनैव नाम्ना लोकप्रसिद्धम् (दारुहरिद्राफलम्) । ६–गुलाबकेतकजले साध्य । सुवर्णरजतदलान्यप्यत्र प्रक्षिपेत् । ७–सिद्धरसापेक्षया चतुर्गुणसितै· । ८–इभपुष्प नागकेसरम् ।

१६ मेथीलवणनिशाभिः संभृतगर्भेऽधितैलमामुक्के ।
ज्वालामरिच[1]शलाटुनि सिलति निमीलति पराऽप्यरुचिः ॥ ३२ ॥
१७ खर्वद्राक्षा[2]कल्कं पटुजीरनिशार्द्र[3]पुष्प[4]हिङ्गुरुचा ।
दध्ना संक्वाथ्य कृता कथिता[5] रुचिकारिणी कथिता ॥ ३३ ॥
१८ नारङ्गवल्क[6]त्रुटिजीरशुण्ठीमरीचसिन्धूत्थरजोवचारम् ।
वितीर्णधूपं घृतरामठेन स्यादीश्वरीतक्रमतीव रुच्यम् ॥ ३४ ॥

— इत्यरोचकचिकित्सा —

अथ छर्दिचिकित्सितम्[7] ।

१ श्वेतायाः[8] पलमेकमार्द्रकपलं त्रुट्यो दश द्वादश
द्राक्षा विंशति वेल्लजानि लवणं शाणप्रमाणोन्मितम् ।
पिष्ट्वा सर्वमिदं विलोड्य मिपिञ्जरकैः[9] पटे पावयेत्
कोष्णं जीरकवासितं[10] वमितृषारोचक्षयार्थं पिबेत् ॥ १ ॥

तथा आर्द्रक इनके एकत्र कल्क मे जीरा, धनियां और हींग मिलाकर तथा निंबू रस में सिक्त करके सेवन करें। यह अवलेह परम स्वादिष्ट, रुचि एव जठरानल वर्धक तथा वमन रोग का सहारक कहा गया है ॥ ३१ ॥ हरी मिर्चे (लाल मिरच के कच्चे फल) में मेथी, लवण तथा हरिद्रा चूर्ण को भरकर तैल मे डुबो देवें। एक सप्ताह उपरांत इसे निकाल कर सेवन करें। इससे परम अरुचि भी दूर हो जाती है (यह श्लोक पूर्व आ चुका है, किंतु यहा अरोचक चिकित्सा मे इसका आलेखन युक्तियुक्त होने के कारण यह पुनरुक्ति मे परिगणित नही किया जाना चाहिये) ॥ ३२ ॥ नमक, जीरा, हल्दी, आदू, लौंग और हींग इनके चूर्ण से युक्त दही के साथ किसमिस द्राक्षा के कल्क को उकालकर 'कढी' वनालें। यह कढी रुचिकर कही गयी है ॥३३॥ नारगी का शुष्क छिलका, इलायची, जीरा, सूंठ, मरिच तथा सैंधव इनके चूर्ण से अवचारित तथा घृत एव हींग की धूप से धूपित इस तरह सिद्ध की गयी शक्तिमयी तक्र अत्यत रुचिकर होती हे ॥ ३४ ॥

— अरोचक चिकित्सा समाप्त —

— वमन चिकित्सा (कुलप्रयोग ११) —

मिश्री चार तोला, आर्द्रक चार तोला, इलायची नग दस, दाख नग बारह, मरिच नग वीस, तथा लवण तीन माषा - इन सबको एकत्र पीसकर, सौंफ के अर्क में घोलकर

१–ज्वालामरिच 'लालमरिच' इति प्रसिद्ध तस्य फलमामं, तस्मिन् । अस्य पद्यस्य पूर्वाभिहितस्याप्यत्र लेखनमरुचिप्रकरणप्राप्तत्वादिति न पौनरुक्त्यम् । २–खर्वद्राक्षाया 'किसमिस' इति लोकभाषाप्रसिद्धाया । ३–आर्द्रकम् । ४–लवङ्गम् । ५–'कढी' इति ख्याता । ६–नारङ्गफलवल्कलम् । तच्च शुष्कमादेयम् । ७–प्रायोऽरोचकप्रयोगाणामपि वमिहन्तृत्वात् क्रमप्राप्तत्वाच्च छर्दिचिकित्सिते प्रयोगैकादशकमुच्यते । ८–सितोपलाया । ९–शतपुष्पाभवै, तदभावे तरुणीकेतकजै । १०–जीरक श्वेत भ्रष्ट च ग्राह्यम् ।

२ संसाध्य निम्बुनीरे त्रिगुणे कलसौरसागरक्षोदम् ।
प्रपिवत सिताद्रवैः सह वमनोत्क्लेदारुचिक्षत्यै ॥ २ ॥
३ पक्कं पटान्तर्गलितं पुनः पुनः क्षारं सितैलाजरणोपणोल्बणम् ।
निम्बूकनीरे कुसुमार्कसाक्षिणि प्रक्षिप्य सद्यः पिबतां कुतो वमिः ॥३॥
४ पिष्ट्वा स्रोतोऽञ्जनं जम्भजलैर्यामचतुष्टयम् ।
मरिचाभा वटी कार्या छर्द्यतीसारहारिणी ॥ ४ ॥
५ विधुभित्तसुरभिसंवर्रमम्बरवान्तं वमिं निवारयति ।
६ समलोकंकनकमृत्स्नापिण्डीनिर्वापितमपि तथा ॥ ५ ॥
७ हंहो संभृतमम्भो मृत्कुम्भे लोहवाणधूमवति ।
छर्दिं प्रसह्य शमयति भाषितमादित्यरामेण ॥ ६ ॥

वस्त्रपूत करलें । इस द्रव को, भूने हुये श्वेत जीरे से सुवासित करके कवोष्ण पीने से वमि, तृषा तथा अरुचि का क्षय हो जाता है ॥ १ ॥ कलमीसोरा तथा नवसादर के चूर्ण को, इनसे त्रिगुणित निंबू के, रस मे सिद्ध करके मिश्री के शर्बत सह पीवें इससे वमनजन्य उत्क्लेद तथा अरुचि क्षीण हो जाते है ॥ २ ॥ यवक्षार को भूनकर पुन. पुन· कपडे मे से छान लेवें । मिश्री, इलायची, जीरा तथा मरिच चूर्ण सहित इस क्षारको गुलाव अर्क से युक्त निंबू के रस में मिलाकर शीघ्र पी जानेवालो को वमन कहा ? ॥ ३ ॥ जभीरी निंबू के स्वरस में काले सुरमे को चार प्रहर तक मर्दन करके उसकी मरिचप्रमाण गोलिया बाधलें । ये वमन तथा अतिसार को दूर करती हैं । इस गुटिको, वालको के अतिसार मे काली बकरी के दूध के साथ देनी चाहिये । इसमें दही-भात का भोजन पथ्य है । ज्वर में, दूध के साथ इसी गुटीका प्रयोग प्रशस्त कहा गया है ॥ ४ ॥ कर्पूर से सुरभित जल को वस्त्रपूत करके पीनेसे वमन निवृत्त हो जाता है । इसी तरह, सम भाग सूठ और पीली मिट्टी लेकर उसकी पिण्डी बनाकर अग्नितप्त करके उसका पानी मे बुझावादें । इस बुझावे के जल को पीने से भी वमन में लाभ होता है ॥ ५ ॥ लोहबाण से धूपित मृत्पात्र मे भरे हुये पानी को पीने से वमन बलात् शमित हो जाता है । कितने आश्चर्य की बात है ! यह प्रयोग मुझे श्रीआदित्यरामजी ने बताया है । (श्रीआदित्यरामजी ज्योतिष के उत्तम विद्वान तथा अमदावाद निवासी

१–सागरो नवसादराख्य क्षारविशेष । २–सामान्योक्तत्वाद्यवक्षारम् । ३–तरणी-केतकान्यतरकुसुमार्को ग्राह्य । ४–लोके 'श्याह सुरमा' इति ख्यातम् । ५–जम्बीरस्वरसै । ६–वालातिसृतौ कृष्णच्छागीपयसा देयेति ज्ञेयम् । पथ्यमत्र दधिसहितं भक्तं, ज्वरे च दुग्धेनैव दातव्या, पथ्य त्वत्र मुद्गसूप । अयं योगोऽतिसारे प्राय प्रचलतीति गुरूक्ति । ७–कर्पूरखण्डसुरभि । ८–जलम् । ९–पटपूतमित्यर्थ । १०–शुण्ठी । ११–पीता मृत् । १२–अङ्गारतप्तया पिण्ड्या निर्वापितम्, अन्यथा निर्वापितत्वमेव न सभवति । १३–पूरितम् । १४–गुर्जरदेशवासिना दैवज्ञशिरोमणिना पलाण्डुराजशतककाव्यप्रयोजकेन चेति ।

८-९ घृताक्त[1]लूतास्वरवर्तिधूमप्रपूर्णपात्रे भृतमाम्र[2]मम्भः ।
वमौ यथा साधु तथाऽञ्जनं स्यात्तद्दीपिकाधूमजकज्जलेन ॥ ७ ॥
१० राजिकाद्विजराजा[3]भ्यां लेपः कोष्णो हृदि स्थितः ।
वमनं विनिहन्त्येव म[4]हादेवेन भाषितम् ॥ ८ ॥
११ अजाजीसैन्धवक्षोदैर्द्विसन्ध्यं शोधयेद्रदान् ।
उत्क्लेदभ्रमदौर्गन्ध्यवमनारुचिशान्तये ॥ ९ ॥

– इति छर्दिचिकित्सा –

अथ मू[5]र्च्छादिचिकित्सितम् ।

१ रालमावर्त्य मृत्पात्रे चिरम[6]ङ्गारवह्निना ।
का[7]श्मीरक्षोदमावाप्य ढालयेच्चीनभाजने ॥ १ ॥
सैषा ममायि[8]का नाम घृतदुग्धानुपानतः ।
अभिघातनिपाताभ्यां मूर्च्छितानां प्रबोधिनी ॥ २ ॥

थे । इन्हीं की प्रेरणा से स्व श्रीभट्टजी ने 'पलांडुराज-शतकम्' नामक विचक्षण काव्य की रचना की थी ।) ॥ ६ ॥ मकडी के जाले की घृताक्तवर्ति के धूम से धूपित मृत्पात्र मे दश तोला भर पानी भरदे । इसके पीने से वमन मे लाभ होता है । इसी तरह उपरोक्त घृताक्तवर्ति के धूम से उत्पन्न काजल को आजने से भी पूर्ववत् असर होती है ॥ ७ ॥ राजिका एव कर्पूर का हृदय प्रदेश पर कवोष्ण लेप वमन को मिटाता है । यह प्रयोग मेरे शिष्य महादेव का बताया हुआ है ॥ ८ ॥ उत्क्लेद, भ्रम, मुखगत दौर्गंध्य, वमन तथा अरुचि की शान्ति के लिये, जीरा तथा सैधव के चूर्ण से, दिवस मे दो बार, दांतों को साफ करना चाहिये ॥ ९ ॥

– वमन चिकित्सा समास –

– मूर्च्छादि-चिकित्सा-(कुल प्रयोग ४) –

मृत्पात्र मे चार तोला राल को, प्रज्वलित अंगार-अग्नि से देर तक उकालते रहे । जब उकलकर वह कृष्ण-वर्ण होजाये, तब उसमे दो माषाभर केसर मिला एक चीनी के पात्र में डाल देवें । ममायिका नाम से सुपरिचित इस औषधी को एक रत्ती

१–लूताम्वरस्य द्वयं त्रय वा ग्राह्यम् । २–पलमपि द्रवद्वैगुण्येन दशरूप्यकप्रमाणं ग्राह्यमत्रेति । ३–द्विजराज कर्पूर । ४–जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालातो लब्धभिषगुपाधिना गुरूणामन्तेवासिना महादेवशर्मणा । ५–क्रमप्राप्ततया मूर्च्छादीना केषाञ्चिच्चिकित्सितमुच्यते । ६–कृष्णवर्णत्वं यावता कालेन भवेत्तावदित्यर्थ । ७–रालपले माषकद्वयं कुङ्कुमस्येति । रक्तिप्रमाण मल्लमप्यत्र प्रक्षिप्यते । ८-अनेनैव नाम्ना लोके ख्याता, मात्रा रक्तिमारभ्य वल्लपर्यन्तं यथायथ कल्पनीया ।

२ विपिनोपलजं भस्म तुत्थं नस्यमिति ध्रुवम् ।
मूर्च्छापस्मारवाग्रोधतन्द्रासर्पविषार्तिषु ॥ ३ ॥
३ हरति भ्रमं पटूषणरजोभिरङ्गारवर्तिता द्राक्षा ।
४ उक्तो दुरालभाया घृतसुरभिस्तद्वदेव निर्यूहः ॥ ४ ॥

– इति मूर्च्छादिचिकित्सितम् –

अथ दाहचिकित्सितम् ।

१ इक्षूदकैरामलकीरजांसि त्रिसप्तधा साधु विभावितानि ।
प्रातर्निपीतानि सिता[1]पयोभिर्महान्तमन्तर्दवथुं हरन्ति ॥ १ ॥
२ 'पैसा प्रमान मिश्री धेला[2]भर सौंफ नेक[3] मस्तङ्गी ।
एला छदामभर लै चूरन यह कण्ठदाहपै जङ्गी' ॥ २ ॥

– इति दाहचिकित्सितम् –

अथोन्मादचिकित्सितम् ।

१ उद्दामोन्मादविधुराः पलमर्धपलं तथा ।
पिबन्तु च्छागलं मूत्रं हिङ्गुना प्रतिवासितम् ॥ १ ॥

भर मात्रा में घृत और दूध के अनुपान पूर्वक लेनेसे अभिघात तथा निपातजन्य मूर्छा दूर होती है ॥ १–२ ॥ जगली उपलों की भस्म तथा तुत्थ का नस्य मूर्छा, अपस्मार, वाणी-निरोध, तन्द्रा तथा सर्प-विष के विकारों में निःसंदेह उपकारक है ॥ ३ ॥ अंगारो पर सेकी गयी द्राक्षा को नमक और मरिच के चूर्ण-सह लेनेसे 'भ्रम' दूर हो जाता है। दुरालभा का घृत-सुवासित-कषाय भी यही प्रभाव दर्शाता है ॥ ४ ॥

– मूर्च्छा-चिकित्सा समाप्त –

– दाह-चिकित्सा (कुलयोग २) –

आंवले के चूर्ण को इक्षु-रस की एकवीस भावनायें देवें। प्रात, मिश्रीयुक्त धारोष्ण-दूध के साथ इसे पीने से अन्तर्गत-महान-दाह नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ एक पैसाभर मिश्री-एक धेलाभर (एक तोला) सौंफ, दो तीन माषा रूमीमस्तंगी तथा एक छदामभर (आधा तोला) इलायची इनका चूर्ण कण्ठ-दाह में जंगी (महान) असर दिखाता है ॥ २ ॥

– दाह-चिकित्सा समाप्त –

– उन्माद-चिकित्सा (कुल प्रयोग ५) –

तीव्र उन्माद रोग से पीडित व्यक्ति, अजा के चार या दो तोला भर मूत्र को,

१–सितायुक्तैर्धारोष्णदुग्धै । २–कर्षार्धप्रमाणे 'धेला' इति प्राकृत शब्द, तथा तदर्धे 'छदाम' इति प्रसिद्ध । ३–द्वित्रिमाषेति नेकशब्दार्थ ।

२ कृतंगदभङ्गां भङ्गां गव्यक्षीरेण निर्भरं पिष्ट्वा ।
अधिपतिकरचरणतलं मल मुहुरिह चेष्टसे किमुन्मत्तः ॥ २ ॥
३ कार्पासमज्जकणपुरगन्धकवटिकाभवो धूप ।
४ भूतावेशं शमयति रामठलशुनाञ्जनं यद्वत् ॥ ३ ॥
५ अधिमातुलपुत्राशयमुषणानां पक्षमेकमुषितानाम ।
चर्वणतो मुग्धवधूर्भूताविष्टेव वक्ति चित्राणि ॥ ४ ॥
६ सितावगूढोदकतन्तुवायैपूर्वार्धपश्चार्धसमर्पणेन ।
प्रभूतभूतागमतन्निरासो स्त्रीणां शिशूनां भवतः क्रमेण ॥ ५ ॥

– इत्युन्मादचिकित्सितम् –

हींग से वासित करके, पीये ॥ १ ॥ भांग को शुद्ध करके गायके दूध में खूब बारीक पीसकर शिरोगत अधिपति मर्म पर उसका मर्दन करे, इससे उन्माद रोग में लाभ होता है । इस श्लोक का दूसरा अर्थ यह है –शुद्ध भांग को खूब बारीक पीस उसका गो-दुग्ध के साथ पान करके तू उन्मत्तवत् चेष्टा क्यों करता है ? अपने अधिपति स्वामी के कर-चरण का अच्छी तरह संवाहन कर ॥ २ ॥ कपास-फल की मज्जा, कण-गूगली तथा गन्धक इनकी वटी बनाकर धूप सेवें । इससे भूतावेश शमित हो जाता है ।, हींग और लहसुन को सूक्ष्म पीसकर आंजने से भी यही लाभ होता है ॥ ३ ॥ धत्तूर फल के भीतर मरिच-दाने भरकर एक पक्ष पर्यंत रहने दें । इनको चबाकर खाने से, मुग्ध-वधु (नव-परिणीता) भूताविष्ट की तरह अनाप-शनाप बोलने लगेगी ॥ ४ ॥ मिश्री, कलाकन्द आदि मे ' जलका जुलाहा ' जन्तु-विशेष को अच्छी तरह लपेटकर वटी बनालें । इसमें से अर्ध भाग को पहिले, तत्पश्चात्, अवशिष्ट अर्धभाग को पीछे, खिलाने से स्त्रियो मे प्रचुर-भूतावेश होता है, किंतु, बालकों में से यही भूतावेश निकल जाता है ॥ ५ ॥

– उन्माद-चिकित्सा समाप्त –



१–द्व्यर्थोऽयं श्लोक । २–पेषणेन मधूच्छिष्टवन्मसृणीकृत्येति निर्भरशब्दस्वरस । ३–पक्षे पेषणपूर्वक पान लक्ष्यते । ४–प्रकृते द्वन्द्वसमासोऽधिपतिश्च शिरस्थ मर्म, पक्षे अधिपति स्वामी, तस्य करचरणतलमिति षष्ठीतत्पुरुष । ५–मर्दय । ६–द्वितीयपक्षे भङ्गा पीत्वोन्मत्त सन् किं चेष्टसे स्वामिकरचरणसंवाहन कुर्वित्युपदेश फलति । ७–' कणगूगली ' इति ख्यातम् । ८–धत्तूरफलाभ्यन्तर इत्यर्थ । ९–सितेत्युपलक्षण, तेन कलाकन्दादिष्वपि गूहन कार्यम् । १०–' जलका जुलाहा ' इति प्रसिद्ध क्षुद्रजन्तुविशेष । ११–भक्षणेन । १२–कोमलप्रकृतित्वात् प्रपञ्चशीलत्वाच्च । १३–क्रमेणेति पदं प्रभूतभूतागमतन्निरासाविलनेन संबध्यते ।

अथापस्मृतिचिकित्सितम् ।

१ वहल[1]ग्रन्थिलमूला गम्भीरी[2] नाम काचन व्रततिः ।
सलिलेन मूलमस्या निघृष्य पीतं हरत्यपस्मारम् ॥ १ ॥

२ कुडव[3] दधि राम[4]ाक्षशर्कराचूर्णमुज्ज्वलम् ।
वज्र[5]पोली घृताक्तैका द्वौ च वल्लौ[6] घृताश्मतः ॥ २ ॥
इत्येतत् सर्वमेकत्र कृत्वा खादेदहर्मुखे ।
ब्रूमो मासप्रयोगेण तस्य नश्यत्यपस्मृतिः ॥ ३ ॥

३ मधुकक्वाथसहिते कुमारी[7]स्वरसे शृतम् ।
घृतं स्मृतमपस्मारे हृदुत्फाले[8] सशर्करम् ॥ ४ ॥
पञ्च[9]प्रस्थजले पक्त्वा मधुकं नवतोलकम् ।
द्विप्रस्थो रक्षितः क्वाथोऽर्मणकन्या घृताढकम् ॥ ५ ॥

– अपस्मार - चिकित्सा (कुल प्रयोग ८) –

अनेकों कठिन ग्रथियों से युक्त मूलवाली गभीरी नामकी एक लता होती है । यह लता जयपुर के सुप्रसिद्ध अतिप्राचीन आभानेरी कुंड के आस पास, बहुधा शरद्-ऋतु मे उपलब्ध होती है । इस लता के मूल को जल मे घिसकर पीने से अपस्मार नष्ट होता है ॥ १ ॥ दही सोलह तोला, परिशुद्ध बुरा तीन तोला, बाजरे की घी से चुपडी हुई बासी मोटी रोटी तथा गोदंती दो वाल इन सबको एकत्र करके प्रात काल खाये । इस तरह एक मासपर्यंत प्रयोग से अपस्मार निश्चय दूर हो जाता है । यहां गोदंती को अग्नि पर फुलाकर उपयोग मे लें ॥ २–३ ॥ मधुक के क्वाथसहित ग्वारपाठे के रस मे सिद्ध किया गया घृत अपस्मार मे प्रशस्त माना जाता है । हृदय - स्पंदन यदि अधिक होता हो अर्थात् यदि हृदय की गति शीघ्र चल रही हो तो इस घृत को शक्कर के साथ देना चाहिये । इस प्रयोग मे, नौ तोले मधुक को पांच प्रस्थ जल मे उकाल, दो प्रस्थ जल शेष रखकर क्वाथ सिद्ध करलें । ग्वारपाठे का रस एक द्रोण (एक मण भर) तथा घृत २५६ तोला लेवें । (अर्मण, एक द्रोण १०२४ तोले जितना

१–मनोदुष्टिसाधर्म्यादुन्मादानन्तरमपस्मार । तत्रापि प्रथम दिव्यौषधिप्रयोग । तस्याश्चेदं स्वरूपवर्णनम् । २–एतन्नाम्नैव प्रसिद्धा, सा च आभानेरीकुण्डोपकण्ठभूपरिसरे प्राय शरदि भवति । ३–विंशतितोलकमितम् । ४–शर्कराचूर्णस्याक्षत्रयमित्यर्थ· । ५–वज्रो 'बाजरी' इति प्रसिद्धो धान्यभेद , तस्य स्थूलरोटिका, व्यवहारश्च पर्युषितया । ६–'घापाण' इति गुर्जरदेशे, 'गोदन्ती' इति गौडदेशे प्रसिद्धात् । स चापि पावकफुल्लो ग्राह्य इति रहस्यम् । ७–'गवारपाठा' इति ख्याता कुमारी । ८–अस्योपलक्षणत्वाद्रस-क्षयबद्धकोष्ठश्वासकाससौजाकादिष्वप्यवचार्यम् । ९–पूर्वोक्तयोगस्यैव परिभाषापद्यमिदम् । अर्मणशब्दश्चात्र लोकप्रसिद्धमणवाची । मणश्च चत्वारिंशत्प्रस्थात्मक ।

४ गद्याणसंमितामेकां वचां क्षौद्रेण लोलिताम् ।
प्रातः प्रातर्लिहन्मासमपस्माराद्विमुच्यते ॥ ६ ॥
५ नावनं स्वरसैः खर्वकण्टकारीफलोद्भवैः ।
अपस्मारं विनिर्धूय सद्यो बोधाय कल्पते ॥ ७ ॥
६ विषखर्परसंज्ञस्य स्वरसो नस्ययोजितः ।
अपस्मारं समुत्सार्य कल्याणाय प्रकल्पते ॥ ८ ॥
७ सितकरवीरच्छदभवरजसा नस्यं निहन्त्यपस्मारम् ।
अवधिः किन्तु पुराणे प्रोक्तः षाण्मासिको गुरुणा ॥ ९ ॥
८ नस्यं कृतं मत्कुणजैरसृग्भिर्हरत्यपस्मारमुदग्रवेगम् ।
मदीयकाव्यं सुधया समानं यथाऽभिमानं द्विषतां कवीनाम ॥ १० ॥

– इत्यपस्मृतिचिकित्सितम् –

अथ वातव्याधिचिकित्सितम् ।

भयङ्करपराक्रमं करगृहीतपाशायुधं
कुरङ्गगतिमस्थिरं गुणवहं सहस्थायिनाम् ।

होता है । मण, अर्मण, द्रोण आदि पर्यायवाची शब्द हैं ।) ॥ ४-५ ॥ छ माशा-भर वचाचूर्ण को मधु में मिला प्रातः चाटने से, अपस्मार से मुक्ति मिलती है । यह प्रयोग एक मास पर्यंत करना चाहिये ॥ ६ ॥ छोटी कंटकारी फल-स्वरस का नावन लेने से, अपस्मार के शमन पूर्वक शीघ्र चैतन्यलाभ होता है ॥ ७ ॥ खर्पर नामक स्थावर विष के स्वरस का नस्य लेने से, अपस्मार के नाश-पूर्वक स्वास्थ्य-प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥ श्वेत करवीर के पत्र-स्वरस का नस्य अपस्मार को नष्ट कर देता है । किंतु जिस गुरु ने मुझे यह प्रयोग बताया है, उनके कथनानुसार, प्राचीन अपस्मार में उपरोक्त नस्य का प्रयोग छह मासपर्यंत करना चाहिये ॥ ९ ॥ खटमल के रक्त का नस्य लेने से अत्युग्र वेगवाला अपस्मार भी, अमृत के समान रस-पूर्ण मेरे काव्य से ईर्ष्या करनेवाले कवियों के अभिमान की तरह, नष्ट होजाता है ॥ १० ॥

– अपस्मार चिकित्सा समाप्त –

– वात-रोग-चिकित्सा (कुल प्रयोग २८) –

भयकर शक्ति से युक्त, हरिण के समान चपल गति, अस्थिर, साथ में रहनेवाले के गुणों का संवर्धक (अर्थात् योगवाही), जगत की उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश का

१–स्पष्टम् । २–पुनर्नवाभेदस्य । ३–प्राचीनेऽपस्मारे । ४–'खटमल' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेषः, स च ग्रीष्मे विशेषाद्भवति । ५–क्रमप्राप्तं वातव्याधिचिकित्सितं वक्तुकामैः श्रीकृष्णरामैः प्रथमं वायोः स्वरूपमेव वर्ण्यते । ६–योगवाहिनमित्यर्थः ।

जगज्जननपालनप्रलयकारणं शर्मणे
वशीकुरुत केवलं पवनमुच्चकैः स्नेहतः[1] ॥ १ ॥
१ प्रपुन्नाटकपत्राणां शाको वा वटिकाऽपि वा ।
वातव्याधिं शमयति विस्मयः किमतः परम् ॥ २ ॥
२ तिलप्रस्थो गुडप्रस्थो भल्लातकपलद्वयम्[2] ।
पालिकी गुटिका हन्ति वातव्याधिं शनैः शनैः ॥ ३ ॥
३ गन्धकं षट्पलं शुद्धं त्रिफला चित्रतन्दुलम्[3] ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च कणामूलं सजीरकम् ॥ ४ ॥
चित्रकं च पलैकैकं चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।
शाणप्रमाणमादेयं मधुना प्रथमं ततः ॥ ५ ॥
प्रत्यहं वर्धयेन्मापं यावत् कर्षप्रमाणता[4] ।
ततः स्थिरा भवेन्मात्रा चत्वारिंशद्दिनावधि ॥ ६ ॥
एवं निषेविते योगे शून्यवातः प्रणश्यति ।
केवलं चणका भ्रष्टाः पथ्यमन्यन्न किंचन ॥ ७ ॥
४ रसेन्दुर्दरदं दालिचिक्कणं तारतन्तवः ।
कर्षं कर्षं समाहृत्य कणिकाः कल्पयेत्तनूः ॥ ८ ॥

कारण, हाथ में पाश नामक आयुध को धारण किये हुये वायु को, सुख की (आरोग्य की) प्राप्तिके लिये केवल 'स्नेह' (तैलादि) से ही वश में (शमन) कीजिये (स्नेह से सभी वशीभूत हो जाते हैं ।) ॥ १ ॥

प्रपुन्नाड (चक्रमर्दक) के पत्तों का शाक, अथवा उनकी पानी में पीसकर बनाई गयी वटिका, वातरोग का शमन करती है । इससे अधिक आश्चर्य कारक और क्या हो सकता है ॥ २ ॥ शुद्ध भिलावा आठ तोला, तिल और गुड प्रत्येक चौसठ तोला इनकी एकत्र चार चार तोला भर गुटिकायें बनालें । ये वातव्याधि को शनैः शनैः नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥ शुद्ध गंधक चोवीस तोला, त्रिफला, विडंग, त्रिकटु (सूंठ, मरिच, पीपल), त्रिजात (तज, इलायची, तेजपत्र) पीपलीमूल, जीरा और चित्रक प्रत्येक चार चार तोला-इनका एकत्र वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनाले । इस चूर्ण में से प्रथम दिवस मधु के साथ तीन मापा सेवन करे । प्रत्येक दिन १ मापा मात्रा बढाते जायें । जिस दिवस चूर्ण की मात्रा एक तोले पर पहुंचे उस दिन से, इसी एक तोले प्रमाण से, चालीस दिवस तक चूर्ण का प्रयोग करते रहें । इस प्रयोग से शून्य-वात शमित हो जाती है । प्रयोगकाल में केवल भूने हुये चने ही पथ्यान्न रूप से लेने चाहिये । इसके अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ अपथ्य हैं ॥ ४–७ ॥

रसकर्पूर, हिंगुल, दालचिक्कण विष और (चांदी के) गोटा कदला प्रत्येक एक एक

१–तैलादितः । स्नेहेन लोको वशीक्रियत इति श्लेषोत्थापितो ध्वनिः । स चालङ्काराद्वस्तुव्यञ्जनरूपः । २–भल्लातकानां वृन्तच्छेदः कार्यः । ३–विडङ्गम् । ४–कर्षशब्देन तोलक-

तवके पट्टुमास्तीर्य तत्र ताः कणिका न्यसेत् ।
विधाय पट्टुना नेमिं पिदध्याच्चीनपात्रतः ॥ ९ ॥
तदधो ज्वालयेद्वह्निं शनकैः प्रहरत्रयम् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पात्रोदरगतं रसम् ॥ १० ॥
अद्यादमीरनामानं ग्रन्थिवातोपदंशवान् ।
अहानि सप्त नव वा मर्यादाऽमुष्य भक्षणे ॥ ११ ॥
सितासखं पयो गव्यं पथ्यं गोधूमकुल्लिका ।
घनश्यामेन भिषजा रसोऽयं मह्यमर्पितः ॥ १२ ॥
गुञ्जैका वा द्विगुञ्जा वा मात्राऽमुष्य यथामयम् ।
पिधाय द्राक्षया प्रातर्गिलेद्दन्तैर्न च स्पृशेत् ॥ १३ ॥
पँटोस्त्रीणि पलानीह तत्र स्वास्तरण पलात् ।
द्वाभ्यां पलाभ्यां घटयेत् परितो नेमिबन्धनम् ॥ १४ ॥
५ मरुभूरुहमूलस्य क्षोदो नल्वणसंमितः ।
चतुष्प्रस्थं कणामूलं द्विप्रस्था च यवानिका ॥ १५ ॥

तोला लेकर जोकुट बनाले । तदुपरात, बारह तोला सैंधव लेकर, उसमें से चार तोले भर जितना एक लौह के तवे पर फैलादे । अवशिष्ट आठ तोले सैंधव से उसके चारों ओर एक परिधि-छोटीसी दीवार-बनाले । अब इस परिधि मे, उपरोक्त औषधीय द्रव्यो का जोकुट चूर्ण बिछाकर, उसपर एक चीनी मिट्टी का सकोरा औंधा ढकदें । फिर, इनको तीन प्रहर तक अग्नि योग से पकावें । स्वाग शीतल होने पर शराव-तल सल्म रस को सावधानी पूर्वक निकाल लेवें । इस रस की निर्माण विधि मुझे वैद्य घनश्यामदास से प्राप्त हुई है । यह 'अमीर' रस उपदंश युक्त ग्रंथीवात मे उपयोगी है । इसकी सेवनावधि सात अथवा नौ दिवस से अधिक नहीं है । इस रस को द्राक्षा में अच्छी तरह लपेट कर, दातो को स्पर्श न हो इस तरह, सावधानतया निगीर्ण करना चाहिये । इसे गुजा अथवा दो गुंजा भर मात्रासे प्रात ही लेवें । मिश्रीयुक्त गाय का दूध और गेहू की धाणी पथ्य है ॥ ८–१४ ॥

करीर के ताजे एव आर्द्र मूल सोलह प्रस्थ, पिप्पली मूल चारप्रस्थ, यवानी दो प्रस्थ और हरताल दो पल इन सबको एकत्र जौकुट करके पातालयन्त्र विधि से अर्क

मुच्यते । ५–स्पर्शाज्ञानरूप 'शून्यवैरी' इति लोकख्यातो रोगविशेष । ६–रसकर्पूरम् । दरद हिङ्गुलम् । दालचिक्कणमेतन्नाम्नैव प्रसिद्ध विषम् । तारतन्तव इति 'गोटाकन्दला' इति नामतो लोके प्रसिद्धा , ते च राजता ग्राह्या ।

१–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धे रोटिकापाकप्रयोजने लौहे यन्त्रविशेषे । २–वक्ष्यमाणप्रमाण सैन्धवम् । ३–वक्ष्यमाणमानेन । ४–परिधिम् । ५–पिधानानन्तर सैन्धवपले कतीराख्य-गुन्द्रकर्षं समेल्य जलेन सपिष्य चीनपात्र परित सन्धिरोध विधाय सशोष्य च पश्चाद्वह्निर्देय । ६–चतु प्रहरमपि । ७–अनन्तरोक्तयोगे लवणमानप्रयोजनप्रदर्शक पद्यम् । ८–मरुभूरुह करीर 'कैर' इति ख्यात , तस्य मूल सद्यस्कमार्द्रं ग्राह्यम् ।

हरितालं पलद्वन्द्वं स्थूलमेकत्र खण्डयेत् ।
अर्कं पातालयन्त्रेण पातयेदुग्रसौरभम् ॥ १६ ॥
अमुष्य पुनरर्कस्य मण्डलावधि सेवनात्[1] ।
वातव्याधिः पुराणोऽपि प्रशाम्येत् किं पुनर्नवः ॥ १७ ॥
६ उसव्वाचोपचीनीभ्यां क्वाथो माक्षिकसाक्षिकः ।
सन्धिवातं विशेषेण निःशेषयति पथ्यतः[3] ॥ १८ ॥
७ मल्लः सूतो[4] बलिः कत्थं पृथग्वल्लचतुष्टयम् ।
समुद्रान्तारसैः[5] कार्या गुडाः सर्षपसोदराः ॥ १९ ॥
संधिवातगलत्कुष्ठदुष्टनाडीव्रणज्वरान् ।
फिरङ्ग[6]शोथपवनकफमान्द्योदरापदः ॥ २० ॥
कासश्वसनहिक्कादीन् निघ्नन्त्येव न संशयः ।
अनुपानं जलं शीतं तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ २१ ॥
८ कुपीलोः[7] पीतसिद्धार्थात् कुडवं कुडवं कुरु ।
द्वौ च तौ सवितुर्मूलाद्[8] द्वौ कर्षौ शतमल्लतः ॥ २२ ॥

निकाल लेवें। यदि उग्र गंध के कारण इस अर्क के पीने मे असुविधा हो तो इसमें सूठ का चूर्ण मिला गुटिका बनाकर निगल जानी चाहिये। रोग के बलाबल अनुसार उचित मात्रा मे इसका उपयोग करे। इस अर्क के, एकचालीस दिवस पर्यंत, सेवन करने से जीर्ण वात रोग भी नष्ट होजाता है। फिर नूतन की तो चर्चा ही क्या? १५–१७ उसव्वा और चोपचीनी के यथाविधि साधित कषाय मे यथामात्रा शहद मिलाकर पीने से वातरोग का, विशेपतया सधि-वात का, शमन होता है। प्रयोग कालमे तैल अम्लादि पदार्थ सर्वथा अपथ्य है ॥ १८ ॥

शतमल्ल, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, और कत्था प्रत्येक बारह गुंजा भर, इनको एकत्र खरल मे पीसकर अच्छी तरह मिलालेवें। फिर धमासे के स्वरस से घोटकर इनकी सर्षप समान गोलियां निर्माण करे। तैल, अम्लादि अपथ्य पदार्थों के त्यागपूर्वक, शीतल जल के अनुपान सहित इनके प्रयोग से सधिवात, गलितकुष्ठ, दुष्ट नाडीव्रण, ज्वर, उपदश, शोथ, कफ-वात की विकृति, अग्निमाद्य, उदर-रोग, कास, श्वास, हिक्का आदि का नि सदेह शमन हो जाता हे ॥ १९–२१ ॥ कुचला और पीत सरसो, प्रत्येक सोलह सोलह तोले, आकडे के मूल की छाल बत्तीस तोला, शतमल्ल दो तोला तथा

१–एकचत्वारिंशद्दिनावधिसेवनात्। उग्रसौरभत्वादर्कं पातुमशक्यश्चेच्छुण्ठीचूर्णेन गुटीं प्रकल्प्य गिलेत्। रोगबलाबल वीक्ष्य मात्राऽस्य प्रकल्पनीया। २–द्वीपान्तरीयवटजटा (?) उसव्वाशब्दवाच्या, द्वीपान्तरीयवचा च चोबचीनी नाम्नाऽऽख्यायते। ३–तैलाम्लादि-वर्जनस्वरूपात्। ४–सूत॰ पारद। पारदगन्धौ च शुद्धावुपादेयौ। ५–दुरालभास्वरसै। ६–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध उपदंशविशेषो भावप्रकाशोपदिष्टस्वरूपश्च। ७–काकतिन्दुकात् 'कुचला' इति प्रसिद्धात्। ८–मूलवल्कलादित्यर्थ।

१६ भेषजक्ष्वेडवटिकां[1]स्तैलान्तस्तलयेद्भृशम्[2] ।
हन्ति मर्दनमात्रेण तत्तैलं वातवेदनाः ॥ ३५ ॥
१७ मापिकैश्चुक्ररु[3]क्फेनैस्तैलं द्वादशमाषकम् ।
मन्दानले चिरं सिद्धं खल्लीं[4] मर्दनतो द्यति ॥ ३६ ॥
१८ शिखिपिच्छविभूतिशृतं[5] तैलं खण्डयति खल्लिकाखेलान्[6] ।
१९ अशिशिरतरसलिलनिभृतकाचघटीस्वेदनमपि तथा ॥ ३७ ॥
२० एरण्डबीजसंसिद्धः कवोष्णः सान्द्रपायसः ।
समन्ताद्युक्तितो बद्धो हनुकण्ठग्रहापहः ॥ ३८ ॥
२१ मुहुर्मुहुर्धूननफुल्लतूलसारावृतिस्विन्नकलेवरस्य[7] ।
संधीनधिष्ठाय रुजन्नजस्रं प्रभञ्जनो भङ्गमवश्यमेति ॥ ३९ ॥

सधिवात मे लाभ होता है । राधा-गाली विष की एक जाति है । यह गुर्जर प्रदेश के अन्तर्गत 'डाकोर' मे जहा श्रीरणछोडराय भगवान का प्रसिद्ध मंदिर भी है, उसके निकट गोमती नदी के किनारो पर उपलब्ध होता है । इसके मूल शकरकंदी के मूल से आकृतित साम्य रखते है । यह गुर्जर प्रांत मे 'दुधियो वत्सनाभ' 'वढवाडिओ' आदि नामो से सुप्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

शुंठी तथा शृंगी विष के एकत्र चूर्ण से वटिकायें बनाकर उनको तैल मे तब तक खूब तलते रहें जब तक वे जल भुनकर कोयले के समान काली न बन जायें । इस तैल की मालिश करने से वात वेदना शांत हो जाती है ॥ ३५ ॥ चुक्र, कूठ और अफीम प्रत्येक एक एक माषा भर लेकर बारह माषा तैल मे दीर्घ काल तक मदाग्नि से पकावे । इस तरह साधित तैल की मालिश करने से, वातरोग विशेषतया 'खल्ली' नष्ट हो जाती है । निवू रस के अधस्तल मे स्थित घनीभूत चिकने द्रव को चुक्र कहते है खल्ली पैर जांघ तथा हाथ आदि मे होनेवाली 'ऐठन' का नाम है जिसे 'बांयटा' भी कहते है ॥ ३६ ॥ मयूर पिच्छ की भस्म से यथा विधि सिद्ध किया गया तैल 'खल्ली' के खेल को खदेड देता है । इसी तरह उष्ण जल से परिपूर्ण काचके घट-द्वारा स्वेदन करने से खल्ली की खिल्ली उडजाती है ॥ ३७ ॥

एरड वीजो से सिद्ध किये गये कवोष्ण घट्ट-पायस को चारो तरफ युक्तिपूर्वक बाध देने से हनुग्रह तथा कंठग्रह आदि वात-व्याधिया छूट जाती है ॥ ३८ ॥ कपास के ढेर के पास रोगी को बिठाकर उसे पुन पुन तब तक पींजते रहे जब तक

१–शुण्ठीशृङ्गिकविषयोर्वटिका । २–यावद्वटिका कोकिलाकारा स्युस्तावदिति भृशशब्दार्थ । ३–चुक्र । लोके 'चूक' इति ख्यातो निम्बूरसजन्य कल्काभो द्रव्यविशेपः, रुक् कुष्ठ, फेनमहिफेन, तैः । ४–खल्लीमित्युपलक्षणं, तेन सर्ववातव्याधिम् । ५–मयूर-पिच्छभस्मशृतम् । ६–"खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटिनी" इत्युक्तलक्षणा 'बायटा' इति लोके प्रसिद्धा । ७–रोगिणमभ्यर्णं सस्थाप्य धूननारम्भ कार्य । यथा च धूननफुल्ल-तूलवास्तदङ्गोपरि तिष्ठेयुस्तथेति ।

२२ सर्वाङ्गमारुते तीव्रतोदशूलादिकारिणि ।
कवोष्णकारवीतल्पे शयानः स्वेदमाचरेत् ॥ ४० ॥
२३ हेमसिहिरचञ्चुजलं[1] स्थितमधिभूगर्तमष्टाहम् ।
अध्यातपमभ्यङ्गाद्भञ्जयति रुजं प्रभञ्जनजाम् ॥ ४१ ॥
२४ तीक्ष्णपत्रीरजः[2] सूक्ष्मं प्रपिष्य दृढमर्णसा[3] ।
कोष्णीकृतं प्रलेपेन वातपीडां नियच्छति ॥ ४२ ॥
२५ मक्षीशकृदर्णसा[4] समं किमपि क्वथितं प्रलेपितम् ।
शनकैरनलेन तापितं कवलीकुरुतेऽनिलव्यथाम् ॥ ४३ ॥
२६ मयूरचन्द्रस्य गुडेन मध्यं विनीय बद्धां गुटिकां प्रभाते ।
मासं[5] गिल क्रोष्टुकशीर्षशान्त्यै तैलाम्लवाह्लीकगुडादि मुञ्च ॥ ४४ ॥
२७ चितादग्धं रवावस्थि विचूर्ण्य गुडयोगतः ।
प्रकल्प्य मोदकं खादेत् प्रातः क्रोष्टुकशीर्षके[6] ॥ ४५ ॥

उस रूई के सूक्ष्म रेशो से रोगी परित आच्छादित न हो जाये । इस तरह देह के स्विन्न होने पर, रोगी को सधिगत वात की निरतर वेदना से नि सदेह मुक्ति मिल जानी है ॥ ३९ ॥ तीव्र तोद और शूल युक्त सर्वांग वातरोग मे कवोष्ण अजमोदा से आस्तृत शय्या पर लेटे हुये स्वेदन लेना हितावह है ॥ ४० ॥ धत्तूरे, आकडे तथा एरड पत्तो के स्वरस को घडे में भर गहरे गर्त के भीतर गाडकर आठ दिवस पर्यंत रहने दे, इस रस की, धूपमें मालिश करने से वातजन्य वेदना भग हो जाती है ॥४१॥ एरड पत्तो के स्वरस से, तमाखू पत्र के सूक्ष्म चूर्ण को खूब पीसकर फिर थोडा निवाया करके उसका लेप करें । इससे वातवेदना नष्ट हो जाती है ॥ ४२ ॥

मक्खी की विष्ठा को पानी मे घोलकर उसमे पोदीने के कल्क को खूब उकाल सांद्र बनाले । कुछ शीतल होने पर उस पिष्टीका, पीडित स्थान पर लेप करके धीरे धीरे अग्नि का ताप देवे । इससे वातवेदना शांत हो जाती है ॥ ४३ ॥ मयूरपिच्छ की भस्म को गुड के भीतर रख उसकी गुटिका बनाले । एक गुटी नित्य प्रात काल निगल लेनी चाहिये । इस तरह एक मास तक इसका सेवन करने से क्रोष्टुकशीर्प वातव्याधि से मुक्ति मिल जाती है । इसके प्रयोग काल मे तैल, गुड, इमली, हींग प्रभृति पदार्थों से परहेज करें । रोगाधिक्य मे एक मासावधि, सामान्य रोग में एक सप्ताह अथव एक पक्ष पर्यंत, प्रयोग का विधान है ॥ ४४ ॥

आकडे के भीतरी काष्ठ को तीव्र अग्नि मे जलाकर उसका सूक्ष्म चूर्ण करलें । फिर गुड मिलाकर इसके लड्डू बनाले । इनको प्रात काल लेने से क्रोष्टुकशीर्ष का शमना

१–धत्तूरार्केरण्डस्वरस । २–तीक्ष्णपत्रीशब्देन 'जरदा' इति प्रसिद्धस्य ग्रहणम् । ३–एरण्डदलोद्भवेन स्वरसेनेति रहस्यम् । ४–'पोदीना' इति प्रसिद्धम् । ५–महति रोगे मासोऽवधिर्दुर्बलरोगे सप्ताह पक्षं वा । ६–"वातशोणितज शोथो जानुमध्ये महारुज । ज्ञेय. क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूल क्रोष्टुकशीर्षवत्" इति प्रोक्तलक्षणे ।

२८ महिषीमूत्रमसकृत्पटपूतं निशासखम् ।
पिबतामामवातार्तिः क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ॥ ४६ ॥

— इति वातव्याधिचिकित्सितम् —

अथ शूलचिकित्सितम्[1] ।

१ चलदलतरुमूलच्छल्लजातः[2] कषायो
लवणगुडसहायो मात्रया पीतमात्रः ।
अधिकनिबिडमूलं दुःसहं कुक्षिशूलं
शमयति यदि शङ्का तर्हि दत्त्वा परीक्ष्यः ॥ १ ॥

२ एरण्डमेथिकागुडनिर्यूहो हरति जठरशूलानि ।
वाराङ्गनाविलासस्तरुणानां मानसानीव ॥ २ ॥

३ वब्बूललम्बिकण्टकसद्म[3] सकीटं विपाच्य कुडवजले ।
अर्धावशिष्टमम्भः पीतं द्यति जठरशूलानि ॥ ३ ॥

४ क्षपा[4]ऽक्षमाना यवसा[5] समाना[6] पट्वस्त्रिमाषः कुरु चूर्णमेषाम् ।
पलप्रमाणेन[7] घृतेन पक्त्वा कोष्णं महाशूलरुजासु देहि ॥ ४ ॥

हो जाता है ॥ ४५ ॥ भैंस के मूत्र को एकवीस बार वस्त्रपूत करके उसमें हरिद्रा मिलाकर पीते रहने से आम-वात-जन्य पीडा शीघ्र ही शांत हो जाती है ॥ ४६ ॥

— वातव्याधि चिकित्सा समाप्त —

— शूलचिकित्सा (कुल प्रयोग १७) —

पीपलवृक्ष के मूलकी छाल से सिद्ध कषाय मे लवण और गुड मिलाकर यथामात्रा मे पीने मात्र से, अत्यधिक वेदनायुक्त-अतएव असह्य उदरशूल प्रशमित हो जाता है। इसमें यदि शंका हो तो प्रयोगद्वारा परीक्षा कर लीजिये ॥ १ ॥

एरडमूल, मेथी और गुड से साधित-कषाय, युवतियो के विलास से युवको के हृदय-शूल की तरह, उदर शूल को शमन कर देता है ॥ २ ॥ बबूलवृक्ष के कांटो पर कीट विशेषद्वारा निर्मित आवास को कीटसहित लेकर, उसे एक सेर पानी मे, अर्धावशेष रहने तक, उबालकर पीने से, उदरशूल शमित हो जाता है ॥ ३ ॥

हरिद्रा एक तोला, उतने ही प्रमाण मे अजवायन तथा नमक तीन माषा, इन तीनो का सूक्ष्म चूर्ण बनाले। फिर, इनको चार तोलाभर घी मे भून, कवोष्ण

१—वातरुजासामान्याच्छूलमुच्यते। २—पिप्पलमूलवल्कलजात। ३—'मगकबिलाई' इति लोकख्यात कीटविशेषस्तत्सहितमेव कण्टकसद्म तद्ग्रह ग्राह्यम्। ४—हरिद्रा। ५—यवानिका। ६—अक्षमानेत्यर्थ। ७—पलमत्र चतुस्तोलकपरम्।

५ करञ्जमज्ज्ञो द्वितयं त्रयं वा विभर्ज्य साकं पटुना निगीर्णम् ।
शूलं समूलं हरति प्रसह्य कूलं यथा निर्झरिणीप्रवाहः ॥ ५ ॥
६ मल्लकान्तर्मनाग्भ्रष्टं वब्बूलफलजं रजः ।
शृतेन वारिणा पीतं समूलं शूलमुद्धरेत् ॥ ६ ॥
७ आर्द्रचूर्णेन संघृष्टा कारवी निस्तुषीकृता ।
सौवर्चलेन सहसा शूलं मूलान्निकृन्तति ॥ ७ ॥
८ तैलमलितखण्डसखी चूर्णवटी द्वित्रिवेलमपि गीर्णा ।
भवति तया खलु किं नो शूलविशेषथ्यथा शीर्णा ॥ ८ ॥
९ शिग्रुस्वरसेन वटी सैन्धवसौभाग्यविश्वानाम् ।
जयति जठरशूलरुजं योगोऽयं श्यामरामभिषगुक्तः ॥ ९ ॥
१० मृद्भाण्डपूर्णे खरपुङ्गवस्य मूत्रे शनैः शुष्यति सूर्यतापात् ।
या पर्पटी स्त्यायति मात्रया सा दत्ता निहन्यादुदरार्तिमुग्राम् ॥ १० ॥
११ प्रक्षालितानि शनकैर्मरिचोत्तमानि
सिद्धानि सर्पिषि मनाग्विषमुष्टिकानि ।

ही सेवन करने से उदर की तीव्र शूलजन्य वेदना में लाभ होता है ॥ ४ ॥ करज फल की मज्जा को भूनकर, नमक के साथ लेने से, नदी के वेगवान प्रवाह से कूल की तरह, उदरशूल बलात् प्रवाहित हो जाता है ॥ ५ ॥

बबूल के शुष्कफलचूर्ण को शराव में रखकर थोडा भूनलें। इस चूर्ण को, उकले हुये जलके साथ फांकने से उदरशूल समूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ ताम्बूलोपयोगी चूने के चूर्ण के साथ अजवायन को खूब मसल मसल कर निस्तुष बनाले। फिर, इसमें थोडा काला नमक मिला फाक जाये। उदरशूल को यह शीघ्र ही निर्मूल कर देता है ॥ ७ ॥ चूने की वटी को तिल की भूसी में मिलाकर दो या तीन वार निगीर्ण करने से पेट की चूक (शूलजन्य पीडा विशेष) विशीर्ण हो जाती है ॥ ८ ॥ सैंधव, टकण तथा सूठ के सूक्ष्म चूर्ण को सहजने के पत्रस्वरस से खूब मर्दन करके वटी बनाकर सेवन करे। यह उदरशूल की वेदना को मिटाती है। यह प्रयोग वैद्य श्यामरामने बताया है ॥ ९ ॥ स्वस्थ गदहे के मूत्र को एक मिट्टीके घट में भरकर सूर्य के ताप में रखदे। इस मूत्र के धीरे धीरे सूखजाने पर, घट में चारो तरफ पर्पटी जैसी सूखी तह जम जायेगी। इस पर्पटी का, रोग और रोगी के बलानुसार मात्रा स्थिर करके, प्रयोग करें। इससे अत्युग्र उदर शूल जन्य पीडा प्रशमित हो जाती है ॥ १० ॥

पानी से धीरे धीरे मसलकर अच्छी तरह साफ किये गये मरिच के दाने तथा

१–करञ्जफलमज्जाया। २–मल्लक शरावविशेष 'मालसा' इति प्रसिद्ध। ३–सुधाखण्डजेन ताम्बूलाद्युपयोगार्हेण। ४–यवानिका। ५–चूर्णेन सह गाढघर्षणेन निस्तुषा कार्या। ६–सुधाजचूर्णवटी। ७–चूकशब्दवाच्या। ८–सौभाग्यं टङ्कणम्।

'गोली गुलाबजलनें करिये चणेमी
सोह कहा नहिं मिटावत पेटपीरा' ॥ ११ ॥

१२ मल्लादिन्द्रक्षिगुणितमुषणं कन्यया त्र्यहम् ।
खल्वयित्वा मकुष्ठश्रीगुटी जठरशूलजित् ॥ १२ ॥

१३ चक्रिकाः षोडशीमानास्तन्व्यः शम्बरशृङ्गजाः ।
घटान्तर्द्विः पुटेत् कन्यामांसप्रस्थद्वयान्तरे ॥ १३ ॥
तद्भस्म चन्द्ररुचिरं घृतेन सह सेवितम् ।
हृच्छूलभ्रमनैर्बल्यवातश्लेष्मनिषूदनम् ॥ १४ ॥

१४ रङ्गच्छदेन तनुना परिवेष्ट्य मुद्रां
ताम्रस्य सावयवमार्कवकल्कमध्ये ।
सम्यक्पुटेदतिपदुः सुरभेः शकृद्भिः
स्यात् सोमनाथरस एष समीरहर्ता ॥ १५ ॥

घृत मे थोडे भूने गये शुद्ध कुचले इन दोनों को मिलाकर गुलाब जल से घोट करके चने प्रमाण गोलिया बनाले । क्या इनके सेवन से भी पेट की पीडा न मिट सकेगी ? ॥ ११ ॥ एक भाग मल्ल तथा मल्ल से इक्कीस गुणित पिप्पली इन दोनों को एकत्र ग्वारपाठे के रस से तीन दिवस तक खरल करें । इनकी, उत्तम मकुष्ट जैसी गुटी बनालें । यह उदर शूल को नष्ट कर देती है ॥ १२ ॥ सांभरसींग की पतली एव चक्राकार, चार चार तोलेभर, चक्रिकायें सवार ले । एक मिट्टी के घट में, चौसठ तोला ग्वारपाठे का गुदा भरकर, उसपर इन सींग की चक्रिकाओं बिछादे । तथा इनके ऊपर, पुन चौसठ तोला ग्वारपाठे का गूदा और भरदे । घट के मुख को कपडमिटी करके दो बार पुट देने से, इनकी चद्रमा के तुल्य श्वेत-भस्म बन जायेगी । इस भस्म का एक रत्तिप्रमाण मे घृत के साथ प्रयोग करें । इससे हृदयशूल, भ्रम, निर्बलता, वात एव कफजन्य विकार नष्ट हो जाते है । इसके प्रयोगकाल मे करीव पाव सेर घृत का अवश्य सेवन करें । तैल, लवण, अम्ल आदि अपथ्य है ॥ १३–१४ ॥

तांबे के एक पैसे को, रागे के पतले पतरे में अच्छी तरह लपेट कर, भांगरे के पंचाङ्ग कल्क के भीतर रखदें । फिर, गायकी गोवरी से अच्छी तरह पुट दें । इस तरह ग्यारह पुट देने से उत्तम ताम्रभस्म बन जायेगी । इसे 'सोमनाथरस' कहते है । पार्श्वशूल की यह परम औषधि है ॥ १५ ॥

१–चणकप्रमाणा । २–एकविंशतिगुणम् । ३–पलप्रमाणा । ४–शम्बर. 'साभर' इति लोकप्रसिद्धो मृगविशेषो विकटविषाण । ५–रक्तिप्रमाणमिति शेष । तैलाम्लवणादिक न भक्ष्यमेतद्भस्मासेविनाऽवश्यं कुडवमितं पादोनकुडव वा घृत भक्षितव्यमिति । ६–त्रपुपत्रेण । ७–पण 'पैसा' इति ख्यातम् । ८–पार्श्वशूलजित् ।

१५ मकुष्ठजीर्णच्छदजैः कषायैर्भृत्वा घटं तत्र निधाय नाडीम् ।
तया शनैः स्वेदय पार्श्वमुग्रशूलार्तमाच्छादितमम्बरेण ॥ १६ ॥

१६ पार्श्वशूलाधिकरणमरुणक्षीरलेपितम् ।
अङ्गारधूपितं शूलानधिकरणं भवेन्न किम् ॥ १७ ॥

१७ शाणमध्यर्धशाणं वा केवलं स्वच्छपारदम् ।
तैलाम्लप्रभृतित्यागी पिबेच्छूलनिवृत्तये ॥ १८ ॥
नानाक्रियासु मोघासु वैद्येषु व्यग्रबुद्धिषु ।
रुदत्सु रुग्णदारेषु प्रयोगमवचारयेत् ॥ १९ ॥

— इति शूलचिकित्सितम् —

अथ गुल्मचिकित्सा ।

१ गुडेन साधु संनीय गजाशनदलत्रयम् ॥
वातगुल्मगदग्रस्तो ग्रसेत सुखसिद्धये ॥ १ ॥

मकुष्ठ के परिपक्व जीर्ण पत्तो के कषाय को एक मिट्टी के घट मे भरदे। घट मे नली लगाकर, उसमे से बाहर निकलती हुई, कषाय की बाष्प से पार्श्व का स्वेदन करें। स्वेदन करते समय पार्श्व भाग को वस्त्र से आच्छादित रखे। इस तरह धीरे धीरे वाष्प स्वेदन लेने से पार्श्व शूल शमित हो जाता है ॥ १६ ॥ पार्श्व में जहा शूल उठता हो वहा, आकडे के दूध का लेप करके अंगीठी के अंगारो से सेक करे। इस तरह करने से क्या रुग्ण शूल का अनधिकारी नही होगा? ॥ १७ ॥ तीन अथवा साढे तीन माषा भर मात्रा मे स्वच्छ (शुद्ध) पारद का पान करने से तथा प्रयोग काल मे तैल अम्लादि द्रव्यो से परहेज रखने से पार्श्वशूल निवृत्त हो जाता है। यह महाप्रयोग आशु असर दर्शाता है। अनेकों उपचार भी जब असफल हो जाये, वैद्य गण भी चिकित्सा करते करते जब कुंठित हो जाये तथा रुग्णपत्निया जब रुदन करने लगे, तब ही उपरोक्त प्रयोग अजमाना चाहिये ॥ १८–१९ ॥

— शूलचिकित्सा समाप्त —

— गुल्मचिकित्सा (कुल प्रयोग ३) —

वातज गुल्म से ग्रस्त रुग्ण को, रोगमुक्तिरूपी सुखसिद्धि के लिये, पिप्पल वृक्ष के तीन कोमल पत्तों को गुड मे अच्छी तरह लपेट कर चबाना चाहिये ॥१॥ रात्रि-पर्यंत,

---

१–पार्श्वशूलस्थानम् । २–अर्कक्षीरलेपितम् । ३–महाप्रयोगोऽयम् । ४–पूर्वोक्तयोगस्य दानावस्थावर्णनम् । ५–वातरुजासामान्याच्छूलानन्तरं गुल्मोऽभिधीयते । ६–गजाशन पिप्पल, तस्य पत्रत्रयमित्याकृत्या ग्रहणम् ।

ऊर्ध्वगं पिञ्जरं सारं काचकूप्यां निधापयेत् ।
नाभिस्थेनास्य पिचुना मूत्रकृच्छ्रं निवार्यते ॥ ६ ॥
४ सौरे प्रकुञ्चे द्रवति प्रणीय माषं बलिं ढालय खल्वकुक्षौ ।
सिद्धो रसः शीतलपर्पटीति कृच्छ्रेऽपि कृच्छ्रे कथितः सजीरः ॥ ७ ॥
५ सोरादजाज्याखुटितोऽपि माषौ वटाङ्कुरेभ्यश्च नवैव माषाः ।
एकैव पिष्ट्वा गुटिका विधेया कृच्छ्रेषु धारोष्णपयोभिरद्यात् ॥ ८ ॥
६ निम्बशरीः संक्षुण्णा मृत्पात्रे सायमम्बु विनिमग्नाः ।
प्रातस्ताः पुनरापः पीताः पित्तोग्रकृच्छ्रमपहन्युः ॥ ९ ॥
७ प्रणीतः पलढब्बूकैः क्वाथो माक्षिकसाक्षिकः ।
मूत्रकृच्छ्रं सदाहार्तिं हन्ति ताम्बूलशीलिनः ॥ १० ॥
८ महिषीश्रुतिनिष्कासितकिट्टैः कीलालल्लोलितैः पूतैः ।
नाभिं प्रलिम्प कृच्छ्रे नाभिरिहं पराभिरुक्तिभिस्तोषः ॥ ११ ॥

– इति मूत्रकृच्छ्रचिकित्सितम् –

करीब चार तोले कलमी सोरे को अग्नि से पिघलाकर, उसमे एक मापा गंधक मिला खरल मे ढालदे । इस तरह सिद्ध किये गये रस को 'शीतल-पर्पटी' कहते हैं। कृच्छ्रातिकृच्छ्र मूत्रकृच्छ्र मे भी जीरे के साथ लेने से उत्तम लाभ देता है ॥ ७ ॥ कलमी सोरा, जीरा और इलायची प्रत्येक दो दो मापा तथा वट के अंकुर केवल नौ मापा इन सबको एकत्र पीसकर एक वटी बनालें। धारोष्ण दूध के साथ इसको लेने से पित्त तथा वातप्रधान मूत्रकृच्छ्र प्रशमित हो जाते हैं ॥ ८ ॥ इक्कीस नग निंबोली को कूटकर सायंकाल एक जल पूर्ण मृत्पात्र में भिगोकर रखदें । दूसरे दिन, प्रात.काल इन्हे जल-सहित पी जाने से पित्त-प्रधान उग्र-मूत्रकृच्छ्र शमित होता है (इसकी प्रयोग मर्यादा तीन दिवस तक ही है) ॥ ९ ॥ एक ताम्र पात्र मे ताम्र के पुराणे सिक्को का, क्वाथ-विधि से उकाल कर, क्वाथ सिद्ध करलें । फिर इसमे थोडा शहद मिलाकर पीये । इससे दाह एव वेदना-पूर्ण पित्तज मूत्रकृच्छ्र शान्त हो जाता हे। इसके प्रयोगकाल मे तांबूल-चर्वण पथ्य है ॥ १० ॥ भैंस के कर्णमल को जलमे घोलकर वस्त्रपूत करले । मूत्रकृच्छ्र रोग मे, यदि अन्य प्रयोगो से लाभ न हुआ हो तो, नाभीपर इसका प्रलेप करने से अवश्य सतोष होगा ॥ ११ ॥

– मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा समाप्त –



१–मार्तिके नव्यशरावे तरुणीपुष्पार्केण सारमालोड्य पिचु कार्यं । २–पलप्रमिते । ३–अग्नियोगादुत्पद्यमानक्लेदे । ४–प्रत्येक माषकद्वयम । ५–पित्तकृच्छ्रेषु, बहुत्वमत्रादिपर तेनोष्णवातेऽपि देया, त्रिदिन च सेवनमर्यादा । ६–एकविंशतिसंख्या । ७–पुराणतैस्ताम्रिकैः पणैः , क्वाथश्चापि ताम्रपात्र एव कार्यः । ८–महिषीकर्णमलैः । ९–जलघोलितैः । १०–आभि पराभिरुक्तिभिर्न तोष इति योजना ।

अथ मूत्राघातचिकित्सितम् ।

१ मूत्रं क्राथोऽश्वगन्धाया द्राक् प्रवर्तयतेतराम् ।
सेतुभङ्गस्तटाकस्य प्रवाहं पयसामिव ॥ १ ॥
२ तन्वीं वेतसनाडीं प्रदीप्तवदनां विधाय तद्धूमम् ।
मूत्राघातस्तूर्णं शाम्यति नृणां शनैः शनैः पिबताम् ॥ २ ॥
३ अजापुरीषतन्मूत्रक्लिन्नमृत् सौरसंस्कृता ।
नाभ्यधः सान्द्रसंनद्धा मूत्रबन्धं भिनत्ति हि ॥ ३ ॥
४ विण्मूत्राभ्यां छगलसुदृशां यत्स्थलं वाढविस्रं
तज्जा धूलिः सुरभिसलिलैः सम्यगावर्तयस्व ।
मूत्राघाते प्रतुदति तया वाष्पमुष्णं वमन्त्या
वारंवारं विरचय सखे ! नाभ्यधः साधु लेपम् ॥ ४ ॥
५ आवर्त्यमानगोमूत्रे खण्डमाप्लाव्य काम्बलम् ।
मनागापीड्य तत्स्वेदान्मूत्राघातः प्रणश्यति ॥ ५ ॥
६ तमाखुकुसुमस्वेदो मूत्रं रुद्धं प्रवर्तयेत् ।
७ नवसादरजं खण्डं नाभ्यधो भ्रामणादिव ॥ ६ ॥

— मूत्राघात चिकित्सा (कुल प्रयोग ९) —

अश्वगंधा के क्वाथ को पीने से, बांध के टूट जाने पर तालाव के जल-प्रवाह की तरह, मूत्र की शीघ्र प्रवृत्ति होती है। (जयपुर के समीप नागोरदेश मे होने वाली अश्वगधा से यहां अभिप्राय है) ॥ १ ॥ वेत की पतली आठ अंगुल लंबी नली के मुख को जलाकर उसके धूम को (बीडी अथवा सिगरेट की तरह) धीरे धीरे पीने से मूत्राघात शीघ्र प्रशमित हो जाता है ॥ २ ॥ बकरी की पावभर मींगणी (पुरीष) को, बकरी के ही मूत्र से भिगो उसमे करीब दो तोला कलमीसोरा मिलाकर अग्निसे कवोष्ण करके नाभी के नीचे प्रलेप करदें। इस लेप को भी, अजा के कवोष्ण मूत्र से निरतर सिक्त करते रहे। यह प्रयोग मूत्र-बंध को तोड देता है ॥ ३ ॥ बकरियो के निरतर मलमूत्र त्याग से जहां की भूमि परम दुर्गंधमय हो गयी हो, उस स्थल की धूलिको गोमूत्र से अच्छी तरह मसल लें। अव, हे मित्र ! मूत्रावात से पीडित की नाभी के नीचे, गरमागरम इस मिट्टी का अच्छी तरह पुन पुन लेप करते रहो ॥ ४ ॥ खौलते हुये गोमूत्र मे कंवल के टुकडे को भिगोकर फिर, थोडा निचोडकर, सवाष्प उस कंवल वस्त्रद्वारा नाभी के नीचे स्वेदन करने से मूत्राघात शीघ्र निवृत्त हो जाता है ॥ ५ ॥

तमाखुपुष्प के स्वेदन से रुका हुआ मूत्र प्रवृत्त होता है। इसी तरह, नवसादर के

१—नागोरदेशोद्भवाया । २—अष्टाङ्गुलदीर्घामिति शेष । ३—कोष्णा । तत्राजामूत्रमपि देयम् । कुडवपुरीषे तोलकद्वय सौरकम् । ४—गोमूत्रै । ५—तेन सवाष्पेण कम्वलखण्डेन नाभ्यध. शनै शनै कृतात् स्वेदात् ।

रजोविमुक्तं रविमूलवल्कं छुर्या तनूकृत्य नियम्य वस्त्रे ।
निष्पीड्य गृह्णीत पयः पवित्रं ददीत तद्भेषजभावनासु ॥ ७ ॥

२ द्रवीभूते वङ्गे कुडवतुलिते पारदपलं
विनिक्षिप्य स्फीता दृषदि करणीया हि कणिकाः ।
ततः प्रस्थद्वन्द्वोन्मितनरशटीक्षोदनिहिताः
पुटेद्युक्त्या वासःशिखिभिरिति वङ्गेश्वररसः ॥ ८ ॥

३ सूतेन्द्रवङ्गबलिसादरकज्जलीभिः कूपीं प्रपूर्य विधिवत् पच कोकिलाग्नौ ।
सिद्धः सुवर्णरुचिरेप लघुर्मृगाङ्को मेहान्निहत्य महतीं विदधाति पुष्टिम् ९

४ नवनीतीकृत्य घनै रङ्गं संताड्य संताड्य ।
सितया विमर्द्य मसृणं मधुना लीढं प्रमेहहरम् ॥ १० ॥

प्रस्तुत श्लोक मे, प्रसगवशात्, आकडे मे से, सरलतया अधिकाधिक मात्रा मे, दूध निकालने की विधि प्रदर्शित की गयी है। आकडे के मूल की छाल को पहिले अच्छी तरह जल से धोकर उस पर लगी हुई मिट्टी आदि को निकाल दें। फिर इस छाल के चाकू से सूक्ष्म टुकडे करके, उनको एक स्वच्छ वस्त्र मे बांधकर सावधानी पूर्वक निचोडकर दूध निकाल लेवें। औषधियों मे भावना आदि के लिये इस विधि से निकाले गये अर्क-दूध को उपयोग में ले ॥ ७ ॥

सोलह तोला शुद्ध वग को अग्नि से पिघला कर उसमें चार तोला शुद्ध पारद मिला, एक खरल मे डाल देवें। फिर, घोटकर उसकी स्वच्छ सूक्ष्म कणिकायें बनाले। तत्पश्चात्, इनको, करीब १२८ तोला नरकचूर के कल्क मे रखकर, उसे करीब १२८ तोला वस्त्र खडों से परिवेष्टित करके, इन्हीं वस्त्रखडो की आच के युक्तिपूर्वक पुट देवे। इस तरह निर्मित वंगभस्म को 'वगेश्वर-रस' कहते हे ॥ ८ ॥

पारद, वंग, गधक और नवसादर प्रत्येक २½ तोला लेकर उनकी एकत्र कज्जली वनाले। इसे, फिर, काच की शीशी मे भरकर कपडमिट्टी करदे। फिर, यथाविधि, उसे सोलह सेर कोयलो की आच देवें। इस तरह सिद्ध की गई स्वर्णाभ भस्म को 'लघु-मृगाङ्क' कहते हैं। यह प्रमेह को नष्ट करके अत्यत पुष्टि-अर्पण करती हे ॥९॥

लोह-घण के अनवरत प्रहारों से वग को मक्खन जैसा मुलायम बनाले। इसके चूर्ण को मिश्री मे अच्छी तरह मिलाकर शहद के साथ चाटने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥ निंबुरस द्वारा समर्दित हरताल से चांदी के सूक्ष्म पतरो को लपेटकर, तीव्र निर्धूम अग्निपर तपावें। हरताल मे से जब धूम निकलना बद होजाये, तब पुन

१-प्रसङ्गादर्कक्षीरलाभोपायप्रदर्शनम्। अनेनैव विधिना प्रचुरक्षीरप्राप्तिर्भविष्यति। २-'नरकचूर' इति ख्याता हरिद्राभा भवत्योषधि। ३-वस्त्राग्निभि, वस्त्राणि च द्विप्रस्थमितानि वेष्टनीयानि। ४-गुणकथनं प्रसिद्धत्वादुपेक्षितम्। ५-पारदादीनां प्रत्येकं सार्धद्वितोलमानम्। ६-मृद्वस्त्रादिप्रलिप्ताम्। ७-कोकिलानामाढको ग्राह्य। ८-'घण' इति प्रसिद्धेन लोहकाराणा यन्त्रविशेषेण। ९-वङ्ग च शुद्ध ग्राह्यम्।

५ तालेन[1] लिप्त्वा खलु सप्तकृत्वः प्रतापितानां[2] रजतच्छदानाम्।
स्यात् कारवेल्लस्वरसप्लुतानां[3] विभूतिरच्छा त्रिचतुःपुटौद्यैः[4] ॥ ११ ॥
६ मृत्स्नाशरावपुटसंकलितं प्रवालमूलं[5] वनोपलगणैर्विदहेत् प्रकृष्टम्।
वल्लोन्मितं रसमितं भजतां नराणां प्रावालिकं प्रबलमेहनिषेधनिष्ठम् १२
७ वीजवन्धेक्षुरक्[6]क्षीतवांशीसिह्लकसालिमम्।
शुक्तिविद्रुमयोर्भूती मज्जानावक्षपथ्ययोः[8] ॥ १३ ॥
शिलाजतु[9] त्रुटिर्वङ्गः सर्वं संचूर्ण्य माक्षिकैः।
वटीर्विधान सुखदा बहुमूत्रप्रमेहिणाम् ॥ १४ ॥
८ कलय नयननिष्कं दुग्धपाषाणखण्डं[10]
कुडवसदृशि पिण्डे निम्बसंवर्तिकानाम्[11]।
करिपुटपरिपाट्या पाच्य तस्माद्द्विवल्लं
स्रवति चरमधातौ[12] छुच्छिकाभिः[13] प्रदेहि ॥ १५ ॥

हरताल का लेप करके इन पतरो को इसी तरह तपावें। इस तरह सातवार तपाकर, इनको, वन्य करेले के रस से (अथवा, निंबू-स्वरस से) खरल करके गजपुट देवे। इस तरह तीन चार पुट देने से चादी की स्वच्छ भस्म बन जायेगी। यह भस्म प्रमेह आदि विकारों मे आशु असर दिखाती है ॥ ११ ॥ प्रवाल-मूल के चूर्ण को, अर्क-दूध से, अथवा घी-कुवार के रस से, अथवा गाय या बकरी के दूध से खरल करलें। फिर, शराव-सपुटित करके बन गोवरी का गजपुट देकर उसकी भस्म बनाले। इस 'प्रावालिक-रस' का एक वालभर मात्रा मे सेवन करने से, प्रबल प्रमेह निष्ठा-शून्य बन जाता है ॥१२॥ वीजबन्ध, तालीमखाना के मूल, जेठीमध, वंशलोचन, लोवान, सालिम, शुक्ति-भस्म, प्रवाल भस्म, बहेडा तथा हरडे की मींगी, शुद्ध-शिलाजित, इलायची, वगभस्म इन सभी द्रव्यो को खरल मे एकत्र खूब घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बनाले। इस चूर्ण की, मधुयोग से गोलिया वाधले। यह 'सुखदा' वटी बहुमूत्र और प्रमेह मिटाती है ॥ १३-१४ ॥

सोलह तोलाभर निंव की नूतन कोपलो को पीसकर पिण्ड बनाले। फिर, इसमे करीव दो तोला घीयाभाटा के टुकडे को रखकर, शराव सपुटित करके, गजपुट

१-नीम्बुरसपिष्टेन हरितालेन। २-निर्धूमाङ्गारोपरि स्थापयित्वा तालधूमक्षयावधि प्रतापितानाम्। ३-वन्यकारवेल्लस्य 'वाडकरेला' इति प्रसिद्धस्य रसेन, तथा निम्बुरसेनापि, इति द्वयोर्विकल्पः। ४-प्रशस्तपुटैर्गजपुटैरित्यर्थः। गुणाश्च प्रसिद्धत्वेन नाभिहिता। ५-प्रवालमूल गव्याजार्कक्षीरकुमारिकामासान्यतमसहितम्। ६-'वीजबन्ध' नाम्ना लोकप्रसिद्धानि वीजानि। ७-क्षीतशब्देन यष्टीसत्त्वम्। सिह्लकशब्देन च 'वेरजा' इति प्रसिद्धनिर्यासविशेषस्य सत्त्व गृह्यते। ८-द्विवचनान्तम्। ९-शिलाजतु च शुद्धं ग्राह्यम्। १०-घृताश्मखण्डम्। घृताश्मा च 'घाईभाटा' इति ख्यात। ११-निम्बनवदलानामिति। "संवर्तिका नवदलम्" इति कोशात्। १२-शुक्रे। १३-तक्रै।

९ पूगप्रसूनचूर्णस्य गद्याणं सार्धशर्करम् ।
सद्यस्कपयसा पेयमुशनःक्षरणादिपु ॥ १६ ॥
१० वलावर्मोञ्चटावीजमापैः साँमिसितं रजः ।
दुग्धानुपानतः सायं रेतो गृह्णाति विस्रुतम् ॥ १७ ॥
११ कृष्णगुन्द्राश्मभेदाब्धिशोपदारुसितारजः ।
शुक्रदोपं निहन्त्येव दुग्धैरर्धसितोपलम् ॥ १८ ॥
१२ गुन्द्रत्वक्फलपुष्पाणि कैङ्किरातानि चूर्णयेत् ।
लसीकया सखण्डानि रेतसः क्षरणे पिबेत् ॥ १९ ॥
१३ कलांशभृङ्गं द्विसितं सुजातवब्बूलशिम्ब्याः शुचिकान्ति चूर्णम् ।
सद्यस्कदुग्धेन सह प्रभाते निगीर्णमुन्मूलयति प्रमेहम् ॥ २० ॥
१४ चत्वारः शर्करायाः द्वौ त्रुटेः स्फटिकायाश्च तोलकः ।
तिस्रः पुंस्यः परं शस्ता मेहे दाहसखे सखे ! ॥ २१ ॥

की अग्नि से फूकदें । इसमें से दो वाल मात्रा को छाछ के साथ लेवें । यह शुक्र-स्राव को मिटाता है ॥ १५ ॥ शुक्र-स्राव में, सुपारी के पुष्पचूर्ण को, छह मापा मात्रा में, धारोष्ण-दूध के साथ पीने से उत्तम लाभ होता है ॥ १६ ॥ खरेंटी के वीज, कपिकच्छु, और उटींगण के वीज (अथवा श्वेत गुजाफल) प्रत्येक एक एक मापा तथा इन सभी द्रव्यों से अर्धमात्रा में रजतभस्म, इन सबको एकत्र मिलाकर दुग्धानुपान पूर्वक सायंकाल के समय सेवन करने से शुक्र स्राव बंद हो जाता है ॥ १७ ॥ पलाश का निर्यास, पापाणभेद, समुद्र-शोप, देवदारु और मिश्री इनके समभाग चूर्ण में, चूर्ण से अर्धमात्रा सितोपलादि मिलाकर, इसमें से एक मापाभर दुग्धानुपानपूर्वक लेने से, शुक्रदोप नष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥ बबूल के गूंद, छाल, पुष्प, फल इनको पीसकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनाले । इस चूर्ण को, मिश्री मिश्रित लस्सी के साथ लेने से शुक्र-स्रवण बंद हो जाता है ॥१९॥ पकी हुई बबूल की सेम का शुभ्र चूर्ण, रक्त चंदन और श्वेतचंदन का चूर्ण तथा इनके चूर्णों से सोलहवां भाग जितना तज का चूर्ण, इनको मिलाकर, धारोष्ण-दूध के साथ प्रातःकाल लेने से प्रमेह निर्मूल हो जाता है ॥ २० ॥

शर्करा चार तोला तथा इलायची और स्फटी प्रत्येक दो दो तोला इनको एकत्र मिलाकर समान मात्रा में तीन पुडी (Doses) बनाले । प्रतिदिन दूध के साथ एक

१–शुक्रक्षरणप्रभृतिपु । २–वर्म कपिकच्छु । उच्चटा 'उटींगण' इति प्रसिद्धा, तस्याः सरोमाणि वीजानि, यद्वा श्वेतगुञ्जाफलविदलानि, द्वयमपि यौगिकमत्र । ३–सर्वापेक्षयाऽर्धसितम् । ४–कृष्णगुन्द्र पलाशनिर्यास । ५–वब्बूलभवानि निर्यासवल्कलफलपुष्पाणि । ६–मिलित दुग्धजल लसीकाशब्देनाभिधीयते लोके । सौजाकेऽपि देयमिदम् । तैलाम्लादि च वर्ज्यम् । ७–भृङ्ग 'तज' इति ख्यातम् । ८–वचनविपरिणामेन चत्वार द्वाविलाभ्या सामानाधिकरण्यम् । ९–मात्रा 'पुडी' इति अत्र 'पडीका' इति गूर्जरेऽभिधीयते ।

१५ खार्जूरीफलौषधकदक्षिणगोक्षुराणि
प्रत्येकमक्षदशकानि सकोलकानि ।
एभ्यः सिता द्विरिति सर्वमिदं विचूर्ण्य
खादेद्घृताक्तमुषसि क्रमशः प्रमेही ॥ २२ ॥

१६ सद्योभुवा गोपयसा प्रपीता विलोड्य शाखोटकदुग्धबिन्दवः ।
हरन्ति मेहानपि दीर्घकालजान् गुरूपदेशा दृढसंशयानिव ॥ २३ ॥

१७ मार्कण्डी कुडवोन्माना द्वे जीरे द्वे च चन्दने ।
भद्रदारुर्मिसिर्दार्वी धान्यं चेत्याक्षिकं पृथक् ॥ २४ ॥
सूक्ष्ममेषां रजः प्रस्थे क्षौद्रे पाकाद्घने न्यसेत् ।
लेहोऽयं हन्ति मेहार्शःकासश्वासवमिभ्रमान् ॥ २५ ॥
शीर्षतापामवातघ्नो रुच्यो नेत्र्यो विबन्धभित् ।
किं चात्र तरुणी द्राक्षा कुङ्कुमाद्यपि निक्षिपेत् ॥ २६ ॥

१८ चूर्णस्य शाणं सुरनायिकायास्तैलेन किंचित् करयुग्मकेन ।
चतुर्दशाहान्युषसि प्रपीतं मेहोर्ध्ववातौ क्षणुते यतानाम् ॥ २७ ॥

पुडी लेने से, हे मित्र! दाहपूर्ण प्रमेह में परम लाभ देती है ॥ २१ ॥ खर्जूरीफल, गोदुग्ध में शुद्ध किये गये दक्षिणी गोखरू तथा सूठ प्रत्येक साढे दश दश तोला लेकर वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनाले। इस चूर्ण में द्विगुणित मिश्री मिलादे। प्रमेहरोगी इस चूर्ण में घृत मिलाकर, उष काल में, नियमित सेवन करें। अर्ध तोला मात्रा में ४८ दिवस पर्यंत लेने से क्रमश प्रमेह शान्त हो जाता है ॥ २२ ॥ सद्यःप्रसूता गाय के दूध मे शाखोटक (सिहोरा, भूतावास) वृक्ष के दुग्ध बिन्दु डाल कर तथा मथकर पीने से, जीर्ण-प्रमेह भी, गुरु के उपदेश से दृढ-सशयो की तरह, दूर हो जाते है ॥ २३ ॥

सनाय के पत्ते सोलह तोला, श्वेत-श्याह दोनो जीरे, श्वेत-रक्त दोनो चंदन, देवदारु, सौंफ, दारुहरिद्रा तथा धनियाँ प्रत्येक एक एक तोला, इनका एकत्र वस्त्रपूत बारीक चूर्ण बनालें। अब, चौसठ तोले शहद को अग्नि से पकावे। शहद जब घट्ट हो जाय तब उपरोक्त चूर्ण उसमें डाल देवें। यह अवलेह, प्रमेह, अर्श, कास, श्वास, वमन, तथा भ्रांति को दूर कर देता है। यह शीर्षगत दाह एव आमवात मे हितावह, रुचिकर, नेत्रो को लाभदायी तथा विबन्ध-भेदक है। इस लेह मे, तरुणी (गुलाब) पुष्प, द्राक्षा, केसर आदि मिलाने से, इसकी गुणसपदा मे विशेष अभिवृद्धि होती है ॥ २४-२६ ॥

आंबाहलदी के करीब तीन माषाभर चूर्ण को, करीब अठारह माषाभर तिल-

१—खर्जूरीफलशुण्ठीदक्षिणदेशोद्भवगोक्षुराणि। गोक्षुराणि च गोक्षीरशुद्धानि ग्राह्याणि। पथ्यमत्र लवणवर्जितमुद्गयूपगोधूमफुल्किके। २—कोल कर्षार्धपर्याय.। ३—उक्तनाम्ना प्रसिद्ध-वृक्षस्य क्षीरबिन्दव.। ४—आम्रगन्धिहरिद्राया लोके 'आमीहलद' इति ख्याताया।

१९ यथा बहुमूलत्रत्वे तिला वैद्यैः किलादृताः ।
तथा न किंचिदपरं भेषजं प्रतिभाति मे ॥ २८ ॥

-इति प्रमेहचिकित्सा ।-

अथोदावर्तचिकित्सितम् ।

१ निरुद्धधूममुत्स्वेद्य फलानि मरुशाखिनः ।
लवणक्षारजरणदीप्यत्र्यूषणहिङ्गुभिः ॥ १ ॥
मर्दिते दध्नि निक्षिप्य शोषयेद्रातपे चिरम् ।
सायं तानि निगीर्णानि प्रातः साधु विरेचयेत् ॥ २ ॥

तैल के साथ, चौदह दिवसपर्यंत नियमित, उषःकाल मे, पीते रहने से, पथ्य मे रहने-वाले के, प्रमेह और सुजाक क्षीण हो जाते है ॥ २७ ॥ बहुल-मूत्रत्व की उत्तम औषधि रूप से, कृष्ण-तिलों का वैद्यसमाज में विशेष सम्मान है। इस विषय मे मेरा यह अभिप्राय है कि वस्तुतः इस रोग मे इससे उत्तम अन्य औषधि है ही नहीं (कृष्ण-तिलों की प्रशंसा मे, कितनी उत्तम उक्ति है यह!!) ॥ २८ ॥

– प्रमेह चिकित्सा समाप्त –

–उदावर्त चिकित्सा (कुल प्रयोग २१)–

करीर के फलों को कलईदार एक स्वच्छ भगोनी में डालकर, भगोनी के मुखपर बराबर आ जाये ऐसी एक थाली से उस भगोनी को ढकदें। थाली मे थोडा पानी भरदें। फिर, अंगीठी की मन्दाग्नि से उन्हे पकावे। भगोनी से वाष्प बाहर न निकले यह ध्यान में रखें। कुछ ही समय में करीरफल स्विन्न हो जायेंगे। अब, इन स्विन्न फलों मे, लवण, क्षार, जीरा, अजमोदा, त्रिकटु तथा घी मे भूनी हुई हींग के सूक्ष्म चूर्ण को डाल, उनको चमचे से हिलाकर पूर्ववत् थाली ढककर कुछ समय तक पुनः मंदाग्नि से पकावें। फिर, इन सब द्रव्यों को दही के मट्ठे मे डालकर, कुछ दिनों तक सूर्यताप मे रखकर सुखाले। सायकाल के समय इनका सेवन करें। प्रातः सुखविरेचन होगा १–२

५–कर्पद्वयमितेन। यद्यप्यत्र कर्पद्वयोक्तिस्तथाऽपि गद्याणत्रितयोन्मितमेव तैल ग्राह्यमिति रहस्यम्। ६–प्रमेहसौजाकरोगौ। ७–यतात्मना पथ्यशीलिनामिति यावत्। पथ्यं च वज्रकगोधूमान्यतरपोलिका लवणरहिता स्वल्पसैन्धवा वा, मुद्गाढकीसूप, भक्तं, दुग्ध योग्यशर्करं, यथारुचि पेयम्। किंतु द्विप्रस्थतो न्यून न पेयम्। शाकादिकं घृतसिद्धमिति तैलाम्लमरिचादि तीक्ष्णमन्यत् सर्वमपथ्यम्।

१–कृष्णवर्णा। २–उदावर्तशब्दश्चात्र वातविड्रोधमात्रवाची, तेनात्र सर्वे योगा सुखविरेचनकरा वातानुलोमनाश्च सगृह्यन्ते। ३–करीरस्य।

२ कलाकन्देन पिहितामरुणां[2] द्वित्रिमापकाम् ।
नक्तं निगिरतां प्रातः कोष्ठशुद्धिः प्रजायते ॥ ३ ॥
३ कालाञ्जनीजनूंपि[3] भ्रष्टानि मनाग्घृतेन वीजानि ।
पिष्ट्वा सितया गिल रे सुखेन किल रेचनं भविता ॥ ४ ॥
४ मूत्रार्द्रखर्वपथ्याचूर्णं[4] वातारितैलसंभृष्टम् ।
पट्वयवजहिङ्गुदीप्यकसखमनुलोमयति मूढपवमानम् ॥ ५ ॥
५ अजातवीजा कृतमालशिम्वी सखर्वपथ्या तलिता घृतान्तः ।
प्रयुक्तपादांशपट्ठ· कवोष्णैर्गीर्णा जलैर्हन्ति विवन्धशूलम् ॥ ६ ॥
६ सैन्धवसनामुक्तिशिवाशुण्ठीशतपुष्पिकाकृतः क्षोदः ।
नाम्ना पञ्चसकारः शकृति विवद्धे समुपयोज्यः ॥ ७ ॥
७ तरुणी छिपट्ठ द्विजरणयवजवराव्योपटङ्कणत्रुट्यः ।
मार्कण्डी[5] सर्वसमा चूर्णमिदं हन्ति विष्टम्भम् ॥ ८ ॥

दो तीन माशा मजिष्ठा के चूर्ण को कलाकन्द में मिलाकर रात्रि के समय खा लेने से, प्रातः कोष्ठशुद्धि हो जाती है ॥ ३ ॥ कालेदानों को घी मे थोडा भूनकर, फिर, मिश्री मिला पीसकर फांक जायें। इससे निश्चय सुखविरेचन होता है ॥ ४ ॥ गोमूत्र में जवाहरडे के चूर्ण को, तीन दिवसपर्यंत भिगोकर रहने दें। प्रतिदिन गोमूत्र वदलते रहना चाहिये। चतुर्थ दिन इस चूर्ण को छायाशुष्क करके, एरड तैल मे भूनले। फिर, इसमें काला नमक, यवक्षार, हींग तथा अजवायन का चूर्ण मिलाकर, इसकी फांकी लेने से मूढ-वात का अनुलोमन होता है ॥ ५ ॥

गुडूची, अमलतास की कच्ची सेम तथा जवाहरडे इनके चूर्ण को घी में तल लेवें। (उतने ही घी में तलें जितने से तलजाने पर फिर घी अवशिष्ट न रहे।) फिर, इस चूर्ण में, चूर्ण से चतुर्थ भाग कालानमक मिलादें। कवोष्ण जल के साथ इसकी फाकी लेने से विवन्ध तथा तज्जन्य शूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥ सैंधव, सनाय, शिवा (हरडे), शुंठी तथा सौंफ इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण वनालें। इसको 'पचसकार' चूर्ण कहते है। मल के विवन्ध मे इसका उपयोग करें ॥ ७ ॥ गुलावपुष्प की पखुडियां, सैंधव, काला-नमक, श्वेत-कृष्ण जीरा, यवक्षार, हरडे, त्रिकटु, टकण तथा इलायची, इनका एकत्र चूर्ण तथा इस चूर्ण के समान भाग जितना सनाय का चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर यथामात्रा मे लेने से विष्टम्भ नष्ट हो जाता हे ॥ ८ ॥

१-'वरफी' इति पर्यायान्तर लोकेऽस्य। २-मञ्जिष्ठाम्। ३-'मिरचाई', 'काला-दाना' इति ख्यातानि। ४-खर्वपथ्या 'जवाहरडे' इति प्रसिद्धा, ता गोमूत्रोषिता एरण्डतैलसतलिता कृत्वा पट्वादीनि द्रव्याणि योग्यानि समेल्य चूर्णयेदिति। ५-मार्कण्डी 'मनाय' इति प्रसिद्धा।

८ माषाः षट् त्रिपुटाद्विजीरधनिकामिश्युग्रगन्धात् पृथक्
प्रोक्तं सार्धपलं सुदाडिमशिवासिन्धूद्भवाख्यं तथा ।
कर्षं स्यादिह तिन्तिडीकममलं मार्कण्डिकायाः पलं
सार्धं चूर्णमिदं विबन्धहुतभुग्ग्लान्यारुचिध्वंसनम् ॥ ९ ॥
९ द्विजीरविश्वपुष्पैलातीक्ष्णदीप्याभयाच्छदम् ।
तिन्तिडीकं सधान्याकं पृथक्कोलचतुष्टयम् ॥ १० ॥
द्वितोलका दारुसिता पट्तोला त्रिवृता स्मृता ।
सौवर्चलात् सैन्धवाच्च मार्कण्ड्याः कुडवः पृथक् ॥ ११ ॥
पक्वदाडिमबीजानि तुलितानि शरावतः ।
द्रव्याण्येतानि मसृणं चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ १२ ॥
एकेन बीजपूरेण निम्बूकैः प्रस्थसंमितैः ।
चूर्णेनानेन शाम्यन्ति मान्द्योदावर्तसंभवाः ॥ १३ ॥
१० प्रस्थे निम्बूकपयसि कुडवं जगदौषधम् ।
सौवर्चलं च कुडवं रामठं पलिकं क्षिपेत् ॥ १४ ॥
तदौषधं रसे शुष्के भर्जितं भ्राष्ट्रपांसुभिः ।
उद्गारशोधनं रुच्यं मूढवातानुलोमनम् ॥ १५ ॥

छोटी इलायची (अथवा श्वेत निशोथ), श्वेत-कृष्ण जीरा, धनिया, सौंफ तथा कुलिंजन प्रत्येक छह माषा, परिपक्व दाडिम, हरडे तथा सैंधव प्रत्येक ४½ तोला, इमली एक तोला तथा सनाय ४½ तोला इन सभी द्रव्यों का एकत्र सूक्ष्म चूर्ण बनालें । यह चूर्ण विबन्ध, अग्निमांद्य तथा अरुचि का विध्वंस कर देता है ॥ ९ ॥

सफेद तथा काला जीरा, सूठ, लौंग, इलायची, मरिच, अजमोदा, हरडे, तमाल पत्र, इमली और धनिया प्रत्येक चार तोला, दालचीनी दो तोला, निशोथ (श्वेत तुरबुद) छह तोला, सौवर्चल, सैंधव और सनाय प्रत्येक सोलह तोला, परिपक्व दाडिम के दाने बत्तीस तोला इन सभी का वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनालें । अब, इस चूर्ण को एक बीजपूर के रस की तथा निंबू के एक प्रस्थ (चौसठ तोला) रस की यथाक्रम भावना देवें । यह चूर्ण अग्निमांद्य तथा उदावर्त से उत्पन्न रोगों को शमन करता है ॥१०-१३

निंबू के चौसठ तोले रस में, सूठ तथा सौवर्चल प्रत्येक सोलह तोला तथा चार तोला भूनी हुई हींग डाल दें । निंबू रस को मंदाग्नि से पकावें । जब निंबूरस शोषित हो जाये तब अवशिष्ट औषधीय द्रव्य को भट्टी की गरम गरम मिट्टी की अग्नि से भूनलें । यह उद्गारशुद्धि करती है, रुचिवर्धक है, तथा मूढवातानुलोमक है ॥ १४-१५ ॥

१—उग्रगन्ध 'कुलिञ्जन' इति प्रसिद्धो वचाविशेषः । २—पलविशेषणम् । ३—तीक्ष्ण मरिचं, दीप्या अजमोदा, छद तमालपत्रम् । ४—'दालचीनी' इति प्रसिद्धा । ५—त्रिवृताशब्देन चात्र यवनभाषाप्रसिद्धतुरबुदनाम्नस्त्रिवृताविशेषस्य ग्रहण, स च श्वेतवर्णो ग्राह्य । ६—बीजपूरनिम्बूकशब्दावत्र लाक्षणिकौ लक्ष्यश्च तद्रस । ७—रोगा इति शेष । ८—शुण्ठी ।

११ तीक्ष्णानि धौतशुभ्राणि सममेभिः पटूत्तमम्।
मार्कण्डी गौर्जरी[1] ग्राह्या सर्वसंभारसंमिता ॥ १६ ॥
विचूर्ण्य भावनास्तिस्रो दत्त्वा निम्बूकनीरतः।
गद्याणसंमिता वट्यः सानाहं घ्नन्ति विड्ग्रहम् ॥ १७ ॥
१२ व्योषद्विजीरदहनत्रिपुटाकल्लसैन्धवात्।
षड् गद्याणाः पलद्वन्द्वं सौवर्चलमनुत्तमम् ॥ १८ ॥
दाडिमीफलत प्रस्थौ प्रस्थो निम्बूकत स्मृतः।
निम्बूकदाडिमीवारि पट्टं पक्त्वा घृतैः सह ॥ १९ ॥
खार्जूरीं द्राक्षां सितां तत्र ह्याम्रां संक्षोद्य मिश्रय।
शेषद्रव्याणि संचूर्ण्य संमेल्य कुरु पिण्डिकाम् ॥ २० ॥
पाचिनी दीपिनीं रुच्यां मूढवातानुलोमिनीम्।
वमनानाहमन्दाग्निशूलघ्नीं साधु सेवय ॥ २१ ॥
१३ द्वे पले मृदुरेचिंन्याः पथ्या पाथोधितोलिका।
भद्रैला कृष्णबीजानि द्राक्षा कन्दैः सुमोद्भवः ॥ २२ ॥

मरिच के दानों को, पानी से धोकर ऊपर की त्वचा निकाल, स्वच्छ बनालें। मरिच समभाग सैंधव तथा मरिच एवं सैंधव दोनो के समान भाग सनाय (धोली मींढी) लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण करले। इस चूर्ण में निंबू रस की तीन भावनायें देकर छह मासा प्रमाण वटिया बाधलें, आनाहसहित मलग्रह को ये दूर कर देती हैं ॥१६—१७

त्रिकटु, श्वेत और श्याहजीरा, चित्रक, इलायची, अकलकरा तथा सैंधव प्रत्येक तीन तीन तोला लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें। खर्जूरी फल, द्राक्षा तथा मिश्री प्रत्येक आठ आठ तोला लेकर बारीक पीस चटनी करलें। दाडिम का १२८ तोला रस तथा निंबू का चौसठ तोला रस दोनों को एक करके उसमे सौवर्चल चूर्ण तथा घी प्रत्येक आठ तोला प्रमाण डाल देवें। अब इस रस को अग्नियोग से पकावें। जब रस जलकर घट्ट होने लगे तब उसमें उपरोक्त त्रिकटु आदि के चूर्ण को तथा खर्जूर आदि की चटणी को मिला कर पिण्ड बनालें। रस को उकाल कर उतना ही शेष रखना चाहिये जितने से चूर्ण तथा चटनी का पिंड बंध जाये। इस पिंड मे से यथामात्रा सेवन करना चाहिये। यह रुचिकर दीपन, पाचन तथा मूढवातानुलोमक है तथा वमन, आनाह, मदाग्नि और शूल का शमन करता है ॥ १८—२१ ॥

सनाय आठ तोला, हरडे चार तोला तथा बडी इलायची, काला दाना, द्राक्षा

१—गुर्जरदेशोद्भवा 'सूरती' इति प्रसिद्धा। २—एला। ३—दशतोलकमितम्। ४—सप्तम्यन्तम्। ५—द्विपलमितं। ६—खर्जूरीफलम्। ७—मार्कण्ड्या। ८—चतुस्तोलकेति यावत्। ९—लोके 'मिरचाई' इति प्रसिद्धानि, 'कालादाना' इति च। १०—गुलकन्द, स च तरुणीपुष्पजो ग्राह्यः।

पृथक् पृथगिहैतेभ्यो ग्राह्यौ द्वौ द्वौ च तोलकौ ।
पृथक् प्रकुञ्चयुगलमुपलासर्पिषोः पुनः ॥ २३ ॥
कल्कीकृत्येदमखिलं मोदकांस्त्रिंशदाचरेत् ।
तेष्वेकं भक्षयेन्नक्तं कोष्णं चानु पिबेज्जलम् ॥ २४ ॥
तावद्विरिच्यते जन्तुः शीतं यावन्न सेवते ।
अनेन परिशाम्यन्ति व्याधिव्यूहा विबन्धजाः ॥ २५ ॥
१४ हारहूरा पिचून्माना तदर्धा तु सनामुकी ।
तदर्धं सैन्धवं तस्मात्तृतीयांशे तु जीरके ॥ २६ ॥
सौरभार्थं मनागेला श्लक्ष्णं पिष्ट्वा चरेद्गुटीः ।
सितारजसि मसृणे लोठिता निगिलेन्निशि ॥ २७ ॥
नखम्पचोष्णमम्भोऽनुपिबेत् प्रातर्विशुद्धये ।
नातः परतरो योगो दृष्टः सुखविरेचने ॥ २८ ॥
१५ वलक्षस्फटिकाक्षोदः पुराणो द्विगुणो गुडः ।
गुटी विबन्धमुन्मूल्य विदधाति चमत्कृतिम् ॥ २९ ॥
१६ धूमयन्त्रगतमाखुमलस्य भस्म साम्बु वसनेन विशोध्य ।
क्षारमस्य कुरु तं मधुमिश्रं देहि देहि नलबन्धसमीरे ॥ ३० ॥

और गुलकंद प्रत्येक दो दो तोला मिश्री और घृत प्रत्येक आठ तोला, इन सभी द्रव्यों को एकत्र पीसकर कल्क बनालें। इस कल्क के समानभाग मे तीस मोदक बाधे। एक मोदक रात्रि के समय कवोष्ण जलानुपान पूर्वक खायें। इसके लेने से तबतक विरेचन होता ही रहेगा जब तक शीतल पदार्थों का सेवन न किया जायेगा। इस प्रयोग से मलावरोधजन्य विकारसमूह का सर्वंश नाश हो जाता है ॥ २२–२५ ॥

द्राक्षा दो तोला, सनाय एक तोला, सैंधव आधा तोला, जीरकद्वय दो दो माषा इन सबको एकत्र करके सुगध के आग्रह से थोडे इलायची दाने मिला खूब महीन पीसकर गुटिकायें बनाले। इन गुटिकाओ को मिश्री चूर्ण मे लपेटकर रात्रि के समय कवोष्ण जलानुपानसहित निगल जाये। प्रात निःसदेह विरेचन होता है। सहज विरेचन का इससे उत्तम अन्य प्रयोग नहीं देखा गया ॥ २६–२८ ॥

श्वेत-स्फटी की भस्म, भस्म से द्विगुणित पुराणा गुड, इन दोनो को मिलाकर गुटिका बाधलें। यह गुटी विबन्ध का उन्मूलन करके, चमत्कार दिखाती है ॥ २९ ॥ हुक्के से जली हुई तमाखु की भस्म-गुल को जलमे घोलकर वस्त्रपूत करके, उसका क्षार बनालें। नाभी के नीचे नाडीजाल मे अवरुद्ध वात के विकार से ग्रस्त देही (मनुष्य)

१–उपला सितोपला। २–द्राक्षा। ३–'नों निवाया' इति ख्यात कवोष्णमिति यावत्। ४–आखुमलस्य धूमयन्त्रगत भस्मेति न भ्रमितव्य, किंतु तमाखोर्मलं 'गुल' इति ख्यातं ग्राह्यम्। ५–मधु चोपलक्षणं, तेन ताम्बूलेनापि देय, मात्रा चास्य वल्लचतुष्टयम्। ६–देही जन्तुस्तस्य नलबन्धसमीरे नाभ्यध स्थितनाडीषु रुद्धवायौ, जलपरिस्रुत्तिजाते रोगेऽपि देयम्।

१७ पृथग्वल्लौ[1] समुत्फुल्लौ पर्पटक्षार[2]रामठौ ।
जलानुपानतो गीर्णौ स्यातामाध्मानहारिणौ ॥ ३१ ॥
१८ तरुणीप्रसूनचूर्णं भक्तेन[3] भजेत पाणितलतुलितम् ।
शिथिलीकृत्य पुरीषं पातयति शनैः सुखेन सखे ! ॥ ३२ ॥
१९ स्वादुपर्णी[4] त्रिगद्याणां पिष्ट्वा तोयेन गालयेत् ।
सितामावाप्य माषैकां प्रातः प्रातः पिबेत्त्र्यहम् ॥ ३३ ॥
विण्मूत्रबन्धपिटिकाग्रन्थिपित्तास्रजा रुजः ।
शाम्यन्त्यनेन योगेन गर्भं बिभ्रति सुभ्रुवः ॥ ३४ ॥
२० द्राक्षा[5] द्व्यहं[6] जले प्लाव्याश्चतुःपञ्चाङ्गुलाधिके ।
शनैर्विमर्द्य पाणिभ्यां तस्मिन्नेव जले पचेत् ॥ ३५ ॥
तृतीयांशं कषायं तं वाससा साधु गालयेत् ।
लोकैंत्वक्पुष्पघुसृणत्रिपुटापोट्टलीसखम्[7] ॥ ३६ ॥
पचेदष्टांशमधुना मध्वंशाम्बुक्षयावधि ।
ततोऽवतार्य निष्पीड्य पोट्टलीं विक्षिपेद्बहिः ॥ ३७ ॥

को, चार वालभर इस क्षार को मधु के साथ देनी चाहिये। (देहि देहि नलबन्धसमीरे कितनी रमणीय रचना है !") ॥ ३० ॥ पापडखार तथा हींग, इन प्रत्येक को दो दो वालभर लेकर अग्नि पर फुला लेवें। जलानुपान पूर्वक लेने से यह आध्मान को दूर कर देता है ॥ ३१ ॥ पाणितल भर गुलाबपुष्प चूर्ण को चावल के साथ सेवन करने से हे मित्र ! मल शिथिल होकर सुखपूर्वक, धीरे धीरे, बाहर निकल आता है ॥ ३२ ॥ अठारह माषा दुग्धिका (छत्तादूधी) को पानी से पीस वस्त्रपूत करले। अब, इस मे एक माशाभर मिश्री मिलाकर प्रात काल पीयें। इस तरह तीन दिवसपर्यंत प्रयोग करें। इससे मलमूत्र का विबध, फुसियां तथा रक्तपित्तजन्य विकार दूर हो जाते है। इतना ही नहीं, इस योगसे सुंदरिया गर्भ-धारण करती है ॥ ३३-३४ ॥ दो सो छप्पन तोला द्राक्षा को, दो या तीन दिवस पर्यंत २$\frac{1}{2}$ हस्त भर जल मे डुबो कर रहने दें। फिर, हाथ से उनको मसलकर, पानी मे मिला उसी पानी मे उकाले। तृतीयाश जल शेष रहनेपर इसको उतार, सावधानीपूर्वक वस्त्रपूत करले। अब, सूंठ, तज और लविंग प्रत्येक तीन तीन माषा, केसर और इलायची प्रत्येक छह माषा, इनको लेकर एक पोटली मे बांधले। उपरोक्त द्राक्षा कषाय में उससे अष्टमाश मधु मिलाकर, उपरोक्त द्रव्ययुक्त पोटली को इस द्रव में डाल देवें। अब इस द्रव को, मधुभाग जितने जलभाग के नि शेष हो जाने तक उकालते रहे। अब, पोटली को बाहर निकाल

१–अग्निसयोगादित्याक्षेप । २–'पापडखार' इति ख्यात क्षारविशेप । ३–ओदनेन । ४–दुग्धिकां लोके 'छत्तादूधी' इति ख्याताम् । ५–द्राक्षारिष्टोऽभिधीयते । द्राक्षाश्चाढकतुलिता । ६–त्र्यहं वा । ७–शुण्ठीत्वगलवङ्गानि पृथक् शाणिकानि, कुङ्कुमैले तु प्रत्येकं गद्याणमिते, इति रहस्यम् ।

काचकोशे रसं भृत्वा रक्षेच्छतदिनाधिकम्[1]।
पलार्धं वा पलं पीत्वा बन्धादिभ्यो विमुच्यते ॥ ३८ ॥
२१ सावुंनपिण्डीशकलं प्रवेश्य पायावुपेक्ष्येत।
भित्त्वा गाढविबन्धं पुरीषमञ्जः प्रवर्तयति ॥ ३९ ॥

— इत्युदावर्तादिचिकित्सा। —

अथोदरचिकित्सितम्[3]।

क्रूरः प्रकृत्या महिषप्रतिष्ठितो वहन् कराभ्यां करवालचर्मणी।
शूनाकृतिः पीतदुकूलसंमदः परेषु विस्फूर्जतु जाठरो गदः ॥ १ ॥
दुर्निरीक्ष्याः कृशाः पाशखड्गदण्डप्रहारिणः।
यकृत्प्लीहप्रभृतयो भीषणा गदिता गदाः ॥ २ ॥
१ शरकूर्चकत्रिवार्षिकघननादचरणसमुत्थितः क्वाथः।
२ जठरं भिनत्ति, किं वा मधुना घननादभूतिरेकैव ॥ ३ ॥

अच्छी तरह निचोडकर अलग रखदें। इस रसको एक काच के पात्र मे भरकर मुख बंद करके, शतदिवस पर्यंत उसी मे रहने दें तथा कालपाक होने दे। तदनन्तर, दो अथवा चार तोलाभर मात्रा में इसको पीयें। इससे विबधादि से मुक्ति मिलती है ॥ ३५–३८ ॥

साबुन के छोटे से टुकडे को गुदा में प्रविष्ट करके, कुछ काल तक प्रतीक्षा करे। कुछ ही देर में यह गाढ विबंध को तोडकर, मल को, वेग-पूर्वक, बाहर धकेल देता है ॥ ३९ ॥

— उदावर्तचिकित्सा समाप्त —

— उदरचिकित्सा (कुल प्रयोग २९) —

स्वभाव से ही क्रूर, भैंसे पर विराजमान, हाथ में कृपाण तथा ढाल धारण किये हुये, पीतवस्त्र से वेष्टित, उन्मत्त, शोथयुक्त-विकृत-आकृतिवाला उदरामय हमारे शत्रुओं पर ही गाज की तरह टूटपडे ॥ १ ॥

यकृत्-प्लीहादि रोग भीषण, कृश, दुर्निरीक्ष्य तथा पाश एवं दंड से प्रहार-करनेवाले कहे गये हैं ॥ २ ॥

मुंज, पलाश तथा त्रिवृत्-मूल का क्वाथ उदररोग को नष्ट कर देता है, अथवा पलाश-पंचाग की अकेली भस्म ही, मधु के साथ इस रोग का शमन कर देती है ॥३॥

१–शतदिनानन्तर कालपाकात् पेयमिति। २–क्षुद्ररोगे वक्ष्यमाणविधान मलप्रक्षालनप्रयोजनं 'साबुन्' इति लोकख्यातं, तस्य शकलम्। ३–विरेचनसाध्यत्वादस्य चिकित्सितमुच्यते। तत्रापि प्रथम द्वाभ्या तद्रोगमहिमप्रकाशनम्।

३ कटुका[1]निम्बगवाक्षी[2]व्याघ्री[3]द्वीपान्तरीयवटशृङ्ग[4]ाभीः[5] ।
रत्नज्योतिः[6] पथ्याः क्वथिताः[7] पीता गुडेन सराः[8] स्युः ॥ ४ ॥
४ प्रस्थं कुमारिकामांसात्[9] प्रस्थं पूषप्रसूनतः[10] ।
किं च पञ्च[11]पटुभ्योऽक्षान् स्वर्जिकाक्षारतः पलम् ॥ ५ ॥
गुरूक्तसंप्रदायेन[12] परिकल्प्य यथार्थम्[13] ।
अर्कं युक्त्या[14] विनिष्कास्य पाययेज्जठरापहम् ॥ ६ ॥
पथ्यं वज्रकधान्यस्य[15] फुल्लिका गुडसंयुता ।
पक्षावधि प्रदातव्या घृतं किं तु विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

कुटकी, निंब की छाल, इन्द्रवारुणीमूल, कण्टकारीमूल, उसब्बा (वट-शृङ्ग), बबूल, रतनजोत तथा हरडे प्रत्येक आठ तोला लेकर जोकुट करलें। सायकाल को, आठ अथवा बारह गुणित जल मे, मिट्टी के पात्र के भीतर, भिगोकर रखदें। प्रातः बत्तीस तोला पुराणे गुड के साथ क्वथित करके चतुर्थांश शेष रहने पर उतार, वस्त्रपूत करके, इस कषाय को काचपात्र में भरले। यह केवल सारक ही नहीं अपितु उपदंश, रक्तपित्त आदि का भी शमन करता है ॥ ४ ॥

गवारपाठे का गूदा तथा आकडे के फूल प्रत्येक चौसठ तोला, पांचो नमक प्रत्येक एक तोला तथा सज्जीखार चार तोला लेवें। गुरु-संप्रदाय के अनुसार, आठ तोला अजवायन भी लेवें। अब, पातालयंत्र की थाली मे, प्रथम, कुछ मात्रा मे, गवारपाठे का गूदा, उसपर अर्क-पुष्प तथा तदुपरि अजवायन की तह बिछादे। इनपर, फिर गूदा, गूदे पर पुष्प, पुष्प पर अजवायन की तह फैलादें। इसी क्रम से, पुनः एक के ऊपर एक तह बिछादें। अन्त मे, युक्तिपूर्वक अर्थात् पाताल-यत्र से इनका अर्क निकाल ले। इस अर्क को एक तोला मात्रा से उदर-पीडित को पिलावें। यह अर्क जठररोग शामक है। प्रयोगकाल मे, एक पक्षपर्यंत बाजरे के फूले गुड के साथ खाने चाहिये। घी का सर्वथा त्याग करदें ॥ ५-७ ॥

१-निम्बस्य त्वक्। २-इन्द्रवारुणीमूलम्। ३-कण्टकार्या अपि मूलम्। ४-लोके 'उसब्बा' नामतः प्रसिद्धिः। ५-बब्बूलस्य फलिका ग्राह्या। ६-अनेनैव नाम्ना ख्यातौषधिः। ७-क्वाथप्रक्रिया च सर्वौषधजातात् पृथक् द्वे द्वे पले गृहीत्वा यवक्षोदीकृत्य सायमष्टगुणे द्वादशगुणे वा जले मृद्भटान्तः समाप्लाव्य प्रस्थार्धेन पुराणगुडेन सह समुत्क्वाथ्य पादशेषं शृतमुत्तारयेत्, काचकूपीस्थितस्यास्य पलं द्विपलं वा पेयमिति। ८-सरा इति कथनमात्रं, तेनोपदंशरक्तविकारादिहरा इति बोध्यम्। ९-कन्यामध्यभागात्। १०-अर्कपुष्पतः। ११-पञ्चेति पदस्यावृत्त्या पञ्चपटुभ्यः पञ्चाक्षानित्यर्थः फलति। १२-यवानिका प्रसृतिमिताऽत्र क्षेप्याऽवश्यमिति सम्प्रदायः। १३-यन्त्रस्थाल्या पूर्वं किंचिन्मांसं प्रस्तार्य ततः पुष्पाणि ततः कारवीप्रभृतिकं ततस्तदुपरि मांसं ततः पुष्पाणि ततः कारवीप्रभृतिकं ततो मांसमित्थं पुनः पुनः प्रस्तारयेत्। १४-पातालयन्त्रयुक्त्या। मात्रा चास्य चतुःशाणिका प्रायः। १५-'बाजरी' इति लोकप्रसिद्धस्य।

५ कन्यारसाढके प्रलगुडतः कुडवद्वयम् ।
मण्डूरं टङ्कणं क्षारौ पञ्चैव लवणानि च ॥ ८ ॥
नवसादर इत्यस्माद्वर्गाद्देयं पलं पलम् ।
काचकोपे समाधाय मुखमस्य विमुद्रयेत् ॥ ९ ॥
अष्टाहमातपन्यस्तमेकीभूतरसं पिबेत् ।
यकृत्प्लीहोदरेष्वेनं कुमार्यासवमाख्यया ॥ १० ॥
६ चतुश्चतुर्थिकं कृष्णैलेयमक्षशतोत्तरम् ।
पादोनत्रितयं हिङ्गु किं तु हीनं द्विमाषतः ॥ ११ ॥
अधिखल्वतलं पिष्ट्वा प्रस्थे निम्बूकपाथसि ।
निक्षिप्य काचकोशान्तर्धृत्वा संमुद्र्य मुद्रया ॥ १२ ॥
अष्टाहमातपे सिद्धं हिङ्गुसंधानमित्यद. ।
यकृत्प्लीहोदरं हन्ति पीतं चेन्मात्रया ऽखिलम् ॥ १३ ॥
७ प्रस्थं निम्बूकनीरं द्विपलिकमनलोद्भर्जितं टङ्कणाख्यं
त्रिंशत् पीताः कपर्दोऽखिलमिति पटमृल्लिप्तभाण्डेऽवरुन्ध्यात् ।

गवारपाठे का गूदा २५६ तोला, पुराणा गुड ३२ तोला, मंडूर, टकण, क्षारद्वय (सज्जीखार तथा टकणखार) लवण-पचक और नवसादर प्रत्येक चार तोला, इन सबको एक काचपात्र मे रखकर उसके मुख को कपडमिट्टी करदे । आठ दिवस तक सूर्यताप मे इसे रखदे । जब सभी औषधीय द्रव्य एकरस होजायें, तब इसका उपयोग करें । यह रस कुमार्यासव कहलाता है । यकृत, प्लीहा तथा उदरामय मे प्रशस्त है ॥ ८–१० ॥

कृष्णवर्ण एलिया १९२ माषा (टिप्पणीकार के मतानुसार १६० माषा) तथा हींग ११० माषा इन दोनो को निंबू के चौसठ तोला रस मे खरल करलें । फिर एक काचपात्र मे भरकर, पात्रमुख को कपडमिट्टी करदे । आठ दिवसपर्यंत इसको सूर्य के ताप मे रख देवे । इस तरह सिद्ध इस ‘ हिंगु-सधान ’ को १½ तोले मात्रा से प्रारभ करके ४½ तोले मात्रा तक पीये । यह यकृदोदर एव प्लीहोदर को नष्ट कर देता है । प्रयोगकाल मे हलका भोजन पथ्य है ॥ ११–१३ ॥

निंबू का रस चौसठ तोला, अग्नि पर भूना हुआ टंकण आठ तोला तथा पीली कपर्दिका नग तीस, इन सबको एक पुराणे मृत्पात्र मे भरकर, पात्रमुख को कपडमिट्टी करदें । धान्यराशी मे चारो ओर से ढककर, एक पक्षपर्यंत इसे रहने दे । इस रसको

१–कुमार्यासवप्रक्रियाया न किंचित्तिरोहितम् । २–चतु पल, पलं चात्र चत्वारिंशन्माषप्रमाणम् । ३–कृष्णवर्णमैलेय, तस्यैव प्राशस्त्यात् । ४–पादोनत्रिपल दशाधिकशतमाषकप्रमाणमिति यावत् । ५–प्रस्थे पादोनप्रस्थे वा । ६–अष्टाहमातपे धृत्वेति सबन्ध । ७–ययामय सार्धतोलकमारभ्य सार्धचतुस्तोलकपर्यन्ताऽस्य मात्रा देया, पथ्य लघ्वशनम् । ८–पुराणे भाण्डे भृत्वा मृत्कर्पटतोऽवरुन्ध्यात् समुद्रयेदिति ।

पक्षं तद्धान्यराशौ परिपिहितमथोद्धार्य युक्त्या त्रिशाणं
निम्बूकद्रावमेनं पिब यदि जठरप्लीहगुल्मादिपीडा ॥ १४ ॥
८ कोष्ठनिविष्टोद्गततलकोरितसुषिरां निवेश्य काचघटीम् ।
सक्षारभाजनोपरि तेजोर्कः प्लीहहा ग्राह्यः ॥ १५ ॥
९ आवर्तितस्य दुग्धस्य दन्तीबीजैस्त्वगन्वितैः ।
दधिभावं गतस्याज्यं निरुद्वेगं विरेचनम् ॥ १६ ॥
१० दन्तीबीजानि संज्वाल्य निर्यज्ज्वालाशमावधि ।
निम्बुकाम्बुनि निर्वाप्य कोकिलानुपकल्पयेत् ॥ १७ ॥
ततः कलञ्जिका गन्धरसयोरर्धभागिका ।
कृष्णासौभाग्यमरिचयावशूकं तदर्धकम् ॥ १८ ॥
एकत्र घटयेद्गाढं पक्वनिम्बूकजैः रसैः ।
लवङ्गैलामृगमदैरधिवास्य वटीश्चरेत् ॥ १९ ॥

'निंबूक-द्राव' कहते है। इसे नौ माशा भर मात्रा मे पीये। उदरामय, यकृत्, प्लीहा, गुल्म आदि विकारो से, यह द्राव, नि संदेह मुक्त कर देता है ॥ १४ ॥

प्रस्तुत श्लोकमे, औषधीयद्रव्यो मे से अर्क, तैल आदि निकालने के लिये एक नूतन यन्त्र की विधि बताई गयी हे। यदि क्षार का अर्क निकालना हो तो प्रथम एक पात्र मे क्षार भरदें। फिर, काच की एक ऐसी स्थूलाकार शीशी-काचघटी ले जिसका तल भाग इस शीशी के करीब भीतरी मध्य-भाग तक उभरा हुआ हो। इस उभरे हुये भाग के मध्य में एक छिद्र करदे। अब, इस काचघटी को उपरोक्त क्षार पूर्ण पात्र पर इस तरह रखदें कि जिससे काचघटी का तल-भाग क्षार-पात्र के मुखपर बराबर बैठ जाये। अब, क्षार-वाले पात्र के नीचे अग्नि देने से क्षार का अर्क उपरि गत काचघटी के उभरे हुये तल-छिद्र में से निकल कर उसके पार्श्व-गत भाग के चारो ओर एकत्रित होता रहेगा। यह 'तेजोऽर्क' कहलाता है एव प्लीहोदर को दूर कर देता है। (अर्क निकालते समय काचपात्र को आर्द्र वस्त्र से परिवेष्टित रखना चाहिये।) ॥ १५ ॥

छसो चालीस तोला दूध को, उसमे त्वचासहित सोलह तोला दन्ती-बीजो को डालकर खूब उकाल लेवें। दूध जब शीतल हो जाये, तब उसका दही जमाले। इस दही को मथकर मक्खन निकाल घी बनाले। इस घी को चावलकी खीचडी और दूध के साथ खाये। जितने घृतके बिन्दु उतने ही उद्वेग-रहित विरेचन के वेग[1,1,1] ॥१६॥

दंती बीजो को अग्निमे तब तक जलावें, जब तक जलते जलते उनमे से निकलती हुई अग्निज्वाला शात न होजाये। अर्थात् अग्निमे जलकर जब बीज अगार तुल्य हो जायें, तब निंबू रस में बुझाकर इनके कोयले बनाले। दंतीबीज के इन कोयलो से अर्धभाग

१—अर्कतैलादीना नव्ययन्त्रविधिरयम्। २—तेजोऽर्क इत्युपलक्षण, तैलादिकमपि निष्का-श्यम्। काचकूपीमार्द्रवस्त्रेण वेष्टयेदिति रहस्यम्। ३—दशप्रस्थदुग्धे बीजकुडवम्। ४—कृशरया दुग्धेन च सहोपयोज्यम्, आज्यस्य च यावन्तो बिन्दवस्तावन्तो विरेकवेगा भवन्तीति ॥

तास्वेकां सुखरेकार्थी गिलेत् कोष्णेन वारिणा।
द्वे गुञ्जे गुटिकामानं रेकान्ते पथ्यमाहरेत् ॥ २० ॥

११ सिद्धा तैले रुचकजनुषि श्रेयसी नाम खर्वा
स्वच्छं सौवर्चलमिति युगं भागतो विद्धि तुल्यम्।
सर्पिर्भृष्टं सदृशमुभयोः शुद्धनेपालमेषां
वट्यो बद्धा द्विगुणगुडतो रेकमुद्भावयन्ति ॥ २१ ॥

१२ रसेन्दुस्तालमाषश्चेत् सुमं नीरसमाषकम्।
अनङ्कर्द्वयमेकत्र मर्दयेद्वारुणीफलैः ॥ २२ ॥
माषोन्मेषां वटीमस्य पयःपेटकगर्भिताम्।
निगीर्यानुपिबेदुष्ट्रीपयः शर्करया सह ॥ २३ ॥
तृषि क्षुधि निषेवेत दुग्धं केवलमौष्ट्रिकम्।
मासमात्रप्रयोगेण विद्रवेदौदरो दरः ॥ २४ ॥

जितनी मात्रा मे, पारद तथा गधक की कज्जली तैयार करें। इस कज्जली से अर्धभाग मात्रा मे, पिप्पली, सौभाग्य, मरिच तथा यवक्षार का चूर्ण लेवें। अब, दतीबीज के कोयलों को, कज्जली को तथा इस चूर्ण को, खरल में एकत्र करके निबूरस से खूब घोटे। फिर इसमे लविग, इलायची और कस्तूरी डालकर सुवासित करके, गुटिकाये बांधलें। सुखविरेचन के लिये इनमे से एक गुटि को, कवोष्ण जलसह निगीर्ण करे। गुटिकाये दो गुजाप्रमाण में बाधनी चाहिये। विरेचनोपरात, चांवल की खीचडी, दूध आदि पथ्य भोजन करना चाहिये ॥ १७-२० ॥

एरडतैल मे जवाहरडे को भूनकर सिद्ध करले। जवाहरडे से समान भाग स्वच्छ कालानमक लेवें। कालानमक तथा जवाहरडे दोनो के वजन बराबर नेपाल-बीजो को घृत में सेकले। इन सभी द्रव्यो से द्विगुणित गुड के साथ इनको पीसकर गोलियां बाधलें। विरेचनार्थ इनको उपयोग में लेवें ॥ २१ ॥

रसकर्पूर छत्तीस माषा तथा लविंग सातसो बीस माषा अथवा इससे अर्ध मात्रा मे, इन दोनो को एकसो (अथवा पांचसो) इन्द्रवारुणीफल के साथ एकत्र खरल मे घोट लें। इसकी एक माषा जितनी गुटिका को पेडे में रखकर खायें। उसके ऊपर ऊटनी का दूध ही पीयें। इस तरह मासावधि प्रयोग से, उपदशादि सहित उदररोग प्रशमित हो जाता है। अल्पोदररोग में एक मास तक प्रयोग करने की अथवा पथ्यादि के कठिन नियमो की इतनी आवश्यकता नहीं है ॥ २२-२४ ॥

१-एरण्डभवे। २-ह्रस्वा हरीतकी 'जवाहरडै' इति प्रसिद्धा। ३-रसकर्पूरम्। ४-कटपयादिक्रमेण व्यवस्थेयं, तेन षट्त्रिंशन्माषक इत्यर्थ। ५-लवङ्गम्। ६-विंशत्यधिकसप्तशतमाषकं, रेकोत्कर्षेच्छा चेदतोऽर्धम्। ७-शतसंख्यै। गुणोत्कर्षेच्छा चेत् पञ्चशत सख्यै.। ८-इन्द्रवारुणीफलै 'गरडूबा' इति लोकप्रसिद्धै। ९-'पेढा' इति ख्यातो भक्ष्यविशेषस्तद्गर्भिताम्। १०-उपदंशादिकेऽल्पोदररोगेऽपि देय.। किंतु तत्रैतदनुपानपथ्यमासमात्रप्रयोगा नादरणीया इति।

१३ प्रस्थं राजद्रुसारं[1] द्विगुणितसलिले प्लावितं रात्रिमध्ये
प्रत्यूषे मर्दितं द्राक् करकिसलयतः श्वेतवासःपवित्रम्।
शाणोन्मानस्य धूमैः सुरभिणि सुतरां रामठस्य स्फुरद्भि-
र्वह्निप्रोत्तप्तमृत्स्नाघटशकलतले पातयेद्द्वित्रिवारम्॥ २५॥
एवं संस्कार्य सम्यक् पुनरितरघटे हिङ्गुसौरभ्यभाजि
क्षिप्त्वा संशोष्य वस्त्यः स्थलकमलजलैर्भावयित्वा विधेयाः।
तास्वेकां गोस्तनीभिः सह पलतुलितां ध्वस्तदुर्गन्धहृद्यां
खादेदर्केण[2] दीप्यत्त्रुटिमिसिपिजनुषा विड्विबन्धक्षयाय॥ २६॥
१४ सारेवतंमैलेयं[3] विमर्द्य सलिलेन[4] मोदकाः कार्याः।
विविधविबन्धविघट्टननिपुणा निर्णीय निर्दिष्टाः[5]॥ २७॥
१५ द्राक्षामृकण्डभवमेग्रजपुष्पकन्द-
स्वाद्वीफलानि ससितानि सपूतनानि।
शाणत्रयाण्यथ वितुन्नकमेकशाणं[6]
भेदि गुरूक्तिविहितो मधुना गुडोऽयम्[7]॥ २८॥

अमलतास के चौसठ तोले गूदे को, रात्रि के समय, इससे द्विगुणित जल में भिगो देवें। प्रातः उसे हाथ से खूब मसलकर स्वच्छ वस्त्र से छान लेवें। अब, एक मृत्पात्र के भीतरी भाग को तीनमाषा हींग की धूम से सुवासित बनाकर उसे प्रज्वलित अग्निपर रख, उसमे उपरोक्त रस को, अल्पमात्रा में, दो तीन बार ठहर ठहरकर डालदेवें। इस तरह सस्कार प्राप्त इस रस को, तीनमाशा हींगकी धूमसे सुवासित मिट्टी के एक दूसरे घट में भर देवे। इस घट को अग्निपर रख तदन्तर्गत रस को सुखाकर, तल-लग्न शुष्क चूर्ण को निकाल लेवें। इस चूर्ण में गुलाबअर्क की भावना देकर चार चार तोलाभर टिकिया बांधलें। एक टिकिया को गोस्तनी अंगूरों में मिलाकर, अजवायन, इलायची और सौंफसे निकाले गये अर्क के साथ निगीर्ण करे। यह मल के विबध को नष्ट करती है। गोस्तनी अंगूर मिलाने से, अमलतास की अप्रिय गध दूर होकर, टिकिया रसना-ग्राह्य हो जाती है॥ २५–२६॥

एलिया सहित अमलतास के गूदे को पानी के साथ (पित्त-प्रधान व्याधि में गुलाब-जल के साथ) घोटकर उसके मोदक बनालें। यह मोदक अनेक प्रकार के मल विबध विकारों को दूर कर देते हैं। इस प्रयोग को अनुभूत करके यहा आलेखित किया है। यह मोदक, विशेष करके रातमें ही, अपना विरेचन-प्रभाव दिखाते है॥ २७॥

द्राक्षा, सनाय, सूठ, खजूर, गुलकंद, हरडे और मिश्री प्रत्येक नौ माषा तथा तुत्थ तीन माषा लें। प्रथम, खर्जूरी फलो के भीतर तुत्थचूर्ण भरकर कपडमिट्टी करके,

१–आरग्वधफलमध्यम्। २–तरुणीसुमार्कें। ३–सारग्वधम्। ४–पित्तोद्रेकश्चेत्त-रुणीसलिलेन। ५–एते मोदका निशि विशेषेण विरेचयन्ति प्रभावात्। ६–तुत्थ, यद्यपि तस्य शाणोक्तिस्तथाऽपि माषकत्रयमेव ग्राह्यं वमनसभवात्। ७–तुत्थं, स्वाद्वीफलोदरेषु

१६ एलं मृकण्डजा विश्वं पृथक् तोलकमात्रया ।
सौवर्चलं सैन्धवं च पृथक् तोलार्धमात्रया ॥ २९ ॥
विडङ्गं रेवतीकाष्ठं पृथक् तोलाङ्घ्रिमात्रया ।
मधुना वटिका बद्धा विबन्धवधदीक्षिता ॥ ३० ॥
१७ पथ्याधात्रीकणामूलत्वग्व्योषाब्दकृमिजित्सहम् ।
त्रिर्दन्ती सर्वतः सिन्धुगुणा श्यामा सिताऽथ षट् ॥ ३१ ॥
मधुना साधु संनीय मोदकः पलसंमितः ।
शिशिरेणार्णसा शीर्णो मोदकः शुद्धिमिच्छता ॥ ३२ ॥
१८ स्नुह्यर्कदुग्धमार्कवनिम्बुरसेषु पृथगेकरसदलेषु ।
भावितमभयाप्रस्थं प्रसरां निर्मलीकरोति जठराणि ॥ ३३ ॥
१९ स्नुक्क्षीरोक्षितचणको यावद्वारं कृशानुना तप्तः ।
क्रूरजठरमपि पुरुषं तावद्वारं विरेचयति ॥ ३४ ॥

भट्टी के प्रतप्त भोभल में पकावें । तदनन्तर, इनमें से तुल्य चूर्ण को निकाल दें । अब, इन खजूरी फलों को तथा द्राक्षा एवं गुलकंद को एकत्र यांत्रिक पीसकर कल्क बनावें । फिर इसमें सनाय आदि का चूर्ण मिला शहद से आमलक-फल प्रमाण में मोदक बांध सेवन करें। (मोदक बनाने की यह 'गुरुक्तिविधि' विधि है।) यह गुड-मोदक मलका भेदन करता है ॥ २८ ॥

एलिया, सनाय, और सूठ प्रत्येक एक एक तोला, सौवर्चल और सैंधव प्रत्येक आधा तोला, वायविडंग और रेवदचीनी प्रत्येक ¼ तोला इनके चूर्ण की मधु के साथ बाधी गई वटी, विबंध का वध करने में निपुण मानी गयी है ॥ २९–३० ॥

हरडे, आमला, पिप्पली-मूल, तज, त्रिकटु, मुस्ता, वायविडंग और तेजपत्र प्रत्येक तीन भाग, दन्ती बीज चार भाग, त्रिवृत तथा मिश्री छह भाग इनको एकत्र करके, चार मापा शहद के साथ चार तोला-भर मोदक बनालें। शीतल-जल के साथ सेवित यह मोदक कोष्ठकी शुद्धि करता हुआ वस्तुतः 'मोदकः' (मोद उत्पन्न करनेवाला) है ॥ ३१–३२ ॥

स्नुही-क्षीर, अर्क-क्षीर, भागरे और निंबू का रस प्रत्येक सोलह तोला लेकर, चौंसठ तोला हरडे को, इनसे भावित करें। यह हरडे कोष्ठ की सर्वश शुद्धि करती है ॥ ३३ ॥ स्नुहीक्षीर से भावित चने को अग्नि से जितनी बार परितप्त करके खायेंगे, उतनी ही

यथायथ विभज्य मृत्वा मृत्कर्पटं च दत्त्वा भ्राष्ट्रपांशुभि पाचयेत्, पुन फलेभ्यस्ततस्तुल्यमशेष निष्काश्य तानि फलानि द्राक्षापुष्पकन्दाभ्या सह कल्कीकृत्य मार्कण्डीप्रभृतिचूर्णं निक्षिप्य मधुना विनीय धात्रीफलप्रमाणान्मोदकानाचरेदिति गुरुक्ति ।

१–एलेयम् । २–'रेवतचीनी' नाना प्रसिद्धस्य काष्ठम् । ३–वटिकात्वापत्तिमात्रकारकमात्रेण । ४–त्रिवृत् । पञ्चगुणाऽपि सा गृह्यते । ५–हर्षद, तेन न पौनरुक्त्यम् । ६–दोषाद्यनुसारात्स्वरपितदेयमात्राप्रमाणमतो भक्षणीयम् ।

२० पाद्रांशपट्टूनि परं कृतमालशलाटुशकलानि ।
निम्बम्बुभावितानि श्यानक्षुण्णानि रेककारीणि ॥ ३५ ॥
२१ दीप्यकं सलवणं पटपूतैरैन्द्रवारुणरसैः प्रतिभाव्य ।
मात्रया गिलितमुष्णजलेन क्रूरमप्युदरमाशु भिनत्ति ॥ ३६ ॥
२२ यवानी प्रस्थतुलितां राजीं प्रस्थार्धसंमिताम् ।
तक्रे त्रिस्त्रिश्च निम्बूकरसैः शुचि विभावयेत् ॥ ३७ ॥
त्रिकटु त्रिफला वह्निः क्षारौ लवणपञ्चकम् ।
प्रत्येकं सप्तभिष्टङ्कैर्द्रव्याण्येतानि मेलयेत् ॥ ३८ ॥
तच्चूर्णं निम्बुकरसैस्त्रिकृत्वो दत्तभावनम् ।
निहन्ति जठरातङ्कं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ ३९ ॥
२३ मार्कण्डी सामुद्रं वुपो यवान्या धराक्षिवसुभागाः ।
दीनदय नाम रजो जठरगिरीन्द्रभेदने भिदुरम् ॥ ४० ॥
२४ आम्रगन्धिनिशा सावु टङ्कणं हिङ्गु पांसुजम् ।
स्वर्जिका कृष्णलवणं लशुनं चञ्चुजं फलम् ॥ ४१ ॥

बार, क्रूरकोष्ठवाले को भी, विरेचन होगे ॥ ३४ ॥ एक भाग अमलतास की कच्ची सेम के टुकडो को इनसे चतुर्थभाग सैंधवसहित निंबूरस की भावना दे। यह शुष्कमल के टुकडे टुकडे करके बाहर निकाल देता है ॥ ३५ ॥ दो सो छप्पन तोले अजमोदा मे चौंसठ तोला सौंवर्चल मिला, घरट्ट यंत्र से पीस, इन्द्रवारुणी के पाच सो फल के वस्त्र-पूत स्वरस की भावना देकर, चूर्ण को सुखाले। यथामात्रा से इस चूर्ण को उष्णजल के साथ फाक जाये। यह क्रूर उदर मे भी आशु असर दर्शाता है ॥ ३६ ॥ अजवायन चौंसठ तोला, राई बत्तीस तोला इन दोनो को, तक्र की और निंबू-रस की पृथक् पृथक् तीन तीन भावना दे। फिर इनमें त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, यवक्षार, सज्जीक्षार, लवण-पचक (तथा समुद्र क्षार) प्रत्येक सात सात टक अर्थात् प्रत्येक २८ माषा लेकर उपरोक्त भावितद्रव्य मे मिलादें। अब, इन सपूर्ण औषधीयद्रव्यो को निंबू रस की तीन भावना दे। जिस तरह कृतघ्नता मैत्री को नष्ट कर देती है, उसी तरह यह चूर्ण भी जठर-विकार को निर्मूल कर देता है ॥ ३७–३९ ॥ सनाय, सामुद्र-नमक तथा अजवायन की भूसी प्रत्येक क्रमश एक भाग, दो भाग, तथा आठ भाग लेकर, सूक्ष्मचूर्ण वनाले। 'दीनदय' नामक यह चूर्ण, उदर-रोगरूपी सुमेरु को भेदने के लिये साक्षात् वज्र है ॥ ४० ॥

आंबाहलदी, सावूदाना, टकण, हींग, पासुज-नमक, सज्जीक्षार, सौवर्चल, लहसुन, एरंडफल और एलिया प्रत्येक दो दो तोला लेकर इनका कल्क करलें। इस कल्क को,

---

१–आरग्वधस्यामफलिका खण्डानि। २–कर्मधारय। शुष्कक्षुण्णानीत्यर्थ। ३–आढके दीप्यके प्रस्थ सौवर्चल दत्त्वा घरट्टयन्त्रेण सपिष्य विशालाफलपञ्चशत्या विभाव्य चूर्ण शोषयेत्। ४–अत्र समुद्रक्षारोऽपि मेलनीय.। ५–एरण्डफलम्।

एलकं द्विद्वितोलानि द्रव्याणीमानि कल्कयेत् ।
एरण्डतिलतैलाभ्यां कल्कमालोडयेद्भिषक् ॥ ४२ ॥
मले लुलायकन्यायास्तन्मूत्रेण शनैः पचेत् ।
सान्द्रं भवेद्यदा पाकात्तदा तमवतारयेत् ॥ ४३ ॥
घृताक्तान्यर्कपत्राणि तापितानि कृशानुना ।
जठरोपरि विस्तीर्य सिद्धकल्कं प्रसारयेत् ॥ ४४ ॥
अर्कपत्रैः समाच्छाद्य वाढं पट्टेन बन्धयेत् ।
तूलेन स्वेदयित्वैवमुदरं तु प्रसाधयेत् ॥ ४५ ॥
२५ उत्स्विन्नतन्दुलीयं लशुननिशारुचकटङ्कणैलेयैः ।
रामठसुरभिणि तैले भर्जितमुदरेषु वध्नीत ॥ ४६ ॥
२६ अजापुरीषक्षतपत्रटङ्कणैः पटुक्षपाक्षारगुडैलहिङ्गुभिः ।
कुर्यात् प्रदेहं गुरुदर्शिताध्वा विड्ग्रन्थिशान्त्यै सरसोनतैलैः ॥ ४७ ॥

एरड तथा तिल-तैल मे अच्छी तरह मिलादेवें । अव, इसको माहिष वत्सा के सोलह तोला गोबर तथा मूत्र में धीरे धीरे पकावें। पकते पकते जव यह घट्ट हो जाये तव उसे उतारले । अव, आकडे के घृताक्त अग्नितप्त पत्तो को पेट पर फैलाकर, इन पत्तों को उपरोक्त विधि से सिद्ध किये गये कल्क से प्रलिप्त करदे। इस कल्क के ऊपर पुनः अर्क-पत्र फैलाकर पेट को वस्त्र से अच्छी तरह कसकर बांध दे । अव, उष्ण कपास के सेकद्वारा स्वेदन करते हुये उदर-रोग पर विजय सिद्धि करे ॥ ४१-४५ ॥

चौसठ तोला चावलो को पानी के योगविना, स्विन्न करके उसमे, लहसुन, हरिद्रा, सौवर्चल, टकण तथा एलिया एक एक तोला लेकर, तथा इनका कल्क वनाकर, मिला देवें । एक तोलाभर हींग से सुरभित सोलह तोला एरड तैल से, उपरोक्त तन्दुलीयादिकल्क को अग्निपर भूनकर, उदर-विकारो में पेट पर लेप करे, या बांध दे ॥ ४६ ॥

अजापुरीष के चौसठ तोला कल्क को चौसठ तोला रसोन से सिद्ध किये गये तैल मे भून लें । क्षत-पत्र (घावपात) के २५६ तोला रसमें चौसठ तोला गुड को मिला एक रस करके वस्त्र से छान लेवें । इस रस मे, उपरोक्त भूना हुआ कल्क मिलाकर उकाल लेवें । इसमे टकण, लवण, हरिद्रा, सज्जीखार, गुड, एलिया और हींग के करीब सोलह तोलाभर चूर्ण का प्रक्षेप करें । गुरुप्रदर्शित इस प्रकार की विधि से निर्मित यह प्रदेह मल-ग्रथि को शिथिल कर देता है ॥ ४७ ॥

१-महिषीवत्साया मले कुडवमात्रे । २-तन्दुलीयप्रस्थं निरम्बु समुत्स्वेद्य प्रत्येकं तोलकानि लशुनादीनि कल्कीकृत्य समेलयेत् । अथ च कुडवोन्मिते तैले हिङ्गुतोलकं प्रविकीर्य तन्दुलीयादिकल्क विनिक्षिप्य भर्जयेदित्युपदेहमार्ग । ३-'घावपात' इति लोके प्रसिद्धिः । ४-अजापुरीषक्षोदप्रस्थं प्रस्थतैलभर्जितं कृत्वा चतु प्रस्थक्षतपत्ररसे गुडप्रस्थं सगाल्य तद्रस सक्काथ्य च तत्र क्षिपेत्, तदनु कुडवमितं द्रव्यजातं प्रक्षिपेदिति मार्ग ।

२७ तनूकृतान्यर्कदलानि पीतामेरण्डतैलं लवणं तमाखुम्।
पकत्र संसाध्य समस्तमेतत् पट्टेन कोष्ठोपरि चोपनह्यात् ॥ ४८ ॥
२८ उत्कारिता भास्करमूलवल्कसिद्धा जलान्तः स्फटिकासहाया।
पटेन गूढे यकृति प्रदत्ता भिनत्ति वृद्धं यकृतं क्रमेण ॥ ४९ ॥
२९ ससौवर्चलसौभाग्यैः पुटपक्वस्नुहीरसैः।
अङ्गारमण्डकः कल्प्यः शोथोदरनिवृत्तये ॥ ५० ॥
जठरेषु पिपासायामौष्ट्रं गव्यं पयः परम्।
आग्रहे तु तयोरेव जलं युञ्जीत युक्तिजम् ॥ ५१ ॥

— इत्युदरचिकित्सितम्। —

अथ शोथचिकित्सितम्।

अथो दशाक्षः शरकार्मुकच्छुरीदम्भोलिघण्टास्फुटपाणिपञ्चकः।
तीक्ष्णो विशेषादतिसाररोगिणां प्राणप्रहारी श्वयथुः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

आकडे के पत्तों के छोटे छोटे टुकडे, एरडतैल, लवण तथा परिपक्व अतएव पीत तमाखु-पत्र, इन सबको एकत्र सिद्ध करके पेट के ऊपर वस्त्रसे अच्छी तरह बांध देवें। इससे भी मल-ग्रंथी ढीली पड जाती है ॥ ४८ ॥

स्फटिकासहित आकडे की मूल-त्वक् मे जल मिलाकर उसकी उत्कारिका (पुल्टिस्) बनाकर वस्त्र में लपेट यकृत् स्थल पर रखने से परिवृद्ध यकृत् आदि क्रमश शमित होजाते हैं ॥ ४९ ॥ उदर-शोथ की निवृत्ति के लिये, सौवर्चल, टकण तथा पुटपक्व स्नुही-क्षीर से 'अंगार मंडक' वाटियां बनावें। उदर के विकारों मे प्यास लगने पर ऊटनी अथवा गाय के दूध का पान परम प्रशस्त माना गया है। यदि रुग्ण जल पीने का हठ पकडले तो उपरोक्त दूध का, नलिकायन्त्रसे अर्क-जल निकाल लें। प्यास लगने पर, पानार्थ इसी जल का उपयोग करें ॥ ५०-५१ ॥

— उदरचिकित्सा समाप्त —

— शोथचिकित्सा (कुल प्रयोग ६) —

अब श्वयथु का स्वरूप सुनिये — श्वयथु दश नेत्रो वाला, शर, शख, छुरी, वज्र तथा घण्टा से सुसज्ज पांच भुजाओ वाला, विशेषतया अतिसारपीडितों का प्राण हरने वाला एव कठोर कहा गया है ॥ १ ॥

गोरखमुण्डी तथा सैंधव का कषाय उग्र-शोथ का कलेवा (भक्षण) कर जाता है। उपरोक्त कषाय मे गोरखमुंडी का फल तथा सैंधव एक एक तोला तथा जल २५६

१—प्लीहानमपि। २—अर्कत्वयन्त्रयुक्त्या निष्पादितम्। ३—उत्सेधसाधर्म्यादनुक्रमाच्च शोथचिकित्सितमुच्यते। ४—श्वयथुरोगमूर्तिवर्णनम्।

१ गोरक्षमुण्डीपटुजः कषायः शोथं महान्तं कवलीकरोति।
मुण्ड्याः फलं सैन्धवतः पिचू द्वौ जलाढकं शेषय सागरांशम् ॥ २ ॥
२ कारवीदीप्यवर्षाभूमधुरा एकभागिकाः।
काकमाच्यास्तु भागौ द्वौ सिद्धोऽर्कः शोथवस्मरः ॥ ३ ॥
३ पलमानानि वानानि शलाटूनि मरुद्रुतः।
जर्जरीकृत्य गीर्णानि निघ्नन्ति श्वयथुं क्रमात् ॥ ४ ॥
४ भस्मनि द्रोणपुष्पीजे मल्लस्तद्रससंस्थितः।
अष्टयामाग्निससिद्धो यतानां शोथमान्ध्यनुत् ॥ ५ ॥
५ अधितप्ततैलममलं सिक्थं निर्गाल्य तेन लिप्तानि।
चञ्चिदलानि निहन्युर्बद्धानि श्वयथुमनिलोत्थम् ॥ ६ ॥
६ स्त्यानभावं स्फुटयता स्फटिकाप्रतिसारणात्।
दुग्धेनाभ्यञ्जनं हन्ति शोथमारुष्करोद्भवम् ॥ ७ ॥

– इति शोथचिकित्सितम्। –

तोला लेवें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर इसी सिद्ध कषाय को ४५ दिवस तक पीयें ॥ २ ॥ कालाजीरा, अजवायन, पुनर्नवा और सौंफ एकत्र एकभाग, काकमाची दो भाग इनको लेकर अर्क निकाल ले यह अर्क शोथ को नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥ कैर के कच्चे सूखे फल चार तोला लेकर जौकुट करलें। इसकी फाकी क्रमशः शोथ को हटा देती है ॥ ४ ॥ द्रोणपुष्पी के रस मे सात दिवस पर्यंत भावित एक तोला मल्ल को द्रोणपुष्पी के पचाग की ३२० तोला भस्म मे रखकर आठ प्रहर अग्नि देकर सिद्ध करले। लवणरहित घृतमिश्रित गेहू की फूली तथा दूध को पथ्य रूपसे लेते हुये इस सिद्ध मल्ल का सेवन करने से शोथ तथा मन्दाग्नि नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ सिक्थ (मोम) को गरम तैल मे पिघलाकर वस्त्रपूत करलें। एरड के पत्तो को, इससे चुपडकर, वात प्रधान शोथ पर वस्त्र से बाध दे। इससे शोथ उतर जाता है ॥ ६ ॥ फिटकरी के योग से किंचित् घट्ट बने हुये दूध द्वारा मर्दन (अभ्यग) करने से भिलावे के रस-स्पर्श से उत्पन्न शोथ नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

– शोथचिकित्सा समाप्त –

१–सकृत्साधित एवायं कषायश्चतु पञ्चदिनानि पेय। २–शतपुष्पा। ३–चिरपोटिकाया। ४–'शुष्के वानम्' इत्यमर। ५–'कर' इति ख्यातस्य वृक्षविशेषस्य। ६–पञ्चप्रस्थप्रमाणे। ७–मल्लस्तोलकमित सप्तदिनानि तद्रसभावित। ८–पथ्यं च किञ्चिद्घृतप्रक्षिता विलवणा फुल्लिका दुग्ध च। ९–मधूच्छिष्टम्। १०–भल्लातकरस-सस्पर्शोद्भवम्।

अथ वृद्धिवर्ध्मचिकित्सितम्[1]।

१ तैलं कटाहे कियदेव दत्त्वा तत्राग्निना भर्जय हस्तिलेण्डम्[2]।
वधान पट्टेन नखम्पचोष्मप्रणाशहेतोर्वृषणप्रवृद्धेः ॥ १ ॥
२ उत्कारिका वज्रकधान्यपिष्टजा वद्धा सुखोष्णा वृषणानिले मता।
३ तैलं तिलाः किंशुकपुष्पमम्भसा संसाध्य वध्नीत यथायथं भिषक् ॥२॥
४ पानीयपर्युक्षणलब्धमार्दवं नखम्पजोष्णीकृतमग्निदर्शनात्।
वध्नीत विष्वग्वृषणं प्रयत्नतो वृद्धिर्गदस्तेन शमं प्रपद्यते ॥ ३ ॥
५ विपमुष्टिकरोहिपतृणलेपो गोमूत्रकल्पितः कोष्णः।
उत्पद्यमानरूपं वर्ध्म विशेषेण विघटयति ॥ ४ ॥
६ वर्ध्म जयति पुरकणपुरसिह्लक[3]सिन्दूरकल्पितो लेपः।
किं त्वत्र चतुर्यामं वनोपलाङ्गारतस्तापः ॥ ५ ॥
७ प्रलेपो रूक्षसौभाग्यशुक्लगुन्द्रा[4]रसाञ्जनैः।
अङ्गारतापनाद्वर्ध्मकक्षाग्रन्थीन्निवारयेत् ॥ ६ ॥

— अण्डवृद्धि-वर्ध्मचिकित्सा (कुल प्रयोग–१०) —

हाथी की लीद को कटाह-गत थोडे से तैल मे अग्निद्वारा भूनलें। इसको नौ निवाया करके पीडित स्थानपर वस्त्र से बाध दे। वृषणवृद्धि इससे शान्त हो जाती है ॥ १ ॥ वृषण-वायुविकार से, बाजरे के आटे की सुखोष्ण उत्कारिका बाधने से लाभ होता है। इसी तरह, वैद्य, समुचित प्रकार से किंशुकपुष्प-रस मे सिद्ध तिल तथा तैल की उत्कारिका बना कर बांधे ॥ २ ॥ पानी के प्रोक्षणद्वारा वृषण को मृदु बनाकर तथा अग्निसपर्क से उसे यत्किंचित् गरम करके, उसको चारो ओर से यत्नपूर्वक वस्त्र द्वारा बाध देने से वृद्धिविकार शांत हो जाता है ॥ ३ ॥ गोमूत्र से सिद्ध की गयी-कुचला तथा रोहिष घास की कोष्ण उत्कारिका, वंक्षण-प्रदेश मे उत्पद्यमान ग्रंथि-वर्ध्म (बद) को विखेर देती है ॥ ४ ॥ चार प्रहर तक वन्यकडो की अग्नि-ताप से प्रतप्त माहिष-गुग्गुल, कणगूगली तथा शिलारस से सिद्ध किया गया प्रलेप, बद को वश मे कर लेता है ॥ ५ ॥ शिग्रु के वीज (मरिच विशेष), टंकण, श्वेतगूंद तथा रसांजन का प्रलेप करके, अंगार की ऊष्मा देने से वर्ध्म तथा कक्षा-ग्रंथि का निवारण होता है ॥ ६ ॥

१–शोथसधर्मत्वादण्डवृद्धिवर्ध्मचिकित्सितमुच्यते। वर्ध्म च वंक्षणजो ग्रन्थिविशेषो लोके 'बद' इति ख्यात। २–हस्तिपुरीषम्। ३–पुरं महिषाख्यो गुग्गुलु, कणपुरं च 'कणगूगली' इति ख्यातस्तद्भेद। सिह्लक 'शिलारस' इति ख्यातो निर्यासविशेष। ४–शुक्लगुन्द्रो लोके 'धोलो गूंद' इति ख्यातः।

८ गुडचणकचूर्णचूर्णैर्दक्षाण्डरसेन सप्तधा लेपः ।
अङ्गारखण्डतप्तो वर्ध्मग्रन्थिं विलाययति ॥ ७ ॥
९ वर्ध्मोपरि परिबद्धा चुक्राच्छदचक्रिका चार्वी ।
दुर्जयमपि तत्कष्टं शमयति सहसा वयं ब्रूमः ॥ ८ ॥
१० शृङ्गिकमरिचविलेपादुपर्युपरि योजिताद्बहुशः ।
एकेनैव दिनेन वर्ध्मग्रन्थिः स्वयं समुपविशति ॥ ९ ॥

– इति वृद्धिवर्ध्मचिकित्सितम् । –

अथ गण्डमालाग्रन्थ्यादिचिकित्सा ।

१ सितवर्चक्षुचरणचूर्णैर्विपाच्य मेषीपयो विधाय दधि ।
तज्जं हविः प्रलेपाज्जङ्गालसखं निहन्ति गलमालाम् ॥ १ ॥
२ मुद्गकार्पासबीजानां भूतिं युक्त्या प्रकल्पिताम् ।
घृतेन ग्रन्थिमभ्यज्य तच्छान्त्यै प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

गुड, बेसन (चने का आटा) तथा सुधाचूर्ण इनका सात वार लेप करके अंगार का ताप देने से वर्ध्म-ग्रंथि बिखर जाती है ॥ ७ ॥ इमली के पत्तों को बारीक पीसकर उसकी मुलायम टिकियाँ बनाकर वर्ध्म के ऊपर बांधने से, वर्ध्मजन्य दुःसह वेदना भी सहसा नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥ शृंगी-विष और मरिच इन दोनों को जल में खूब बारीक घोटकर उसका, एक के ऊपर एक के क्रमसे, सातवार लेप करें । एकही दिन में वर्ध्मग्रंथि स्वयमेव बैठ जाती है ॥ ९ ॥

– वृद्धिवर्ध्म चिकित्सा समास –

– गडमालाग्रंथ्यादि चिकित्सा (कुल प्रयोग ५) –

श्वेत एरंड मूल-त्वक् का चूर्ण चौसठ तोला लेकर उसे पांच गुणित भेड के दूध में उकालें । वस्त्रपूत करके इस दूध का दही जमा उसमें से घृत निकाल उसको जंगाल चूर्ण में मिलाकर लेप करने से गंडमाल नष्ट हो जाती है । (नीलहरित वर्णवाला एक रंगविशेष का नाम जंगाल है । यह रंगरेजो मे इसी नाम से प्रसिद्ध है ।) ॥ १ ॥ मूंग और कपास-बीज इन दोनों को जलाकर भस्म बनालें । ग्रंथि को घृत से अभ्यक्त करके इस भस्म को धीरे धीरे ग्रंथिस्थल पर मलें। इससे ग्रंथि शांत हो जाती है ॥ २ ॥

१–चणकचूर्णं 'बेसन' नाम्ना ख्यातम् । चूर्णं च कलिकाचूर्णम् । २–सप्तकृत्व· कृत इति । ३–चुक्रा अम्लीका, तस्या पत्रैर्घटिता चक्रिका । ४–शृङ्गिकं विष, तच्चाशुद्धमेव ग्राह्यम् । ५–लेपश्च जलेन भृशं घृष्ट्वा कार्य । ६–सप्तधेत्यर्थ । ७–ग्रन्थिसाम्याद्गण्ड-मालादिः । ८–शुक्लैरण्डचूर्णं प्रस्थमितं चेत् पञ्चप्रस्थमितं दुग्धम् । ९–नीलहरितवर्णो रञ्जकोपयोगी द्रव्यविशेष एतन्नाम्नैव ख्यात । १०–उभयं मेलयित्वा भूति कार्या ।

३ अर्कमूलाव्यवहिता मृत्स्ना[1] पिष्टा द्व्यहं जलैः ।
लेपाद्ग्रन्थीन् व्रणान् घोरान् विनिहन्ति प्रभावतः[2] ॥ ३ ॥
४ मसृणं कारवीचूर्णं मनाक्काम्पिल्लसंस्कृतम् ।
घृतेन मृदितं लेपाद्ग्रन्थीन् हन्त्येव निश्चितम् ॥ ४ ॥
५ शनैः शनैर्घृते गव्ये पादांशं टङ्कणं पचेत् ।
निहन्ति लेपमात्रेण ग्रन्थ्यादीन्मसृणीकृतम् ॥ ५ ॥

– इति गण्डमालाग्रन्थ्यादिचिकित्सा । –

अथ व्रणचिकित्सितम्[3] ।

१ भज शुद्धशृङ्गिकविषं तुर्यांशं धौतधर्मपत्तनतः ।
प्रातः सपादगुञ्जं व्रणविपदि[5] व्यालवल्लरीदलतः[6] ॥ १ ॥
२ पुरपारदौ समानौ द्वयोः समानं रसाञ्जनं जलतः ।
मसृणं विमर्द्य विहितो मलहरराजो[7] व्रणेषु दातव्यः ॥ २ ॥
३ दैत्यसूतकयोः पिष्टी तदर्धं धर्मपत्तनम्[8] ।
गोघृतेन समालोड्य क्षालयेच्छतशो जलैः ॥ ३ ॥

आकडे के मूल से लगी हुई मिट्टी को लेकर, दो दिवस पर्यंत, जल से खूब खरल करें। इसके लेप से सभी प्रकार की ग्रंथियां तथा भयंकर व्रण भी नष्ट हो जाते हैं। अर्क-मूल से चिरकालीन-संसर्ग के कारण मिट्टी का यह सविशेष प्रभाव है॥ ३ ॥ कालाजीरा का मुलायम चूर्ण बनालें। इसमे थोडा कबीला का चूर्ण मिला देवें। इस चूर्ण-मिश्रण को घी में मसलकर ग्रंथिप्रदेश पर लेप करें। इससे निःसंदेह लाभ होता है ॥ ४ ॥ गाय के घीमें, इससे चतुर्थांश भाग टंकण को धीरे धीरे पकावें। फिर टंकण को बारीक पीसकर इसका प्रलेप करें। इसके लेप मात्र से ग्रंथि आदि विकार प्रशमित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

– गण्डमाला ग्रंथ्यादिचिकित्सा समाप्त –

– व्रण चिकित्सा (कुल प्रयोग ८) –

१ जल से साफ की गयी काली मरिच, इससे चतुर्थांश शुद्ध-श्रृंगी-विष इन दोनो को खरल में खूब घोटकर इसमें से $1\frac{1}{4}$ गुंजाभर मात्रा को तांबूल-दल के साथ प्रातः सेवन करें। इससे क्लेद एवं स्रावयुक्त व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं ॥ १ ॥ गुग्गुल तथा पारद समान भाग, दोनो के वजन बराबर रसांजन, इनको जल में खूब महीन पीसलें। व्रणों पर लगाने के लिये इस 'मलहरराज' का उपयोग करें ॥ २ ॥ गंधक तथा पारद

१–मृत्तिका। २–चिरसंसर्गसङ्क्रान्तादर्कप्रभावात्। ३–ग्रन्थ्यादीनां पाकाद्व्रणावस्था भवति, इत्यतस्तदनन्तरं व्रणचिकित्सितमुच्यते। ४–शुद्धिश्च गोमूत्रेण भवति। ५–क्लेद-स्रावरूपायाम्। ६–नागवल्लीदलतः। ७–मलहर इति व्रणोपरिदेयकल्कस्य सञ्ज्ञेयम्। ८–मरिचम्।

अयं मलहरोत्तंसो दामोदर[1]समर्थितः ।
व्रणविस्फोटकग्रन्थिप्रभृतिक्षपणक्षमः ॥ ४ ॥

४ मृताश्मा[2] टङ्कणं तुत्थं कत्थकम्पिल्लकोषणम् ।
कारवी चेति पलिकं[3] पूगीफलचतुष्टयम् ॥ ५ ॥

कपर्दिका[4]श्चतस्रोऽत्र कर्पूरो नवमापकः ।
वलक्षकज्जलात्[5] किं च माषा अष्टादश स्मृताः ॥ ६ ॥

कारवीमरिचोद्वेगा[6]न्यर्धदग्धानि कल्पयेत् ।
वराटीनां तु भसितं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ७ ॥

पटपूतं प्रणीया[7]ज्ये क्षालयेद्दद्रु[9]शो[8] जलैः ।
एष हन्यान्मलहरो ग्रन्थिस्फोटव्रणादिकान् ॥ ८ ॥

५ पलं शिखरिबीजानां[10] मधुनः कवलग्रहः[11] ।
सर्पिः पलं विपक्तव्यं व्रणान्मलहरो हरेत् ॥ ९ ॥

६ वीका[12]सिद्धतैलार्द्रतूलप्लोतोऽवचारितः ।
नरगोवाजिकरिणां विनिहन्ति व्रणक्रिमीन् ॥ १० ॥

की कजली, इससे अर्धमात्राभर मरिच - इनको गोघृत में मिला सोवार धो डालिये । यह मलहर - रत्न, जिसके समर्थक मेरे पैतृष्वसीय ज्येष्ठभ्राता श्री दामोदर है, व्रण, विस्फोट, ग्रंथि प्रभृति को नष्ट कर देने में समर्थ माना गया है ॥ ३–४ ॥ मुरदासींग, टंकण, तुत्थ, खैरसार, कवीला, मरिच तथा अजमोदा प्रत्येक चार चार तोला (टिप्पणीकार के मतानुसार प्रत्येक ३६ माषा) सुपारी नग चार, पीली कपर्दिका नग चार, कपूर नौ माषा, सफेद काजल अठारह माषा लेवें । अजमोदा, मरिच तथा सुपारी को प्रथम अर्धदग्ध बनालें । कपर्दिका को जलाकर उसकी भस्म करलें । फिर इनका एकत्र वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण बना, चूर्ण से चतुर्गुण अथवा तिगुणे घृत मे मिलाकर पुन पुनः (सो वार) जल से धोवें । यह मलहर ग्रंथि, स्फोट, व्रण, दद्रु आदि को नष्ट कर देता है ॥ ५–८ ॥ अपामार्ग के बीज चार तोला, शहद एक तोला, इन दोनों को चार तोला घृत मे पकावें । यह मलहर और व्रणहर कहा गया है ॥ ९ ॥ वीकामाली मे सिद्ध तैल से सिक्त - कपास प्लोत को लगाने से मनुष्य, गाय, घोडा तथा हाथी के व्रण तथा तत् - गत क्रिमि - समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

१–अयं गुरूणां पैतृष्वसीयो ज्येष्ठभ्रातेति ज्ञेयम् । २–'मुरदासींग' इति ख्यात । ३–निर्देशस्य द्रव्यप्रधानत्वात् पृथक्पलिकम् । पलमत्र षट्त्रिंशन्माषिकं सकेतितम् । ४–पीता इति शेष । ५–लोके 'सफेद काजल' इति ख्यातात् । ६–उद्वेग' पूगीफलम् । ७–सर्वसंभारतश्चतुर्गुणे त्रिगुणे वा । ८–शतकृत्व केचित् क्षालनं नेच्छन्ति । ९–आदि-शब्दाद्दद्रुप्रभृतीनां ग्रहणम् । १०–अपामार्गबीजानाम् । ११–कर्ष "सुवर्णं कवलग्रह" इति दर्शनात् । १२–'वीकामाली' इति प्रसिद्ध ।

७ एकं शुद्धं शिलाजतु पयोभिरालोड्य लेपेन ।
सद्योजातं जयति क्षतजातमसृग्विशोध्य तत्रस्थम् ॥ ११ ॥
८ कोष्ठविभेदविनिर्गतमन्त्रं परुषीकृतं समीरेण ।
मक्षीपुरीषपृक्तैः पयोभिरभ्युक्षितं विशत्यन्तः ॥ १२ ॥

– इति व्रणचिकित्सितम् । –

अथ भग्नचिकित्सितम् ।

१ सिक्थं शरावकलितं त्रयः प्रस्थाः पटूत्तमात् ।
मल्लो जातीफलं जातीपत्रिकाकल्कं सुमम् ॥ १ ॥
चतुर्गद्याणमानेन पृथगेतानि संहरेत् ।
शरावार्धप्रमाणेन मिता ज्योतिष्मती मता ॥ २ ॥
पार्श्वच्छिद्रे डमरुणि यन्त्रे सर्वं निधाय तत् ।
अधिचुल्लि समारोप्य यन्त्रं साचीकृतं मनाक् ॥ ३ ॥
प्रज्वाल्य तदधो वह्निं पातयेत्तैलमुत्तमम् ।
तत्तैलं भग्नसंधानं बल्यं भक्षणमर्दनात् ॥ ४ ॥
२ चिञ्चाफलमांसरसं भूमौ क्षिप्त्वा विमर्द्य करतलतः ।
लिम्पेत चूर्णसहितं तापय शिखिनाऽभिघातपीडायाम् ॥ ५ ॥

पानी में घोलकर केवल शिलाजीत का प्रलेप, शस्त्रादि से उत्पन्न सद्य व्रण को मिटा देता है। लेप करने से पूर्व, व्रण को प्रच्छान से छेदकर उसमें से थोडा रुधिर निकाल लेना चाहिये ॥ ११ ॥ कोष्ठ में से अन्त्र बाहर निकलकर वायु के कारण यदि कठिन बन गया हो तो जल को माखी के पुरीष में घोलकर उससे कठिन भाग पर मालिश करें । इस तरह मर्दन करने से, काठिन्य के विलय होने पर, अंत्र सरलता से भीतर चला जाता है ॥ १२ ॥　　– व्रणचिकित्सा समाप्त –

– भग्नचिकित्सा (कुल प्रयोग ६) –

१ मधूच्छिष्ट बत्तीस तोला, सैंधव १९२ तोला तथा मल्ल, जायफल, जावित्री, अकलकरा और लविंग प्रत्येक दो दो तोला तथा ज्योतिष्मती सोलह तोला, इनका डमरुयंत्र-द्वारा तैल टपकालें । डमरुयंत्र की उपरिस्थ-स्थाली के पार्श्व में छिद्र करलें- तथा यंत्र को चूल्हे पर थोडा टेढा करके स्थापित करें । इस तैल के मर्दन से भग्नसंधान होता है

१–जलै । २–शस्त्रादिजम् । ३–प्रच्छानेन रुधिर प्रदर्श्य लेप कार्य । ४–कोष्ठविनि:सृतान्त्रस्य कठिनीभूतस्यान्त प्रवेशनार्थं मार्दवोपायोऽयम् । ५–भग्नोऽप्यभिघातादेव सभवति, अत प्रोच्यते तच्चिकित्सा । ६–मधूच्छिष्टम् । ७–लवङ्गम् । ८–उपरिस्थ स्थालीपार्श्वे छिद्र कार्यम् । ९–"यन्त्र डमरुसञ्ज्ञं स्यात्तस्थाल्योर्मुद्रिते मुखे" इत्युक्तस्वरूपे । १०–चिञ्चाफलमांसे जलं दत्त्वा रस कार्यं, तं रस चूर्णेन सह भूमौ क्षिप्त्वा विमृद्य गृह्णीयात् । ११–चूर्ण लोके 'चूना' इति प्रसिद्धम् । १२–अङ्गाराग्निना ।

३ न्युंतनिशैः पटैर्घटितैस्तैलान्तर्जातझङ्कृतिभ्रष्टैः ।
निम्बुकशकलैः स्वेदय गात्रं लकुटादिरुग्णमतिमात्रम् ॥ ६ ॥
४ सद्यः कुलालपचनोद्धृतकुम्भखण्डे भ्रष्टेन खाखसपयः सुनकर्पटेन ।
उच्चैः प्रपातकुपितानिलरुग्णमङ्गमाच्छादयेत्प्रबलरुक्प्रशमाय भग्नम् ७
५ अभिघातरुग्णरदनप्रकीर्णरुधिरप्रवाहरोधाय ।
अभ्यञ्जनमेव परं नवोद्धृतैरश्वलेण्डरसैः ॥ ८ ॥
६ शृङ्गादिभिन्नादुदरान्निरीयाद्धस्तादिकं गर्भगतस्य जन्तोः ।
संततसूचीमुखविद्धमन्तर्विशेद्विधिः क्वापि मयेष दृष्टः ॥ ९ ॥
– इति भग्नचिकित्सितम् । –

अथ नाडीव्रणचिकित्सितम् ।

१ घुसृणं सराजहंसं नाडीव्रणवारि वारिणा पीतम् ।
यावन्तोऽब्दा नाडीव्रणस्य तावन्त एव घुसृणांशाः ॥ १ ॥

तथा खाने से बल प्राप्त होता है ॥ १–४ ॥ इमली के गूदे को पानी में घोलकर एक रस बनालें । इस रस में चूना मिला, भूमि पर डाल खूब मसल लेवें । इसका भग्न स्थान पर लेप करके उस स्थान को अग्नि से तपावें । इस तरह करने से भग्नजन्य पीड़ा शांत हो जाती है ॥ ५ ॥ हरिद्रारस से प्रलिप्त निंबू के टुकड़ों को तैल में छोंककर, पोटली में बांध उसके द्वारा, लकड़ी के प्रहारों से पीड़ित-रुग्ण के शरीर का, खूब स्वेदन करें । इससे प्रहारजन्य वेदना नष्ट हो जाती है । हरिद्रारस से प्रलिप्त निंबू के टुकड़ों को गरम तैल में छोंककर शीघ्र उतार लेना चाहिये अर्थात् छोंकने की झंकृत-ध्वनि समकाल में ही उतार लें । अर्थात् इन्हें अधिक नहीं भूनें ॥ ६ ॥ हाव में से निकाले गये सद्यस्क मृत्पात्र के टुकड़े पर, खाखस दूध से सिक्त वस्त्रखंड को तपालें । ऊंची जगह से गिर पड़ने के कारण वात-प्रकोपजन्य वेदना-पूर्ण स्थान पर इस वस्त्रखंड को लपेट दें । भग्नजन्य प्रबल वेदना इससे प्रशमित हो जाती है ॥ ७ ॥ चोट लगने से, रुग्ण के ढीले पड़े हुये दांतों में से निकलते हुये रुधिर प्रवाह को रोकने के लिये, अश्व की सद्यस्क लीद के रस का अभ्यंजन उत्तम प्रयोग है ॥ ८ ॥ पशुओं के विषाण आदि से भिन्न उदर में से, गर्भस्थ बालक का हस्तादि अंग यदि बाहर निकल आया हो तो, बहिर्गत उस अंग को प्रतप्त सूचीमुखद्वारा विद्ध करने से वह अन्दर चला जाता है । इस विधि को मैंने एक जगह प्रत्यक्ष देखी है ॥ ९ ॥ – भग्नचिकित्सा समाप्त –

– नाडीव्रणचिकित्सा (कुल प्रयोग ११) –

हंसराज के चूर्ण में केसर मिलाकर जल के साथ पीने से नाडीव्रण मिट जाता है । नाडीव्रण जितने वर्ष पुराणा हो उतने ही तोला (टिप्पणीकार के मत में उतने ही शाण

१–चर्चितहरिद्रैः । २–स्वेदनकाले पटवद्धैरित्यर्थः । ३–कुलालपचनं 'हाव' इति प्रसिद्धम् । ४–अश्वपुरीषरसैः । ५–प्रमादादनुपचरितव्रणस्यैव नाडीव्रणत्वमतस्तदनन्तरं

२ नृशिरोस्थिभस्म हविषा चत्वारिंशद्दिनानि परिलीढम् ।
क्षरदस्थिशलाकमपि क्षिणोति नाडीव्रणं ब्रूमः ॥ २ ॥
३ सौभाग्यक्षारसिन्दूरकम्पिल्लकयवानिकाः ।
पृथक् पिचून्मिताः सिक्थसर्जौ षट्तोलकौ तथा ॥ ३ ॥
तालं तुत्थं च मरिचं निम्बमज्जा शवोपलम् ।
कर्केरकच्छदाः सूतो निर्दिष्टा द्विद्विमापकाः ॥ ४ ॥
चतस्रः शुक्तयः क्षुद्रा गन्धकात् सप्त वल्लकाः ।
मापैकं रामठं किं च शशी द्वादशमाषकः ॥ ५ ॥
सर्पिषः कुडवे सर्वं यथारीति विमर्दयेत् ।
न स्युर्मलहरादस्मान्नाडीप्रभृतयो व्रणाः ॥ ६ ॥
४ षष्टिमापो मरुद्धूपः सिक्थमष्टादशोन्मितम् ।
कत्थं मस्तङ्किका स्यातां प्रत्येकं दशमापके ॥ ७ ॥

भर मात्रा मे) केसर लेना चाहिये । अर्थात् यदि व्रण एक वर्ष पुराणा हो तो केसर एक तोला (अथवा एक शाण) दो वर्ष पुराणा हो तो दो तोला (अथवा दो शाण) इत्यादि । प्रयोगकाल में लवणवर्जित रूक्ष-फुलके-रोटी पथ्य है ॥ १ ॥ मनुष्य-मस्तक की अस्थि-भस्म को मधु के साथ चालीस दिवस पर्यंत लेने से अथवा इसके लेप से अस्थिक्षय करने वाला नाडीव्रण भी दूर हो जाता है । अस्थिचूर्ण की मात्रा एक मापा भर है । तैल, नमक तथा अम्लपदार्थ वर्ज्य है ॥ २ ॥

सौभाग्य, सज्जीखार, सिंदूर, कबीला, अजवायन प्रत्येक नौ मापा, सिक्थ तथा सर्जरस प्रत्येक छह तोला, ताल, तुत्थ, मरिच, निंबोली की मज्जा, मुरदासींग, ककेज के पत्ते तथा पारद प्रत्येक दो दो मापा, छोटी शुक्ति नग चार, गंधक तीन मापा (सात-वाल'—तीन मापा से एक वाल अधिक), हींग एक मापा, कपूर बारह मापा तथा घी सोलह मापा-इन सभी औषधीयद्रव्यों को लेकर इनका निम्नविधि से मलहर निर्माण कर लें । प्रथम सिक्थ को सोलह तोला घी मे पिघलालें । फिर, पारद गंधक की कज्जली सहित, टंकणादिद्रव्य-समूह के सूक्ष्म-कपडछान चूर्ण को इस द्रव में मिलाकर खरल में खूब घोटले । इस मलहर से नाडी आदि के व्रण शीघ्र भर जाते हैं ॥ ३-६ ॥

राल साठ मापा, सिक्थ अठारह मापा, कत्था और रूमीमस्तगी प्रत्येक दश

तच्चिकित्सितमुच्यते । ६—कुङ्कुमम् । ७—'हसराज' इति नाम्ना प्रसिद्धेन तृणविशेषेण सहितम् । ८—नाडीव्रणवारणकारीत्यर्थ । ९—अत्राक्षशब्दस्तोलकपर , मात्रा चास्य शाण-प्रमाणा । अलवणरूक्षपोलिका पथ्यम् ।

१—मात्रा चास्य मापैकमिता, पथ्य तैलाम्ललवणवर्जम् । २—परिलीढमित्युपलक्षण, तेन लेपोऽपि विधेय । ३—पिचुरत्र नवमापको विवक्षित । ४—पृथगित्यर्थ । ५—निम्बफला-स्थिमज्जा । ६—मुर्दासींगी । ७—'ककोडा' इति नाम्ना लोकज्ञेयस्य वृक्षविशेषस्य पत्राणि । ८—रीतिरत्रेयं—तप्तघृते शिक्थं द्रवीकृत्य, टङ्कणक्षारादि सर्व द्रव्यजातं मसृणीकृतं मेलयित्वा, दृढं खल्वे मर्दयित्वा, समवचारयेदिति । ९—राल ।

षण्माषः शवपाषाणष्टङ्कणं दरदं पुनः ।
सिन्दूरमेकमाषाणि घृतं कुडवमात्रकम् ॥ ८ ॥
विनिक्षिपेद्धृते तप्ते चूर्णमेतद्यथायथम् ।
किंचिद्विश्रम्य वसनपूतं पात्रे निधापयेत् ॥ ९ ॥
एष सिद्धो मलहरः परिपूरणलेपनैः ।
नाडीव्रणक्षतस्फोटपिटिकाग्रन्थिघस्मरः ॥ १० ॥

५ आर्कैर्मकुष्ठद्विदलं पयोभिराप्लाव्य सप्ताहमयःप्रभृष्टम् ।
घृतेन पिष्ट्वा परिलेपितं तन्निहन्ति नाडीव्रणमप्यसाध्यम् ॥ ११ ॥

६ मदनफलबीजकलितो गुग्गुलुरेको जलेन संपिष्टः ।
नाडीव्रणमुत्तानं लेपेन द्यति गभीरमपि वर्त्या ॥ १२ ॥

७ नरगजनखरकर्केलकैकिशलयबादामसिक्थमुर्दारम् ।
प्रत्नघृतभर्जितमयसि घृष्टमरिष्टेन नाडीघ्नम् ॥ १३ ॥

माषा, मुरदासींगी छह माषा, टंकण हिंगुल और सिंदूर प्रत्येक एक माषा तथा घृत सोलह तोला लेवें। प्रथम, सिक्थ को गरम घी में पिघलालें, फिर इसमें उपरोक्त औषधीय द्रव्यों का वस्त्रपूत सूक्ष्मचूर्ण मिला देवें। कुछ समय पश्चात्, इन सबको वस्त्र मे से छानकर पात्र मे भरदें। इसके पर्याप्त-लेप से नाडीव्रण, क्षतस्फोट, फुन्सियां तथा ग्रंथियां नष्ट हो जाती है ॥ ७—१० ॥

लोहकटाह मे भर्जित-जौकुट-मकुष्ठ को, एक सप्ताह पर्यंत आकडे के दूध में भिगोकर रखदें। फिर इसको, लोह के खरल मे घी मिलाकर खूब घोटलें। इसके लेप से असाध्य नाडीव्रण भी मिट जाता है ॥ ११ ॥ मदनफल के बीज के साथ केवल गुग्गुल को ही पानी से पीसकर, उसकी वर्ति बना लेप करने से प्रवृद्ध तथा गंभीर नाडीव्रण भी नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥ मनुष्य तथा हाथी के नख प्रत्येक २-२ माषा, ककेरक पत्र ३ तोला, बादाम की गुली नग १, सिक्थ और मुर्दासींगी प्रत्येक १-१ माषा तथा पुराणा घी छह तोला-इनको लेकर, प्रथम, घी को कटाह में पिघला कर उसमे दोनो प्रकार के नख डाल देवें, फिर, ककेरक के पत्ते, फिर, यथाक्रम मुर्दासींगी, सिक्थ एवं बादाम की गुली डालकर इन सभी द्रव्यों को भूनले। तत्पश्चात्, कटाहगत औषधीय द्रव्यो को, एक दिवस भर, निंबकी स्थूल शाखा से हिलाते रहें।

१—पेषणमपि लोहपात्र एव। २—'ककेडा' इति ख्यातस्य कण्टकिनो वृक्षविशेषस्य किसलयानि, प्रक्रिया चास्य दशवर्षोषित पुराणघृत षट्तोलकं, तदर्धमानमितानि ककेरक-पत्राणि, नखद्वयं पृथग् द्विद्विमाषं, शिक्थमुर्दारे पृथङ्माषिके, बादामगुलिकैकेति। प्रक्रिया च अधिकटाहमधिश्रृते घृते पूर्वं नखद्वयं, तत किसलयानि, ततो मुर्दारम्, अनु शिक्थं पश्चाद्बादामगुलिका निक्षिप्य भर्जयेत्, ततो निम्बकाष्ठेन तस्मिन्नेव कटाहे दिनमेकं विमर्द्य, पटपूत विधाय, नाडीव्रणे पूरयेत्, यच्च पटावलग्न किट्ट भवेत् तद्ग्रन्थ्यादिलेपेऽवचरेत्।

८ कूर्मकपालास्थिकृतं भस्म शिलायां विशिष्य घृतघृष्टम् ।
पूरयति गभीरमपि प्रसह्य नाडीव्रणं ब्रूमः ॥ १४ ॥
९ जन्तुफलवल्कमर्ध्यं कल्कीकृत्य किल सुरभिमूत्रेण[1] ।
विधिवद्बधान कोष्णं गम्भीरादृष्टनाडिकाशान्त्यै[2] ॥ १५ ॥
१० विरचय मलहरराजं छोहाराभस्म सर्पिषाऽऽमर्द्य ।
नाडी नश्यति निभृता तेन प्लोतप्रलिप्तेन ॥ १६ ॥
११ धूमयन्त्रसमुच्छिष्ट[3]काङ्क्षीवातारिपल्लवैः[4] ।
धूमयन्त्राम्बुना बद्धा वट्यो नाडीव्रणापहाः[5] ॥ १७ ॥

— इति नाडीव्रणचिकित्सितम् । —

अथ भगन्दरचिकित्सितम्[6] ।

भगन्दरः प्रांशुविशीर्णकेशो विशिष्य हृन्नाभिविवन्धभीष्मः ।
महावलीवर्दघनोन्नतांसः पीठासनः पङ्गुररीन् हिनस्तु ॥ १ ॥

अंत में, वस्त्रपूत करके, इस विधि से सिद्ध इस द्रव-द्रव्य को नाडीव्रण में भरदें । वस्त्र-सलग्न किट्ट का उपयोग ग्रंथि आदि के प्रलेप मे करें । इससे नाडीव्रण नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ कूर्म के कपालास्थि की भस्म बना कर, शिलापर घी के साथ अच्छी तरह पीसलें । यह गहरे नाडीव्रण को भी सपूर्णतया भर देती है । हम प्रमाण हैं । ॥ १४ ॥ गोमूत्र से उदुम्बर की छाल का कल्क करके उसे थोडा घी में भून लेवें । इसे कवोष्ण करके व्रण पर बाध देवें । यह गहरे तथा अदृष्ट नाडीव्रण को शमन कर देता है ॥ १५ ॥ छुहारे की भस्म को घृत से मर्दित करके 'मलहरराज' निर्माण करलें । इस मलहर से प्रलिप्त-प्लोत को व्रण पर बांधदें । इससे नाडीव्रण चुपचाप नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥ हुक्का का गुल, खरेंटी के बीज तथा एरंड के पत्ते इनको हुक्के के जल से पीसकर वटी बनालें । इस वटी से लिप्त प्लोत को बांधने से नाडीव्रण मिट जाता है ॥ १७ ॥ — नाडीव्रणचिकित्सा समाप्त —

— भगन्दरचिकित्सा (कुल प्रयोग ३) —

अस्तव्यस्त बिखरे हुये दीर्घकेशों से युक्त, महाबलिष्ठ बैल के कठिन तथा उन्नत कुकुद्म के समान स्कंधवाला, हृदय तथा नाभि भाग के विबंध से अत्यंत भयंकर, पीठ पर आसीन, पंगु-भगंदर शत्रुओं का सहार करे ॥ १ ॥

१–गोमूत्रेण । २–गोमूत्रेण कल्कीकृत्य घृते मनाग्भर्जयित्वोपनह्यात् । ३–धूमयन्त्र-समुच्छिष्ट 'हुक्कागुल' इति प्रसिद्धम् । ४–बलाभेदस्य लौकिकसज्ञेयम् । ५–धूमयन्त्रजलेन घृष्ट्वा प्लोतद्वारोपयुक्ता । ६–नाडीव्रणस्यैव स्थानप्रभावाद्भगन्दरशब्दाभिधेयस्य स्वरूपवर्णन-पुरःसरमुच्यते चिकित्सितम् ।

गृहीत्वाऽध्यर्धमाषं तं पृथक्तुल्यमुमोषणम् ।
चत्वारिंशत्फणिलतादलोद्भवरसः सह ॥ ९ ॥
तावद्धि मर्दयेद्यावत् स रसः शुष्कतां व्रजेत् ।
सदुग्धाम्भोनुपानेन सार्धमाषममुं रसम् ॥ १० ॥
गिलेदरदनस्पर्शं प्रातः प्रातस्त्रिवासरम् ।
नासाकोथोपदंशार्तिर्नाडीग्रन्थ्यनिलार्दितः ॥ ११ ॥
एवं कृतेऽपि चेज्जातु मुखपाकः समुद्भवेत् ।
संघर्ष्य तुत्थकत्थैला लालां मुञ्चेत मुखाप्तये ॥ १२ ॥

चाहिये। अब मंदाग्नि से, दोला-गत रसकपूर को तब तक पकावें जब तक भाण्डगत जल निःशेष न हो जाये। इस तरह शुद्ध किये गये रसकपूर में से १½ माषा भर जितना भाग लेकर उसमें, लविंग तथा मरिच प्रत्येक डेढ माषा, मिला देवें। अब नागरवेल के चालीस पत्र-स्वरस से इनको एकत्र खरल मे तब तक घोटते ही रहे जब तक यह रस सूख न जाये। इस रस को, प्रति प्रात काल, डेढ माषा मात्रा में तीन दिवस पर्यंत, दूध या जल के साथ, दांतों का इनको स्पर्श न हो इस तरह, निगीर्ण करें। नासिकागत व्रण, उपदंश जन्य वेदना, नाडीव्रण, ग्रंथि, वात आदि से ग्रस्त इसका पथ्यपूर्वक सेवन करें। इस प्रयोग से कदाच् कभी मुखपाक हो जाये तो मुह में तुत्थ, कत्था तथा इलायची का चूर्ण लगाकर लालास्राव करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य प्राप्ति होती है। (रसकपूरका दांतों से स्पर्श होनेपर दांत क्षीर्ण हो जाते हैं। अत रसकपूरको गले के भीतर क्षिप्त करके पानी से नीचे उतार देना चाहिये। इसको निगीर्ण करने पर विरेचन होता है। रसकपूर का सेवन प्रमेह पिडिका तथा पीठगत गहरे स्फोट में लाभकारी है। इसके प्रयोग काल में गेहूं की चपाती, बाटी, मड, यवागू, खीले, फूले आदि घृत तथा लवण से रहित, लेना चाहिये। आठ दिवस पीछे यथेच्छ मात्रा में घी का, पंद्रह दिवस पीछे अत्यल्प

सयेत्। ६—मरिचाभा। ७—कदलीफलकूष्माण्डौ, 'झालर' इति गुर्जरप्रसिद्धधान्यं च। ८—यद्यप्याढकोक्तिस्तथाऽप्यत्र प्रस्थोत्तर आढक समत। ९—द्वादशयाम चेति विकल्पः। अत्रायं विचार—भाण्डान्तरसमृतं जलं यावता कालेन यन्त्रभाण्डे क्षयं व्रजेत्तावन्त कालं पचेदिति। १०—अत्रेदमवधेयं—सुधाखण्डविकाशसमसमयमेव भाण्डे रसगर्भादोलाऽवलम्बनीया, यद्वा रसगर्भदोलावलम्बनानन्तर सुधाखण्डानि विकाशयेदिति।

१—पूर्वविधया शुद्धम्। २—अधिकण्ठमूलं रस क्षिप्त्वाऽनुपानेन गिलेदिति सम्प्रदाय.। गिलनानन्तर विरेको भविष्यतीत्यनुभव। ३—उपलक्षणत्वादस्य गम्भीरपृष्ठस्फोटप्रमेहादिपीडितोऽपि गिलेदिति। पथ्यमत्र गोधूमभवं पोलिकाङ्गारमण्डकधानायवागूसयावकुल्मापाद्यन्यतमं, तच्चापि सर्वथा रूक्षमेव, का वार्ता पुनर्लवणलेशस्यापि। ततोऽष्टमदिनमारभ्य यथेच्छं घृत मनाक्सैन्धव च यावत्पक्ष शीलयेत्, पक्षादनन्तर शनै शनै सामुद्रलवणाभ्यासो, मासानन्तरं शर्कराप्रभृतीनामभ्यास, ततो निर्यन्त्रणो यथेच्छ विहरेदिति। ४—तुत्थ च भृष्टं ग्राह्यम्।

४ त्रिशाणं रसकर्पूरं पृथङ्माषत्रयोन्मितैः।
भद्रैलाबीजकुसुमैरधिखल्वं प्रपेषितम् ॥ १३ ॥
मन्दाग्निना सगोदुग्धं ताम्रे ताम्रेण घर्षयेत्।
तत्किट्टघटिता वट्यो मुग्धाः सन्मुद्गमेदुराः ॥ १४ ॥
उपदंशमरुच्छ्लेष्मकासश्वासोदरव्यथाः[1]।
घ्नन्ति तैलादियोगेऽपि मुखपाकं न तन्वते ॥ १५ ॥
भङ्गार्द्रमुद्गसूपादि[2] वस्तुजातं न भक्षयेत्।
दुग्धं रसेन्दुघर्षार्थं कुडवं गुरुणोदितम् ॥ १६ ॥
५ रसशीतनवसागरदरदानि[3] पृथक् त्रिटङ्कतुलितानि।
अधिडमरु[4] समुड्डाप्य स्फीतमुपरिगं रजो गृहाण[5] शनैः ॥ १७ ॥
शवशृङ्गीकत्थै[6]लास्तत्र प्रक्षिप पृथक् त्रिभिः कोलैः।
पिष्ट्वा[7] चतुष्टयमिदं वारा वटिका बधान गुञ्जाभाः ॥ १८ ॥

मात्रा में सैंधव का, तदनन्तर सामुद्र-लवण ग्रहण करना चाहिये। एकमास पीछे शर्करा का अभ्यास करना चाहिये। मासानन्तर फिर कोई नियन्त्रण नहीं) ॥ ८-१२ ॥

रसकपूर नौ माषा, बडी इलायची, बिहीदाना तथा लविंग प्रत्येक तीन माषा-इनको एकत्र खरल करलें। फिर इसे, ताम्रपात्र मे, मदाग्निपूर्वक, गोदुग्ध से पकाते हुये ताम्र की कढछी से घिसते रहें। जब सब मिलकर किट्ट जैसे घट्ट हो जायें, तब इस किट्ट की मूंग जैसी गुटिकायें बांध लेवें। यह उपदंश, वातकफजन्य कास तथा श्वास, पार्श्वशूल आदि को नष्ट कर देती हे। इसमे विशेषता यह है कि यदि इसके सेवनकाल मे कदाच् तैलादि का योग हो भी गया हो तो उससे मुख-पाक नहीं होता। भांग, आर्द्रक, मुद्गसूप, त्रिकटु तथा तीक्ष्ण-द्रव्यो का सेवन वर्ज्य है। लाल मिर्च यथा प्रकृति ली जा सकती है। उपरोक्त प्रयोग में रसकपूर को घोटने के लिये दूध सोलह तोला ग्रहण करना चाहिये। यह रहस्य मुझे श्रीगुरुदेवने समझाया था ॥ १३-१६ ॥

रसकपूर, कपूर, नवसादर तथा शुद्ध हिंगुल प्रत्येक करीब बारह माषा लेकर जोकुट करलें। (यहां, हंसपाद नामक उत्तम हिंगुल को ही उपयोग में लेवें।) इनमें एकवाल भर दाल-चिक्कण विष भी मिलादे। अब, इनको डमरुयन्त्र मे रखकर, सधिरोध करके, २½ मुहूर्त मध्यमाग्नि से उडाले। डमरु-यन्त्र के शिरोभाग को आर्द्र-वस्त्र-खंड से

१-उदरव्यथाशब्देन पार्श्वशूलग्रहणम्। २-आदिशब्देन त्रिकटुप्रभृतीनि तीक्ष्ण-द्रव्याणि च न भक्षयेत्, पित्तकारिणीं तु यथाप्रकृति भक्षयेत्। किं च यस्य पूर्वं जातु रसकर्पूरसेवनान्मुखपाकादि जातं तस्मै इदमौषधं न देयमिति वृद्धवैद्यनियमः। ३-दरदं च हंसपाकाख्यमादेयम्, उत्तमत्वात्, एकवल्लमितमनुक्तमपि दालचिक्कणं प्रक्षेप्यम्। ४-रस-कर्पूरादीनि यवस्थूलं क्षोदयित्वा यन्त्रे निधाय सधिरोधं च विधाय सार्धमुहूर्तद्वयं मध्या-ग्निना समुड्डाययेत्, किं च यन्त्रशिरस्यार्द्रप्लोतं निदध्यादिति। ५-स्वाङ्गशीतमिति शेषः। ६-कत्थं धवलं लघु च परीक्ष्य ग्राह्यम्। ७-द्वित्रियामम्।

एकामुषसि तथैकां गिल सायं पाथसा रदैः स्पृश मा ।
उपदंशमेहनाडीग्रन्थिमरुत्कुष्ठमण्डलक्षतये ॥ १९ ॥
गोधूमफुल्लिकाद्यान् सौम्यपदार्थान् घृतोत्तरान् भुङ्क्ष्व ।
तैलाम्लपट्टपलमधुप्रभृतीनि जहीहि तीक्ष्णवस्तूनि ॥ २० ॥
यदि हन्त मनागति वा वदनविपाकः कदाऽपि बाधेत ।
तर्हि सितोपलया सह सुखाय पिब तन्दुलीयमूलाम्भः ॥ २१ ॥

६ दरदं टङ्कणं रूक्षं प्रत्येकं खेटहेमकर्म् ।
बीजानि किञ्च मदनफलद्वितयजान्यपि ॥ २२ ॥
पृथक् पिष्ट्वाऽम्बुना कुर्याद्विनीय दश चक्रिकाः ।
तासु त्रिसन्ध्यमेकैकां धयेद् द्राग्धूमयन्त्रतः ॥ २३ ॥
अशक्तो द्विः सकृद्वाऽपि धयेत् पथ्यी यथाबलम् ।
समनन्तरमेवाशु विदधीत विधामिमाम् ॥ २४ ॥

आच्छादित रखे । स्वांगशीतल होने पर यन्त्र के ऊपर के तल-भाग में लगे हुये स्वच्छ-रज कणों को सावधानीपूर्वक धीरे धीरे एकत्रित करलें । मुरदासींगी, वजन में हलका श्वेत-कत्था तथा इलायची प्रत्येक एक एक तोला लेकर इनके सूक्ष्म वस्त्र-पूत चूर्ण को, उपरोक्त यंत्र-सग्रहित रस-द्रव्य मे, मिला देवें । फिर, इनको दो तीन प्रहर पानी मे पीसकर गुंजा-तुल्य वटिकाये बनाले । एक वटी प्रात तथा एक सांझ के समय जल के साथ दातों का स्पर्श न हो इस तरह निगल जायें । इससे उपदंश, प्रमेह, नाडीव्रण, ग्रथि, वात, कुष्ठ-समुह तथा तालुछिद्र, बहुमूत्रता, भगन्दर आदि विकार क्षीण हो जाते है । गोधूमफुल्लिका, मूंग का यूष, चूरमा, शर्करा, दूध, घृत आदि सौम्य पदार्थ पथ्य है । तैल, खटाई, मधु, कटाहसिद्ध-व्यंजन, चने, ताबूल, धान्य, जीरक प्रभृति तीक्ष्ण-उष्ण आहार तथा आतप, भ्रमण, विषाद, श्रम आदि विहार वर्ज्य है । कदाच्, अधिक अथवा अल्प मुख-पाक, पीडा आदि उत्पन्न हो जाये तो तांदलजा के मूल-स्वरस में मिश्री मिलाकर पीना चाहिये । इससे सुख-स्वास्थ्य-लाभ होगा ॥ १७–२१ ॥

हिंगुल, टंकण और मरिच प्रत्येक एक एक तोला, तथा दो तोलाभर मदन-फल मे से जितने बीज निकलें, उतने बीज, प्रथम, इन सबको अलग अलग पीसकर, फिर यथामात्रा जलके साथ, एकत्र खरल करके, इनकी दस टिकियाये बाधले । इनमें से एक एक टिकिया को हुक्के मे रखकर, दिवस मे तीन बार-सुबह, मध्याह्न तथा साझ, उसकी

१–तालुच्छिद्रबहुमूत्रताभगन्दरादिष्वपि दीयते । २–मुद्गसूप-चूर्ण-शर्करा-दुग्ध-घृत भक्तादीन् । ३–कटाहसिद्धान्नचणकनागपर्णधान्यजीरकप्रभृतीनि, आतपभ्रमणश्रमविषाद-प्रभृतीनि तादृशानि विहाराण्यपि । ४–तोलकमितम् । ५–अपिशब्दाद्द्वितोलकमितानां मदन-फलानां यावन्ति बीजानि निःसरेयुस्तावन्ति सर्वाण्येवात्र ग्राह्याणीति मतान्तरं गृहीतं भवति, साधीयश्चेदं पूर्वमतापेक्षया । ६–सर्वाणि पृथक् पिष्ट्वाऽधिखल्वं समेत्य योग्येन जलेन चक्रिका कार्या । ७–तद्धूमं पिबेदित्यर्थः । ८–'हुक्का' इति प्रसिद्धान्मार्तिकात् ॥

पञ्चप्रस्थैरपां कृत्वा गण्डूषान् किङ्किरातजम्[1]।
संचर्व्य दन्तपवनं पुनर्गण्डूषकांश्चरेत् ॥ २५ ॥
पथ्यं गोधूमजं चूर्णं घृतं गव्यं च शर्करा[2]।
एवं कृतेऽपि चेज्जातु मुखपाको भवेत्तदा ॥ २६ ॥
सलिलैस्तुत्थमालोड्य गण्डूषान् सम्यगाचरेत्।
हन्ति कण्ठस्रजं[3] दद्रुं गम्भीरमुपदंशकम् ॥
ग्रन्थिवातं प्रयोगोऽयं नात्र कार्या विचारणा ॥ २७ ॥
७ जाती[4] जातीफलं कत्थं तुत्थं पुष्पं[5] च कुङ्कुमम्।
प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्दरदं कोलसंसितम् ॥ २८ ॥
कस्तूरी सार्धमाषैव क्रमुकद्वयकोकिलाः।
लौहे लौहेन निम्बूकचतुष्टयरसैर्दिनम् ॥ २९ ॥
संपिष्य वटकान् कुर्याद्धरिमन्थसहोदरान्।
गिलेद्[6] द्विसन्ध्यमेकैकं प्रथमे तु दिनेऽम्भसा ॥ ३० ॥
ततो द्विसन्ध्यमेकैकवृद्धिः पञ्चदिनावधिः।
अव्यक्तलवणं पथ्यमुपदंशी समभ्यसेत् ॥ ३१ ॥

धूम का पान करें। रोग से यदि अशक्ति आगयी हो, तो दो वार अथवा एक ही वार धूम-पान करें। धूम-पान के पश्चात् रुग्ण शीघ्र ही, विधिपूर्वक, करीब ३२० तोला जल से कुल्ले करके बबूल-शाखा को चबाकर दत-धावन करे। तत्पश्चात्, पूर्ववत् पुनः जल से कुल्ले करले। पथ्यरूप से नित्य गोधूम, शर्करा तथा गोघृत-प्रत्येक सोलह तोला लेकर, भोजन करे। इतना करने पर भी यदि मुख-पाक का शमन न हो तो फुलाये हुये तुत्थ को जल मे घोलकर उसके यथेच्छ कुल्ले करे। गंडमाल, दद्रु तथा गंभीर स्थिति को प्राप्त उपदंश, ग्रथिवात आदि को भी यह प्रयोग नष्ट कर देता है। इसमें जरा भी शंका नहीं करनी चाहिये ॥ २२-२७ ॥

जावित्री, जायफल, कत्था, फुलाया हुआ तुत्थ, लविंग तथा केसर प्रत्येक ३-३ माषा, हिंगुल एक तोला, कस्तूरी डेढ माषा तथा दो सुपारीके कोयले इन सबका सूक्ष्म चूर्ण करके, निंबू के रस से, लोहेके खरल मे लोहे के दस्ते से, एक दिवसपर्यंत खूब घोटकर चने प्रमाण गोलियां बनालें। प्रथम दिवस, सुवह, सांझ एक एक वटी पानी के साथ निगल जायें। दूसरे दिन, दोनो वार एक एक वटी अधिक लेवें। इस

१-किङ्किरातज दन्तपवनमिति सम्बन्ध। किङ्किरातश्च बब्बूल। २-कुडव गोधूमचूर्णं कुडवं घृतं कुडवा शर्करा चेति प्रतिदिनमवश्य भक्षयेत्, अन्यथा व्यापत्ति स्यात्। ३-गण्डमालाम्। ४-जातिपत्रिका। ५-मृष्टम्। ६-प्रारम्भदिने प्रात सायमेकैक वटकं शीताम्भसा गिलेत्, द्वितीयदिने द्विसध्यं द्वौ द्वौ, तृतीयदिने त्रीस्त्रीन्, चतुर्थे चतुरश्चतुर, पञ्चमे पञ्च पञ्च द्विसध्यं गिलेदित्यर्थ।

८ कस्तूर्या रक्तिकामेकां त्रुटेर्वांश्याः पिचुं[1] पिचुम्[2] ।
पिष्ट्वा पटीरतैलेन[3] वटीस्तिस्रः प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
एकस्मिन्नेव दिवसे सन्ध्यासु तिसृषु क्रमात् ।
निगीर्य शीतसलिलशरावं प्रयतः[4] पिबेत् ॥ ३३ ॥
उपदंश[5]विशेषार्तिर्विशिष्य खलु नश्यति ।
वर्जयेद्दुग्धमधुरतैलाम्ललवणादिकम्[6] ॥ ३४ ॥
९ भानुभागं[7]मयोर्बाणं[8] सर्जं सागरभागिकम्[9] ।
पिष्ट्वा पटीरतैलेन वटीः कल्पय माषिकीः[10] ॥ ३५ ॥
दाडिमीशार्करेणैव प्रातः सायं सखे ! गिल ।
तेन ते हन्त सौजाकव्याधिः प्रशममेष्यति ॥ ३६ ॥
तैलाम्लतीक्ष्णलवणदुग्धवृन्ताकमुत्त्यजेत्[11] ।
स्वामिना रघुनाथेन योगोऽयमुपढौकितः ॥ ३७ ॥

तरह पांच दिवस तक, दोनो बार एक एक वटी मात्रा बढाते हुये प्रयोग करें । लवणाधिक्य रहित भोजनादि पथ्यपूर्वक लें । इससे उपदंश शमित होता है ॥ २८–३१ ॥

कस्तूरी एक रत्ती, इलायची तथा वंशलोचन एक एक तोला (अथवा वंशलोचन आधा तोला) इन सबको एकत्र बारह माषा चदनतैल मे पीसकर बराबर वजन की तीन वटियां बनाले । अब, ब्रह्मचर्यपूर्वक अधिक भोजन न करते हुये, एक ही दिवस के तीनो सधिकाल में एक एक वटी को क्रमशः सकोरे में भरे हुये शीतल जल के साथ निगीर्ण करें । इसके प्रयोग से, विशेषतया सौजाकजन्य वेदना मिट जाती है । दूध, शर्करा, तैल, लवण, अम्ल, धूप, भ्रमण, मैथुन आदि सर्वथा वर्ज्य है ॥ ३२–३४ ॥

बारह माषा कोडिया लोबान तथा चार माषा सर्जरस दोनों को चंदनतैल में पीस कर एक एक माषा भर पदरह गोलियां बनालें (सोलह माषा द्रव्य में से करीब एक माषा भर शिलादि से लगकर न्यून होजाने से कुल औषधीय-पिष्ट करीब १५ माषा ही रह जाता है ।) इन गोलियो का दाडिमी-शार्कर-('शार्कर' निर्माण विधि 'ज्वर चिकित्सा' के ४५ वें श्लोक मे देख ले ।) के साथ सुबह साझ सेवन करने से, हे मित्र ! आपकी सौजाक व्याधि प्रशमित हो जायेगी । तैल, अम्ल, लवण, दूध, वृन्ताक, गुड आदि को त्याग दें । यह प्रयोग मुझे स्वामी रघुनाथ ने अर्पण किया है ॥ ३५–३७ ॥

१–पिचुरत्र द्वादशमाषकः । २–अत्र तु तदर्धमानपरो विवक्षितः । ३–चन्दनतैलेन द्वादशमाषेणाथवा यावता गुट्यः स्युस्तावन्मानेन । ४–ब्रह्मचारी भोजनालोलुपश्च । ५–सौजाकरोग । ६–आदिशब्दादातपाध्वादीनां ग्रहणम् । ७–द्वादशमाषम् । ८–लोहबाणनाम्ना प्रसिद्धम् । तच्च कोडियोपपदं ग्राह्यम् । तत्कृत्रिममपि भवति, तदनादेयम् । ९–चतुर्माषम् । १०–इति प्रमाणकथनेन पञ्चदशगुटिका भविष्यन्ति, एकमाषोन्मितद्रव्यस्य शिलालेपादिना व्ययितत्वात् । ११–गुडमपि ।

१० मायाफलानि त्रुटिकत्थवांगीः पटीरतैलेन वटीर्विधाय।
सिताद्भिरुष्णे, पयसा तु शीते गिलेद् द्विसन्ध्यं चिरमुष्णवाती ॥ ३८ ॥
११ भूरिमापं मलयजं मञ्जुकत्थौ तु माषकौ।
क्षोदः सचन्दनस्नेहः शाणः सेव्यः सिताम्भसा ॥ ३९ ॥
अहो अहोभिर्नवभिः स्यादन्तरुपदंशजित्।
प्राज्याज्या पोलिका पथ्या गोधूमचणकोद्भवा ॥ ४० ॥
१२ रसाञ्जनकाथपुराणपूगमायाफलानां विरचय्य चूर्णम्।
गिलाङ्कमापं ज्वलदुष्णवाते सितासखीभिश्रणकत्वगद्भिः ॥ ४१ ॥
१३ एकढब्बूकतः क्रीताः कोकिलाक्षास्तदर्धतः।
अस्थिसंहारिका किच त्वगप्यत्र तदर्धतः ॥ ४२ ॥
ढब्बूकद्वन्द्वतश्चीणीशर्करेति कृतं रजः।
सायं प्रातर्गिलेद्दुग्धैश्चतुर्दश दिनानि यः ॥ ४३ ॥
न तस्य जातु सौजाकः प्रकोपमुपगच्छति।
विना तैलाम्ललवणं पथ्यमत्र प्रकीर्तितम् ॥ ४४ ॥

मांजूफल, इलायची, कत्था तथा वंशलोचन इनको लेकर चदनतैल से वटियां बांधलें। उष्णकाल मे मिश्री के शर्बत के साथ तथा शीतकाल मे दूध के साथ-दो बार नित्य दो वटी निगीर्ण करें। इससे जीर्ण उष्ण-वात शमन हो जाता है ॥ ३८ ॥ श्वेतचंदन चूर्ण चौवीस माषा, मांजूफल और कत्था प्रत्येक छह माषा, इनके चूर्ण को, एक तोला चदन तैल में मिलाकर, तीन माषा-मात्रा में, मिश्रीमिश्रित जल के साथ सेवन करें। अहो! नवदिवस में ही (अहोभि) अन्तर्गत-उपदंश शांत हो जाता है। प्रचुरघृतयुक्त किंतु लवणरहित गेहूं और चने की चपाती, चूरमा आदि का भोजन इसमे पथ्य है ॥३९-४०॥ चने के तुप (फोलरा) से सिद्ध मिश्रीमिश्रित जल के साथ, अठारह दिवस पर्यंत, रसांजन, कत्था, पुराणी सुपारी तथा माजूफल इनके चूर्ण की नौ माषा भर फांकी लेने से प्रज्वलित उष्णवात शांत हो जाता है ॥ ४१ ॥

एक ढब्बूक से जितने खरीद मे मिलें उतने प्रमाण मे तालमखाना, इनसे आधी मात्रा में मैदालकडी, इससे आधी मात्रा मे तज तथा दो ढब्बूक-मूल्य जितनी चीनी शक्कर इन सबका एकत्र चूर्ण बनालें। चौदह दिवस पर्यंत दूध के साथ इस

१-'माजूफल' इति प्रसिद्धानि। २-गोदुग्धेन कोष्णेन धारोष्णेन वा। ३-चतुर्विंशतिमाषम्। ४-श्वेतचन्दनचूर्णम्। ५-मञ्जु मायाफलम्। ६-पृथक्षण्माषौ। ७-तोलप्रमाणचन्दनतैलसहित। ८-अलवणेति शेष। ९-काथशब्देनात्र कत्थम्। १०-नवमाषम्। ११-चणकतुषाद्भि। चणकतुषाणि च जयपुरादिदेशे 'फोलरा' नाम्ना प्रसिद्धानि। प्रयोगसेवा च वसुभूदिनानि। १२-अत्र-ढब्बूकादि मूल्यपर, न तु मानपरम्। १३-'मैदालकडी' इति प्रसिद्धा।

१४ धौतानि माषविदलानि वसुप्रकुञ्चा-
न्याभा[1]शलाटुजरसेन विभावितानि ।
[2]विल्वैः पृथङ्मुशलिकेक्षुर[3]वीजबन्धै[4]-
र्युक्तानि लोचनपलेन[5] च सालिमेन ॥ ४५ ॥
मध्येघरट्टमधिकं मसृणीकृतानि
निष्कत्रयत्रपुविभूतिविभासिता[6]नि ।
सेवेत तानि पयसा[7] ससितेन मासं
सौजाकमेह[8]युगनस्यजबोधना[9]नि ॥ ४६ ॥

१५ सह[10]स्रवीर्या मुशली कवचं तोदरीक्षुरम् ।
प्रवालं रूप्यमेतेषां प्रत्येकं सप्त माषकाः ॥ ४७ ॥
विदारी द्राविडी [11]कण्टमभ्रं गद्याणसंमि[12]तम् ।
पीयूषसत्त्व[13]ममलं भद्रैला शाणमात्रया ॥ ४८ ॥
कतीरगुन्द्रकं मोचै[14]श्चन्दनं माषकै[15]स्त्रयम् ।
सालिमाख्यं द्विगद्याणं तत्समानं शिलाजतु ॥ ४९ ॥
शीतलप्रा[16]श्चि तीक्ष्णानि निर्यासः किं च शाल्मलः ।
स्यातामेकैकगद्याणौ वङ्गं कोलप्रमाणकम् ॥ ५० ॥

चूर्ण की, सुबह तथा सांझ को, फांकी लेनेसे, सौजाक कभी प्रकुपित नहीं होता। तैल, लवण, अम्लादि वर्जित भोजन यहां पथ्य माना गया है ॥ ४२–४४ ॥

पानी से धोकर स्वच्छ की गयी उडद की दाल बत्तीस तोला लेकर उसको बबूल के कच्चे फल रस की भावना देवें। श्वेतमूलवाली मुशली, तालमखाना तथा बीजबंध प्रत्येक चार तोला तथा सालिम आठ तोला प्रमाण में लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को उपरोक्त विधि से भावित उडद की दाल में मिलाकर शिलापर खूब बारीक पीस, उसमे तीन तोला बग भस्म मिला, मिश्री - मधुर - दुग्ध के साथ एक मास पर्यंत सेवन करें। चौसठ तोला शृतशीत दूध मे बत्तीस तोला मिश्री मिलावें। यह योग सौजाक और प्रमेह को मिटाकर कामोद्दीपन करता है ॥ ४५–४६ ॥ शतावरी, मुशली कौंच, तोंदरीसुर्ख, तालमखाना, प्रवालपिष्टी तथा रजतभस्म प्रत्येक सात माषा, विदारीकंद, छोटी इलायची, गोखरू, मुस्ता, प्रत्येक छ माषा, गुडूची सत्व, बडी इलायची प्रत्येक तीन माषा, कतीरा गूंद, सेमल, चदन प्रत्येक तीन माषा, सालिम बारह माषा

१–आभा बम्बूल तस्यामफलिकारसेन। २–पृथक् पलप्रमाणैः। ३–श्वेतमूला ग्राह्या। ४–'बीजबन्ध' इति लौकिकसञ्ज्ञेयम्। ५–द्विपलिकेन। ६–शाणत्रयोन्मितवङ्गभस्मसहितानि। ७–शृतशीतेन प्रस्थप्रमाणदुग्धेनाष्टांशसितासहितेन। ८–सौजाकमेहयुगिति कर्तृपदम्। ९–कामोद्दीपनानि। १०–शतावरी। ११–गोकण्टकम्। १२–अत्रापि प्रत्येकमिति सम्बध्यते। १३–गुडूचीसत्त्वम्। १४–मोचरस। १५–प्रत्येकं द्रव्यप्रधानत्वान्निर्देशस्य। १६–शीतलमरिचानीत्यर्थं।

सितोपलायाः कुडवश्चूर्णमेषां प्रदापयेत् ।
सौजाकपित्तमेहार्तौ दाडिमीशार्करादिभिः ॥ ५१ ॥
वांगी विरोजसः सत्त्वं[1] रालः कहरवाभिधम्[2] ।
अनुक्तान्यपि चूर्णेऽस्मिन्नाक्षिकाणि विनिक्षिपेत् ॥ ५२ ॥

१६ रालाश्म[3]कृष्णनिर्यासाः[4] स्युरष्टादशभागिकाः ।
वंशजा जीरयुगलं प्रत्येकं नवभागिकम् ॥ ५३ ॥
द्रांविड्यो[5] विंशतिः सिह्ल[6]सत्त्वं द्वादशभागिकम् ।
शर्करा षष्टिभागा स्यात् सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ५४ ॥
चूर्णमेतत् पिचून्मानमजादुग्धानुपानतः ।
सौजाकं साधु जयति तैलाम्ललवणत्यजाम् ॥ ५५ ॥

१७ गद्याणतुलिता वांगी त्रुटिर्वंशजया समा ।
त्वचस्तु नव गद्याणाः सिताया द्वादशैव ते ॥ ५६ ॥
गद्याणौ कलसोराद्धौ सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
पुँड्यः[7] पञ्चदशैव स्युरेकैकामिति योजयेत् ॥ ५७ ॥

और इतने ही प्रमाण मे शिलाजीत, शीतल मिर्च, शालमली निर्यास (मोचरस) प्रत्येक छह माषा, वगभस्म एक तोला, मिश्री सोलह तोला-इन सभी औषधीय द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनाले। सौजाक तथा पित्तज-प्रमेह से पीडित को, यह चूर्ण 'दाडिमी-शार्कर' के साथ सेवन करायें। वशलोचन, गधाविरोजा तथा कहरवा पिष्टी ये द्रव्य इस योग में अनुक्त हैं तथापि इनके एक एक तोले भर चूर्ण को भी उपरोक्त चूर्ण में मिला लेवें ॥ ४७–५२ ॥

राल, घीयाभाटा (घृताश्म), कूटशाल्मली का निर्यास प्रत्येक अठारह भाग, वंशलोचन तथा दोनो प्रकारके जीरे प्रत्येक नौ भाग, स्थूल इलायची नग बीस; बिरोजा का सत्व बारह भाग, शर्करा साठ भाग-इन सबका एकत्र चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को, दो तोला माषा में अजा-दूध के साथ सेवन करें। यह सौजाक का पूर्णतया शमन कर देता है। तैल, अम्ल, लवग, प्रभृति अपथ्य है ॥ ५३–५५ ॥ वंशलोचन छह माषा, इतनी ही मात्रा में छोटी इलायची, तज चौपन माषा, मिश्री ७२ माषा, कलमी सोरा बारह माषा-इनका एकत्र वस्त्र-पूत चूर्ण करले। इनकी पद्रह पुडियां (Doses) बनाये। एक एक पुडी को, प्रात तीन पतासे के चूर्ण से युक्त लस्सी के साथ तथा, एक पुडी को, साझ के समय, शीतल जल के साथ लेवें। लवण, अम्ल,

---

१–'गंधा बेरजा' इति प्रसिद्धनिर्यासस्य सत्त्वम्। २–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धस्तृण-ग्राही निर्यासविशेष, 'रत्नमेद' इति केचित्। ३–अश्मशब्देन घृताश्मा 'घाईभाटा' इति ख्यात। ४–कृष्णनिर्यास शाल्मलीगुन्द्र। ५–एला। ६–विरोजस सत्त्वम्। ७–मात्राविशेषा।

२६ कर्षं निरस्थि खर्जूरं तत्प्रमाणा मृकण्डजा ।
कर्षार्धं शवपाषाणं चूर्णं स्यादुपदंशनुत् ॥ ७२ ॥
२७ कत्थमुर्दारतुत्थानि तुल्यान्येरण्डपर्णतः ।
पयस्यावर्तनात् सान्द्रे कांस्ये कांस्येन घर्षयेत् ॥ ७३ ॥
त्रिचतुस्तोलसमिताफुल्लिकाभक्षणादनु ।
पर्णेन भक्षयन्मापमुपदंशाद्विमुच्यते ॥ ७४ ॥
यामा द्वादश संघर्षः प्लावनार्हं घनं पयः ।
वर्जयित्वा पयोमुद्गौ पथ्यमत्र प्रचक्ष्महे ॥ ७५ ॥
२८ हेमाह्वापादखण्डानि पिष्ट्वा त्रीण्यूपणैस्त्रिभिः ।
पाथःपलेन विस्राव्य पिबेत् प्रातस्त्रिवासरम् ॥ ७६ ॥
योगराडेष सौजाकमपि हन्यात्त्रिवार्षिकम् ।
पथ्यं विलवणा पूरी दुग्धं सप्तदिनावधि ॥ ७७ ॥
अष्टमेऽहनि वृन्ताकं स्वच्छन्दमुपशीलयेत् ।
यदि स्यात् पुनरुद्भेदो योगं पूर्ववदभ्यसेत् ॥ ७८ ॥

एक तोला लेकर, जलके साथ सात दिवस पीने से उपदंश शांत होता है ॥ ७१ ॥ गुठ्ली रहित खजूर तथा सनाय प्रत्येक एक तोला, आधा तोला मुर्दार, इनका चूर्ण उपदश को दूर करता है । चूर्ण की मात्रा पांच से छह माषा है । प्रात., शीतल जल के साथ लेना चाहिये । घृत, लवण, गेहू के फूले तथा उडद की दाल पथ्य है। उडद की दाल में अनुत्कट लवणादि निर्भयरूप से सेवन कराये जा सकते हैं ॥ ७२ ॥

एरडपत्र तथा समान वजन मे कत्था, मुर्दार और तुत्थ-सव को एकत्र लेकर चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को दूध मे खूब मसलकर, फिर कांस्य-पात्र मे कास्य दंड या कटोरी के पैंदे से इसको घिसें । अब, तीन चार तोला गोधूम के फूले खा लेने के उपरांत उपरोक्त औषधीय द्रव्य को नागरवेल पान के साथ सेवन करें । उपदंश से छुटकारा मिलता है । बारह प्रहर तक घर्षण करने से जब दूध घट्ट बन जाये, तब इसको लेना चाहिये । दूध तथा मुद्ग, उपदश मे पथ्य माने गये है, किंतु उपरोक्त प्रयोगकाल मे, ये अपथ्य है । इन दो के अतिरिक्त, अन्य व्यजन पथ्य कहे गये हैं ॥ ७३–७५ ॥ स्वर्णक्षीरी मूल के तीन टुकडो को तीन मरिच के साथ पीसलें, फिर एक तोला जल मे घोल छानकर, प्रतिदिन, प्रात , तीन दिवस तक पीये। यह 'योगराट्' तीन वर्ष पुराणे सुजाक को भी मिटा देता है । औषधप्रयोग के दिवस से, प्रथम सात दिवस लवण रहित पूरी और दूध का ही भोजन करे । आठवें दिवस से वृन्ताक का

१–कर्षोऽत्र द्वादशमाषको विवक्षित । २–खर्जूर 'छोहारा' इति ख्यातफलम् । ३–मात्राऽस्य पञ्चषण्माषिका प्रातर्देया शिशिराम्भसा । पथ्यमत्र सघृतलवणगोधूमफुल्लिका माषसूपोऽपि, माषसूपे लवणादिकमनुत्कट नि सशयं देयमित्याज्ञा । ४–स्पष्टमिदम् । ५–हेमाह्वा स्वर्णक्षीरी, तस्या मूलशकलानि । ६–सौजाकस्येति शेष. ।

२९ बदरीमूलविभूतिं तैलस्राविणि रसालसंधाने ।
उपयुज्याम्बु पिबेदनु शिशिरं तीव्रान्तरोपदंशार्तौ ॥ ७९ ॥
३० माकन्दचर्मकल्कं पयसा संगाल्य शर्करामधुरम् ।
सौजाकजन्यशुक्रक्षरणक्षपणाय पिब पक्षम् ॥ ८० ॥
३१ प्रातः पिबेद्दाडिमवल्कफाण्टकं सौजाकवान् कर्करशर्करासखम् ।
निधेहि नीरे कुडवे द्विकर्षं वल्कं प्रकुञ्चं क्षिप शर्करायाः ॥ ८१ ॥
३२ सहस्रद्रुच्छदान्नव्यान् पिष्ट्वा विरलवेल्लजान् ।
पिबन्तु लुलितानद्भिः सौजाकरुधिरार्शसोः ॥ ८२ ॥
३३ जलं जपागोक्षुरयोः सपर्णया विलोलयेदन्यतरस्य शाखया ।
यदा भवेन्मन्ददधीव तच्छ्लथं तदा निपीतं स्मृतमुष्णवातनुत् ॥ ८३ ॥

शाक यथेच्छ खायें । कदाचित् सुजाक पुन उत्पन्न हो तो उपरोक्त 'योगराट्' का पुन. प्रयोग करें ॥ ७६-७८ ॥

बदरीमूल-त्वक् की भस्म को तैल से स्रावित आम के आचार के साथ लेकर ऊपर से शीतल जल पीयें । इससे अन्त उपदशजन्य वेदना शांत हो जाती है । यह 'कण्ठीरव' श्रीकृष्णराम गुरुमहोदय की कठोक्ति (व्यक्तिगत-प्रामाण्य) है । इसमें संशय न करे । क्योकि तैलाम्ल वर्जन इस रोग मे पथ्य माना जाता है और यहां तैलमय पदार्थ लेने की अनुज्ञा है । इतना ही नहीं, उसपर शीतल जल के अनुपान की भी ! ! ! ॥ ७९ ॥ आम्र वृक्ष की अन्तर्छाल छह माषा लेकर उसका कल्क बनालें। इस कल्क को धारोष्ण दूध मे घोल कर वस्त्रपूत कर ले । दूध को दो तोला करकर-शक्कर से मधुर बना, एक पक्ष पर्यंत, सौजाकजन्य शुक्रस्राव को बद करने के लिये पीये । ॥ ८० ॥ सौजाक पीडित रुग्ण प्रात काल, करकर-खाड से युक्त, दाडिम-त्वक् के फाण्ट का पान करे । यहा दाडिम-त्वक् दो तोला लेकर, साझ को सोलह तोला पानी मे भिगो देवें । करकर-खाड भी चार तोला साथ ही मे मिलादे । यह फाण्ट तीन दिवस पर्यंत पीना चाहिये ॥ ८१ ॥ गुलहजारा की नूतन पत्तियो को थोडे मरिच के दानों के साथ पीसले । फिर, इनको जल मे घोलकर, सौजाक तथा रक्तार्श में इसका पान करें ॥ ८२ ॥ जपापुष्प अथवा गोखरू इनमे से किसी एक की सपत्र-शाखा द्वारा पानी को खूब हिलायें । इस तरह हिलाते हिलाते जब पानी अर्ध जमे हुये दही जैसा श्लथगाढा हो जावे तब उसको पीजाने से उष्णवात शांत हो जाता है ॥ ८३ ॥

१—अत्र तु तैलाम्लानुपानस्य कण्ठरवोक्ते सशयो न कार्य , पथ्यं तु तैलाम्लवर्जमेवोपदेशविरोधात् । २—आम्रवृक्षस्यान्तरा त्वग्गद्याणमिता । ३—कुडवमितेन सद्योदुग्धेन । ४—शर्करायाा मान द्वित्रितोलकम् । ५—'कडकड खाड' इति लोकप्रसिद्धि । ६—साय वल्क मनाक् सक्षुद्य सशर्करं मृत्पात्रे यथोक्तजले मज्जयित्वा प्रात प्रमृद्य पटपूत पिबेत् त्र्यहम् । ७—लोके 'हजारा' इति नाम्नोपवनेषु प्रसिद्ध पीतपुष्प क्षुपक , तत्किसलयानि । ८—औड्रम् । यच्च 'भोडल' इति मध्यदेशे, 'जासूदी' इति गुर्जरे पसिद्धम् ॥

३४ करीरपदकोकिलौ मृदुविरेचिनी शर्करा
प्रकुञ्चयुगयोजिता भुवनभेषजं षोडशी।
पिचुत्रितयमूषणं सलिलमेभिरुद्धासितं
दलावधि पिपासिताश्चुलुकयन्तु सौंजाकिनः ॥ ८४ ॥

३५ कुष्ठजीरगुडैर्गुल्यो गीर्णाः सौंजाकनाशनाः।
३६ किं वा केवलकुष्ठस्य धूमः पीतस्तदर्थकृत् ॥ ८५ ॥

३७ प्रव्यक्तरक्तोष्णसमीरदूनाः पक्त्वा सिताम्भोभिरदन्तु पोलीम्।
कर्के सधान्येश्वरबोलवारिण्युपस्थमस्वस्थदशं दिशन्तु ॥ ८६ ॥

३८ विरोजसं शैलरजोविमिश्रितं निधाय यन्त्रे डमरुण्यरन्ध्रके।
मन्दाग्निना तैलवरं समुद्धरेत्तद्बिन्दवो घ्नन्त्युपदंशमान्तरम् ॥ ८७ ॥

३९ पादोनशाणिकं खण्डं तावती स्फटिका स्फुटा।
लसीकया पिबेत् प्रातः सौंजाके लिङ्गरेकदम् ॥ ८८ ॥

करीरमूल को जलाकर किये गये कोयले, सनाय और शर्करा प्रत्येक दश रुपये भार, सूंठ चार तोला, मरिच तीन तोला-इनको एकत्र पोटली में बाधकर, ६४० तोला जल से भिगोकर रखदें। अब, पदरह दिवस पर्यंत, सौंजाक-पीडित को तृषा लगनेपर, यही पानी पिलाते रहे। आठ दिवस पीछे पोटली बदल देनी चाहिये अर्थात् नूतन पोटली रखनी चाहिये तथा लवणादिसे परहेज रखना चाहिये ॥ ८४ ॥ कूठ, जीरा और गुड इनकी गोलिया बना जल के साथ निगीर्ण करने से सौंजाक शात होता है। अथवा, केवल कूठ का धूम पीने से उपरोक्त अर्थ सिद्ध हो जाता है ॥ ८५ ॥ उष्णवात से पीडितो को, शक्कर-मिश्रित जल से बनायीं गयी गेहू के आटे की रोटियां खानी चाहिये। धनियां एव ईशबगुल से उद्वासित-जल पूर्ण-मृत्पात्र मे अपने अस्वस्थ-उपस्थ को मग्न करना चाहिये ॥ ८६ ॥ अतिसूक्ष्म रध्रवाले डमरु-यंत्र मे गधाविरोजा को कंकरीली रेती मे मिलाकर भरदे। फिर, मदाग्नि से तैल निकाल लेवें। इस तैल को लगाने से अंत.-उपदंश नष्ट हो जाते है। इसी तैल को कान मे डालने से कर्णशूल स्रावादि भी शांत होते है ॥ ८७ ॥ करीव अठारह रत्ती शक्कर, इतनी ही मात्रा में भृष्टस्फटी-दोनों को मिलाकर प्रातः लस्सी के साथ पीने से सुजाकस्थिति मे मूत्रविरेक

१–मरुद्रुमूलकोकिलानि। २–मार्कण्डी। ३–पृथक् द्विपला। अत्र पलशब्देन रूप्यकपञ्चकमभिप्रेत, तेन दशरूप्यकसिता प्रत्येकं ग्राह्या। ४–शुण्ठी। ५–पलम्। ६–दशप्रस्थमितं जलम्। ७–पोट्टलिकाबद्धैरिति शेष। ८–पञ्चदशदिनावधि। ९–पिबन्तु। १०–सौंजाकिभिर्लवणादि त्याज्यम्। अत्राष्टाहात् पोट्टलिका परिवर्तनीयेति रहस्यम्। ११–उष्णवात। १२–निमज्जयन्तु इत्यर्थ। १३–बिरोजसस्तैलनिष्कासनविधिरयम्। १४–शैलप्रान्तभूमिभवा कर्करिकाप्राया शर्करामृत्। १५–अत्रेषदर्थे नञ्, तेन सूक्ष्मरन्ध्रे इति प्रतिपादित भवति, अन्यथा तैल कुतश्च्योतेत्। १६–उपदशमित्युपलक्षणं, तेन कर्णपूरणात् कर्णशूलस्रावादिष्वपि योज्यम्। १७–मूत्ररेकप्रकारोऽयम्।

४० सितासुग्ध्रिलसीकायाः पात्रं पिचुं मिषित्रुटि।
शतमावर्त्य पुरतः पेयं वस्तिविशोधनम् ॥ ८९ ॥
४१ द्विसिन्धुद्रम्मजलैः समुद्रशरमापसौधजलकलितैः।
दत्तत्रिमाषतुत्थैः क्षालनमुपदंशमुपहन्ति ॥ ९० ॥
४२ कोलिमूलत्वचां प्रस्थं ह्याढकेऽपां शनैः पचेत्।
क्वाथेनार्धावशिष्टेन क्षालयेल्लिङ्गगान् व्रणान् ॥ ९१ ॥
४३ सितकर्जलतः कर्षं हिङ्गुलं मापपञ्चकम्।
कर्पूरं शाणिकं धौतहविषा मसृणीकृतम् ॥ ९२ ॥
लेपयेच्छनकैर्विष्वग्द्वित्रिवारं प्रयत्नतः।
शाम्यन्ति तेन तत्रत्या व्रणा दाहोत्तरार्तयः ॥ ९३ ॥
४४ शीतलमरिचद्वितयं त्रुटिरेका वल्लसंमितं तुत्थम्।
शतधौते नवनीते विनीय लिङ्गं समालिम्प ॥ ९४ ॥
४५ शवाश्मरालतुत्थानि तैलपृक्तानि वारिभिः।
शतधौतानि लेपेन विनिघ्नन्त्युपदंशकम् ॥ ९५ ॥

होता है ॥ ८८ ॥ मिश्री चार तोला, लस्सी २५६ तोला, सौंफ और इलायची एक तोला इनको सोवार हिलाकर पीजायें। यह पेय वस्तिको शुद्ध करता है ॥ ८९ ॥ बेतालीस कलदार रुपयाभार जल में, विगलित सुधाखंड के उपरि-भाग-गत, पिस्तालीस-मापा स्वच्छ जल मिलादें। यहां कुछ पुराणे सुधा-खंडोका उपयोग करें। फिर, इसमें तीन मापा प्रमाण में तुत्थचूर्ण डालकर उपरोक्त जल-द्वय मे अच्छी तरह मिला लेवें। इस जलद्वारा प्रक्षालन करने से उपदंश तथा व्रणादि शात हो जाते है ॥ ९० ॥ बोर झडी (बदरी-मूल-त्वक्) चौंसठ तोला लेकर उसे ५१२ तोले पानी में उकालें। अर्धावशेष रहनेपर उतारलें। इससे उपस्थ-गत व्रणो को धोने से उनका शमन होता है ॥ ९१ ॥ कासगरी सफेदा एक तोला, हिंगुल पांच मापा तथा कपूर तीन मापा इनमें घृत मिलाकर पीछे कांस्य-पात्र में अनेक बार धोकर मुलायम बनालें। फिर, इसको धीरे धीरे यत्नपूर्वक दो तीन वार, चारो ओर प्रलेप करें। इससे उपदंश-व्रण तथा दाहजन्य वेदना शांत हो जाती है ॥ ९२–९३ ॥ दो शीतल मरिच, एक इलायची, एक वाल-तुत्थ इनको नवनीत से कांस्य-पात्र में शतवार प्रक्षालित करे। फिर, निंब की शाखा से लिंगपर लेप करे ॥ ९४ ॥ मुर्दार, राल, तुत्थ इनको तैल मे सिक्त करके

१–आढकम्। २–पिचुरत्र तोलकपर। ३–प्रथमम्। ४–द्विचत्वारिंशत्कलदाररूप्य-प्रमितजलै। ५–चतु पञ्चाशन्मापतुलितकलिकोपरिस्थाच्छजलकलितै। जल च पुराणकलिकोर्थं ग्राह्यम्। ६–व्रणसामान्यमपि। ७–बदरीमूलवल्कलानां लोके 'बोरझडी' इति प्रसिद्धानाम्। ८–'कासगरी सफेदा' इति लोकख्यातात्। ९–कास्यपात्रे इति शेष। घृतेनौषधं समेल्य पश्चाज्जलेन बहुश प्रक्षालयेदिति। १०–आकृतिमानादेव ग्रहणम्। एवं त्रुटेरपि। ११–पञ्चतोलकमिते। १२–निम्बकाष्ठशलाकयेति शेष। १३–लेप कृत्वा पट्ट बध्नीयात्।

४६ क्षीरिणीच्छत्रभसितंमायागैरिककत्थकम् ।
गलैवंशदलाम्भोभिरधिताम्रं विमर्दयेत् ॥ ९६ ॥
अस्य प्रलेपमात्रेण दाहार्तिश्वयथूत्तराः ।
उपदंशव्रणा घोराः प्रणश्यन्ति न संशयः ॥ ९७ ॥
४७ प्रशमयति तन्दुलीयस्वर्णच्छदकल्पितः कल्कः ।
पिडिकामुपस्थजातां दवोल्वणां पट्टखण्डसंनद्धः ॥ ९८ ॥
४८ पोदीफणिज्जौ रसमार्षकौ पृथक् पलं सिताया मरिचानि विंशतिः ।
प्रपिष्य चन्द्रोडुहिमेन वारिणा निर्गाल्य कल्ये पिब पारदार्तिषु ॥९९॥
४९ हंसराजतृणं किंच कुङ्कुमं जातिपत्रिकाम् ।
पिष्ट्वाऽम्भसा वटीः कुर्यात् प्रस्रवद्व्रणशोषिणीः ॥ १०० ॥

इति सौजाकोपदंशचिकित्सा ।

शतवार प्रक्षालित करले। इसके लेप से उपदंश शांत हो जाता है। प्रलेपोपरांत, पट्टी बांध देनी चाहिये ॥ ९५ ॥ खिरणीपर उत्पन्न छत्रक को छायाशुष्क करके उसकी भस्म बनालें। माजूफल, गैरिक, श्वेतकत्था तथा छत्रक की भस्म इनको एकत्र लेकर, गुलैवांस के पत्र-स्वरस से, ताम्रपात्र में मर्दन करें। इसके लेपमात्र से उपदंश के घोर व्रण तथा तज्जन्य दाह, वेदना, श्वयथु आदि प्रनष्ट हो जाते है इसमे सशय नहीं ॥ ९६–९७ ॥

तादलजा तथा धत्तूरा इनके पत्तो का कल्क बनाले। इस कल्क को पट्टी से युक्तिपूर्वक बाध दें। इससे दाहातिशययुक्त उपस्थ-पिडिकाये प्रशमित हो जाती है ॥९८॥ पोदीना तथा मरवा प्रत्येक छह मापा, मिश्री चार तोला, मरिच नग वीस इनको एकत्र पीसकर 'चंद्र-नक्षत्र' से शीतल जल में घोल, वस्त्रपूत करके पीये। इसका प्रयोग, अशुद्ध रसकपूर, हिंगुल, पारद आदि के भक्षण से, अथवा दुराचरण से उत्पन्न विकृति में, परम प्रशस्त है ॥९९॥ हसराजतृण, केसर तथा जावित्री इनकी, पानी मे घोटकर, वटिया बनालें। यह वटिया, असम्यक्-मारित धातुके सेवन से उत्पन्न स्रावयुक्त व्रणो का, अथवा दोषजन्य स्रावसह व्रणो का शोषण करके उन्हे सुखा देती है ॥ १०० ॥

— सौजाक उपदश चिकित्सा समाप्त —



१–'खिरणी' इति प्रसिद्धपादपोत्पन्नं शिलीन्ध्रं शुष्कं कृत्वा भस्म कार्यम्। २–मायाफलानि। ३–सुवर्णगैरिकम्। ४–धवलकत्थम्। ५–'गुलैवास' इति प्रसिद्धस्य पत्रस्वरसै। ६–तन्दुलीयधत्तूरदलकल्पित। ७–रसकर्पूरहरितालपारदभक्षणाद्दुरवचारिताद्दुत्पन्नाया विकृतावय प्रयोग इष्यते। पोदी 'पोदीना' इति प्रसिद्ध। फणिज्जो मरुवक. 'मरवा' इति ख्यात। ८–षण्माषिकौ पृथक्। ९–प्रात काले। १०–असम्यङ्मारितधातुजन्यस्रवद्व्रण-शोषिणीर्दोषव्रणशोषिणीश्च ॥

कुष्ठरोगचिकित्सितम्[1]।

१ साधितं[2] वालुकायन्त्रे तृणप्रज्वलनावधि।
तुत्थं निहन्ति पर्णेन कुष्ठमुत्थं समग्रशः ॥ १ ॥
२ ऐन्द्रासनं[3] रजो लेह्य हविषा मधुसंयुजा।
अशेषकुष्ठशमनं नास्त्यतः परमौषधम् ॥ २ ॥
३ पालाशबीजगन्धाग्नीन्[4] दुग्धे संस्वेद्य निर्भरम्।
विशोष्य साधु संचूर्ण्य चालयेत् सूक्ष्मवाससा ॥ ३ ॥
तच्चूर्णं माषयुगलं जलेन सह साधितम्।
निहन्ति मण्डलं कुष्ठं मासमात्रप्रयोगतः ॥ ४ ॥
४ संभाव्य देवदालीं[5] सौधार्कैः सप्तधा पृथग्दुग्धैः।
कुष्ठेषु वल्लमानां पिब पयसा त्यज पट्टप्रभृतीन् ॥ ५ ॥
५ आर्द्राणि निम्बपर्णानि गिलेत् प्रातर्हिमाम्बुभिः।
मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्त्यहितँत्यजाम् ॥ ६ ॥
६ द्विपलं निम्बजं कल्कं प्रत्यूषे गिलतां नृणाम्।
प्रभिन्नमपि वातास्रं व्येति पथ्यघृताशिनाम् ॥ ७ ॥

— कुष्ठरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३५) —

तुत्थ को वालुकायंत्र में अथवा सपुट मे रखकर, तृण प्रज्वलित रहे तब तक अग्नि देकर सिद्ध करले। फिर, एक चावल जितनी मात्रा मे पान के साथ इसको लेने से समग्र शरीर मे व्याप्त कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ भगा के चूर्ण को मधु तथा घृत के साथ दीर्घकाल तक लेने से, समग्र कुष्ठ शात हो जाते है। कुष्ठ की इससे अधिक उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ २ ॥ पलाशबीज, गधक तथा चित्रक इनको दूध में यथेच्छ उकाल लेवें। फिर इनको सुखाकर वस्त्रपूत चूर्ण वनाले। इस चूर्ण को दो माषा भर मात्रा में पानी के साथ एक मास पर्यंत लेने से मडल कुष्ठ प्रशमित हो जाता है ॥ ३–४ ॥ देवदाली के फल को सुधाजल की तथा अर्कदूध की पृथक् पृथक् सात भावनाये देवें। कुष्ठ-विकारो मे दूध के साथ इसकी एक वालभर मात्रा लेवें। प्रयोगकाल मे लवणाम्ल प्रभृति को त्याग दें ॥ ५ ॥ निंब की ताजा आर्द्र कोपलों को, प्रात. शीतल जलानुपानसह, एकमासपर्यंत, पथ्यपूर्वक लेने से, कुष्ठ शात हो जाते है ॥ ६ ॥ निंब की आठ तोला नूतन कोपलो के कल्क को प्रात सेवन करने से, तथा

१–अधुना क्रमप्राप्त कुष्ठरोगचिकित्सितमभिधीयते। २–तुत्थखण्ड केवल सपुटस्थ वा वालुकान्त साधयेदिति। मात्रा चास्य तन्दुलोन्माना। ३–भङ्गोद्भव चूर्णं चिराभ्यासात् फलदम्। ४–पालाशबीजगन्धकचित्रकान्। ५–'वन्दाल' इति ख्याता काचिद्वल्ली, तस्या फलम्। ६–कर्षप्रमाणानि। ७–गुडतैलदुग्धादीन्यहितानि त्यजन्ति तच्छीलानाम्। ८–निम्बसवर्तिकाजम्। ९–तैलाम्लादिवर्जं घृत कुडवमितं प्रत्यहं पथ्ये प्राश्यम्।

७ तिक्तभृङ्गमरुद्वल्लीरसो निम्बमदान्वयः ।
सक्षौद्रोऽर्ग्रहमध्युष्णं सिद्धः कुष्टास्त्रसूदनः ॥ ८ ॥
८ तोलद्वयं सितायाः जुङ्गयास्तोलो निशाऽर्धतोलेव ।
मरिचानि निशार्धानि प्रत्येकं सर्वमेतदापिष्य ॥ ९ ॥
पाणौ यथोपदेशं प्रकल्प्य कल्ये गिलेद्दिनैः षड्भिः ।
हिममम्बु पिबेच्चानु क्षपणाय प्रदुष्टरक्तस्य ॥ १० ॥
९ सिताप्रयोगान्मधुरीकृतं मनाग्जीरप्रयोगात् सुरभीकृतं पुनः ।
रसं पलाण्डोः पलसंमितं प्रगे पिबन्तु पामाव्यथमानपाणयः ॥ ११ ॥
१० बदराङ्घ्रिवल्कलजनुषि शिशिरेशृते तन्दुलानि संसाध्य ।
गव्यघृतशर्कराभ्यां हन्युर्भुक्तानि पामार्तिम् ॥ १२ ॥
११ प्रपिष्य गन्धममलसारंभिन्नं भिषग्वरः ।
दद्यात् क्षौद्रेण शाणार्धं कण्डूपामादिरोगिणे ॥ १३ ॥

पथ्यरूप से तैलाम्लादि के त्यागपूर्वक, सोलह तोले घी का पथ्यरूप से प्रतिदिन भोजन करते हुये, प्रवृद्ध वात-रक्त भी शमित होता है ॥ ७ ॥ चिरायता, भृंगराज तथा अमरवेल इनके प्रत्येक के बत्तीस तोला स्वरस में, करीब बत्तीस तोला निंब-मद मिलावें। फिर, बत्तीस तोला शहद के साथ इनको एक काच-कुपी में भरकर सूर्य के ताप मे अठारह दिवस पर्यंत रहने दें। यह सिद्ध-रसायन कुष्ठ तथा रक्त-पित्त का नाश कर देता है। इसकी मात्रा चार तोला भर है। नमकरहित केवल चने के आटे की रोटियो के अतिरिक्त अन्य सभी पदार्थ वर्ज्य है ॥ ८ ॥ मिश्री दो तोला, मजिष्ठा एक तोला, हरिद्रा अर्ध तोला, मरिच तीन माषा इन प्रत्येक को एकत्र पीस लें। इसके चूर्ण को, हस्त-तल मे रखकर, षड्-दिवस पर्यंत नियमित फाक जायें। ऊपर से शीतल जल पीयें। इससे रक्त-दुष्टिजन्य पामा का क्षय हो जाता है ॥ ९-१० ॥

प्रथम मिश्री मिलाकर मधुर किया गये, फिर, जीरक-चूर्ण से सुगंधित बनाये गये पलाण्डुरस को, पामापीडित पुरुष, एक पलमात्रा में, प्रात काल पीयें ॥ ११ ॥ बदरी मूल-त्वक् के, अनग्नि-सिद्ध हिम-कषाय से चावलो को पकाकर सिद्ध करलें। फिर, इसमे गाय का घी और शक्कर मिलाकर भोजन करें। इससे पामा की पीडा पराजित हो जाती है ॥ १२ ॥ आमलासार गधक को पीसकर, उसमे से डेढ माषाभर

१-तिक्त किरात, भृङ्ग भृङ्गराज, मरुद्वल्ली अमरवल्ली, एतत्स्वरसो निम्बवृक्षस्रावश्च। २-एते सर्वे द्रवा प्रत्येकं शरावमिता ग्राह्या। ३-काचकूपीमध्ये भृत्वाऽऽतपे संस्थाप्यं, सिद्धे मात्रा पल, पथ्य च केवलचणकरोटिका विलवणा नान्यत्किंचिदपि। ४-मञ्जिष्ठाया। ५-प्रोक्तक्रमेण। ६-प्रदुष्टरक्तजपामाया इत्यर्थं, कार्ये कारणोपचारात्। ७-लवणादिवर्जमत्र पथ्यम्। ८-हिमकषाये अनग्निसिद्धे इति यावत्। ९-अनि सुतमण्डानीति शेष। १०-'आमलासार' इति नाम्ना प्रसिद्धगन्धकविशेषादन्यो गन्धक आदेय।

१२ वाकुची[1]गन्धपाषाणौ क्रीतौ ढव्वू[2]कैशुल्कतः ।
कर्के[3] निक्षिप्य सजले सायं सौधोपरि न्यसेत् ॥ १४ ॥
उत्थाय तज्जलं प्रातर्निपीय पटपावितम् ।
पटस्थं चक्कसं तैले[4] पिष्ट्वा लिस्वाऽऽतपं भजेत् ॥ १५ ॥
विधाविति कृते पामा दिनेनैकेन नश्यति ।
अहानि त्रीणि सेवेत भक्तं दुग्धेन केवलम् ॥ १६ ॥
१३ कम्पिल्लव[5]स्तगन्धामृताश्मवलितुत्थजं चूर्णम् ।
मसृणं घृतेन लेपात् पामां हन्त्यातपे निषण्णस्य ॥ १७ ॥
१४ चूर्णं[6] पलं[7] सिध्मितनक्तशाणं संनीय तैलेन[8] रुबूद्भवेन ।
धौतं पयोभिः[9] शतशः क्षिणोति पामाप्रकोपं त्रिभिरेव लेपैः ॥ १८ ॥
१५ मधूकपुष्पाणि पयःप्लुतानि[10] बद्धानि पामोपरि कर्पटेन ।
तत्तादृगुद्रिक्ततदीयदाहपीडाप्रभृत्यापदमाक्षिपन्ति ॥ १९ ॥
१६ श्वेतगुञ्जारसा[11]फूकसिन्दूरोषणशुक्तिकम् ।
पिष्ट्वा बधान तैलेन मोदकं वैद्यमोदकम् ॥ २० ॥

मात्रा का, वैद्य-श्रेष्ठ, कण्डूपामादि से पीडित रोगी को सेवन कराये ॥ १३ ॥ मालिवापची (वाकुची) तथा गन्धक दोनो को एक ढव्वू के मूल्य से जितने मिलें उतनी मात्रा में लेकर जल-पूर्ण सकोरे में भिगोकर, साझ को, छतपर रखदें । सुबह, सकोरे के जल को वस्त्रपूत करके पीजायें । फिर, वस्त्रलग्न-भूसे को, तैल अथवा घी मे पीसकर हाथो पर प्रलेप करके धूप मे बैठ जाये । विधिपूर्वक इस तरह करने से एक ही दिवस में लाभ दीख पडेगा । यह प्रयोग तीन दिवस पर्यंत करें । भोजन मे केवल दूध ही पीयें । (इस प्रयोग को यथोपदिष्ट विधिपूर्वक करने से ही लाभ होगा, अन्यथा नहीं ॥ १४–१६ ॥ कपिला, वाकुची, मुर्दार, गन्धक और तुत्थ इनके चूर्ण को घी में घोट कर मुलायम बनालें । इसका प्रलेप करके धूप मे बैठ जाये । इससे पामा शात हो जाता है ॥ १७ ॥ कलिकाचूर्ण चार तोला तथा हरिद्रा तीन मापा इनको एकत्र चार तोला भर एरण्डतैल मे पीसलें । फिर, पानी से सोवार प्रक्षालन करे । इसके तीन वार प्रलेप से पामा का प्रकोप क्षीण हो जाता है ॥ १८ ॥ मधूकपुष्पो के जल-पिष्ट कल्क को पामा के ऊपर प्रलिप्त करके पट्टी से बाध दे । प्रवृद्ध पामा तथा तज्जन्य दाह, वेदना प्रभृति सकट को यह क्षीण कर देता है ॥१९॥ श्वेत गुंजा, पारद, अफीम, सिंदूर, मरिच तथा शुक्ति इनको एकत्र तैल मे पीसकर, फिर, वैद्य को मोद देनेवाला मोदक बनाकर,

---

१–वाकुची ‘मालियापचा’ इति जयपुरे प्रथिता । २-एकेनैव ढव्वूकेनोभयमपि वणिगापणात् क्रीत्वा समानेतव्यम् । यथोपदेश कृते प्रयोगे फल नान्यथेति । ३–‘करवा’ इति प्रसिद्धमृत्पात्रे । ४–घृतेऽपीति मतान्तरम् । ५–‘मालीवापची’ इति प्रसिद्धा । ६–कलिकाखण्डोत्थम् । ७–समेलितहरिद्राशाणम् । ८–पलमानेन । ९–जलै । १०–जलेन कल्कीकृतानि । ११रस पारद ।

तप्ते चतुर्गुणे तैले पच फेनोद्गमावधि ।
मर्दितस्यास्य लेपेन पामाऽपैति त्रिभिर्दिनैः ॥ २१ ॥
१७ पारदटङ्कणगन्धयुगकज्जलिका भवतीह ।
घृतलुलिता लेपैस्त्रिभिः पामादद्रुहरी हे ॥ २२ ॥
१८ दद्रूं वन्योपलैः कृत्वा मनागुद्गतशोणिताम् ।
भृशं लिम्पेदिङ्गुदैर्मांसैर्विकीर्योपरि शर्कराम् ॥ २३ ॥
आच्छाद्य स्विन्नपञ्चास्यच्छदैः पट्टं विबन्धयेत् ।
अष्टयामात् पुनः कुर्यात् पट्टान्तं सकलं विधिम् ॥ २४ ॥
एवं पट्टैस्त्रिभिर्दद्रूर्भवेदुत्सन्नकण्डुरा ।
शाम्यत्युद्गस्य सा जन्तूञ्जलस्पर्शं विवर्जयेत् ॥ २५ ॥
१९ तूलं निम्बाम्बुसंसिक्तं घृतेन तलितं भृशम् ।
दद्रूपरि पटैर्बद्धं दद्रुं तक्षति पक्षतः ॥ २६ ॥
२० लिप्तः संघृष्य तैलेन वलिरामलसागरः ।
उग्रानँ दद्रूगदानत्ति तार्क्ष्यः कद्रूसुतानिव ॥ २७ ॥
२१ सौभाग्यगन्धसादरसितोपलाः पीतनिम्बुकस्वरसाः ।
अधिपानीयं पिष्टा लेपान्निघ्नन्ति दद्रूणि ॥ २८ ॥

इसको, इससे चतुर्गुण तैल मे तब तक पकावें, जब तक तैल मे से फेन निकलना बंद न हो जाये। इसके लेप से मर्दित पामा तीन ही दिवस मे दूर हो जाता है ॥ २०–२१ ॥

टंकण, पारद, गधयुग, कज्जलिका घृतघृष्ट।
करती तीन-प्रलेप से, पामा, दद्रु, विनष्ट ॥ २२ ॥

वन्य-उपल से दद्रु को घिसकर उसमें से रक्त निकाल लें। फिर, उसपर इङ्गुदी फल की मज्जा का यथेच्छ लेप करके उसपर मिश्री चूर्ण भुरकाकर, ऊपर से, एरड के स्विन्न पत्तों को बिछादे और पट्टी बाध दे। इस तरह तीन बार पट्टी बांधने से दद्रु-जन्य खुजली मिट जाती है। तथा तत्-गत कृमियो के बाहर निकल जाने पर वह स्वयमेव शांत हो जाता है। इसके प्रयोगकाल मे जल-स्पर्श वर्ज्य है ॥ २३–२५ ॥ कपास को निंबू रस से सिक्त करके घृत मे खूब तल लेवें। इसको दद्रु के ऊपर वस्त्र-पट्टी से अच्छी तरह बांध देवें। इससे दद्रु एकपक्ष मे विशीर्ण हो जाता है ॥ २६ ॥ गंधक तथा आमलासार गधक दोनो को तैल मे अच्छी तरह पीस लेवें। यह लेप उग्र दद्रु, पामा आदि का उसी तरह भक्षण कर जाता है, जिस तरह गरुड ने कद्रूपुत्रों का किया था ॥ २७ ॥ टंकण, गधक, नवसादर और मिश्री इनके चूर्ण को निंबूरस की भावना

१—'आमलासार, छाछिया' इति लोकप्रसिद्ध गन्धकयुग्मम्। २—ह इत्याश्चर्ये। ३—'हिंगोटा' इति प्रसिद्धफलमध्यभाग। ४—खण्डशब्दवाच्याम्। ५—पट्ट मोक्षसमये तु जलप्रोतेन समार्ज्य लेपादिकं कृत्वा पट्ट बध्नीतेति पद्धति। ६—तन्दुलमित सौर देयमेवेति नाग्रह। ७—पामामपि हन्ति। ८—निम्बूकरसभाविता इत्यर्थ।

२२ रालटङ्कणदैत्येन्द्रपारसीकयवानिकाः
पिष्ट्वा जलेन वटिकीकृता दद्रुं जयन्ति हि ॥ २९ ॥

२३ स्फुटटङ्कणबलिमार्तिकसर्जास्तुल्याः सिता समा सर्वैः ।
मसृणं विमर्द्य पयसा लेपो दद्रून् विलोपयति ॥ ३० ॥

२४ पीतमृत्स्नां सलवणां कोष्णैरुत्क्वाथ्य शंवरैः ।
लेपोऽवचारयेदुच्चैर्दद्रूविध्वंससिद्धये ॥ ३१ ॥

२५ पिच्छिलाच्छल्लकक्वाथप्लुतप्लोतेन सर्वतः ।
दद्रुरश्रान्तमभ्यक्ता प्रणश्यति शनैः शनैः ॥ ३२ ॥

२६ धात्रीफलप्रपुन्नाटबीजजीरककल्पितः ।
प्रलेपो वितरत्यद्धा दद्रुदारिद्र्यमुच्चकैः ॥ ३३ ॥

२७ हेमक्षीरीरसो यद्वा रसोनकलिकोद्भवः ।
क्षोदो वा लोहकिट्टस्य दद्रुद्रावी प्रलेपतः ॥ ३४ ॥

२८ दद्रुघ्नः कोलिनिर्यासश्छागक्षीरेण लेपितः ।
मृत्स्नामरिचचूर्णं वा गोदुग्धेन तथा स्मृतः ॥ ३५ ॥

देवें । फिर पानी में पीसकर इसका लेप करनेसे दद्रु आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ राल, गंधक, टंकण, खुरासानी अजवायन इनकी जल मे पीसकर वटी बनालें । इससे दद्रु पर विजय मिलती है ॥ २९ ॥ भृष्ट टंकण, गधक, मटिया राल प्रत्येक समान भाग तथा इनसे समान भाग मिश्रीचूर्ण इन सबको एकत्र पानी में बारीक पीसलें । इसका प्रलेप दद्रुओं का विलोप कर देता है ॥ ३० ॥ लवण सहित्त पीली मिट्टी को, कवोष्ण-क्षार-जल में पकावें । दद्रु विध्वंसरूपी उच्च सिद्धी के लिये इसका लेप करें ॥ ३१ ॥

चौसठ तोला शिंशिपामूल-त्वक् को जौकुट करके ५१२ तोला जल मे उकाल कर ६४ तोला जलके अवशिष्ट रहनेपर उतार लें । इस क्वाथ के प्लोत से दद्रु को निरतर सिक्त रखने से वह शनै शनै नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ आवला, पवाड के बीज तथा जीरा इनका प्रलेप शीघ्र ही दद्रु के दारिद्र्य को नितांत स्पष्ट कर देता है ॥ ३३ ॥ स्वर्णक्षीरी का रस अथवा शुद्ध किये गये लहसुन की कलियों का रस, अथवा लोहकिट्ट का चूर्ण इनमें से किसी एक के प्रलेप से दद्रु द्रवीभूत हो जाता है ॥ ३४ ॥ बदरी वृक्ष के गूद का, अजादुग्ध के साथ प्रलेप दद्रु का नाश कर देता है । इसी तरह मुलतानी मिट्टी और मरिच चूर्ण का गोदुग्ध के साथ प्रलेप भी यही प्रभाव दिखाता है ॥ ३५ ॥

१—मार्तिकसर्जो मृत्तिकावर्णो राल । स च 'मटिया राल' इति प्रसिद्ध । २—लवणमत्र शाकम्भरीयम् । ३—क्षारपानीयैर्न तु मधुरैरिति यावत् । ४—पिच्छिला शिंशिपा, तस्या वल्कलं द्विप्रस्थं यवस्थूल विधाय द्व्याढकजले सक्वाथ्य द्विप्रस्थ शेषयेत् । तत्प्लोतेन म्रक्षिता दद्रूर्नश्यतीति । ५—शुद्धरसोनभवो रस इत्यर्थ । ६—बदरीगुन्द्रम् । ७—मृत्स्ना च मुलतानदेशोद्भवा । ८—दद्रुघ्न इत्यर्थ ।

२९ तेजोवा: साधनद्रव्यवक्कसं लिम्पतां नृणाम् ।
दद्रुविचर्चिकाचिन्ता न जातुचन मुञ्चति ॥ ३६ ॥
३० आवाप्य तप्ततैलान्तः पादिकं सिक्थमुत्तमम् ।
शतकृत्वो जलैर्धौतं फुल्लमो नाम सिध्यति ॥ ३७ ॥
विपादिकामयं लेपमात्रेणैव व्यपोहति ।
दद्रुं शवाश्मसंगत्या दाहं कर्पूरसंस्कृतः ॥ ३८ ॥
३१ शुष्कं रजः सुधाजं विमथ्य तैलेन मर्दिते गात्रे ।
कुष्ठं विभूतिसंज्ञं कष्टमपि हहा भवति नष्टम् ॥ ३९ ॥
३२ मलयोद्भवकर्पूरकल्पितो लेपसत्तम ।
विभूतिं रंहसा हन्ति परां काष्ठां गतामपि ॥ ४० ॥
३३ नीरे द्विनल्वणे प्रस्थान् वराया दश पञ्च च ।
भाण्डे निक्षिप्य संमुद्य स्थापयेद्दिवसाष्टकम् ॥ ४१ ॥
अर्कं जातरसात्तस्मादुन्नयेन्नल्वणोन्मितम् ।
पथ्यापट्टुगुटीं तेन गिलेच्छ्वित्रविचित्रितः ॥ ४२ ॥

जिन द्रव्यों से तेजाप बनता है, उन द्रव्यो के अर्थात् नवसादर, स्फटिका, कासीस आदि के भुके के लेप से दद्रु विचर्चिका की चितासे मनुष्य को मुक्ति न मिले यह कदापि सभव नहीं ॥ ३६ ॥ प्रतप्त तैल मे तैल से चतुर्थांश उत्तम सिक्थ डालकर पिघलाले । फिर जल से शतवार प्रक्षालित करे। यह सिद्ध औषधि 'फुल्लम' कहलाता है । पाददारी इसके प्रलेपमात्र से विदारित हो जाती है । मुर्दार के साथ इसका प्रलेप दद्रु को तथा कपूर के साथ, दाह को मिटा देता है ॥ ३७–३८ ॥ सुधाचूर्ण को तैल में मथकर शरीरपर लगाने से, कष्टपूर्ण सिध्म भी, अहो ! नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥ श्वेतचदन के साथ कपूर को घिसकर बनाया गया लेप अत्यंत प्रवृद्ध सिध्म को भी मिटा देता हे ॥ ४० ॥ अस्सी प्रस्थ पानी मे पदरह प्रस्थ त्रिफला के चूर्ण को मिला एक मृत्पात्र में भरकर उसके मुख को सपुटित करके आठ दिवस पर्यंत रहने दें । फिर, इसमें से करीब चालीस प्रस्थ जितना अर्क निकाल लेवें । अब, हरडे तथा सैंधव दोनो समान भाग लेकर, जल मे पीसकर एक माषा प्रमाण गुटी बाध उपरोक्त अर्क के साथ उसको निगीर्ण कर जायें । वर्षमात्र के प्रयोग द्वारा मैने इसका प्रत्यक्ष चमत्कार कहीं भी देखा है । श्वित्रकुष्ठ से पीडित मानव जाति के उपकारार्थ यह प्रयोग मैं यहां

१–तेजोवा तेजापसज्ञक, तस्य साधनद्रव्याणि नवसादरस्फटिकाकासीसप्रभृतीनि तेषा बक्कसम् । २–मधूच्छिष्टम् । ३–पाददारीम् । ४–सिध्मापरपर्यायम् । ५–अधुन श्वित्रसज्ञस्य चिकित्सोच्यते । ६–नल्वणोऽत्र चत्वारिंशत्प्रस्थप्रमाणो विवक्षितः ७–त्रिफलाया । ८–पथ्यां सैन्धवं च सम गृहीत्वा जलेन पिष्ट्वा माषोन्मिता गुटी कार्या स्पष्टमन्यत् ।

क्वाऽपि दृष्टचमत्कारो वर्षमात्रप्रयोगतः ।
श्वित्रिणामुपकाराय प्रयोगोऽत्र प्रकाशितः ॥ ४३ ॥
पीते परं तद्वदर्कं पुनर्निष्काश्य वर्तयेत् ।
मात्राऽस्य कुडवोन्माना पथ्यमप्यल्पसैन्धवम् ॥ ४४ ॥

३४ सच्छिद्रकाचमसृणितकरके[1] भृत्वा शिरोरुहप्रस्थम् ।
तदुपरि विकीर्य तुत्थं तोलकमेकं विमुद्र्य करकास्यम् ॥ ४५ ॥
पातालयन्त्रे[2]युक्त्या किमपि प्रच्यावितं तैलम् ।
अहह विनिहन्ति नाम प्रलेपतः श्वित्रसितिमानम् ॥ ४६ ॥

३५ चत्वारिंशद्दिनानि स्त्रीमूत्रे ज्योतिष्मती[3] स्तुता ।
तत्तैलं यन्त्रतः[4] कृष्ट्वा लिम्पेच्छ्वित्रोपरि द्रुतम् ॥ ४७ ॥

इति कुष्ठचिकित्सा ।

अथ शीतपित्त[5]चिकित्सितम् ।

१ शितिजीर[6]शरीजीरे पृथग्गद्याणसंमिते ।
प्रसृतेऽम्भसि निःक्वाथ्य पादोनमवतारयेत् ॥ १ ॥

प्रकाशित करता हूं । अर्क यदि पीते पीते निःशेष हो जाये तो पुनः उपरोक्त विधि से निकाल कर उपयोग करें । इस अर्क की मात्रा नित्य सोलह तोला भर है । अल्प सैंधव पथ्य है ॥ ४१–४४ ॥

एक करवे के भीतरी भाग में काच का घोल चढाकर उसे मुलायम बनालें । फिर, इसके तल भाग मे एक सूक्ष्म छिद्र कर दें । अब, इस करवे मे सिर के करीब चौसठ तोले बाल- केश बिछाकर उनके ऊपर एक तोला तुत्थ का चूर्ण फैलादें । करवे के मुख को कपडमिट्टी करदें । अब, १२८ तोले उपलो की अग्नि देकर, पातालयंत्र-विधि से युक्तिपूर्वक तैल टपका लें । अहो ! इस तैल के प्रलेप से श्वेतवर्णता को प्राप्त होता हुआ श्वित्र नष्ट हो जाता है ॥ ४५–४६ ॥

चालीस दिवस पर्यंत स्त्रीमूत्र में मालकांगनी भिगोकर रखदें । फिर इसमें से पातालयंत्र द्वारा तैल निकाल लेवें । इसका श्वित्र पर प्रलेप करने से वह शीघ्र शमित हो जाता है ॥ ४७ ॥　　– कुष्ठचिकित्सा समाप्त –

– शीतपित्त चिकित्सा (कुल प्रयोग ३)

श्वेतजीरा तथा शरीजीरा प्रत्येक छह माषा लेकर उनको ८ तोले जल में उकालें ।

१–करकस्याधस्तले स्वल्पं छिद्रं कार्यं तैलच्यावनार्थम् । काचघोलेन च तदभ्यन्तरे प्रलेपो मसृणः कारयितव्य । २–अग्निरत्र द्विप्रस्थगोमयैर्देयः । ३–'मालकांगनी' इति ख्याता । ४–पातालयन्त्रत. । ५–त्वगादिदुष्टिसाधर्म्याच्छीतपित्तम् । ६–शितिजीरं कृष्ण-जीरकम् । शरीजीरं लामज्जकशरीजीरम् ।

कृत्वा तिस्रो वटीस्तासामेकैकां निर्गिलेत्र्यहम् ।
लीयते स्नायुकः किं तु बध्नीयाद्धिल्वजं दलम् ॥ ६ ॥

६ बर्हिणो वर्हमाद्यन्तवर्जं दग्ध्वा गिलेज्जलैः ।
त्रिभिरेव दिनैर्ब्रूमः स्नायुको विलयं व्रजेत् ॥ ७ ॥

७ बोलं गुडेन जीर्णेन विनीय गुटिकीकृतम् ।
त्रिसन्ध्यं निर्गिलेदेव सद्यः स्नायुकशान्तये ॥ ८ ॥

८ जतुस्तोलककापोतेशकृतः सगुडा गुडाः ।
सप्त सप्तदिनैरेव स्नायुकं स्यन्ति शन्मशः ॥ ९ ॥

९ गरुडविशेषस्य गरुदपगतनलिकं विचूर्ण्य तस्यार्धम् ।
सगुडीकृत्य निगीर्णं स्नायुकमल्पैरहोभिरपहरति ॥ १० ॥

१० दग्ध्वा तैलेऽग्निकं तेन छित्वा स्नायुं छदान् धर ।
पट्टं वध्वाऽष्टदिवसैर्मुञ्च तद्ध्वंससिद्धये ॥ ११ ॥

११ स्नायुकोपरि संयद्धा चन्द्रवाह्लीकचक्रिका ।
समूलमुन्मूलयति स्नायुकं नात्र संशयः ॥ १२ ॥

करें। इस तरह तीन दिवस में ही स्नायुक विलीन हो जाता है, किंतु स्नायुक पर बिल्व-पत्र बांध देना चाहिये ॥ ५–६ ॥ मयूर-पिच्छ का आदि और अन्त का भाग निकाल कर अवशिष्ट भाग को जलाकर भस्म बनालें। इस भस्म को तीन दिवस जल के साथ फांकें। हम कहते हैं कि तीन दिवस में ही स्नायुक विलीन हो जायेगा ॥ ७ ॥ रक्तबोल को गुड में अच्छी तरह मिलाकर दिवस में तीन बार, प्रात, मध्याह्न तथा सायं को, निगीर्ण करने से, स्नायुक शीघ्र शांत हो जाता है ॥ ८ ॥ लाख, वन्यकपोत की विष्ठा तथा गुड प्रत्येक एक तोला लेकर इनकी गुडाकू बना, सात गुडक, प्रति दिवस, सात दिवस तक लेने से स्नायुक सपूर्णत मिट जाता है। पक्षावधि लवण मरीचादि वर्ज्य हैं ॥ ९ ॥ नीलहांस नामक पक्षी के पक्षों को लेकर उसकी नसें निकाल लें फिर उसका चूरा करके उसमें से अर्ध भाग चूरे को गुड में मिलाकर निगीर्ण कर जायें। इस प्रयोग से कुछ ही दिवसों में स्नायुक दूर हो जाता है ॥ १० ॥ भल्लातक को तैल में जलाकर, उसकी भस्म को स्नायुक पर मल देवें तथा उसपर नागरवेल के पत्तों को पट्टी से बांध देवें। आठ दिवस पीछे पट्टी खोलें। इससे स्नायुक नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ हिंगु तथा हिंगुनिर्मित टिकिया स्नायुक पर बांध दें। यह स्नायुक का समूल नाश कर देती है

वारत्रयमदन्तस्पर्शं गिलेदिति। ३–'बाजरी' इति ख्यातधान्यविशेषचूर्णाजया माषा इति योजनीयम्। जया इत्यष्टादश। ४–अष्टादश माषा इत्यर्थ। ५–द्वादश माषा। ६–आकाशवल्लीतन्तूनाम्।

१–मयूरस्य। २–कपोतश्च वन्योऽभिप्रेत। ३–गुडकसंख्येयम्। ४–भन्तीत्यर्थः। अत्र लवणमरिचादिकं सर्वथा हेयं पक्षावधि। ५–'नील हांस' इति ख्यातस्य पक्षिण। ६–भल्लातकम्। ७–नागवल्लीच्छदानित्यर्थ। ८–कर्पूरहिङ्गुचक्रिका।

१२ कल्कमिषीकास्नुग्जं समतैक्रशृतं पटेन बध्नीत।
सप्तदिवसप्रयोगात् प्रणश्यति स्नायुकस्तन्तुः ॥ १२ ॥

— इति स्नायुकचिकित्सितम् —

अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा।

१ विंशतिवर्षोऽपि यतिः कूष्माण्डस्वरससंस्कृतश्मश्रुः।
ललितपलितकलिततया लज्जयतितरामशीतिवर्षीयम् ॥ १ ॥

२ चूर्णं धात्रीचूर्णं सजलमयसि सीसकेन घृष्ट्वाऽलम्।
तल्लेपतो लसन्ति श्यामाः केशा रुबुच्छदच्छन्नाः ॥ २ ॥

३ केनापि मह्यमुपदिष्टमिदं रहस्यं कृत्वा कदाऽपि सकृदेव मयाऽनुभूतम्।
सिन्दूरचूर्णविहितो बहलः प्रलेपः केशान् करोत्यलिनिभान् वटपत्रबद्धः ३

४ एला गन्धशटी मांसी मुस्ता कृष्णागुरुर्नखम्।
धात्रीफलानि शैलेयं कार्षिकाणि पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥

इसमें शंका नहीं ॥ १२ ॥ चार तोला भर तुलिया थोर के कल्क को, दहि में चतुर्थांश जल मिला कर निर्मित की गयी छाछ में उकाल लेवें। फिर, इसको स्नायुक पर पट्टी से बांध दें। सात दिवस तक इस प्रयोग से स्नायुक-तन्तु नष्ट हो जाता है। इस कल्क को दिन में एक बार बदल लेना चाहिये ॥ १२ ॥

— स्नायुक चिकित्सा समाप्त —

— क्षुद्ररोग चिकित्सा (कुल प्रयोग २५) —

बीस वर्षीय युवा यति के दाढी-मूंछ के कृष्ण-वर्ण केश भी, कूष्मांड-स्वरस से साफ किये जाने पर इतने सफेद-पलित हो जाते हैं कि अस्सी-वर्षीय वृद्ध के बाल भी उसके सामने कुछ माल नहीं ॥ १ ॥ सुधाचूर्ण तथा हरडे के चूर्ण को, लोह खरल में जल के साथ, सीसे के भरथे से यथेच्छ मर्दित करें। फिर, इसका केशों पर लेप करके उनको एरंडपत्र से आच्छादित कर कपडे से बांध दें। इससे केश श्याम हो जाते हैं ॥ २ ॥

सिंदूर चूर्ण का केशोंपर गाढ प्रलेप करके उनको वट-पत्रों से बाध देवें। इससे केश भ्रमर जैसे कृष्ण-वर्ण हो जाते हैं। यह रहस्य-पूर्ण प्रयोग मुझे किसी ने भी बताया है और इसको केवल एक बार, कभी अपने ही ऊपर अजमाकर, मैंने प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है ॥ ३ ॥ इलायची, कपूरकाचरी, मोथा, कृष्ण-अगुरु, नखला,

१—तुलियास्नुहीज पलप्रमाणम्। २—तक्रमष्टिजलं घन ग्राह्यम्। ३—स्नायुकस्फोटोपरि अहोरात्रे एकवारं कल्क परिवर्तनीय। अत्र भोज्यविषये परिहारो नास्तीति। ४—क्रमप्राप्तक्षुद्ररोगचिकित्सितमभिधीयते। ५—तत्रादौ पाषण्डिजटिलैर्लोकवञ्चनार्थं क्रियमाण आयु-प्रकर्षप्रत्यायकप्रकारोऽयम्। ६—सुधाचूर्णम्। ७—घन॰। ८—'कपूरकचरी' इति प्रसिद्धा।

तरुणी पंत्रिका सेव्यं द्विछिकर्षाणि कल्पयेत् ।
श्रीखण्डं शिंशपाखण्डं प्रत्येकं पलसंमितम् ॥ ५ ॥
इत्येभिर्वासितं तैलमष्टाहं प्रस्थमानतः ।
घटे संभृत्य सच्छिद्रशरावेण विमुद्रयेत् ॥ ६ ॥
गुरूपदिष्टपातालयन्त्रयोगेन पातयेत् ।
तैलं मनोहरामोदं धूपेलं केश्यमुच्यते ॥ ७ ॥
निष्कैकमत्र कर्पूरं क्षिपेदामोदवृद्धये ।
आमतैलनिरोधार्थं गुडापेक्षाऽपि वर्तते ॥ ८ ॥

५ सिद्धार्थवातादवचापटूनां व्यङ्गस्य विध्वंसविधौ पटूनाम् ।
लेपः कृतानां जलतो वटीनां सौन्दर्यदानाद्दयितो नटीनाम् ॥ ९ ॥

६ दुग्धेन सद्योजनुषा प्रलेपो विनिर्मितो मूलककारणानाम् ।
छायां मुखस्थां हरते मुखं स्यात् प्रभाभृतं शारदशीतरश्मेः ॥ १० ॥

७ आर्द्रीकृतानि गजदन्तरजःकटोलधात्रीफलान्यमरवल्लरिकारसेन ।
तैले पचेत्तिलभवे परिमर्दनेन श्मश्रूणि तस्य सुदृशामपि विस्फुरन्ति ११

आंवला तथा शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, गुलाव, पनडी और उशीर प्रत्येक दो तोला, चंदन, शिंशपाकाष्ठ प्रत्येक चार तोला-इन द्रव्यों को चौसठ तोला तैल में डालकर आठ दिवस पर्यंत इसी तरह रहने दें। अब, इनको एक घट में भरकर घटमुख को, छिद्रयुक्त शराव से ढक, मुद्रित कर दें। गुरूक्तविधि अनुसार, इसका पातालयंत्र द्वारा तैल टपका लें। मनोहारी सुगध से युक्त यह केश्य तैल 'धूपेल' कहलाता है। कच्चा तैल ही छिद्रमे से बाहर न निकल जाये इस आग्रह से, छिद्र को आवरित करने के लिये गुड की भी अपेक्षा रहती है। तैलमे सुगध बढाने के लिये, एक तोला कपूर डाल देना चाहिये ॥ ४-८ ॥

पीत-सर्षप, बादाम, वचा तथा सैंधव इनको जल में पीसकर वटियां बाधलें। इसके प्रलेप से व्यङ्ग नष्ट हो जाते है। सौंदर्य मे वृद्धि करने के कारण यह वटियां नटियो को भी प्रिय है ॥ ९ ॥ धारोष्ण-दूध के साथ मूली के बीजो को पीसकर लेप करने से मुह-गत-छाया-मुंहासे दूर होती है तथा मुख शरद्-चन्द्र के समान कांतिमय हो जाता है ॥ १० ॥ हाथीदांत का चूर्ण, कटोल तथा आंवला इनके चूर्ण को अमरवेल के रस में भिगोकर, तिलतैल मे उकाल लेवें। इस तैल को चिबुक आदि पर मसलें

१-मरुस्थलजा 'पनडी' इति ख्याता गन्धौषधिः। २-गुर्जरप्रचरिता सञ्ज्ञेयम्। ३-जलत कृतानां वटीना लेप इति सबन्धः। ४-प्रिय इत्यर्थ। ५-धारोष्णेन। ६-मूलकबीजानाम्। ७-'कटोल' इति नाम्नैव प्रसिद्ध केशोपयोगी द्रव्यविशेष। ८-स्त्रीणामपि किमुत पुरुषाणामित्यर्थ।

८ कटुना चूतसंधानतैलेन परिलेपितम् ।
इन्द्रलुप्तं शमं याति केशा रोहन्ति कृत्स्नशः ॥ १२ ॥
९ निम्बुसंधानतैलेन रङ्गपत्रीरजोजुषा ।
लेपयेत् कोथविक्लेदपिडिकापीडितं शिरः ॥ १३ ॥
१० वप्रप्रसादमुर्दारलाक्षाकार्पासभूतयः ।
प्रत्येकमेकगद्याणाः कम्पिल्लं भस्म केशजम् ॥ १४ ॥
वेल्लजान्याक्षिकाणि स्युस्तुत्थकं मापपञ्चकम् ।
दग्धं पूगीफलं तिस्रो दग्धाः पीतवराटिकाः ॥ १५ ॥
चतुःपञ्चाङ्गुलौरभ्रकम्बलस्य विभूतिका ।
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पटपूतं विधाय च ॥ १६ ॥
चतुर्गुणेन हविषा शतधौतेन योजयेत् ।
एष सिद्धो मलहरः शीर्षकोथप्रपाकजित् ॥ १७ ॥
११ एकं सुधाश्मखण्डं वलिं पलं द्व्याढके जलस्य पचेत् ।
लिम्पेदरुंषिकार्तं तेन शिरोऽर्धावशिष्टेन ॥ १८ ॥
१२ मौक्तिकतन्दुलचूर्णं चिञ्चाजललोलितं लिप्त्वा ।
भजतो व्यजनसदागतिमरुंषिका ग्रीष्मजाः प्रणश्यन्ति ॥ १९ ॥

इस तरह करने से सुनयनाओं के भी दाढी उग आती है फिर पुरुषो की तो बात ही क्या ? ॥ ११ ॥ आम्र-सधान के सर्पपतैल में थोडा तिलतैल भी मिलादें । फिर इसका लेप करने से, इन्द्रलुप्त शमन हो जाता हे तथा वहां केश उत्पन्न हो आते है ॥१२ ॥ मेहदी को निंबू सधान के तैल में पीसकर उसका लेप खोरी अथवा स्रावयुक्त फुन्सियों से पीडित मस्तक पर करना चाहिये ॥ १३ ॥

सफेदा, मुर्दार, लाख, रुई इन प्रत्येक की छह छह माषा भस्म, कवीला, केश-भस्म, तथा मरिच प्रत्येक एक एक तोला, तुत्थ पाच माषा, जलायी हुई (दग्ध) सुपारी तथा पीत वराटिका प्रत्येक तीन तीन नग, चार या पाच अंगुल लंबे-चकमा-नामक कवल की भस्म-इनको एकत्र लेकर, सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बनाले । इस चूर्ण मे चतुर्गुण घृत मिलाकर, पानी से शत वार प्रक्षालित करलें । इस विधि से सिद्ध यह 'मलहर' शीर्षजन्य कोथ तथा प्रपाक का शमन कर देता है ॥ १४–१७ ॥

कली का एक टांव्या (चूर्णोपल नग एक) तथा गंधक चार तोला-इनको ५१२ तोला जल में उकाल लेवें । अर्धावशेप रहने पर, उतार कर इसका प्रलेप अरुंपिका से पीडित मस्तक पर करें ॥१८॥ ज्वार को इमली के जल में पीसकर लेप करने से, ग्रीष्म-जन्य अलाई शमन हो जाती है । लेप करके सतत पंखे की हवा खानी चाहिये ॥१९॥

१—अत्र तिलतैलमपि किंचिन्मेलनीयम् । २—मदयन्ती 'मेहदी' इति ख्याता । ३—वप्रस्य सीसकस्य प्रसाद, स च लोके 'सफेदा' इति नाम्ना ख्यात । ४—मरिचानि । ५—औरभ्रकम्बले लोके 'चकमा' इति प्रसिद्धं मालपुरादिग्रामेषु प्रायो भवति, तत्र

१३ समरिचवातामैला पटेन खलु येन गाल्यते गञ्जा ।
तेन पटेन शरीरप्रोञ्छनमपहन्ति लूकदोषार्तिम् ॥ २० ॥
१४ साधारणपिडिकाः परं तासामुपरि धृतेन ।
प्रणश्यन्ति शवशृङ्गिकासंसृष्टेन घृतेन ॥ २१ ॥
१५ तक्रेण मसृणं पिष्टैरधिखल्वं शिरोरुहैः ।
लेपश्चिमननिर्दिष्टो वह्निदग्धे प्रशस्यते ॥ २२ ॥
१६ स्वर्जिकाचूर्णयोर्लेपान्मशका यान्ति संक्षयम् ।
शिरस्थास्तु ज्वलत्पर्णनलिकापरिवर्तनात् ॥ २३ ॥
१७ कण्टकविद्धं स्थानं किमपि खनित्वा शलाकया शनकैः ।
तत्र क्षिप्तसिपीकास्नुक्क्षीरं कण्टकं समुन्नयति ॥ २४ ॥
१८ भृष्टैः सदम्लिकाबीजैर्जलघृष्टैः प्रलेपितम् ।
अधो न भ्रंशते जातु गुदचक्रं प्रवेशितम् ॥ २५ ॥
१९ क्षारेण युक्तं द्विपलोन्मितेन प्रस्थद्वयं धेनुजलं घटस्थम् ।
संमुद्र्य घर्मे त्रिदिनं प्रतीक्षेद्धन्त्यग्रलेप्या ध्रुवमुग्रकच्छुम् ॥ २६ ॥

जिस वस्त्र से, मरिच, बादाम, इलायची सहित भंगा को घोटकर उसकी ठंढाई छानते हे उस वस्त्रद्वारा शरीर को पोंछने से लू जन्य व्यथा शमित हो जाती हे। जिस वस्त्र से ठंडाई छानने मे आती है, उस वस्त्रखंड का पारिभाषिक नाम 'सफाई' है। उपरोक्त प्रयोग अनुभवसिद्ध है ॥ २० ॥ मुरदासींगी को घृत मे घिसकर लगाने से शरीर की साधारण फुंसियो में आराम मिलता है ॥ २१ ॥ केशों को, खरल में, तक्र के साथ खूब मर्दन करके, उनको वह्निदग्ध भाग पर लगाने से लाभ होता है। यह सिद्धप्रयोग 'चिमन' ने बताया है ॥ २२ ॥ सज्जीखार तथा सुधाचूर्ण का प्रलेप करने से मस्से नष्ट हो जाते है। कागजघटित भूगली को प्रज्वलित करके मस्तकपर फिराने से तत्रस्थ मस्से मिट जाते है ॥ २३ ॥ शरीर के जिस भाग में कांटा घुस गया हो, उस स्थान को शलाका से थोडा कुदेर कर, तुलिया थोर का दूध लगादे। इससे कांटा बाहर निकल आता है ॥ २४ ॥ इमली के बीजों को भूनकर जल के साथ पीस लें। इसका लेप करके गुदाचक्र को अन्दर चलादें। इस तरह करने से गुदनि:सरण नहीं होता ॥ २५ ॥ १२८ तोला गोमूत्र को, आठ तोला सज्जीखार के साथ एक घट में भरकर उसके मुख को मुद्रित करके तीन दिवस पर्यंत सूर्य-ताप में रखदें। इस द्रव

चतुरङ्गुलं पञ्चाङ्गुलं वा दग्ध्वा भस्म कार्यम्। ६—मौक्तिकतन्दुलं 'जुवार' इति प्रसिद्धो धान्यविशेष। ७—क्षुद्रपिडिका 'अलाइ' इति प्रसिद्धा।

१—भङ्गा "भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया" इति निघण्टु। २—प्रचण्डग्रीष्मोष्णवाताया लूशब्देन लोकैर्लप्यते। ३—कागदघटिता नलिका। ४—मनागित्यर्थ। ५—गुदभ्रंशचिकित्सेयम्। ६—लेपस्तु द्वित्रिदिनावधि कार्य। ७—स्वर्जिकाक्षारेण। ८—गोमूत्रस्। ९—वृषणकच्छुम्।

२० कर्पूरगन्धपाषाणपटीरैः परिकल्पितः।
लेपो वृषणकण्डूतिखण्डने खलु पण्डितः॥ २७॥

२१ गुग्गुलोर्गन्धसौभाग्यक्षारमिश्रस्य वर्तिका।
निहन्ति लेपविधिना कच्छुदद्रुं निरन्तराम्॥ २८॥

२२ दुरालभाधरानिम्बौ वसुसागरमाषकौ।
आर्द्रीकृत्य जले सायं रात्रावावृत्य विन्यसेत्॥ २९॥
कल्कं तयोः पिबेत् प्रातर्दुग्धेन पटपावितम्।
चिरन्तनाऽप्यलं कच्छूः शाम्यत्येव न संशयः॥ ३०॥

२३ शाकशाणे जटावल्लं शतमल्लमतल्लकम्।
तैलेऽतस्याः शृतं लेपात् पृष्ठविस्फोटघस्मरम्॥ ३१॥

२४ सावुजपिण्डीकणपुरलोहितजतुवलयशकलानि।
मसृणीकृत्य विलेपः कक्षाग्रन्थीन् विलोपयति॥ ३२॥

के आठ लेप करने से वृषणगत उग्र कण्डू शमित हो जाता है॥ २६॥ कपूर, गंधक, धीयामाटा तथा चंदन इनके चूर्ण का लेप वृषण के दाह युक्त कण्डू को खंडित कर देता है॥ २७॥ गंधक, तेलिया सुहागा तथा सज्जीखार इनमें गंधक मिलाकर, वर्तिकायें बनालें। इस वर्ति का निरंतर लेप करते रहने से खुजली और दाद दोनों नष्ट हो जाते हैं। उपरोक्त योग में अमुक वैद्य कत्था भी मिलाते है॥ २८॥ जवासा और चिरायता क्रमशः आठ तथा चार माषा लेकर सांझ को जल मे भिगोकर रखदे। प्रात इसके कल्क को छानकर दूध के साथ पीयें। इससे जीर्ण खुजली भी निःसदेह नष्ट हो जाती है॥ २९॥ अठारह वाल भर शुद्ध मल्ल को ४५ माषा राल मे मिलाकर अतसी के तैल में पकावें। फिर, इसका लेप करने से पीठ-गत-विस्फोट-अदीठ शात हो जाता है॥३०॥

सावुदाना, गंधक तथा लाख की चूडियों के टुकडे इनके बारीक चूर्ण का लेप कांख की ग्रंथियों का विलोप कर देता है॥ ३१॥ प्रस्तुत श्लोक में सावुन-निर्माण-विधि बताई गयी है:-

जलप्रक्षेप से विगलित होते हुये सुधा-खंडों में उसी समय उनसे द्विगुणित उत्तम प्रकार की खार डाल देवें। इस द्रव-मिश्रणको तीन दिवस सूर्य की कडी धूप में रहने दें। तत्पश्चात् इस द्रव को कई बार वस्त्र से छानें। वस्त्रपूत इस तैजसजल को, फिर उकालें। उकलते हुये जब यह घट्ट बनने लगे तब इसमें अर्धमात्रा प्रमाण में

१—सदाहकण्डूतौ कार्योऽयं लेपः। २—सौभाग्यं तेलियोपपदं ग्राह्यम्। केचित् कत्थमप्यत्र क्षिपन्ति। ३—यवासभूनिम्बौ। ४—वस्त्रादिना पिधाय। ५—पञ्चदशशाणे। ६—अष्टादशवल्लप्रमाणम्। ७—क्षुमाया। ८—पृष्ठविस्फोट 'अदीठ' इति लोकख्यात्। ९—लोके सावुनाम्ना प्रसिद्धा। १०—लोहितेति वलयविशेषणम्। जतुवलयानि च 'चूडी' इति प्रसिद्धानि।

४ कण्ठग्रन्थिच्छल्लकदाहमुखासु मुखपीडासु ।
द्विक्षीरराजवृक्षक्काथेन कुरुष्व गण्डूषान् ॥ ८ ॥
५ रसनाश्वयथौ ससितो लुलायकन्याविशो रसः पेयः ।
कण्ठस्य समन्तादुपनाहोऽपि तथैव कर्तव्यः ॥ ९ ॥
६ रालक्षौद्रगुडांस्तैले पक्त्वा मलहरः कृतः ।
जिह्वादरणविस्फोटपूयप्रभृतिषु श्रुतः ॥ १० ॥
७ घृताश्मगैरिकक्षोदो मुखपाकार्तिघस्मरः ।
किं पुनर्यदि युज्येत त्रुटिप्रभृतिभिः सखे! ॥ ११ ॥
८ मुखदन्तवेष्टपाकप्रमेहपित्तास्रदाहादीन् ।
एलागैरिकगौरीपाषाणरजः सवंशजं जयति ॥ १२ ॥
९ भृष्टतुत्थखदिरत्रुटिकृष्णादग्धलोहतलपर्पटिकानाम् ।
सारणं कफसमीरसमुत्थं हन्ति दन्तरसनागलपाकम् ॥ १३ ॥
१० गोत्रागर्भचिरोषितकोकिलतण्डूर्णं कुरु द्विगुणम् ।
अवचारय तच्चूर्णं तूर्णं छल्लप्रशान्त्यर्थम् ॥ १४ ॥

उडकर लगे हुये कणो को एकत्रित करलें। फिर इन कणों को बारीक पीसकर २५६ तोला जल मे उकाल लेवें। अर्धावशेष रहनेपर जल को उतार उससे गण्डूष लेवें। इससे मुख, तालु तथा गले मे पडे हुये छिद्र, ग्रंथिवेदना एवं परिपाक शमन होते हैं ॥४-७॥ ग्रंथि, छाले तथा दाहप्रमुख मुख तथा कठ के विकारो में दूध तथा जल से सिद्ध अमलतास के क्काथ से गंडूष करें ॥ ८ ॥

जिह्वा के शोथ मे, तथा पित्तोल्बण कठरोग में भी, महिषी-वत्सा के गोबर को पानी में घोलकर तथा उसमें शक्कर मिलाकर पीवें, एवं उसी का उपनाह कंठ के चारों ओर लगावें ॥९॥ राल, शहद तथा गुड को तैल में पकाकर सिद्ध किया गया 'मलहर' उपजिह्वा, स्फोट, पूय आदि में उपकारक है ॥ १० ॥ घीयाभाटा तथा गैरिक इनका चूर्ण मुख पाकजन्य वेदना को शमन करता है। इलायची आदि के साथ यदि इसका उपयोग किया जाये तो हे मित्र! फिर कहना ही क्या? ॥ ११ ॥ इलायची, गैरिक तथा घीयाभाटा इनका एकत्र चूर्ण मुख और मसूढों के पाक को तथा सदाह प्रमेह, रक्तपित्त आदि को उनके वंशजोंसहित अर्थात् तज्जन्य विकारों को पराभूत कर देता है ॥ १२ ॥ फुलाया हुआ तुत्थ, खदिर, इलायची, पिप्पली तथा जले हुये लोह-तल की पर्पटी इनके चूर्णद्वारा सारण करने से, दांत, जिह्वा तथा कण्ठ के कफ वात-जन्य पाक नष्ट हो जाते हैं ॥ १३ ॥ पृथ्वी के गर्भ में चिरकाल तक गाढकर रखे हुये कोयले,

---

१-दुग्धं जलं च। २-पित्तोल्बणे कण्ठरोगेऽपि। ३-महिषीवत्सापुरीषस्य। ४-खरसाभावे जलं क्षिप्त्वा विमथ्य कल्पनीयः। ५-शनैरित्युपदेशः। ६-घृताश्मा 'घाईभाठा' इति नाम्ना प्रसिद्धः। ७-गौरीपाषाणो घृताश्मा। ८-गोत्रा पृथ्वी तद्गर्भे चिरोषितानि कोकिलानि।

११ चतुर्गुणाम्बरन्यस्तचतुरर्कदलान्तरे।
अङ्गारवर्णमश्मानं धृत्वा बध्नीत पोट्टलीम्॥ १५॥
स्वेदं तया प्रकुर्वीत कपोलफलकोपरि।
दुस्तराऽपि शमं याति दंष्ट्रार्तिरनिलोल्बणा॥ १६॥
१२ गरलांकारकरभतुत्थाफूकाम्रगन्धिकाः।
मलनाद्विनियच्छन्ति दंष्ट्रामयमुदित्वरम्॥ १७॥
१३ द्रवीभूते[3] स्फटीखण्डे फेनमर्धमहेः क्षिपेत्।
तद्द्रवस्य क्रमाच्छोषे जायमानेऽवतारयेत्॥ १८॥
पादांशं तीक्ष्णकृष्णाग्निचूर्णं तत्र समावपेत्।
अनेन मलनान्मङ्क्षु[4] दंष्ट्रार्तिः शान्तिमृच्छति॥ १९॥
१४ स्वर्जीस्फटीसुधा[5]फूनवसागरतुत्थसौरवाह्लीकम्[6]।
तूलपिहितमुत मलितं रन्ध्रभृतं[7] वा निहन्ति दंष्ट्रार्तिम्॥ २०॥
१५ नवसादरगर्भो वा स्फटिकागर्भोऽथवा पिचुस्तौलः।
दंष्ट्राधःस्थः स्थगयति लालास्रावेण तद्रुजं जवतः॥ २१॥

तथा इनसे द्विगुणित टंकण, इनके एकत्र चूर्ण को मुंह में मलने से तत्गत छाले शीघ्र शांत हो जाते हैं॥ १४॥ एक वस्त्रखड की चार तह करके उसमें, एक के ऊपर एक के क्रम से, आकडे के चार पत्ते रखदें। अब, इन पत्तों में अङ्गारवत् परितप्त-पत्थर के टुकडे को रखकर पोटली बांध, कपोल-फलक पर स्वेदन करें। इससे दंष्ट्रा की वात-जन्य दु.साध्य वेदना शांत हो जाती है॥ १५-१६॥ शृंगी-विष, अकलकरा, तुत्थ, अफीम तथा आंबाहलदी इनके चूर्ण को मलने से दंष्ट्रा-जन्य वेदना शीघ्र ही दूर हो जाती है॥ १७॥ अग्नि-योग से द्रवित-स्फटिका में, इससे अर्ध-मात्रा प्रमाण में, अफीम डाल देवें। फिर, क्रमश. द्रव के शुष्क हो जाने पर इन्हें उतारलें। इन दोनों से चतुर्थांश मरिच, पिप्पली तथा चित्रक लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को उपरोक्त मिश्रण में मिलाकर दंष्ट्रापर मसलें। इससे दंष्ट्रा की वेदना शीघ्र शांत होती है॥१८-१९॥ सज्जीखार, स्फटी, कलिका, अफीम, नवसादर, तुत्थ सौवीर तथा हींग इनके चूर्ण को कपास में लपेटकर, अथवा इस चूर्ण की, जल-पिष्ट छोटी सी गुटि को दंष्ट्रारंध्र में रखने से, अथवा इस चूर्ण को मलने से दंष्ट्रा की वेदना शमित हो जाती है। गुटि को अथवा तूल-पिहित चूर्ण को दंष्ट्रारंध्र में रखकर सिक्थ से मुद्रित करदें। यदि लाला-स्राव हो तो उसे मुंहसे बाहर थूकते रहें॥ २०॥

नवसादर के चूर्ण को अथवा स्फटीचूर्ण को, कपास के फोहे में लपेटकर, दंष्ट्रा के

१—गरलं शृङ्गिकविषम्। २—आम्रगन्धिहरिद्रा। ३—अग्नियोगादिति शेष.। ४—शीघ्रम्। ५—सुधा कलिका। ६—वाह्लीकमित्युपलक्षणं, तेन ग्रन्थिकाकल्लककण्टकारी-फलविडङ्गादीनामपि ग्रहणम्। ७—जलेन गुटीं कृत्वा दन्तच्छिद्रे दत्त्वा तदुपरि सिक्थेन मुद्रां रचयित्वा गुटीप्रभावाल्लालास्रावो भवेत्तं निष्ठीवेदिति। ८—दंष्ट्राजन्तूनपि।

१६ इङ्गुदीफलजो मज्जा[1] दंष्ट्रयोरन्तरे धृतः ।
निहन्ति परमां पीडां ताटकामिव राघवः ॥ २२ ॥

१७ रुचिरमरिचरचितं रजो मसृणवसनपुटपाति ।
शनकैः परिमलनादलं[2] दंष्ट्रागतगदघाति ॥ २३ ॥

१८ लोकेपिष्टी[3] सकर्पूरा व्यत्ययेन विघर्षिता ।
दंष्ट्रार्तिं खण्डयत्याशु दंष्ट्रेव चणकादिकम् ॥ २४ ॥

१९ पर्णे[4] चूर्णं सादरं चापि किंचिद्दत्त्वा वीटीमेकवक्त्रां विदध्यात् ।
तामाघ्राय प्रौढदंष्ट्राशिरोऽर्तिः सद्यः स्वास्थ्यं को न विन्दत्यमन्दम् ॥२५

२० मस्तङ्गीपूगकत्थानि शाणिकानि पृथक् पृथक् ।
दलैश्चतुर्भिः संपिष्य ताम्बूल्याः पाकपिञ्जरैः ॥ २६ ॥

गुटिकाश्चणकोन्माना विदधीत विधानवित् ।
ता हन्युर्दन्तवेष्टस्थांश्छूलशोथादिकान् गदान् ॥ २७ ॥

२१ पूगखदिरवैदेहि[6]मरिचोद्भवभूतिभिः ।
घर्षणाद्रसनादन्तवेष्टजा रुक् प्रशाम्यति ॥ २८ ॥

२२ लवणं कुडवैः षड्भिर्भल्ली[8] तु कुडवोन्मिता[7] ।
युक्त्या न्यस्य द्वयं स्थाल्यां मुद्रयित्वा दहेद्रहो[9] ॥ २९ ॥

नीचे रखकर, लालास्राव करने से, तत्-गत वेदना शीघ्र शांत हो जाती है ॥ २१ ॥ दंष्ट्रा-रध्र-गत इंगुदीफल की मज्जा, दंष्ट्रा की परम पीडा का उसी तरह संहार कर देती है जिस तरह राम ने ताटका का कर दिया था ॥ २२ ॥ मरिच के वस्त्रपूत चूर्ण को धीरे धीरे मलने से दंष्ट्रागत-वेदना का शमन होता है ॥ २३ ॥ कपूरसहित शुण्ठी चूर्ण का घर्षण, दंष्ट्रा की पीडा को उसी तरह पीस डालता है जिस तरह दंष्ट्रा चने को ॥ २४ ॥ पलाशपत्र मे नवसादर का चूर्ण रखकर, उसकी, एक ओर से खुले मुख वाली, वीटिका बनालें । फिर उसे सूंघे । इस तरह करने से दंष्ट्रा तथा मस्तक की उग्र वेदना मे किसे अत्यंत शांति नहीं मिलती ? ॥ २५ ॥ रूमीमस्तगी, सुपारी तथा कत्था प्रत्येक तीन तीन माषा लेकर चूर्ण बनालें । फिर, तांबूल के परिपक्व चार पत्तों के साथ इसे पीसकर चने प्रमाण गुटियां बाधलें । यह दंतवेष्ट-गत शूल तथा शोथ आदि को नष्टकर देती है २६-२७ सुपारी, खैरसार, पिप्पली और मरिच इनको जलाकर राख करले, इस राख के घर्षण से रसना एवं मसूढो की वेदना दूर होती है ॥ २८ ॥ लवण ९६ तोला, भिलाव सोलह तोला लेवें । प्रथम, एक थाली मे लवण फैलाकर, उस पर भिलावे के टुकड़े बिछादें । इस थाली को मुद्रित करके, सोलह सेर गोवरी की आंच का पुट देवें

१-'हिंगोटा' इति प्रसिद्धस्य फलमज्जा । २-परिमर्दनात् । ३-शुण्ठीचूर्णम् ४-पालाशपलाशे । ५-मुखे धृता सन्त्य । ६-पिप्पली । ७-मितमिति शेषः ८-भल्लातकम् । ९-दशप्रस्थोन्मितैश्छगणकैर्दहेदिति ।

स्वाङ्गशीता विभूतिः सा दातव्या दन्तमार्जने ।
निरुध्यतेऽसृजः स्रावो दृढताऽपि समेधते ॥ ३० ॥

२३ सार्धत्रिमाषा स्फटिका स्फुटीकृता सप्तैव माषा लवणस्य सार्धकाः ।
वृक्षाम्लमक्षं सपयोधिगुञ्जं रक्तं रदानां मलनाद्रजो हरेत् ॥ ३१ ॥

२४ त्र्यक्षं कालिङ्गमज्जानमष्टाहं चर्वयन्नरः ।
मुच्यते दन्तनिर्यत्तनिर्यद्रुधिरनिर्झरैः ॥ ३२ ॥

२५ घटं सरन्ध्रं तलपार्श्वभागयोर्न्युब्जं निदध्यादधितोयभाजनम् ।
प्रतप्तदर्वीधृततैलसिंहिकाहिङ्ग्वादिधूमं क्रिमिदन्तवान् पिबेत् ॥ ३३ ॥

२६ नखम्पचोष्मसंस्पर्शैः क्वाथैः काश्मीरकल्पितैः ।
गण्डूषा दन्तसंरम्भशूलदौर्गन्ध्यदस्यवः ॥ ३४ ॥

२७ जटामांस्या विदधतां रजसा दन्तघर्षणम् ।
मुखे वैशद्यसौगन्ध्यमुखाः स्युर्गणशो गुणाः ॥ ३५ ॥

स्वांगशीतल होने पर, इसकी भस्म से दंत-मंजन करें। यह रक्त-स्राव का निरोध करता तथा दांतो को मजबूत बनाता है ॥ २९–३० ॥ फुलाई हुई रक्त-स्फटी ३½ माषा तथा सेका हुआ लवण ७½ माषा, वृक्षाम्ल १ तोला, सीमाकभस्म १½ तोला- इनके चूर्ण को मलने से, दंत-गत रक्त-स्राव बंद होता है ॥ ३१ ॥ बहेडा की तीन तोला मज्जाचूर्ण को प्रतिदिन, एक सप्ताहपर्यंत, मलने से, दंतगत स्वत प्रवृत्त रक्तस्राव बंद हो जाता हे ॥ ३२ ॥ एक घट लेवें जिसके तल तथा पार्श्वभाग मे छिद्र हो। एक दूसरा घट लेवें, जिसमें करीब एक आढक जल भरदे। पार्श्व-तल-छिद्रयुक्त-घट को सजल घट पर औंधा रखदें। अब, एक प्रतप्त कढछी मे तैल, कण्टकारी-फल, हींग आदि औषधीय द्रव्य डालकर उसे उपरोक्त घट के पार्श्वछिद्र मे से, भीतर चलादें। 'कृमिदंत' रोग से पीडित व्यक्ति, तलछिद्र में से निकलते हुये उपरोक्त द्रव्यों के धूम का पान करे। छिद्रपर मुख लगाकर पान करने से, दंत-गत-कृमि, अध.स्थित जलपूर्ण घट में गिरे हुये दीख पडेंगे। अर्श-गत क्रिमियो में भी यह धूम-पान लाभ देता है ॥ ३३ ॥ दांतो को आक्रांत करनेवाले शूल, दौर्गन्ध्य आदि को केसर क्वाथ के कवोष्ण-गंडूष, दूर कर देते हैं (हर लेते हैं) ॥ ३४ ॥ जटामासी के चूर्ण को दांतोपर मलने से, स्वच्छता, सुगंध आदि प्रमुख-गुणगणो से मुख सुशोभित हो जाता है ॥ ३५ ॥

१–स्फटिका चारुणवर्णा । २–लवणं शाकम्भरीसमुत्पन्नम् । तदपि भृष्टं ग्राह्यम् । ३–द्वीपान्तरीयतिन्तिडीकं सीमाकमिति नाम्ना प्रसिद्धम् । ४–रक्तिचतुष्टयसहितमक्षमिति योजना । ५–बिभीतकमज्जानम् । त्र्यक्षमित्येकदिनमात्रा । ६–तलपार्श्वयो· सरन्ध्रं घटमिति योजना । ७–कण्टकारीफलम् । आदिशब्दादेतादृशान्यन्यान्यपि बोद्धव्यानि । चेदर्श.सु क्रिमयस्तदा तत्राप्युपयोजनीयमेतत् । ८–काश्मीरं कुङ्कुमम् ।

२८ कूपतलच्चिरतरोपितमार्तिकशकलानि तुल्यबकुलानि ।
मसृणीकृतैरमीभिर्दन्ताः प्रभवन्ति वज्रसमुदन्ताः ॥ ३६ ॥
२९ त्रिपुटाकत्थबकुलफलधूलिः शनकैर्विघर्षिता नित्यम् ।
छुरिकेवं कलमकलशीं चलदन्तापत्तिमुद्धरति ॥ ३७ ॥
३० इह हन्त दन्तमूलक्षयचलदन्तेषु दन्तेषु ।
बकुलरजोऽपि ददन्ते विदितमिदं ते वृथाऽत्र विवदन्ते ॥ ३८ ॥
३१ आटरूपरसैः क्षौद्रमाणिमन्थविमर्दितैः ।
घर्षयेद्रदनश्रेणीं बाढभावविवृद्धये ॥ ३९ ॥
३२ यवभस्मसीसककृतै रजोभिरनवरतमभिमलनात् ।
लोहचणकचयचर्वणचण्डोदन्ताश्चलन्ति न च दन्ताः ॥ ४० ॥
'सीसासाथे भस्म सारा जवोनी घूंटी सीसीकाचानीमां भरोनी ।
आ मिस्सीनां ग्राहको छे घणाजी चावी नाखे लोहना जे चणाजी' ॥

चिरकाल तक कूप में पडे हुये मृत्पात्र के टुकडे तथा बकुल फल दोनों को समभाग लेकर सूक्ष्मचूर्ण बनालें। इस चूर्ण को मलने से दांत वज्र की सीमा को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३६ ॥

बकुलफल, इससे चतुर्थांश कत्था, तथा कत्थे से अर्ध भाग इलायची - इनके चूर्ण द्वारा, नित्य शनै शनैः घर्षण से, छुरिका के घर्षण से कलम के अग्रभागकी तरह, चल-दंत रोग तरास दिया जाता है। चाकू से कलम के अग्रभाग को धीरे धीरे घिसने से जिस तरह एक नुकीलापन उद्धरित - निर्मित - होता है, उसी तरह उपरोक्त चूर्ण को दातों पर नित्य शनै शनैः मलने से चलदंतरोग उद्धरित - नष्ट - हो जाता है। उद्धरित का अर्थ निर्माण करना अर्थात् आकृति देना तथा निकालकर दूर करना अर्थात् नष्ट करना दोनों ही है ॥ ३७ ॥ दंत के, दंतमूल - क्षय करने वाले चल - दंत विकार में बकुल चूर्ण दिया जाता है। अहो! यह तुझे विदित है तो फिर, यह वृथा विवाद क्यो ? ॥ ३८ ॥ सैंधव तथा शहद में अरडूसे का रस मिलाकर घर्षण करने से दंतपक्ति दृढ होती है ॥ ३९ ॥ यवभस्म तथा सीसे की भस्म दोनो को मिलाकर निरंतर मर्दन करने से लोह के प्रचंड चणक - चयका चर्वण करने पर भी दंत चलित नहीं होते, यह प्रयोग पित्तरक्तजन्य दंत-विकार में ही करना चाहिये। कफवातजन्य दंत विकार में अभिवृद्धि करने के कारण वहा इसका प्रयोग निषिद्ध है। अग्रिम गुजराती - पद्य इसी श्लोक का अनुवाद मात्र है। गुर्जरदेश के होने के कारण स्व भट्टजी का इस भाषा पर पर्याप्त अधिकार था ॥ ४० ॥ अग्नि से फुलायी हुई रक्तस्फटी, बबूल के फल का सुखाया हुआ पिच्छिल - द्रव 'अका-

१-बकुलफलेभ्यः कत्थं चतुर्थांशं, त्रुटिश्च कत्थार्धांशेति विवेचनीयम्। २-छुरिका कलमैर्निरवधिनिभृता कलशीमुद्धरतीति चित्रमपि दर्शितमनयोपमया। ३-माणिमन्थः सैन्धवम्। ४-अयं योग पित्तरक्तजदन्तरोगेऽवचार्यो न कफवातदन्तरोगे, वर्धकत्वात्। ५-पूर्वोक्त एव योगो गुर्जरभाषया निबध्य प्रदर्शितः।

३३ अग्नियोगविकचारुणस्फटी किङ्किरातफलपिच्छिलद्द्रवः[1] ।
दाडिमीकुसुममामलं[2] फलं दन्तदार्ढ्यजननं विमर्दनात् ॥ ४२ ॥

३४ मञ्जिष्ठाकत्थकासीसं रूमनिर्याससङ्गतम् ।
प्रत्येकमेकभागं स्यात्तुत्थं पादोनभागिकम्[3] ॥ ४३ ॥
फलेभ्यो मञ्जुपूर्वेभ्यो[4] ग्राह्यं भागचतुष्टयम् ।
सर्वमेकत्र संक्षुण्णं प्रशस्तं दन्तमञ्जनम् ॥ ४४ ॥

३५ पूगभसितमस्तङ्गीमञ्जुफलानां पृथक् तमाषाः स्युः ।
अरुणस्फटिकातुत्थौ शिखिफुल्लौ[6] राममाषौ स्तः ॥ ४५ ॥
कत्थोपणं गमाषं पेष्यमदः सर्वमेकत्र ।
चूर्णेनानेन नृणां चलिता दन्ता भवन्ति पविकल्पाः ॥ ४६ ॥

३६ दाडिमीवल्क[10]कुसुममञ्जिष्ठातिन्तिडीफलम् ।
धातकीरूमनिर्यासं[11]शमीग्रन्थिसकुण्डकम्[12] ॥ ४७ ॥
कासीसं[13] रङ्गवरतं[14] भद्रैला कुन्दुरुस्तथा ।
मञ्जूनि[15] गन्धशटिका[16] पृथग्गद्याणमात्रकाः ॥ ४८ ॥

किया', दाडिम के पुष्प तथा आवला—इनके चूर्णद्वारा मर्दन करने से दांत मजबूत होते हैं ॥ ४१ ॥ मंजिष्ठा, कत्था, कासीस, रूमीमस्तगी प्रत्येक एक एक भाग, तुत्थ आधा भाग, मायाफल चार भाग इन सबका एकत्र वस्त्रपूत चूर्ण दंतमंजन रूप से प्रशस्त है ॥ ४२–४३ ॥ सुपारी भस्म, रूमीमस्तगी, मायाफल प्रत्येक छह छह माषा, अग्निपर फुलायी गयी रक्तस्फटी तथा तुत्थ प्रत्येक तीन तीन माषा, कत्था तथा पिप्पली प्रत्येक तीन तीन माषा इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण से हिलते दांत भी वज्रतुल्य दृढ हो जाते हैं ॥४४–४५॥ दाडिम की कलिया, लविंग, मंजिष्ठा, वृक्षाम्ल के फल, धाय के फूल, असली रूमीमस्तगी, शमी, पिप्पलीमूल, शोभांजनफल (जो रंगारियों के उपयोग में आता है-और जो शिंबी से भिन्न होता है) हीरा कासीस, रङ्गवरत, बडी इलायची, कुन्दरु, मांजूफल और कपूर काचरी प्रत्येक छह छह माषा, जवाहरडे, फुलाया हुआ तुत्थ और शीतल मरिच प्रत्येक तीन तीन माषा, वज्रदती एक तोला, फूलायी हुई

१–बब्बूलफलपिच्छिलद्रव , स च शुष्को ग्राह्य , यस्य च यवनमते 'अकाकिया' इति प्रसिद्धि । २–धात्रीफलम् । ३–अर्धभागं वा । ४–मायाफलेभ्य. । ५–षण्माषाः । ६–वह्निमृष्टौ । ७–पृथक्त्रिमाषौ । ८–पृथक्त्रिमाषम् । ९–वज्रसमा इत्यर्थ । १०–दाडिमकलिका । ११–रूमनिर्यासो 'मस्तंगी' इति प्रसिद्ध. । स च प्रशस्तो ग्राह्य । १२–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धं रङ्गकारोपयोगिशोभाञ्जनफलम् । तच्च शिम्बीव्यतिरिक्त भवति। १३–धातुकासीस 'हीराकसीस' इति प्रसिद्धम् । १४–अनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध रक्तवर्ण द्रव्य भवति । १५–मायाफलानि । १६–लोके 'कपूरकाचरी' इति प्रसिद्धा, सा च यद्यपि गद्याणमितोक्ता तथाऽपि शाणिकैव गृह्यते ।

खर्वा हरीतकी भ्रष्टतुत्थकं शीतलोपणम् ।
पृथक् शाणप्रमाणाः स्युर्वज्रदन्ती पिचून्मिता ॥ ४९ ॥
व्याकोशस्फटिका मज्जा चिञ्चाफलसमुद्भवः ।
घृताश्मा क्रमुकं चेति पृथग्द्वादशधान्यकाः ॥ ५० ॥
श्लक्ष्णमेषां रजो दन्तदार्ढ्यकारि विघर्षणात् ।
मायाफलक्रमुकयोः कोकिलान्यत्र योजयेत् ॥ ५१ ॥

३७ मांसी मुस्ता स्फटी तुत्थमाकल्लं वाकुलं फलम् ।
पृथग्गद्याणमानानि जरणं पूगजं फलम् ॥ ५२ ॥
कासीसं रङ्गवरतं निर्यासः किङ्किरातजः ।
दाडिमीवल्कलगिलेरमनीवज्रदन्तिकाः ॥ ५३ ॥
प्रत्येकशस्त्रिमाषाणि शाणिकं माजुजं फलम् ।
पञ्चभिस्तुलिता माषैरत्र स्याच्चोकचुन्निका ॥ ५४ ॥
मस्तङ्गी खर्वेकायस्था सारजं मसृणं रजः ।
पृथक् वस्वेकमाषाणि पट्टकत्थे पिचून्मिते ॥ ५५ ॥
सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य तेन घर्षयतां सदा ।
चला अपि रदाः पुंसामचलाः स्युरसंशयम् ॥ ५६ ॥

— इति मुखरोगचिकित्सा —

स्फटी, इमली के फल की मज्जा, घीयामाटा तथा सुपारी प्रत्येक एक तोला इनके सूक्ष्म चूर्ण द्वारा घर्षण करने से दांत दृढ होते है । इस प्रयोग मे मांजूफल तथा सुपारी को पृथक् पृथक् जला उनके कोयलो की भस्म बनाकर उपयोग में लें । उपरोक्त योग में कपूरकाचरी छह माषा प्रमाण मे लेने को कहा गया है तथापि उसे तीन माषा भर ही ग्रहण करें ॥ ४६-५० ॥

जटामांसी, मुस्ता, भृष्टस्फटी, तुत्थ, अकलकरा और बकुलफल, प्रत्येक छह छह माषा; जीरा, सुपारी, कसीस, रगवरत, बबूल का गूंद, दाडिम की कलियां, गिलेअरमनी (एक प्रकार की प्रसिद्ध मिट्टीविशेष) और वज्रदती प्रत्येक तीन तीन माषा; माजूफल तीन माषा, चोकचूना पांच माषा, मस्तंगी, जवाहरडे और लोहचूर्ण प्रत्येक अठारह माषा, लवण और कत्था प्रत्येक एक तोला इन सबको एकत्र पीसकर सूक्ष्म चूर्ण बनाले । इस चूर्ण को नियमित लगाते रहने से चलित दांत भी निःसंदेह स्थिर हो जाते है ॥ ५०-५५ ॥

— मुखरोग चिकित्सा समाप्त —

१-अनेनैव नाम्ना ख्याता । २-द्वादश माषका । ३-भृष्टा । ४-'गिले अरमनी' इति नाम्ना प्रसिद्धा काचिन्मृत् । ५-लोहजम् । ६-अष्टादशमाषप्रमाणानि ।

अथ कर्णरोगचिकित्सितम् ।

प्रतिक्षणं क्वणद्घण्टाशङ्खभेरीमृदङ्गकः ।
कपालपाणिराज्ञातो नाम्ना कर्णामयो मया ॥ १ ॥

१ श्रवोविकाररक्षतये भिषग्भि 'र्वृथा कहैहे नुकसे हजारां' ।
सशूलपूयश्रुतिभाजिकर्णे 'देना जरासा रस गुल्हजारा' ॥ २ ॥

२ सक्षौद्रोपणकृष्णेन निम्बपल्लवपाथसा ।
कोष्णेन पूरणं ब्रूमः कर्णशूलनिवर्हणम् ॥ ३ ॥

३ अस्त्यानस्य कवोष्णस्य क्षौद्रस्य द्वित्रिविप्रुषः ।
कर्णे निपतिता युक्त्या शूलार्तिं घ्नन्ति निश्चितम् ॥ ४ ॥

४ अद्भिर्घृष्टा वचाखण्डं निम्बूकाद्भिर्द्रवीकृतम् ।
मनागुष्णीकृतं कर्णे भृतं शूलहरं परम् ॥ ५ ॥

५ ताम्बूलवीटिकापीकगण्डूषं श्रवणे किरेत् ।
निश्चितं तेन तत्रत्यशूलार्तिर्मङ्क्षु नश्यति ॥ ६ ॥

६ पुरलशुनकारवीणां धूमो यन्त्रेण योजितः कर्णे ।
शूलं हरति समूलं किंतु दुकूलं शयीत संतत्य ॥ ७ ॥

– कर्णरोगचिकित्सा (कुल प्रयोग १५) –

हाथ में मुंड को धारण किये हुये तथा प्रतिक्षण घंटा, शंख, भेरी एवं मृदंग की ध्वनि करनेवाले विकार को मैं 'कर्णामय' नामसे जानता आया हूं ॥ १ ॥

कर्ण-रोग के शमनार्थ वैद्यो ने व्यर्थ में ही हजारों नुसखे लिख मारे !!! क्योंकि हजारे-पुष्प के रस की कुछ ही बूंदें कर्णगत शूल को तथा पूयस्राव को नष्ट कर देती है ॥ २ ॥ निंब की कोपलों के स्वरस में शहदसहित काली मरिच पीस कर कवोष्ण करके कान मे डालने से शूल निवृत्त हो जाता है ॥ ३ ॥ अग्निपर शहद को कुछ पतला बनाकर उसके दो तीन कवोष्ण बिंदुओं को युक्तिपूर्वक कान में डालने से तत्-गत शूल वेदना निश्चित नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥ वचा के टुकडे को पानी में पीसकर फिर, उसमे निंबू रस मिलाकर पतला बनालें । इस द्रव को कुछ गरम करके कान में भरदें । यह परम शूलहर प्रयोग है ॥ ५ ॥ तांबूल की पीक को कर्ण में डालने से, उसकी वेदना शीघ्र शमित हो जाती है ॥ ६ ॥ गधक, लहसुन तथा अजमोदा इनकी धूम को नाडीयंत्रद्वारा कर्ण में लेने से, शूल समूल नष्ट हो जाता है । कितु, धूम सेवन के तुरन्त पीछे, वस्त्र को आपाद मस्तक

१–अथ मुखरोगचिकित्सानन्तर कर्णरोगचिकित्सारम्भः, तत्रादौ तत्स्वरूपवर्णनम् ।
२–चित्रकाव्योदाहरणम् । ३–बिन्दव' । ४–नाडीयन्त्रेण ।

७ श्रोत्रशूलहरं रक्तकाकणन्तीशृतं[1] घृतम् ।
घृतं विडालपदकं काकणन्त्योऽपि षोडश ॥ ८ ॥

८ तैलं शनैर्विपक्कं चतुर्गुणे शालमर्कटस्वरसे[2] ।
अपहरति कर्णशूलं बालमुकुन्देन[3] मह्यमुपदिष्टम् ॥ ९ ॥

९ द्व्यक्षाम्बुकल्कीकृतजीरमाषं[4] सरक्तिसिन्दूरमुमोत्थतैलम्[5] ।
द्व्यक्षं प्रपक्वं श्रुतिशूलचेप्य[6]दद्रूशिरःकोथहरं प्रयोगात्[7] ॥ १० ॥

१० मयूरपादकल्केन[8] साधितस्तैलतल्लजः ।
अधिकर्णं प्रणयनात् पूयस्रावनिरोधनः ॥ ११ ॥

११ कुक्कुटाण्डत्वचश्चूर्णं प्रतिसार्य कथंचन ।
पूरयेन्निम्बुकरसैः पूतिपूयस्रुती[9] श्रुती ॥ १२ ॥

१२ सौभाग्यकम्पिल्लहरीतकीनां हरीतकीवारि[10]विमर्दितानाम् ।
श्रवोव्रणस्रावजिदाज्यघृष्टा गुटी समापूरणलेपनाभ्याम् ॥ १३ ॥

१३ मुहूर्तं निहितः स्रोतो नवसागरचूर्णयोः ।
दोषं विरेच्य सहसा दत्ते श्रवणलाघवम् ॥ १४ ॥

ओढकर सो जाना चाहिये ॥ ७ ॥ रक्त-गुंजा से सिद्ध किया गया घृत कर्णशूल को मिटाता है। यहां, घृत एक तोला तथा रक्तगुंजा सोलह तोला लेनी चाहिये तथा घी को, अन्य द्रवपदार्थ मिलाये बिना, केवल गुंजा में ही सिद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥ मूली के चतुर्गुण-स्वरस में तैल को धीरे धीरे उकालकर पकावें। यह तैल कर्णशूल को मिटा देता है। यह प्रयोग मुझे कामवन-निवासी वैद्य बालमुकुन्द ने बताया है ॥ ९ ॥ एक माषा भर श्वेत जीरा तथा एक गुजाभर सिंदूर इन दोनों को दो तोला पानी से तीन घंटे तक खरल करके कल्क बनालें। इस कल्क को अतसी के दो तोलाभर तैल में पकालें। आश्च्योतन, प्रलेप आदि विधि से प्रयुक्त यह तैल कर्णशूल, चेप्य, दद्रू तथा शिरोगत कोथ को दूर कर देता है ॥ १० ॥ मयूर-पग के कल्क से सिद्ध-तैल-श्रेष्ठ को कान मे डालने से पूयस्राव बद हो जाता है। मयूर-पग को गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लेना चाहिये ॥ ११ ॥ कुक्कुटांड-त्वचा के चूर्ण को कान में भुरकाकर उसमें ऊपर से निंबूरस भरदें। इससे कर्णगत दुर्गंधमय पूयस्राव मिट जाता है ॥ १२ ॥ टंकण, कपीला तथा हरडे इनको हरडे के क्वाथ से अच्छी तरह पीसलें। तदनन्तर, इनकी गुटी बना उसको घृत में घिसकर, लेप करने से अथवा भरने से, कर्णगत व्रणस्राव का शमन होता है ॥१३॥ नवसादर तथा सुधा-चूर्ण इनके द्रव

१–अत्र विनैव द्रवं घृतस्य पाकः करणीयः । २–मूलकस्वरसे । ३–कामवनवासिना वैद्येन । ४–शुक्लजीरकमाषं द्व्यक्षाम्बुना खल्वे यामं कल्कीकृत्य सर्वं तैले निक्षिपेत् । ५–ससिन्दूरगुञ्जमतसीतैलमित्यर्थः । ६–एतन्नाम्नैव प्रसिद्धो विसर्पणशीलो व्याधिविशेषः । ७–आश्च्योतनलेपान्यतररूपात् । ८–मयूरस्य पक्षिणश्चरणकल्केन । गोमूत्रमप्यत्र क्षेप्यम् । ९–पूतिपूयं स्रवत इति विग्रहवाक्यम् । १०–हरीतकीवारि च क्वथनेन निष्पाद्यम् ।

१४-१५ शिखिपादभवोऽधिश्रुति फूत्कारेण प्रवेशितः क्षोदः ।
निरुणद्धितरां तरसा पूयस्रावं पयोधिफेन इव ॥ १५ ॥
– इति कर्णरोगचिकित्सितम् –

अथ नासारोग[2]चिकित्सा ।

१ माषास्त्रयो मधुकभेषजयोः षडेला
द्राक्षा सिता पिचुसिताः ससितातुषाः स्युः ।
एभिः शनैर्विरचितो रुचिरः कषायो
नस्ते[3] निपातयति शीर्षकफं विपाच्य ॥ १ ॥

२ पिष्ट्वा धत्तूरबीजानि[4] कुष्ठतोयैर्दिनाष्टकम् ।
गुञ्जाङ्घ्रिसंमिता वट्यो ग्राहिण्यः पीनसापहाः ॥ २ ॥

३ नासानिर्व्यथने[5] बाढं संनिरुद्धे बलासतः ।
कारवीपोट्टलीं जिघ्रेन्मनागुष्णीकृतां कृती ॥ ३ ॥

४ सुजातजातीफलपुष्पविश्वाकस्तूरिकाभिर्युगरक्तिकाभिः[6] ।
प्रकल्पिता पोट्टलिका हिनस्ति घ्राता प्रतिश्यायभवां शिरोर्तिम् ॥ ४ ॥

से सिक्त-फौहे को, एक मुहूर्तभर कर्ण में रखने से, सहसा दोषविरेचन पूर्वक श्रवण-शक्ति सचेत हो उठती है ॥ १४ ॥ मयूरचरण के चूर्ण को, अथवा समुद्रफेन के चूर्ण को, कान में फूत्कारद्वारा चला देने से, पूयस्राव सहसा उसी तरह निरुद्ध हो जाता है जिस तरह पवन फूत्कार से समुद्रफेन ॥ १५ ॥ – कर्णरोग चिकित्सा समाप्त –

– नासारोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ६) –

मधूक तथा शुण्ठी प्रत्येक तीन माषा, इलायची नग ६, मिश्री दो तोला, तुष दो तोला, इनका एकत्र रुचिकर कषाय निर्माण करलें । इसका नस्य शीर्षगत कफ को पकाकर बाहर निकाल देता है ॥ १ ॥ आठ दिवसपर्यंत, कृष्ण धत्तूरे के शुद्ध बीजों को कूठ के पानी से (कषाय से) खरल करके ¼ गुंजा प्रमाण वटियां बांधलें । ये वटिया ग्राही तथा पीनसरोग को मिटानेवाली होती है ॥ २ ॥ नासिका-रन्ध्रमें कफ के अत्यंत रुद्ध हो जाने पर, कुशल रोगी को, अजमोदा की पोटली, कुछ गरम करके, सुंघानी चाहिये ॥ ३ ॥ अच्छे वजनदार जायफल, लविंग, सूंठ, कस्तूरी प्रत्येक दो गुंजा इनको एकत्र एक पोटली मे बाधकर सूघने से प्रतिश्यायजन्य शिरोवेदना नष्ट

१–उपमया द्वितीयो योगः प्रदर्शित । २–सम्प्रदायानुसारेण कर्णरोगानन्तर घ्राणरोग-चिकित्सारम्भ , तत्रादौ प्रतिश्यायप्रतिषेध । ३–नासाविवरे । ४–कृष्णधत्तूरबीजानि, तान्यपि पूर्वोक्तविधिशुद्धानि । ५–" छिद्रं निर्व्यथन रोकम् " इत्यभिधानम् । ६–प्रत्येक द्विगुञ्जाभि. ।

५ छिक्किकाकट्फलारब्धं नस्यं छिक्काप्रवर्तनम् ।
कट्फलं छिक्किकाचूर्णादल्पमेव विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥
६ प्रज्वाल्य गोपुरीषं[2] निर्वाप्य पयोभिरर्कसंभूतैः ।
विरचय्य वस्त्रपूतं नस्यं छिक्काः प्रवर्तयति ॥ ६ ॥

— इति नासारोगचिकित्सितम् —

अथ नेत्ररोग[3]चिकित्सा ।

तूणीरपाशहस्तो निविडतमः स्तोमलब्धदृष्टिगतिः ।
चणकविकृतिविद्वेषी विद्वेषिषु चक्षुरामयः स्फुरतु ॥ १ ॥

१ तूल[4]प्लोतं जलार्द्रं जलभृतनवमृत्कुम्भपार्श्वे प्रदत्तं
तस्मादुत्पाट्य कृत्वा गुडजललुलितं तत्र भूयोऽपि दद्यात् ।
दर्वीकुक्षौ कदुष्णीकृतमनलशिखायोगतो वैद्यराट् तं
पीडाशान्त्यै निदध्यादुपरि नयनयोस्तीव्रसंरम्भभाजोः ॥ २ ॥

२ पादाङ्गुष्ठद्वितयं विवेष्ट्य रुवुतैलतूलतस्तदनु ।
मदयन्तीदलकल्कं वध्नी[5]त दृढं दृगामयी यामम् ॥ ३ ॥

हो जाती है ॥ ४ ॥ नकछीकनी तथा कट्फल से प्रयुक्त किया गया नस्य, छींक लाता है । इस योग में कट्फल-चूर्ण, नकछींकनी से कुछ अल्प मात्रा मे ही लें ॥ ५ ॥ गाय की शुष्क गोबरी को जलाकर तथा आकडे के दूध से बुझा, वस्त्रपूत करके, नस्य लेने से, छींक की प्रवृत्ति होती है ॥ ६ ॥ — नासारोग चिकित्सा समाप्त —

— नेत्ररोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३४) —

निविड अंधकार में भी देखनेवाला, हाथ में तूणीर तथा पाश धारण किये हुये, चणकविकृति का सेवन करनेवालों से विद्वेष रखने वाला 'चक्षु रोग' हमसे विद्वेष करनेवालों को ही दर्शन दे ('स्फुरतु' का अर्थ नष्ट करनेवाला भी होता है) ॥ १ ॥

जलपूर्ण मिट्टी के नूतन घट के पार्श्व मे जलार्द्र-कपास के प्लोत को लगाकर रखदें । कुछ समय पीछे उसे वहा से हटाकर, गुड के जल में लथपथ करके, उसी घट पर पुन. रखदें । तत्पश्चात् चमचे के भीतर उस प्लोत को रखकर अग्नि से थोडा गरम करलें । अब इस प्लोत को, तीव्र वेदनासे पीडित चक्षुरोगी की शांति के लिये, उसके, नेत्रों पर कुशल-वैद्य रख देवे ॥ २ ॥ नेत्ररोगी के पैर के दोनों अंगूठो को, एरण्ड तैल से सिक्त

१—छिक्किका 'नकछीकनी' इति लोकप्रसिद्धा काचिदौषधिः । २—गव्यं शुष्कवनोपलम् । ३—इन्द्रियाधिष्ठानेषु पारिशेष्यान्नासासन्निहितत्वाच्च नासारोगानन्तरं नेत्रगतरोगाणां चिकित्साऽभिधीयते । तत्रादौ तत्स्वरूपवर्णनम् । ४—कृत्स्ननेत्ररोगाणां प्रायोनिदानभूतत्वादभिष्यन्दस्यादौ साधनम् । ५—पट्टबन्धनेनेति शेषः ।

३ अङ्गारे संफुल्लं लवङ्गमेकं विचूर्णितं खल्वे।
भृतमधिशार्करबुद्बुदमक्ष्णोराश्च्योतयार्द्रपटनद्धम् ॥ ४ ॥
४ खाखसं कोलकलितं माषैका क्षुद्रचेतकी।
गुञ्जोन्माना स्फटी चेति सर्वैरेकत्र चूर्णितैः ॥ ५ ॥
बद्धां पोट्टलिकामार्द्रां भ्रामयेल्लोचनोपरि।
शूलसंरम्भविक्लेदलौहित्यानि विनाशयेत् ॥ ६ ॥
५ वल्लवलक्षस्फटिकामप्सु समावाप्य मुष्टिमानासु।
तद्बिन्दवो हरन्ते हठेन दुःखानि चक्षुषोः क्षिप्ताः ॥ ७ ॥
६ पचेद्द्रवीकृत्य सितामतल्लिकां समाननिम्बूकरसैः पयोभिः।
पयःक्षये तत्पृषतः सुशीतलाः क्षिप्ता दृशोर्दृग्बलमारभन्ते ॥ ८ ॥
७ पृथगष्टादश भागाः स्फुटितस्फटिकासितासिताञ्जनतः।
स्फुटतुत्थात् सार्धैको निम्बम्बुकृता दृगर्तिजिद्वटिका ॥ ९ ॥
८ क्लेदकालुष्यलौहित्यविकारपरिशान्तये।
एकमेव खलु क्षौद्रं नेत्रयोर्द्विस्त्रिरञ्जयेत् ॥ १० ॥
९ रसे प्रस्थार्धतुलिते मदयन्त्या निशोपिते।
रसाञ्जनस्य कुडवं कृत्वा पित्तलपात्रके ॥ ११ ॥

फौहे से लपेट उस पर मेंहदी कल्क को चुपडकर, वस्त्र की पट्टी से मजबूत बाध देवें। इसको एक प्रहर तक रहने दे ॥ ३ ॥ अंगारपर एक लविंग फुलाकर उसे खरल करले। इस चूर्ण को एक पतासे में भरकर, तथा पतासे को आर्द्रपट मे लपेटकर, उससे नेत्रों पर आश्च्योतन करें ॥ ४ ॥ पोस्त के डोडे १ तोला, जवाहरडे एक माषा, स्फटी एक गुंजा इनका एकत्र चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को पोटली में बाधकर तथा गुलाबजल से सिक्त करके आखों पर फेरें। इससे नेत्रगत शूल, क्लेद, रतास आदि दूर हो जाते है ॥ ५–६ ॥ एक वालभर श्वेतस्फटी को चार तोले भर पानी मे भिगो दें। इस द्रव के बिन्दुओंको आंख मे डालने से उसकी वेदना दूर हो जाती है ॥ ७ ॥ उत्तम मिश्री के चूर्ण को, समभाग निंबूरस तथा जल मे मिलाकर पकावे। जब जलाश नि शेष हो जाये तब, स्वागशीतल होनेपर, उसके बिन्दुओ को नेत्र मे टपकादें। इससे दृष्टि तीक्ष्ण हो होती है ॥ ८ ॥ भृष्ट-स्फटी, मिश्री तथा सफेद सुरमा प्रत्येक अठारहभाग, भृष्टतुत्थ १½ भाग इनको एकत्र लेकर निंबूरस में पीसकर वटिका बनालें। इस वटिका को, कान्तलोहपात्रमें जल से घिसकर नेत्रो मे आजें। इससे पीडा का शमन हो जाता है ॥ ९ ॥ एक मात्र शहद को दो तीन बार आजने से नेत्रगत क्लेद, मल, लालिमा आदि विकार शमन हो जाते है ॥ १० ॥ मेंहदी के ३२ तोला रसमें, २५६ तोला रसांजन को

१–तरुणीपुष्पार्कैरार्द्राम्। २–मुष्टि· पलम्। ३–पृषतो बिन्दव.। ४–सिता सितोपला, सिताञ्जनं श्वेताञ्जनं 'सुफेद सुरमा' इति लोकख्यातम्। ५–भाग इत्यावर्तनीयम्। ६–गुटिका च कान्तलौहे जले घृष्ट्वाऽञ्जनीया।

वासरं न्युसढव्वूकनिम्बदण्डेन घर्षयेत् ।
एषा रसक्रिया हन्ति नेत्रयोर्दुःखमञ्जनात् ॥ १२ ॥

१० रसाञ्जनं स्फटी फुल्ला सिता चेति त्रिकं पृथक् ।
कार्षिकं सर्पफेनस्य माषाः पञ्चाथ तुत्थकम् ॥ १३ ॥
सार्धद्विमाषकं भृष्टं विधानमधुनोच्यते ।
रसाञ्जनं सिताफूकं द्रवीकृत्य जलैः पृथक् ॥ १४ ॥
अयःपात्रे समावाप्य स्फटीं तुल्यं च निक्षिपेत् ।
हसन्तीस्थं पचेन्मन्दं लोहदण्डेन घर्षयेत् ॥ १५ ॥
अर्धावशिष्टमुत्तार्य पुनर्यामं विघर्षयेत् ।
एषा रसक्रिया सद्यो नयनार्तिं नियच्छति ॥ १६ ॥

११ शुष्काशुष्कं[3] शकृद्गर्ते गर्दभस्य प्रदीपय ।
न्युब्जं भाण्डं तदुपरि गर्भच्छिद्रं समावप ॥ १७ ॥
छिद्रोपरि पुनर्न्युब्जं कांस्यपात्रं पिधापय ।
यः शकृद्धूमजः कश्चित् स्वेदः स्यात् कांस्यपात्रगः ॥ १८ ॥
तुल्यं तत्र घृतं धौतमेकविंशतिधा क्षिप ।
निम्बदण्डेन ढव्वूकचुम्बिताग्रेण मर्दय ॥ १९ ॥

रातभर भिगोकर रखदें। फिर इनको, एक पित्तल के पात्र में डालकर, निंब-शाखा के, ताम्र-मुद्रा जटित अग्रभाग से, एक दिवसपर्यंत खूब घर्षण करें। इस 'रसक्रिया' के अंजन से नेत्रपीडा का भंजन हो जाता है ॥ ११-१२ ॥ रसांजन, भृष्ट-स्फटी तथा मिश्री प्रत्येक एक एक तोला, अफीम पांच माषा, भृष्ट तुत्थ २½ माषा, इन औषधीय द्रव्यो से, निम्नविधिपूर्वक, सिद्ध प्रयोग निर्माण करलें। रसांजन, मिश्री तथा अफीम को अलग अलग जलमें घोलकर एक रस बनालें। इस रस को लोहपात्र में डालकर उसमें स्फटी तथा तुत्थचूर्ण मिला देवें। अब, इस लोहपात्र को एक अंगीठीपर रखकर, मंदाग्नि से, तत्-गत रस को पकावें तथा लोह-दंड से द्रव को हिलाते रहें। अर्धरस शेष रहने पर उतारले तथा एक प्रहर तक पुन लोहदंड से इस द्रव को, निरतर घोटते रहें। यह 'रसक्रिया' नेत्रवेदना को शीघ्र शमित कर देती है ॥ १३-१६ ॥

एक गर्त में गदहे की लीद डाल देवें। लीद का अर्धभाग शुष्क तथा अर्धभाग आर्द्र होना चाहिये। अब, इस लीद को प्रज्वलित करदें। इसी गर्त के ऊपर तलछिद्र-वाले एक घट को औंधा ढकदे। घटगत छिद्र के ऊपर एक कांस्यपात्र औंधा रखदे। इस कांस्यपात्र के तलभाग में, धूमसे उत्पन्न कुछ स्वेदकण जमा होंगे। इन स्वेदकणों में, इनसे समानभाग २१ वार धौत-घृत मिलादें। अब, घृतसहित इन स्वेदकणो को,

१-बहुव्रीहिगर्भितकर्मधारय । २-फुल्लम् । ३-अर्धं सर्वथा शुष्कमर्धं चार्द्रमिति द्वयं मेलयित्वा प्रज्वाल्यम् ।

इमां रसक्रियां विद्धि प्राप्तामादित्यरामतः ।
दृक्पक्ष्मकोपलौहित्यकण्डूक्लेदेषु वर्तय ॥ २० ॥

१२ आफूकपूगस्फटिकाप्रलेपो निम्बूकनीरैरसकृत्प्रणीतः ।
संरम्भमुत्सार्य सशोणभावमह्नाय शं लोचनयोर्विधत्ते ॥ २१ ॥

१३ विकसितशोणस्फटिकां विमर्द्य निम्बूकसंवरैर्विहिता ।
मसृणशलाका शमयति शनकैर्व्यापारिता दृशोर्दुःखम् ॥ २२ ॥

१४ भस्म दक्षिणगोकण्टभवं सार्धद्विमाषकम् ।
तीक्ष्णानि सार्धमाषाणि सैन्धवं सार्द्धमाषकम् ॥ २३ ॥
वलक्षकज्जलं चात्र स्यादष्टादशमाषकम् ।
त्र्यहं विमर्द्य खल्वान्तरञ्जयेद्दुःखितेक्षणः ॥ २४ ॥

१५ चतुर्दशैव गद्याणान् पीतपथ्योत्थवल्कतः ।
कृष्णामरिचतो द्वौ द्वौ गद्याणौ पुनराहर ॥ २५ ॥
धात्रीरसशरावेण विमर्द्य कुरु वर्तिकाः ।
अजस्रमञ्जय दृशोः प्रसूनतिमिरार्तिषु ॥ २६ ॥

निंबशाखा के ताम्रमुद्राजटित-अग्रभाग से, मर्दन करें । यह 'रसक्रिया' मुझे आदित्यराम से प्राप्त हुई है। इसका प्रयोग पक्ष्मकोप, रताश, खुजली, क्लेद आदि नेत्र के विविध विकारों में करना चाहिये ॥ १७–२० ॥

अफीम, सुपारी तथा स्फटी इनको निंबूरस में घोलकर एकरस बनालें। इस रसके कतिपय बिंदु, सहसा, बलात् नेत्रों में टपकादें । यह तत्-गत लालिमा को हटाकर शांतिप्रदान करता है । इस योग में स्फटी को, अफीम तथा सुपारीसे, कुछ न्यून मात्रा में लेवें ॥ २१ ॥ भृष्ट-रक्त-स्फटी को निंबूरस में दो दिन तक खूब खरल करें। इसको एक कोमल शलाका से नेत्रों में आंजिये। यह नेत्र-गत स्राव, कण्डू, फूला आदि से उत्पन्न वेदना को दूर कर देती है। (अथवा, उपरोक्त स्फटी को निंबूरस में खरल करके उसकी शलाका निर्माण करें। इस शलाका को नेत्र में धीरे से आंजें) ॥२२॥ दक्षिणदेशके गोखरू २½ माषा लेकर उनकी भस्म बनालें। पूर्वदेशोद्भव काली मरिच १½ माषा, सैंधव १½ माषा तथा श्वेताजन अठारह माषा-इनके सूक्ष्म चूर्ण को उपरोक्त भस्म में मिलाकर तीन दिन तक खूब खरल करें। इसका अंजन नेत्रपीडा को दूर करता है ॥ २३–२४ ॥ पीली हरडे की छाल ८४ माषा, पिप्पली तथा मरिच प्रत्येक बारह

१–पक्ष्मकोपस्य लक्षण च "पक्ष्माशयगता दोषास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च । निर्वर्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्जुष्टं चाक्षि दूयते ॥ उत्पाटितै पुन शान्ति पक्ष्मभिश्चोपजायते । वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोप स उच्यते ॥" इति शालाक्यनिगदित द्रष्टव्यम् । २–अत्र स्फटिका आफूकपूगापेक्षया किञ्चिदल्पा ग्राह्या, खर्जूभयात् । ३–त्र्यहमिति शेष । ४–स्रावकण्डूपुष्पादिजनितम् । ५–पूर्वदेशोद्भवानि मरिचानि । ६–श्वेताञ्जनम् ।

१६ न्युप्तं पञ्चदशाहानि निम्बमूले स्वयुक्तितः ।
स्रोतोऽञ्जनं जनाः शुद्धं विलोचनरुजापहम् ॥ २७ ॥

१७ निम्बे किंच कदल्यां पाथस्येकैकवर्षमभ्युषितम् ।
कृष्णाञ्जनस्य शकलं शलाकया हन्ति दृग्व्याधीन् ॥ २८ ॥

१८ नागं पात्रगतं चतुर्गुणबलिप्रक्षेपसंस्कारितं
दग्ध्वा काष्ठकृशानुना स्थलपयोजन्माम्बुभिर्मर्दयेत् ।
सिद्धोऽसौ मसृणीकृतो रसवरः प्रातर्दृशोरञ्जितो
धत्ते दुर्धरदृष्टिदोषपरिपच्छार्दूलविक्रीडितम् ॥ २९ ॥

१९ षोडशगुणां सितायाः नवजातीकुसुमनालिकां पिष्ट्वा ।
तत्कल्कजवर्तिरुषसि विवर्तिता भवति चक्षुष्या ॥ ३० ॥

२० चपलस्तुर्यांशपलैः पृषत्कपलिकाश्च मालतीकलिकाः ।
मसृणीकृतसिदमञ्जनमान्ध्यमपि निहन्ति नित्यमुपयोगात् ॥ ३१ ॥

२१ नवसादरमुड्डाय्य प्रपिष्य ढक्कूकृत• प्रहरम् ।
दत्तं शलाकया दृशि हन्ति शनैरान्ध्यमपि नियतम् ॥ ३२ ॥

मापा इनको एकत्र लेकर, आंवले के बत्तीस तोला रस में खरल करके वर्ति बनालें। फूला, तिमिर आदि से उत्पन्न पीडा में इस वर्तिका नित्य अंजन करें ॥ २५-२६ ॥ काले सुरमे को, निंबवृक्ष के मूल में युक्तिपूर्वक गाडकर, पन्द्रह दिवस पर्यंत रहने दें। यह नेत्रवेदना को मिटा देता है ॥ २७ ॥ निंब-कोंपलों के रस में तथा कदली-रसमें काले सुरमे के टुकडे को, क्रमशः एक एक वर्ष तक रहने दें। फिर, इसको निकालकर तीन दिवस तक खरल करके सीसे की शलाका से आंजें। यह नेत्र व्याधियों को दूर कर देता है ॥ २८ ॥ एक पात्रस्थित जसद को, उसमें उससे, चतुर्गुण गंधक मिलाकर, काष्ठाग्नि से जला डालें। इस तरह शुद्ध किये गये जसद को गुलाब-जल से खरल में खूब घोटें। घोटकर मुलायम बनाये गये इस सिद्ध-रसश्रेष्ठ को प्रात: नेत्रों में आंजने से, दृष्टिगत तीव्र-विकार-समूहरूपी शार्दूलविक्रीडन शांत हो जाता है। (इस छंद का नाम भी 'शार्दूल-विक्रीडित' है। छंद में, छंद के नाम को यथा-अर्थ बिठाना, कवि की प्रौढ-काव्यकुशलता का निर्देश करता है) ॥ २९ ॥ मिश्री में, उससे सोलह गुने अधिक, नूतन जातिपुष्प के डण्ठल मिलाकर, खूब बारीक पीसकर, वर्ति बनालें। प्रात-काल इसको लगायें। यह वर्ति चक्षुष्य है ॥ ३० ॥ पारद एक तोला, मालतीपुष्प की कलियां बीस तोला- इनको बारीक मुलायम पीसकर अंजन बनालें। इसके नित्य उपयोग से अंधापना भी दूर होता है ॥ ३१ ॥ डमरुयंत्र से नवसादर को उडालें। फिर,

१-कृष्णाञ्जन 'काला सुरमा' इति प्रसिद्धम्। २-त्रिदिनं खल्वयित्वा यशदशलाकया अञ्जितम्। ३-तरुणीसुमार्कैः। ४-पारद•। ५-तुर्योऽश पलायस्येति व्यधिकरण-बहुव्रीहि पलचतुर्थांश इत्यर्थ। ६-पञ्चपलिका। ७-डमर्वादिना।

२२ त्रिचतुःपञ्चवर्षीया शर्करा मसृणीकृता ।
चक्षुषोरञ्जनादान्ध्यं जित्वा ज्योतिः प्रयच्छति ॥ ३३ ॥

२३ मसृणं माक्षिकरजः[1] किंचिन्माक्षिकसाक्षिकम् ।
द्वित्रिवेलं दृशोर्दत्तं विकाराणां निकृन्तनम् ॥ ३४ ॥

२४ ताम्रादक्षं पटोर्गन्धात् पञ्च प्रत्येकमक्षकान् ।
द्विनिम्बुनीरं संभृत्य काचकूपे पिधाय च ॥ ३५ ॥
मासं संस्थाप्य घर्मान्तस्ततः सूक्ष्मं प्रपेषयेत् ।
मेषीक्षीरसरस्निग्धदृशोरञ्जनमाचरेत्[2] ॥ ३६ ॥
लिहन् पलघृतं प्रातस्तीक्ष्णतैलगुडाम्लमुक् ।
आन्ध्याद्विमुच्यते पथ्याभ्यासी कतिपयैर्दिनैः ॥ ३७ ॥

२५ सापामार्गरसे[3] कांस्ये ज्वालयेत् खण्डमैन्दवम् ।
असकृद्वर्तयेद्युक्त्या यावत्तस्य क्षयो भवेत् ॥ ३८ ॥
पात्रस्थं रसकिट्टं तदञ्जयेन्मसृणीकृतम् ।
हन्यादप्यान्ध्यमभ्यासात् का पुनर्दृग्रुजां कथा ॥ ३९ ॥

एक प्रहर, इसको ताम्र मुद्रासे घिसें। इसको शलाकाद्वारा आंख से आंजनें से, नेत्रगत अन्य विकारों सहित धीरे धीरे अंधापना भी नि सदेह दूर हो जाता है ॥ ३२ ॥ तीन चार अथवा पाच वर्ष पुरातन मिश्री के बारीक चूर्ण को आजने से आंध्य दूर होता तथा ज्योति प्राप्त होती है ॥ ३३ ॥ थोडा शहद मिलाकर स्वर्णमाक्षिक के सूक्ष्म मुलायम चूर्ण को, दो तीन बार आजने से दृष्टिविकार दूर हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

ताम्र एक तोला, लवण तथा गधक प्रत्येक पाच तोला, तथा दो निंबू का रस-इन सबको काचकूपी में भरकर उसके मुख को बद करदें। एक मासपर्यंत उसे सूर्यताप में रहने दें। फिर, निकालकर, इन सभी द्रव्यो को सूक्ष्म पीस लेवें। अब, भेड के दूध की मलाई को, प्रथम, पांच दिवसपर्यंत नित्य आंखो पर बांधें। फिर, छठे दिवस से उपरोक्त अंजन लगाना प्रारभ करे। प्रयोगकाल से, प्रात., चार तोलाभर ताजा गो-घृत चाट लेना चाहिये, तथा तीक्ष्ण पदार्थ तैल, गुड, प्रभृति त्याग देना चाहिये। इस तरह पथ्यपूर्वक रहने से कुछही दिवसो से, आंध्यसे मुक्ति मिल जाती है ॥ ३५-३७ ॥ चार या पांच तोले भर अपामार्ग-स्वरस को, कांस्यपात्र मे भरकर, उसमें एक तोला कर्पूरखंड प्रज्वलित करके डाल देवें। इसी कर्पूरखंड को, पात्र मे से पुन निकालकर, पुन जलाकर डाल दें। इस तरह पुन. पुन· जलाकर डालते रहने से, कर्पूरखंड नि शेष हो जायेगा, अब, पात्रस्थ किट्ट को निकालकर बारीक पीस लें। इसको आजने से, आंध्य भी जब दूर हो सकता है, तब नेत्र के अन्य विकारो की तो कथा ही क्या? ॥ ३८-३९ ॥

१-स्वर्णमाक्षिकचूर्णम् । २-मेषीक्षीरसतानिकाबन्धनमञ्जनात् पूर्वमेव पञ्चाहं कार्यम् । ३-चतुस्तोलके पञ्चतोलके वाऽपामार्गस्वरसे कर्पूरखण्डं तोलकमितम् ।

२६ सौभाग्यं सादरः सोरः स्फटिका सैन्धवोत्तमम् ।
एषां पातालयन्त्रोत्थं सत्त्वं शुक्रनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥
२७ हेमक्षीरीपयो घृष्टं कांस्यपात्रे शनैः शनैः ।
अञ्जितं चक्षुषोर्मञ्जु नवं कृन्तति पुष्पकम् ॥ ४१ ॥
२८ मृगपित्ते न्यस्य कणा घृतभृतकर्केऽधिभूमि निदधीत ।
मासान्ते ताः पिष्टा घ्नन्तितरां पटलमञ्जनतः ॥ ४२ ॥
२९ पुनर्नवाया रजसो गृहीत्वा नस्यं पुनः पायसमश्नतो नुः ।
निःसंशयं सप्तभिरेव घस्रैः प्रयाति शङ्खभ्रुकुटीव्यथाऽस्तम् ॥ ४३ ॥
३० मुष्टिं कलिञ्जिकायां जीर्णेन गुडेन साधु सन्धीय ।
वटिका सप्त विधेया भ्रूशूलं दृष्टिघस्रं हरति ॥ ४४ ॥
३१ अत्रत्यसाबुजक्षारपिण्डीं घृष्ट्वाऽञ्जयेन्मनाक् ।
विनाशयति नक्तान्ध्यं त्रिभिरेव दिनैरहो ॥ ४५ ॥
३२ चूर्णं तामाखवं श्लक्ष्णपिष्टं वस्त्रेण गालितम् ।
नेत्रयोरञ्जनाद्धन्ति नक्तान्ध्यं कतिभिर्दिनैः ॥ ४६ ॥
३३ सदैव दन्तपवनभक्षणं वामदंष्ट्रया ।
हन्ति हंहो दृशोर्दुःखं संशयश्चेत् परीक्ष्यताम् ॥ ४७ ॥

सौभाग्य, नवसादर, कलमी सोरा, स्फटिका तथा काच-जाति का उत्तम सैंधव, इनका पातालयंत्रद्वारा निकाला गया सत्त्व आंख के फूले को काट देता है ॥ ४० ॥ स्वर्णक्षीरी के दूध को कांस्यपात्र में धीरे धीरे खूब घिसें। इस दूध को आंख में आंजने से, नूतन फूला कट जाता है ॥ ४१ ॥ मृगपित्त में पिप्पली मिलाकर घृतपूर्ण करवे में भरकर, भू-गर्भ में गाढ देवें। एक मास पीछे इसको निकालकर, पीसकर अंजन करें। यह 'नेत्र-पटल' को शीघ्र दूर कर देता है ॥ ४२ ॥ पुनर्नवा-मूलत्वक् के चूर्ण का नस्य लेकर, फिर ऊपर से हलवे का भोजन करनेवाले मनुष्य के शङ्ख-प्रदेश तथा भ्रुकुटी की वेदना सात दिवस में ही अस्त हो जाती है ॥ ४३ ॥ एकमुष्टि भर (एकपल) कलौंजी को पुराणे गुड में अच्छी तरह मिलाकर सात वटिकायें बनालें। यह वटिकायें, दृष्टि को क्षीण करने वाले भ्रुकुटीशूल का शमन करती हैं ॥ ४४ ॥ साबुन के क्षार-पिण्डी को घिसकर अत्यल्पमात्रा मे आंजने से, अहो! तीन दिन में ही नक्तान्ध्य नष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥ तमाखूपत्र के वस्त्रपूत सूक्ष्म मुलायम चूर्ण को आंख में आंजने से कुछ ही दिनो में नक्तान्ध्य मिट जाता है ॥ ४६ ॥ अहो! वाम-दंष्ट्रापर नित्य प्रति दंत-पवन (दांतुन) करने से नेत्रपीडा का शमन हो जाता है। यदि इसमें शंका हो तो परीक्षा करके देख लीजिये ॥ ४७ ॥

१—काचभाङ्गरं सैन्धवलवणम्। २—'फूला' इति प्रसिद्धम्। ३—नरस्य। ४—"घस्रो दिनाहनी वा तु" इति कोष। ५—लोके 'कलोंजी' इति ख्याताया। ६—तमाखोरिदं तामाखवम्।

३४ मौञ्जं[1] गुणं परिभ्राम्य सप्तधा मस्तकोपरि ।
क्षिप्त्वा चतुष्पथे सायं गृह्णीयाल्लोकलङ्घितम् ॥ ४८ ॥
प्रान्तवेष्टिततूलं तं कृत्वा तैलनिमज्जितम् ।
न्युब्जं धृत्वा शिशौ दुःस्थे[2]दृशि पश्यति दीपयेत् ॥ ४९ ॥
रुधिरेण[3] सहैवाक्ष्णोस्तेन तैलस्य बिन्दवः ।
पतन्ति सचटत्कारं भाजने भृतपाथसि ॥ ५० ॥
त्रिभिरेव दिनैरेवं प्रणश्यति दृशोरसृक् ।
तन्त्रे किं त्वत्र योषिद्भिरुद्दिष्टः सावरो मनुः ॥ ५१ ॥

इति नेत्ररोगचिकित्सा ।

अथ शिरोरोग[4]चिकित्सितम् ।

१ नवसादरभृतगर्भं सितोपलाबुद्बुदं निगीर्यानु ।
मिसिगोधूमसितानां भुञ्जीत शिरोगदेऽपूपान् ॥ १ ॥

मूज को बटकर रस्सी बनाले । इस रस्सी को मस्तक के ऊपर चारो तरफ घुमाकर प्रात काल में ही चौराहे पर रखदे । इस तरह, मार्ग पर आवागमन करने वाले मनुष्यो से उल्लंघित इस रस्सी को साञ्झ के समय उठा लावें । अब, इस रस्सी के एक छोर पर कापूस लपेटकर उसे तैल में भिगोकर सिक्त करलें । रस्सी के दूसरे छोर को हाथ में लेकर कापूस वाला छोर नीचे लटका दें । इस तैल-सिक्त कपासवाले छोर को, अपनी पीडित आखो से इसको देखते हुये बालक के आगे, प्रज्वलित कर दें । नीचे एक, जलपूर्ण थाली रख दे । इस जल पूर्ण थाली में चट चट ध्वनि करते हुये तैल-बिंदु, सामने बैठे हुये बालक के नेत्र-गत दूषित-रुधिर के साथ ही, गिरने लगेंगे । (साक्षात् रुधिरबिंदु तो नहीं गिरते किंतु तैलबिंदुओ के गिरने के साथ क्रमश नेत्रगत रुधिरात्तता अवश्य अल्प होती रहती है ।) इस तरह तीन दिवस पर्यंत करने से नेत्रगत रुधिर-दोष मिट जाता है। इस 'तन्त्र' का उपदेश महिलाओं ने 'सावर' मनु को दिया था ॥ ४८–५१ ॥

– नेत्ररोग चिकित्सा समाप्त –

– शिरोरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग १७) –

शीर्ष-विकार में, मिश्री के पताशे मे नवसादर चूर्ण भरकर निगीर्ण करके उसके ऊपर, सौंफ तथा मिश्रीमिश्रित गेहू के आटे से निर्मित मालपूये का भोजन करें ॥ १ ॥

१—अधुना लोकदृष्टमुपायमभिदधति श्रीगुरव । २—अभिष्यन्ननेत्रे । ३—न त्वत्र तादात्विक साक्षाद्रुधिरपतनं किंतु कृते ह्यस्मिंस्तन्त्रे क्रमेण नेत्रलौहित्यमपयाति । ४—ऊर्ध्वाङ्गरोगेषु शिरोरोगस्यैव पारिशेष्यात्तच्चिकित्सारम्भ ।

२ सितोपलाघुसृणयोर्लिप्तिः किञ्चिद्विचोष्णयोः।
ग्रसतेऽनन्तवातार्तिं कुड्यमत्यीव मक्षिकाम् ॥ २ ॥

३ छदनरसनिबद्धैः राजकोशातकीनां
तवकनलविपक्वैश्चारुगोधूमचूर्णैः।
रचितसुचितसर्पिः शर्करोट्टासि लड्डु
भ्रुकुटिभिदमनन्तं लम्भयेदानमन्तम् ॥ ३ ॥

४ मज्जानो हविषि द्रागाकुलम्य किञ्चित्संभ्रष्टाः पुनरुपिना रसे निताय।
पीयूषादपि रुचिमद्भुतां दधाना मस्तिष्कं झपटि विशिष्य बृंहयन्ति ॥ ४ ॥

५ प्रत्यग्रकट्फलरजो भृतनारिकेलदुग्धाढकं कथनतो नय पिण्डभावम्।
पिष्ट्वा घृते तलितमुत्तवलक्षखण्डं वातामकुङ्कुमसखं भज मूर्धरुग्णः ॥ ५ ॥

६ जातीदलफलदरदोचटाग्र्यपाधातकीसुमाफुकम्।
सितकरवीरसुमाद्भिर्विमर्द्य गुटकीहृतं शिरोर्तिहरम् ॥ ६ ॥

मिश्री तथा केसर को पीसकर, उसका मस्तक पर कदोष्ण लेप, शीर्षवेदना को (अनन्त-वात-पीड़ा को) उसी तरह ग्रसित कर लेता है जिस तरह छिपकली मक्खी को ('अनन्तवात' दोषत्रय-प्रकोपजन्य, शीर्षविकार विशेष है। इस रोग में तीनों दोष प्रकुपित होकर मन्या में पीड़ा उत्पन्न करते हुये चक्षु, भौंह तथा शङ्ख प्रदेश में अपनी स्थिति कर लेते हैं। परिणामतः, गण्डस्थल में तीव्र वेदना होने लगती है। हनु स्तंभित हो जाती है तथा विविधप्रकार के नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं) ॥ २ ॥ तुरई-पत्तों के स्वरस से गेहूं के आटे को बांधकर उसकी बाटियां बना तवे पर सेकलें। फिर, इन बाटियों को चूरकर उसमें घी और शक्कर मिला उसके लड्डू बांधलें। इनका सेवन करने से भ्रुकुटि का भेदन करने वाले 'अनन्तवात' का अन्त हो जाता है ॥ ३ ॥ खरबूजे की मज्जा को घी से थोड़ी भूनकर, शर्करा की चासनी में डाल देवें। अमृत से भी अधिक अद्भुतरुचि उत्पन्न करने वाला यह रसायन मस्तिष्क का शीघ्र बृंहण करता है ॥ ४ ॥ नारियल के २५६ तोला दूध को, ताजा कट्फलचूर्ण सहित खूब उकालकर, मावे जैसा पिंड बनालें। फिर इसको घी में भूनकर, मिश्री मिला, बादाम, केसर आदि डालकर, शीर्षवेदना में सेवन करें ॥ ५ ॥ जावित्री, जायफल, हिंगुल, उटिंगण के बीज, गांगेरुकी-त्वक् (गगेरन), धाय के फूल लविंग, अफीम इन औषधीय द्रव्यों को, श्वेतकरवीर-पुष्परस में घोटकर, गुटी बनालें।

१—घुसृणं कुङ्कुमम्। २—अनन्तवातलक्षणं च सुश्रुतोत्तरे यथा—"दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम्। कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवशङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु॥ गण्डस्य पार्श्वेषु करोति कम्पं हनुग्रह लोचनजांश्च रोगान्। अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम्॥" इति। ३—'गिलगिल तोन्यू' इति ख्यातानाम्। ४—अनन्तवातनामकं रोगम्। ५—'खर्बूजा' इति प्रसिद्धस्य। ६—तन्तुलीरूपे। ७—उच्चटा

७ एलेयवीकाद्विपट्टप्रपूर्णं निम्बूकखण्डं परिपाच्य युक्त्या ।
संचूषयन्नुद्धतपित्ततप्तशिरःकपालः सुखमेति सद्यः ॥ ७ ॥

८ 'लेना दोस्त वदाम पोस्तफलके दानां चिरोंजी तिली
राई ओ पिसता खरी वजनमें एकैक पैसाभरी ।
छै मापे पुनि लोहवान कुचिला पौंनेजुं तोलासही
घीमांही करि लूपरी मगजके दर्दीकु काफी कही' ॥ ८ ॥

९ प्रलेपो राजशणिकास्वरसैरुपयोजितः ।
विध्वंसयति दुःसाध्यामपि मस्तकवेदनाम् ॥ ९ ॥

१० शुण्ठीलवङ्गकर्पूरैः सममर्जुनचन्दनम् ।
शिरोर्तिघस्मरो लेपः कृत्रिमेण हिमेन वै ॥ १० ॥

यह शीर्षवेदना को मिटा देती है। इस गुटी को, रात्रि के समय, शक्कर-निर्मित सीरे में लपेट कर लेनी चाहिये। इसको लेकर ऊपर से सीरे के ४५ कवल खाने चाहिये। प्रयोग-काल में अम्ल पदार्थ वर्ज्य हैं ॥६॥ एलिया, वीकामाली और दोनो नमक (सामुद्र तथा सैंधव) इनको निंबू के एक टुकडे में भरदें। फिर, इस नींबू-खडको युक्तिपूर्वक अग्नि के ऊपर पकाकर उसके रस को चूसें। इसके द्वारा पित्त से परितप्त मस्तक तथा कपाल को शीघ्रं शांति मिलती है ॥ ७ ॥ हे मित्र! बादाम, पोस्त के दाने, चिरोंजी, तिली, राई तथा पिस्ता प्रत्येक एक एक पैसाभर, लोबान छह मापा तथा कुचला नौ मापा इन सबको लेकर इनकी घी में लूपरी बना मस्तक पर लगाये। शीर्षवेदना में यह प्रयोग पर्याप्त है ॥ ८ ॥ रायसणी के (रायसींगणी गुर्जर नाम है। यह पीतपुष्प-वाली एक सिद्ध औषधि है। इसके पत्ते ठीक इमली के पत्तो से मिलते जुलते होते हैं। यह औषधि वहुधा घर की दीवारो पर अथवा वाडपर उग आती है।) पत्र-स्वरस का प्रलेप मस्तक की दृष्टि-विध्वंसनी-वेदना को, दु साध्य हो तो भी, मिटा देता है। यह प्रयोग शिशिर में ही दो तीन बार करना चाहिये अधिक नहीं ॥ ९ ॥ सूंठ, लौंग, कपूर, अर्जुनत्वक् तथा श्वेत चंदन-इनका बरफ से शीतल

'उटींगण' इति ख्याता, तस्या बीजान्यत्र ग्राह्याणि, झषा गाङ्गेरुकीत्वक्, धातकीसुम 'धाय-फूल' इति ख्यातम्। ८-इदं च शार्करपावकग्रासे निशि सेवनीयम्। तदुपरिष्टाच्च चतु पञ्च-पावकग्रासान् भक्षयेत्। अम्लादिकं च वर्जयेत्।

१-वीका 'वीकामाली' इति ख्याता। द्विपट्टशब्देन सामुद्रसैन्धवे ग्राह्ये। २-रेक-द्वारा शं प्राप्नोति। एतत्पित्तज्वरेऽपि देयम्। ३-नव माषा इत्यर्थ। ४-उपनाहस्य लौकि-कसञ्ज्ञेयम्। ५-'रायसणी, रायसींगणी' इति गुर्जरे ख्याता पीतशबलपुष्पा काचिद्वाटी-रौहिणी सिद्धौषधिर्भवति, यस्याः पत्राणि चिञ्चापत्रसपत्नानि भवन्ति। ६-शिशिर एव द्विस्त्रिवारं कल्पित। ७-दृष्टिविध्वंसिनीमिति शेष। ८-श्वेतचन्दनम्। ९-'वरफ' इति प्रसिद्धेन ॥

११ नवसादरपानीयप्लुतप्लोतावृतं शिरः ।
व्यथया त्यज्यते सद्यो नपुंसक इव स्त्रिया ॥ ११ ॥
१२ त्रिपुटे भद्रत्रिपुटा कर्पूरमिति प्रकल्पितो लेपः ।
दुस्तरशिरोर्तितापक्षपणे क्षिप्रं समद्यदवलेपः ॥ १२ ॥
१३ संभृष्टहरिमन्थानां पोट्टलीं साधु जिघ्रताम् ।
शिरःपीडाप्रभृतयः कफोत्था व्यापदः कुतः ॥ १३ ॥
१४ कूपे निक्षिप्तमष्टाहं त्रिफलाक्षोदपोट्टलम् ।
तेन पक्त्वा दृढं सर्पिः कर्पटेन पवित्रयेत् ॥ १४ ॥
लेपनस्याञ्जनैः शस्तं शिरोनासाक्षिरुक्षु तत् ।
तत्कल्कजं पुनः किट्टं म्रक्षयेद्दारुणादिषु ॥ १५ ॥
१५ अतितिक्ततुम्बगर्भैश्छायाशुष्कैर्विचूर्णितैर्नस्यम् ।
विनिहन्ति शिरोविकृतश्लेष्मस्रवदूषिताक्षिदुःखानि ॥ १६ ॥

किया गया लेप, शिरोवेदना को मिटाता है ॥ १० ॥ नवसादरके पानी में भीगे हुये वस्त्रखंड से मस्तक को आवृत रखने वाले की व्यथा उसको उसी तरह त्याग देती है, जिस तरह नपुसक को सुंदरी ॥ ११ ॥ दो छोटी इलायची, एक बडी इलायची - इनको एक माषाभर कपूर के साथ पीसकर, लेप करने से, दु साध्य शिरोवेदना, तथा ताप का अवलेप शीघ्र ही शमित होजाता है । (यहां छिलके सहित इलायची का उपयोग करना चाहिये केवल दानों का नहीं) ॥ १२ ॥ चनों को भूनने के समनंतर ही पोटली में शीघ्र भरकर, जोर से सूंघने वाले को सिर की पीडा आदि तथा कफजन्य (शीर्ष की) आपद कहां ? ॥ १३ ॥ त्रिफलाचूर्ण की पोटली को कूप में आठ दिवसपर्यंत जलमग्न रहने दे । फिर, इस त्रिफला से घृत सिद्ध करके उसको छानलें । यह घृत क्रमश - मस्तक, नाक तथा नेत्र के लेप, नस्य तथा अंजन में प्रशस्त है । वस्त्रगत किट्ट का उपयोग शरीर के केशोत्पत्ति - स्थानगत विकारो में हितावह है । केशोत्पत्ति भागपर इस किट्ट का मर्दन करना चाहिये ॥ १४–१५ ॥ अत्यंत तिक्त तुंबी के भीतर का गूदा निकाल उसे छायाशुष्क बनालें । फिर, इसके चूर्ण का नस्य लेवें । इससे मस्तकगत दूषित कफ का स्राव तथा आंखका दुखावा आदि दूर हो जाते हैं । यहा नस्य लेने के तुरंत पीछे, तुल्य - घृत - शर्करा - निर्मित

१–द्वे सूक्ष्मैले, एका भद्रैला, माषमानं कर्पूरं पिष्ट्वा, हिम एव लेपोऽवचार्य । एलानां फलानि ग्राह्याणि न तु केवलं तद्बीजान्येवेति रहस्यम् । २–भर्जनान्तरमेव पोट्टली कार्या, विलम्बे गुणहानिरिति भाव । ३–तेन त्रिफलाक्षोदेनेत्यर्थ । त्रिफलात सर्पिश्चतुर्गुणमादेयम् । ४–केशभूमिभवरोगविशेषेषु । ५–अत्र नस्यसमनन्तरमेव तुल्यघृताधिकशर्करं पावकं भक्षयेत् ।

१६ कणाश्चतस्रो मदनं तथैकं फेनं द्विगुञ्जं फणिनो विचूर्ण्य।
संभर्ज्य ताम्र्यां मसृणीकृतं स्यान्नस्यं महामस्तकयातनासु ॥ १७ ॥
१७ मरिचं दरदं विश्वा चपला छिक्कका मिषिः।
पैत्रं सेव्यमिदं नस्यं सेव्यं शीर्षाक्षिरोगिणाम् ॥ १८ ॥

— इति शिरोरोगचिकित्सा —

अथासृग्दरचिकित्सितम्।

१ उच्चा हस्तप्रमाणेन त्रिचतुःपञ्चशाखिका।
खरदीर्घदला मृद्वी प्रायः पर्वतभूमिजा ॥ १ ॥
निम्नगर्भ मनाङ्नीलं श्लिष्टपञ्चाङ्गवर्तुलम्।
पञ्चास्त्रोच्छूनकिञ्जल्कं यस्याः पुष्पमगन्धकम् ॥ २ ॥
ओषधिः सा विदेहोक्ता नाम्ना प्रदरदारिणी।
परंपरोपदेशेन मयाऽप्यज्ञायि यत्नतः ॥ ३ ॥

हलवे का भोजन करना चाहिये ॥ १६ ॥ पिप्पली नग ४, मदनफल नग १ तथा अफीम दो गुंजा, इनके चूर्ण को ताम्रपात्र में भूनले। फिर, सूक्ष्म पीसकर, मस्तकगत उग्र विकारो मे-सूर्यावर्त आदि मे-इसका नस्य लेवें। इसके प्रयोगकाल मे, पथ्यरूप से, चासनीयुक्त मधुर दूध का पान तथा गोधूम की फुल्किकाओं का सेवन अवश्य करना चाहिये ॥१७॥ मस्तक तथा नेत्रविकारो से ग्रस्त मनुष्यो को, मरिच, हिंगुल, सूंठ, पिप्पली, नकछीकनी, सौंफ, तमालपत्र तथा उशीर के चूर्ण का नस्य लेना चाहिये ॥ १८ ॥

— शिरोरोग चिकित्सा समाप्त —

— असृग्दरचिकित्सा (कुल प्रयोग १२) —

'प्रदरदारिणी' इस नाम से विदेह प्रोक्त सुप्रसिद्ध एक औषधि है। इस औषधि के विषय में, मैं अपनी कुलपरंपरा से, बहुत सुनता आया हूं तथा प्रयत्नपूर्वक मैंने स्वयं इसकी प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त की है। यह औषधि एक हाथ ऊंची तथा तीन, चार अथवा पाच शाखाओ से युक्त होती है। इसके पत्ते दीर्घ खुरदरे होते है। स्वय कोमल होती है। प्राय. पर्वतीयभूमि से उगती है। इसका पुष्प मध्य मे निम्न, कुछ नीले वर्ण

१—फणिन फेनमिति योजना। २—सूर्यावर्तप्रभृतिषु। पथ्यमत्र जलज्वलितन्तुलीमधुरं दुग्धं, फुल्किकापि च। ३—तमालपत्र 'पत्रज' इति प्रसिद्धम्। ४—उशीरम्। ५—सामान्यत स्त्रीपुंसदेहभवान् रोगानभिधायेदानीं स्त्रीदेहमात्रभाविन कांश्चिद्रोगविशेषानभिदधाति। तत्र पूर्वं प्रदररोगचिकित्सा। तत्रापि प्रथमं कस्याश्चिन्महौषध्या प्रदरदारिणीति कल्पितनामधेयाया. स्वरूपप्रदर्शनपुर सर प्रयोग प्रदर्श्यंते चतुर्भि पद्यैरुच्चेत्यादिकै ॥

दलं प्रदरदारिण्याः सकत्थं परिपेषयेत् ।
माषप्रमाणा वटिका प्रदरार्तिं नियच्छति ॥ ४ ॥

२ गद्याणद्वितयं ब्रह्मदण्डीपञ्चाङ्गमिष्यते ।
गद्याणमात्रमेवात्र रसाञ्जनमिह ध्रुवम् ॥ ५ ॥
गद्याणषट्कतुलिता सितेत्येकत्र कल्कयेत् ।
पलद्वयेन पयसा विप्लाव्य शुचिवस्त्रतः ॥ ६ ॥
पिबेद्दुःसाध्यविविधप्रदरार्ता नितम्बिनी ।
शीते शृतं तथा ग्रीष्मे शीतमेव प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥

३ ऐडैः[4] पयोभिर्लुलितानि पीत्वा कणान्वितान्याखुशकृद्रजांसि ।
योनिस्रवद्रौधिरपूरदिग्धगृहाङ्गणाऽथैति सुखं मृगाक्षी ॥ ८ ॥

४ प्राचीनचिक्कणविभाण्डतलस्य यद्वा चूर्णीकृतानि शकलान्यरुणेष्टिकायाः ।
पीतानि षष्टिकजलैः सह सुन्दरीभिः शोणप्रभं प्रदरमुग्रदरं हरन्ति ॥९॥

५ प्रलेष्टिकारसश्चेत् सितोपलासौरसाक्षिकः पीतः ।
किमु तर्हि सुन्दरीणां समुदीर्णदरं दरं न दारयति ॥ १० ॥

का, गोलाकार, परस्पर जुडे हुये पाच विभागवाला, केसर के पांच उभरे हुये रेशों से युक्त, गंधरहित होता है । इस प्रदरदारिणी के एक पत्ते को दो तीन रत्तिभर कत्थे में पीसकर एक माषा प्रमाण वटिका बनाले । इसके सेवन से प्रदरजन्य वेदना दूर होती है ॥१–४॥

ब्रह्मदंडी (तिलकुटा) का पंचांग बारह माषा, रसांजन छह माषा तथा मिश्री ३६ माषा इनको एकत्र दश तोला जल मे घोलकर वस्त्रपूत करलें । अनेक वर्ण के दु साध्य प्रदर से पीडित महिला इसका पान करे । शीतऋतु मे गरम करके तथा ग्रीष्मऋतु मे शीतल ही इसका उपयोग करना चाहिये ॥ ५–७ ॥

दो रत्ति पिप्पली एवं मूषक की शुष्क लीडी के चूर्ण को मेषीदूध मे मिलाकर पीने से योनि मे से झरते हुये रुधिर पूर से सिक्त घरके आंगनवाली मृगनयनी सुखसे रह सकती है । मूषक की लीडी दो तीन गुंजाभर ही लेनी चाहिये । इसी लीडी के चूर्ण को मलाई के साथ लेने से प्रमेह मे भी लाभ होता है ॥८॥ प्राचीन चिकने घट के तल की ठीकरियो का अथवा अतीव पुरानी लाल ईंट के खडका चूर्ण इनमें से किसी एक के ४ रत्ती चूर्ण को षष्टिक चांवल के ४ तोला धोवन के साथ लेने से युवतियोंका उग्र-रक्तप्रदर शांत हो जाता है ॥ ९ ॥ पुराणी ईंट के चूर्ण को निरंतर जलकी भावना देते

१–ब्रह्मदण्डी लोके 'तिलकुटा' इति नाम्ना प्रसिद्धा । तस्या पञ्चाङ्गानि पत्रपुष्पमूलादीनि । २–जलेन । ३–नानावर्णप्रदरपीडिता । ४–मेषीभवै । ५–आध्मानभयाद् द्वित्रि-गुञ्जाधिकानि नाददीत । दुग्धसतानिकालीढानि प्रमेहं घ्नन्तीत्यपि बोध्यम् । ६–इष्टिकाऽपि प्राचीनैवादेया । ७–षष्टिकतन्दुलभावितैर्जलै । ८–षष्टिकजलै सह चिक्कणभाण्डखण्डानि सुन्दरीभि पीतानीत्यन्वय । ९–प्रलेष्टिकाचूर्णस्य चिर जलभावनया रसो निष्पाद्य ।

स्थापयेद्र्कहृदयपाठार्थं ब्राह्मणान्मुदा ।
सत्येवं चमनैरस्याः शुद्धिः स्याद्गर्भधारणम् ॥ ३ ॥
दुग्धमन्धोघृतं किंचित् पथ्यं केवलमाहरेत् ।
संकल्पं कारयेत् सिद्धौ भोजयिष्ये द्विजानिति ॥ ४ ॥
२ वृद्धदारुकमक्षांशं द्यक्षां पर्कटिनो जटाम् ।
संकाथ्य स्त्री पिबेदह्नां हित्वा त्रयमृतावृतौ ॥ ५ ॥
सत्येवं लभतेऽपत्यमेकसंवत्सरान्तरे ।
किं तु प्राक् तुत्थकणिकां खादेत् संयावचेष्टिताम् ॥ ६ ॥
३ द्यक्षाणि वेणुपर्वाणि शुकपुष्पां पलोन्मिता ।
गुडेन मधुरः क्वाथः प्रवर्तयति वै रजः ॥ ७ ॥
४ पलाशवीजसितयोः स्तोमसागरभागयोः ।
रजांसि द्वित्रिमाषाणि योनिदाहे जलैर्गिलेत् ॥ ८ ॥
५ समितारेवतीक्षोदैर्लेपः कोष्णः प्रशस्यते ।
इष्टिकास्वेदितो योनिकण्डूग्रन्थिषु वर्ष्मसु ॥ ९ ॥

स्तोत्र' के पारायणार्थ आठ ब्राह्मणो को बिठा देना चाहिये। इस वटी के सेवन से उस युवति को कुछ देर बाद वमन तथा विरेचन होगा। इस तरह गर्भ-सपादन-योग्य कोष्ठशुद्धि हो जायेगी। उस दिन शर्करा रहित केवल दूध, भात तथा घी का भोजन पथ्य-रूप से करे, तथा 'गर्भ-धारण रूपी कार्यसिद्धि होने पर मै ब्राह्मणो को भोजन दूगी' ऐसा सकल्प भी साथ मे करना चाहिये ॥१–४॥ वृद्धदारुक एक तोला तथा पर्कटी नामक पिप्पल-वृक्ष की जटा इन दोनो के एकत्र क्वाथ को, ऋतु के तीन दिवस छोडकर, प्रतिदिन नियमित पीने से, युवती को एक वर्ष उपरांत सतान प्राप्ति होती है। किंतु संतानोत्पत्ति-योग्यता कारक उक्त क्वाथ पान के पूर्व, तुत्थकणिका को मीठी थुली मे, अथवा सीरे में मिलाकर खानी चाहिये। इस थुली मे एक तोलाभर वेणु के पर्वका चूर्ण भी मिलाना चाहिये। तुत्थ-कणिका केवल एक चांवल-भर ही मिलानी चाहिये, क्योकि इससे गर्भाशय का शोधन हो जाता है ॥५–६॥ वांसके पर्व दो तोला, सोया चार तोला, इनका गुड से मधुर-क्वाथ रज प्रवृत्ति करता है। जिस स्त्री को ऋतु में भी आर्तव न आता हो उसी को यह प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥ पलाश के वीज तथा मिश्री क्रमश एक भाग तथा चार भाग लेकर चूर्ण बनालें। इस चूर्ण को, योनि-दाह मे, जल के साथ दो या तीन माषा मात्रा से फाकना चाहिये ॥ ८ ॥ गेहू का आटा तथा रेवंदचीनी के चूर्ण

१–आदित्यहृदयाख्यस्तोत्रविशेषस्य पाठाय। २–विरेचनमप्यस्माद्भवति। ३–भक्तम्। ४–शर्करारहितमित्यर्थः। ५–जटायुक्तस्य पिप्पलविशेषस्य। ६–सयावः पावक, केचिच्च द्वितीयगुच्छप्रतिपादितस्वरूपां मिष्टगुल्लिकामाहु। तुत्थकणिका च तन्दुलाधिका न गिलनीया। अत्र वेणुपर्वाण्यपि तोलकप्रमाणानि प्रक्षेप्याणीति रहस्यम्। ७–'सूवा' इति ख्यात शतपुष्पाभेद। ८–यस्या ऋतावप्यार्तवं न स्रवति तस्यै देयोऽयं योगः। ९–रेवती 'रेवतचीनी' इति ख्याता ॥

१७ भुवनेन रंजो ललना कलयति या काकवल्लरीफलजम् ।
अनुभूय वमनरेकावपचादकरं जहाति सा गर्भम् ॥ २४ ॥

— इति स्त्रीरोगचिकित्सितम् —

अथ बालरोगचिकित्सितम् ।

१ उदरापदनुत्पत्त्यै कुरङ्गकणिकां किरेत् कनकसूच्या ।
सद्योभवस्य नाभावालस्य मुदस्य बालस्य ॥ १ ॥
२ व्यतिक्रान्तैकशरदं शिशुमाश्वास्य नीरुजम् ।
स्कन्धादधः सुधापाणिः समुल्लिख्य शलाकया ॥ २ ॥
दत्त्वा सुजातविस्फोटच्छल्लकं वारिपेषितम् ।
सर्वथा वर्जयेत् स्त्रीणामशुद्धानां गतागतम् ॥ ३ ॥
ज्वरपूर्वस्ततः स्फोटो जायते सौम्यदर्शनः ।
तस्मिन् पतति संशुष्य निर्दिशेच्छीतलार्चनम् ॥ ४ ॥

जल-सह फाकी लेने से, निन्दित-गर्भ स्रवित हो जाता है। इस चूर्ण से तीव्र वमन पूर्वक विरेचन होता है। इस चूर्ण की मात्रा तीन छह माषा से अधिक नहीं है ॥२४॥

— स्त्रीरोग चिकित्सा समाप्त —

— बालरोग चिकित्सा (कुल प्रयोग ३२) —

सद्योजात शिशु की नाल काटते समय आलस्य को निरस्त करके (अर्थात् तत्काल ही), उसके नाभि-प्रदेश में, उदर विकार की अनुत्पत्ति के लिये, स्वर्णसूचिकाद्वारा कस्तूरी के कण विकीर्ण करने चाहिये ॥ १ ॥ टीका लगाने का स्वानुमत प्रकारः—बालक जब एक वर्ष का हो जाये, तब यदि वह स्वस्थ हो तो, आश्वासन देते हुये कुशल वैद्य उसके स्कधप्रदेश से नीचे भुजा को स्वर्णशलाका से गोदकर एक वर्तुलाकार विस्फोट बनाकर उसे, पहिले से सुरक्षित 'शुष्क मसूरीका स्फोट त्वक् चूर्ण' को पानी में पीसकर, मल देवे। ऐसे समय, शिशु के शयनकक्ष मे, ऋतुमती, अस्नात अत एव अशुद्ध स्त्रियों के आवागमन को सर्वथा रोक देना चाहिये। तदनन्तर, प्राय. २–३ दिनमें शिशु के भुजागत उत्कीर्ण-प्रदेश पर ज्वरपूर्वक एक सौम्य आकृति का स्फोट उत्पन्न होगा। यह विस्फोट कुछ शमित होकर जब सूख जाये, तब 'शीतला' की अर्चना करनी चाहिये। इस तरह करने से, बालक को कभी शीतला रोग नहीं होगा। और कदाच् हो भी जाये

१–गद्याणाधिकं न देयम्। अस्य विशेषव्याख्यान न स्फुटीक्रियते भ्रूणहत्याप्रसङ्गात्। अभिधानं चास्य गर्भिण्या एतादृशतीक्ष्णवस्तुभ्यो रक्षणार्थम्। २–पूर्वाधिकारे गर्भोत्पादोपाय प्रदर्शितो गर्भस्यैव च बहिर्निःसृतस्य 'बाल' इति सञ्ज्ञा, "स जातो बाल उच्यते" इत्यादिवचनात्, अतस्तद्रोगाधिकारस्य वक्तुमौचित्यमेवेति। ३–कस्तूरीकणिकामित्यर्थ। ४–द्वीपान्तरीयवैद्यैर्ज्ञातरसज्ञैर्लोकप्रचारितस्य दृष्टफलत्वाच्च स्वानुमतस्योपायस्य प्रदर्शनमेतत्। ५–कृतयोग्य इत्यर्थ ॥

एवं कृते विधौ भूयः शीतला नैव संभवेत् ।
यदि जातु भवेत् क्वापि तदा स्याद्विरलोदया ॥ ५ ॥
३ यूकां विपोथ्य नखतस्तदस्रलिप्तनखधावनाम्बु मनाक् ।
अविचारयन् ददीत प्रेक्ष्य कृती शीतलाविकृतिम् ॥ ६ ॥
४ जलैः सपर्थ्यं विपनारिकेलं विघृष्य दद्यात् खलु शीतमेव ।
प्रदुष्टरक्तक्रिमिशोणभावविस्फोटपीडाशमनं शिशुभ्यः ॥ ७ ॥
५ मिषितन्मूलजन्तुघ्नकृतमालमृकण्डजाः ।
हरीतक्यौ वचाञ्जीरयवानीतरुणीसुमम् ॥ ८ ॥
पलाशबीजमृद्वीकाहवुषागुडटङ्कणम् ।
सौवर्चलप्रतीवापा बालानां जन्मघुण्टिका ॥ ९ ॥
६ संचूर्ण्य सर्पिषि शनैः परिभर्ज्य जाती-
मायाफलानि कवलग्रहसंमितानि ।
दृष्टेन्दुतिन्दुकसिताशर्वलानि दुग्धे
दद्यात् प्रगे बलचमत्कृतये शिशुभ्यः ॥ १० ॥
७ सौवर्चलप्रचारं जलमुष्णं कृष्णकोकिलादलजम् ।
वान्ति मुहुरुद्भाव्य श्लेष्माणं हन्ति बालानाम् ॥ ११ ॥

तो वह अल्पवेग वाला ही होगा ॥ २-५ ॥ शीतला की विकृति को देखते ही, कुशल वैद्य, जूं को नख से मसलकर, तत्-रक्त-लिप्त-नख के धावन का थोडा पानी, बिना शंका किये, शिशु को पिला देवे ॥ ६ ॥ वजनदार हरडे तथा जहरी खोपरे (दरियाई नारियल) को जल मे घिसकर, बालको को (युवाओ को भी) शीतल ही सेवन कराने से दूषितरक्त, क्रिमि, रक्तचाटे, विस्फोट तथा पीडा आदि का शमन होता है ॥ ७ ॥

सौंफ, सौंफके मूल, वायविडंग, अमलतास, सनाय, छोटी-बडी हरडे, वचा, अंजीर, अजमोदा, गुलाब पुष्प, पलाशबीज, मुनक्का, उन्नाब, गुड और टंकण इनमें सौवर्चल ऊपर से और मिलादें । बालको के विकार शमन के लिये यह 'जन्म-घुण्टिका' है ॥ ८-९ ॥ एक 'कर्ष' प्रमाण में जायफल तथा माजूफल लेकर, उनका एकत्र चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को धीरे धीरे घी मे भूनें । इस चूर्ण को, बारह तोले-भर मिश्री चूर्ण से मधुर करलें, फिर एक मासा की मात्रा मे दूध के साथ प्रात.काल, बालको को, बल वृद्धि के लिये, देवें ॥१०॥ कालीकोइल के (एक चम्मच भर) पत्र-स्वरस मे थोडा (दो रत्तिभर) कालानमक मिलाकर उसको कवोष्ण सेवन कराने से, बालकों का, पुन पुन' वमनपूर्वक, कफ नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥ कफप्रधान खांसी यदि

१-पथ्या हरीतकी, सा च गुर्वी ग्राह्या । २-लोके जहरीखोपराभिधम् । ३-उपलक्षणमिदं, तेन महद्वयोऽपि देयम् । ४-द्विवचमेन बृहत्स्वल्पभेदाद्द्विविधहरीतकीग्रहणम् । ५-गुलाबपुष्पम् । ६-हवुषाशब्देनात्र लोके 'उन्नाब' इति लोकप्रसिद्धस्य बदरविशेषस्य ग्रहणम् । ७-योगस्यास्य लोके 'जन्मघुण्टी' इति संज्ञा । ८-जातीफलानि मायाफलानि च ।

८ बलासोल्लासितः कासो बालानाकुलयेद्यदि ।
रसोनसंभवं भस्म दीयतां कासघस्मरम् ॥ १२ ॥
९ सेहुण्डदण्डमुत्कीर्य तीक्ष्णं न्यस्य पिधाय च ।
त्र्यहं संस्थाप्य तदनु तस्य कोकिलमाचरेत् ॥ १३ ॥
वल्लोन्मानं रजस्तस्य सितया शिशुकासजित् ।
अनुपेयं पयः शीतं योगोऽयं दुर्लभः परम् ॥ १४ ॥
१० उत्फुल्लिकासमुद्रेके किमन्यैरौषधैरिह ।
एकैव रोचना धात्रीक्षीरैर्घृष्ट्वा प्रदीयताम् ॥ १५ ॥
११ ध्वस्तोदरश्वसनकासविपद्गणानि
पिष्ट्वा लवङ्गतुलसीदलटङ्कणानि ।
संपाययेत् कफकृतज्वरकर्पणानि
बालान् प्रदर्श्य वरकाञ्चनकङ्कणानि ॥ १६ ॥
१२ स्फुटसौभाग्यस्फटिकारजोभिराक्तं स्तनं पयोमृदितैः ।
अतिकासक्लेशवते धात्री बालाय वत वितरेत् ॥ १७ ॥

बालकों को बैचेन कर देती हो तो लहसुन को जलाकर उसकी भस्म ½ रत्ती दीजिये। यह खांसी को मिटा देती है ॥ १२ ॥ स्नुही-काडको उत्कीर्ण करके उसमे मरिच के दाने रख पूर्ववत् बंद करदे। इन मरिच दानो की इसी तरह तीन दिवस पर्यंत रहने दें। फिर निकालकर, जला करके इनके कोयले बनालें। इनकी इस भस्म को एक वालभर मिश्री के साथ देवें। यह बालकों की खासी मिटा देती है। इसके ऊपर शीतल दूध पिलाना चाहिये। यह योग परम दुर्लभ अतएव सद्य फलदायी है ॥१३-१४॥ बालकों के उत्फुल्लिका विकार की तीव्रता में अन्य औषधियोंसे क्या प्रयोजन? केवल एक ही गोरोचना को माता के दूध में घिसकर पिला दीजिये ॥ १५॥ उदरविकार, श्वास, कास आदि विपद्-समूह को ध्वस्त करनेवाले, तथा कफ-जन्य-ज्वर को जर्जरित कर देनेवाले लविंग, तुलसीपत्र तथा टंकण के चूर्ण को पानी में मिलाकर, बालको को स्वर्णकंकण दिखाते हुये (अर्थात् उनका ध्यान बदलते हुए) पिला दीजिये ॥ १६ ॥ तेलिया-टंकण तथा स्फटी दोनों को फुलाकर चूर्ण बनालें। एक तण्डुलमान इस चूर्ण को माता के दूध में घिसकर, उसका प्रलेप माता के स्तनो पर कर दें। फिर लेप के शुष्क होने पर, माता अपने इन स्तनों को, कास से अत्यंत पीडित बालक को पिलाये ॥ १७ ॥

९-द्वादशकर्षमितसितासहितानि। १०-प्रात। ११-कृष्णकोकिला 'कालीकोइल' इति ख्याता वल्ली, तस्याः पत्रज स्वरसम्। सैव विष्णुकान्ताशब्देनाभिधीयते इति केचित्।

१-मरिचम्। २-उत्फुल्लिका द्वितीयगुच्छाभिहितलक्षणो रोगविशेषः। ३-वरकाञ्चनकङ्कणानि प्रदर्श्येति लोभनप्रक्रिया। ४-अग्निफुल्लकलादोपयोगि टङ्कणं, फुल्ला श्वेतस्फटिका, तयो रजोभिराक्तं लिप्तम्। ५-धात्रीदुग्धमृदितैः। मात्रा तन्दुलमाना।

१३ उष्णच्छगणभस्मान्तर्युतपीतार्कपत्रजः ।
उत्फुल्लिकाकफध्वंसी रसो माक्षिकसाक्षिकः ॥ १८ ॥
१४ घृष्ट्वा मदनबीजानि पयोभिर्लवणोत्तरैः ।
कोष्णीकृत्य कफोद्रेके वमनार्थं प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥
१५ दन्तीबीजदलाढ्यं माषं नारायणस्य चूर्णस्य ।
तुलितं सलिलैरुष्णैरुत्फुल्लीं हन्ति वान्तिरेकाभ्याम् ॥ २० ॥
१६ हिङ्गूलजातीफलजातिपत्रिकागोरोचनाभिर्जयपालकं समम् ।
विभाव्य निम्बूकरसैः कृता गुटीरोत्फुल्लिके बालगदे गदन्ति २१
१७ पुररसबद्धविशालाफलगर्भवटीं पटीयसीं दद्यात् ।
द्वित्रिपवित्रैरुष्णैर्गोमूत्रैः फुल्लिकाभेदे ॥ २२ ॥
१८ टङ्कणलवणकणोषणवन्ध्याकङ्कुष्ठहिङ्गुसंवलितः ।
शमयति दर्भं भ्राष्ट्रस्विन्नपीकास्नुहीस्वरसः ॥ २३ ॥
१९ पुटस्विन्नस्नुहीकाण्डस्वरसो रसशाणिकैः ।
गौरीकङ्कुष्ठकस्तूरीपटुगर्भोऽस्ति दर्भभित् ॥ २४ ॥
२० आर्द्रकजैः करणीया नीरैर्नेपालमरिचयोर्गुटिका ।
कफतन्तुजालगर्भं दर्भमदभ्रं भिनत्ति बालानाम् ॥ २५ ॥

कंडों की गरम गरम राख में आकडे के पीत-पत्र को स्विन्न करके रस निकाल लेवें। फिर, २-३ विन्दुमात्र इस रस मे थोडा शहद मिलाकर पिलाने से बालक की उत्फुल्लिका तथा कफ नष्ट हो जाते है ॥ १८ ॥ लवणोदक से मदन-फल के बीजो को घिसकर, कवोष्ण करके, कफाधिक्य में, वमनार्थं प्रयोग करें ॥ १९॥ शुद्ध दन्ती-बीज के एक दल को एक मापाभर नारायण चूर्ण मे मिलाकर, कवोष्ण करके लेने से, वमन तथा विरेचन पूर्वक, उत्फुल्लिका नष्ट हो जाती है ॥ २० ॥ हिंगुल, जायफल, जावित्री तथा गोरोचन एवं इन सबके एकत्र वजन के समान शुद्ध जयपाल, इनको निबू-रस की सात भावना देकर खरल करलें। इनकी सर्षप समान गुटियां, उत्फुल्लिका नामक बाल-रोग में वैद्यों द्वारा प्रशंसित हैं ॥२१॥ विशाला-फल (इन्द्रवारुणी) के गूदे को, गंधक पारद की कज्जली मे मिलाकर खरल करके वटिका बांधलें। उत्फुल्लिका विकार में प्रभाववाली इस वटी को दो तीन बार वस्त्रपूत-उष्ण-गोमूत्र के साथ दीजिये ॥ २२ ॥ भट्टी मे स्विन्न करके तुलिया थोर मे से निकाले गये स्वरस में टकण, लवण, पिप्पली, मरिच, गोरोचन, उसारे रेवन तथा हींग मिलाकर, खरल करके उपयोग में लें। इससे उत्फुल्लिका रोग शमित होता है ॥ २३ ॥ संपुट में स्विन्न करके स्नुही-कांड से निकाले गये अठारह माषा रस में, गोरोचन, कंकुष्ठ, कस्तूरी तथा सैंधव इनके चूर्ण को खरल करलें। यह उत्फुल्लिका को नष्ट करता है ॥२४॥ शुद्ध नेपाल(जयपाल) तथा मरिच को आर्द्रक रस मे खरल करके गुटिकाये बनालें। ये

१-सर्वत्रायुर्वेदे प्रसिद्धस्य। २-वैद्या इत्याक्षिप्यते। ३-वन्ध्या गोरोचना। ४-उत्फुल्लिकाया सञ्ज्ञान्तरमिदम्। ५-षट्शाणप्रमाण.। ६-गोरोचना। ७-नेपालो दन्तीबीजम्।

२१ क्षारः सौभाग्यसुभगो वासापामार्गचञ्चुजः ।
विषा¹शिवासखो घृष्टः कोष्णो दर्भगदापहः ॥ २६ ॥
२२ एलटङ्कणबाह्लीकसौवर्चलचला²रिजः ।
वृन्ताकवारिणा³ लेपो ध्रुवमाध्मानधूननः ॥ २७ ॥
२३ अधिजठरमर्धचंद्रच्छवयो दाहाः प्रतप्तया सूच्या ।
२४ हर्यक्ष⁴मांसधूपाः प्रदीपनीराजनाश्च दर्भदर्पघ्नाः ॥ २८ ॥
२५ निष्कुलीकृत्य संशुष्कः पक्वगर्जरतल्लजः ।
ससितावुद्बुदः पीतो⁵ बालातीसारनाशनः ॥ २९ ॥
२६ दूर्वेक्षुपर्णविलसद्धिमविन्दुपृक्त-
प्लोताञ्चलेन शनकैरवचारितानि ।
नश्यन्ति बालवदनान्तविसृत्वराणि
छल्लान्यपि च्छविभिरृक्षविजित्वराणि ॥ ३० ॥
२७ हृतवृन्तं वृन्ताकं सूत्रस्यूतं बधान शिशुकण्ठे ।
उत्फुल्लिकादिबहुविधदुःसाध्यमहोपसर्गशान्त्यर्थम् ॥ ३१ ॥
२८ कन्याप्रत्यावर्तिताधरदृगसपादकुडवमापरजः ।
पयसा विनीय घटितः सार्धद्वयवेष्टनः फणी तिलदृक् ॥ ३२ ॥

बालकों की कफ के तन्तुजाल से युक्त उग्र उत्फुल्लिका को विशीर्ण कर देती हैं ॥२५॥ यवक्षार, भृष्ट टंकण, अतिविषा तथा हरडे इनके चूर्ण और अरडूसा, अपामार्ग तथा एरंड पत्र के क्षार को-इनके ही एकत्र स्वरस में खरल करके कवोष्ण सेवन कराने से, दर्भरोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥ एलुआ, टंकण, हींग, सौवर्चल तथा एरंडमूल इनके चूर्ण को, वृन्ताक तथा विशाला-फल इन दोनो के रस में पीसकर पेट पर लेप करे। यह लेप आध्मान को निःसंदेह हिला देता है ॥२७॥ प्रतप्त सूचीद्वारा जठर के नीचे अर्धचन्द्राकार प्रदाहो से, रींछ के शुष्कमास की धूप देने से, तथा प्रदीप के नीराजन से, उत्फुल्लिका का दर्प नष्ट हो जाता है ॥२८॥ पकी हुई उत्तम गाजर को सुखाकर उसका चूर्ण करले। इस चूर्ण को पानी में पीसकर, उसमे पतासे मिलाकर पिलावें। यह पेय बालातिसार को नष्ट कर देता है ॥२९॥ दूर्वा, ईख, मुंजतृण, काश आदि के पत्तों पर सुशोभित ओस बिंदुओ से सिक्त वस्त्रखंड के छोर को शनैः शनैः फेरने से, बालक के मुख मे सर्वत्र फैले हुये, तारिका-गुच्छो की शोभा को हरनेवाले, चमकीले श्वेताभ छल्रक-चांदे-नष्ट हो जाते हैं ॥३०॥ डीटिया निकालकर बेंगन (वृन्ताक) को सूत्र मे पिरो बालक के गले से बांध देवें। इससे उत्फुल्लिका आदि बहुत से दुःसाध्य महान्-अनिष्ट शांत हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ उडद के सवा सोलह तोलाभर आटे से पूर्ण पात्र को किसी कन्या के चारों

१—विषाऽतिविषा, शिवा हरीतकी। २—चलाऽरेरण्ड.। ३—विशालाफलवार्यपि प्रक्षेप्यम्। ४—हर्यक्ष सिंह। ५—'जलेन घृष्ट्वा' इति शेष.। ६—अधुना किञ्चिद्दैवव्य-पाश्रय कर्मोपदिश्यते। ७—विपरीतभ्रमितम्। ८—दुग्धेन।

६ कपिशाखुमारसागरदन्तीबीजानि निम्बुपिष्टानि ।
लिप्त्वा दंशमुखोपरि वृश्चिकविद्धः सुखं शेते ॥ ५ ॥
७ दत्तं दंशमुखोपरि सलिलेन मनाग्विघृष्य कतकफलम् ।
कृतजीवितसंशयमपि विषशूकविषं विशिष्य चूषयति ॥ ६ ॥
८ कटुशक्करकन्दीकृतलेपो वृश्चिकविषं निहन्तितराम् ।
करुणाशंकरगुरुणा करुणावरुणालयेन कथितं मे ॥ ७ ॥
९ दक्षे वृश्चिकदंशश्चेद्वामे कर्णे द्रुतं भर ।
वामेऽङ्गे यदि तद्दंशो दक्षे सलवणं जलम् ॥ ८ ॥
१० सोमस्वर्णक्षीरीमूलं संनीय मोदका गुडतः ।
कुक्कुरदंष्ट्रागरलं हरन्ति पथ्याशिभिस्त्र्यहं गीर्णाः ॥ ९ ॥
११ हेमाह्वामूलहेमानि प्रायस्थमरिचान्यहो ।
शरावतक्रपीतानि घ्नन्त्यलर्कविषं भृशम् ॥ १० ॥

दूर हो जाती है ॥४॥ पीतवर्ण-शत-मल्ल(सखिया), नवसादर तथा नेपाल-बीज इनको निंबू रसमें खरल करलें। दंशमुख पर इसका लेप करके फिर अंगार-ताप से सेक करें। इससे वृश्चिक-दष्ट व्यक्ति सुखपूर्वक सोता है ॥५॥ कतक-फलको जलमे थोडा घिसकर दंशमुख पर रख दे। यह जीवन को सशय मे डाल देनेवाले शूक-विष को चूस लेता है ॥ ६ ॥ कटु-शकरकन्दी का लेप वृश्चिक-विष को नष्ट कर देता है। इस प्रयोग को मुझे करुणा के सागर गुरु करुणाशंकर ने बताया हे। कडवी शकरकदी स्वनाम प्रसिद्ध कोटर छिद्रवाली एक शाक जातीय द्रव्य है। यह आकृति मे सामान्य शकरकदी से मिलती जुलती है। इसको छाया-शुष्क कर के उपयोग मे लेवें ॥ ७ ॥ शरीर का वाम भाग यदि वृश्चिकदश से दष्ट हुवा हो तो दाहिने कान मे, और यदि दक्षिण भाग दष्ट हुआ हो तो वामकर्ण मे, शीघ्र ही सजल-लवण भर देना चाहिये ॥ ८ ॥ बावची तथा स्वर्णक्षीरी-मूल एक एक माषा भर लेवें। इनके, गुड मिलाकर, मोदक बनालें। यह एक मात्रा है। पथ्य मे रहते हुये तीन दिवस पर्यंत एक एक मात्रा लेने से श्वान-दंष्ट्रा-जन्य विष उतर जाता है ॥ ९ ॥ स्वर्णक्षीरी-मूल ग्यारह अथवा बारह

१-कपिशाखुमार· पीतशतमल्ल । २-नास्ति प्रायोऽत्र निम्बुकापेक्षा । ३-लेपानन्तरमङ्गारताप इति शेष । ४-"कडी शकर कन्दी" इति प्रसिद्धा सकोटरच्छिद्रा भवति । साच छायाशुष्का ग्राह्या । ५-सोमः लोके "बापची" इति ख्यात· । उभाभ्या पृथक् माषो ग्राह्य । इयमेकदिनमात्रा । ६-हेमाह्वामूलस्य स्वर्णक्षीरमूलस्य हेमानि मापका· । प्रायश्चैकादशधा द्वादश माषका ग्राह्या । ७-सप्तमरिचानि । ८-पादोनप्रस्थतक्रपीतानि वा । दंशदिनमारभ्य पञ्च दिनानि यावत्पानम् । ९-कौकुरं विषम् । पथ्यं तैलाम्लादिवर्जं किच द्विमासपर्यन्तं कटाहसिद्धान्नमपि वर्जयेत् । अनेनैव योगेन [illegible]मनविरेचनद्वारा विषमशेषं नि सरिष्यति ।

१२ हरिद्बनातभित्तानि रूप्यहेमानि पेषयेत् ।
गो[3]गुणं गुडमुन्मिश्र्य चतस्रः कल्पयेद्वटीः ॥ ११ ॥
गिलेत्त्रिसंध्यमेकैकां श्वदष्टः शीतसंवरैः ।
क्षरन्ति जन्तवो मूत्रे यावत्तावदयं विधिः ॥ १२ ॥

१३ नासानिर्याससमेलनाद्दंशोपरि पुनः पुनः ।
[6]द्रुणादिनैककीटानां विषं वर्तरति द्रुतम् ॥ १३ ॥

१४ सहस्रपुष्पवृक्षस्य पत्रकल्कविघर्षणात् ।
व[9]रटीदंशदाहार्तिर्दुःसाध्यापि प्रणश्यति ॥ १४ ॥

१५ लूतां हन्ति घुणोत्कीर्णवेणुरेणुप्रगुण्डनम् ।
प्रतिष्ठामिव लोकस्य विटगोष्ठीनिषेवणम् ॥ १५ ॥

१६ कवलः को[10]ष्णकूरस्य प्रत्यहं नूतनो धृतः ।
सिंहदंष्ट्राविषं हन्ति जाग्रतां नात्र संशयः ॥ १६ ॥

माषा तथा सात मरिच इनके चूर्ण को बत्तीस तोला तक्र के साथ पीने से श्वान का उग्र विष भी शांत हो जाता है। दश दिवस से लेकर पांच दिवस तक यह पेय लेना चाहिये। तैल अम्लादि अपथ्य है, दो मासपर्यंत कटाहसिद्ध द्रव्य वर्ज्य है। इसके प्रयोग से वमन विरेचनद्वारा सपूर्ण विष बाहर निकल आता है ॥१०॥ हरी बनात के टुकडे बारह माषा लेकर तिगुने गुड मे मिलाकर चार वटिकायें बना लें। फिर, दिवस के तीनो सधिकाल मे एक एक वटिका को पानी के साथ, श्वान दष्ट व्यक्ति निगल जाये। जब तक मूत्र-द्वारा जन्तुओ का निकलना वद न हो जाये तब तक यह प्रयोग चालू रखना चाहिये। दसवें श्लोक के अनुवाद मे उल्लिखित पथ्य का पालन करना चाहिये ॥ ११–१२ ॥ नासिका-मल (श्लेष्म) को दष्ट-स्थान पर पुन. पुन. मलने से वृश्चिकादि विविध क्षुद्र कीटों का विष शीघ्र उतर जाता है, दूर हो जाता है ॥ १३ ॥ गुल हजारा वृक्ष के पत्र कल्क को दष्ट स्थान पर मलने से मक्षिका, भ्रमरी आदि के दश से उत्पन्न दाह का दु साध्य दु ख भी दूर हो जाता है ॥ १४ ॥ घुण लग जाने के कारण बांस मे से खिरी हुई धूलि को दशपर घिसने से लूता-विष, भडवो की सगति करने से लोक प्रतिष्ठा की तरह, नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥ स्विन्न चांवल के प्रतिदिन नूतन कवोष्ण कवल को लगाने से तथा जागते रहने से सिह-दष्ट्रा का विष नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

१–"हरीबनात" इति ख्यातायाः खण्डानि। २–द्वादश माषाणि। ३–त्रिगुणम्। ४–अत्रापि पथ्य पूर्वोक्तमेव। ५–नासानिर्यासो नासामल· श्लेष्मरूप। ६–वृश्चिकादि-विविध-क्षुद्रविशेषाणाम्। ७–भागुरिमतेनाकारलोप। ८–'हजारा' इति ख्यातस्य। ९–वरटी मक्षिका भ्रमरी वा। १०–कवोष्णभक्तस्य।

१७ शुण्ठ्यञ्जिताम्बुसंघृष्टा धत्तूरमदहारिणी ।
१८ वृन्ताकपर्णनिर्यूहस्तद्वदेव समर्थितः ॥ १७ ॥

१९ अतिमात्रं फणिफेने भुक्ते शस्ता वमिः शिलया ।
२० किं च शुकवीजपुञ्जं फणिफेनं मृत्तिकीकुरुते ॥ १८ ॥

२१ अष्टांशसूर्यचरणत्वचि नल्वणेऽपा-
मावर्तनेन खलु तस्थुषि पादशेषे ।
सन्तानिका तरति या विषमुष्टिकानि
प्रक्षिप्य तत्र वटिका फणिफेनमुक्त्यै ॥ १९ ॥

२२ दूर्वाङ्कुरघटितवटी शनकैः संचर्व्य पीतरसा ।
भङ्गामदभङ्गाय प्रकल्प्यते वान्तिमुद्भाव्य ॥ २० ॥

शुण्ठी को पानी मे घिसकर अंजन करने से धत्तूर-मद दूर होता है। वृन्ताकपत्र-क्वाथ के अंजन से भी यही लाभ होता है ॥ १७ ॥ अतिमात्रा में अफीम खा जानेवाले को मन शिला द्वारा वमन कराना प्रशस्त है। अथवा सूवा के बीज अफीम को मिट्टी तुल्य बना देते हैं ॥ १८ ॥ एक मण पानी में-उससे आठवा भाग अर्क-मूल डालकर-खूब उकालें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर उतारकर छानलें। जब क्वाथ स्वाग शीतल हो जाये तब उसपर जमी हुई थर को निकाल उसमें शुद्ध कुचले का थोडासा चूर्ण मिला अच्छी तरह खरल करके वटिकायें बनालें। इनके सेवन से अफीम खाने की आदत से मुक्ति मिल जाती है ॥ १९ ॥ दूर्वा के अंकुरों को पीस कर वटी बनालें। इस वटीका धीरे धीरे चबाकर, रस पीये, इससे वान्तिपूर्वक भांग का नशा दूर हो जाता है ॥ २० ॥

१—वृन्ताकपत्रक्काथ । २—मन शिलया । ३—'सुवां' इति ख्यातस्य शतपुष्पा-भेदस्य बीजपुञ्जम् । ४—यस्य फणिफेनमौचित्यं गमितं तस्य तत्त्यागोपायोऽयम् । मुनिनाप्युक्तं "उचितादहिताद् धीमान् क्रमशो विरमेन्नर । हित क्रमेण सेवेत क्रमश्चात्रोपदिश्यते ॥ प्रक्षेपापचये ताभ्यां क्रम पादांशिको भवेत् । एकान्तरं ततश्चोर्ध्वं द्व्यन्तर त्र्यन्तर तथा" इति । अष्टांशा सूर्यचरणस्यार्कमूलस्य त्वग्वल्कल यस्मिन्निति नल्वणविशेषणम् । ५—क्वथनेन । ६—'कुचिला' इति प्रसिद्धानि । किं चास्मिंस्तन्त्रे विषमुष्टिकशब्देन सर्वत्र 'कुचिला' इति ख्यातस्यैव ग्रहणमिति सकेत । ७—स्पष्टमिदम् । यशश्छटा मे परित-प्रसर्पेत् तृप्येद्धनं वीक्ष्य घनं मनो मे । एव सखे ! वाञ्छसि तत् प्रयच्छ स्वच्छन्दत कञ्चिदपि प्रयोगम् ॥ यः प्राचा भिषजां विवेद महितास्त्विलोपि ता सहिता साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभित स्वच्छन्दवाक् छन्दसि ॥ लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रतिष्ठा वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो वितवान् गुच्छं चतुर्थं परम् ॥

३ रजनीहिङ्गुलगर्भां प्रज्वाल्य स्थालिकापुटे पटवर्तिम् ।
निष्कासयेद्विधिज्ञः सूतेन्द्रं सर्वयोगार्हम् ॥ ५ ॥
४ उपरिन्युब्जशरावे घटे तलोत्कीर्णजालविशदनिले ।
वेष्टितचतुर्गुणपटं प्रदीप्य दरदं गृहाण रसमच्छम् ॥ ६ ॥

अथ पारदशोधनम् ।

पारदं दरदाकृष्टं संपूज्य शुभवासरे ।
गुणाधान प्रकुर्वीत विधानं तस्य वक्ष्यते ॥ ७ ॥

का ठीकरा ढकदें । इस प्रकार शुद्ध पारद को निकालकर, अम्लादि द्रव्यो से खरल करके इसका औषधादि निर्माण मे उपयोग करें ॥ ४ ॥ हरिद्रा तथा हिंगुल को वस्त्रपट्टियो मे अच्छी तरह लपेटकर, एक पात्र मे रख प्रज्वलित करदें । फिर, इसमे से विधिपूर्वक पारद निकाल लेवें । यह पारद सभी प्रयोगो मे उपयोगी हे ॥ ५ ॥ हिंगुल को चार-तह वाले वस्त्रखड मे लपेट लेवे । अब, हिंगुल-गर्भित इस वस्त्रखड के गोलक को अग्नि लगाकर एक मिट्टी के घट मे स्थापित कर देवें । घट के तल-भाग मे, हवा अच्छी तरह प्रवेश कर सके, इसलिये वहुत से छोटे छोटे छिद्र पहिले से ही करदें तथा इसी घट के मुख-भाग पर एक सकोरा औंधा ढक देवें । इस घट के अन्दर अग्नि-प्रज्वलित-वस्त्र-गोलक मे से, सकोरे के भीतरी तल-भाग मे उडकर एकत्रित हुये शुद्ध-पारद को सावधानी पूर्वक निकाल लें ॥ ६ ॥

पारद-शोधन

(शास्त्रो मे पारद के अठारहविध सस्कारों का उल्लेख मिलता है । इनमे से प्रथम आठ सस्कारों द्वारा अर्थात् स्वेदन, मर्दन, मूर्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन तथा दीपनद्वारा पारदगत आठ प्रकार के दोषो का अर्थात् नाग, वग, अग्नि, मल, चपल, विष, गिरि एव असह्याग्नि दोषो का परिहार किया जाता है । इन सस्कारों को प्राप्त-पारद अजरामरत्वरूप देहसिद्धि देता है । अनुवासन, जारण, ग्रास, चारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, रजन, सारण, क्रामण, और वेधन-रूप अवशिष्ट दस-सस्कारो से

१–पूर्वोक्तविध्यन्यतमेन विद्याधरडमर्वादियन्त्रद्वारा वा हिङ्गुलत पृथक्कृतम् । तथा च रसशास्त्रे–"विद्याधराख्ययन्त्रस्थादार्द्रकद्रावमर्दितात् । समाकृष्टा रसो योऽसौ हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते" ॥ अत्र विद्याधरयन्त्र इत्युपलक्षणम् । विद्याधरयन्त्रस्वरूप च—"यन्त्र विद्याधर ज्ञेय स्थालीद्वितयसपुटात्" इत्यादिर्बोध्यम् । २–"अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य । सर्वेभ्य सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः" इति मन्त्रेण पूजनं, रसाङ्कुशारसभैरवजापश्च, ततो वटुककुमारिकाभोजनमिति कृत्वेत्यर्थ । अन्यत्राप्युक्त—"मन्त्रयन्त्ररसपादुकाञ्जन स्वर्णनागभुवनादिसिद्धय । तं श्रयन्ति पुरुषं महेश्वरो येन दिव्यतपसा हि तोषित ॥" इति । ३–दरदाकृष्टस्य मलापकर्षण नास्ति शुद्धत्वादिति तदुपेक्ष्य गुणाधानमित्यभिधानम् ।

शुद्ध पारद स्वर्णरूपी लोह-सिद्धि अर्पण करता है। दोलायंत्र मे, क्षार एवं अम्लद्रव्यों से पारद का उत्क्वथन 'स्वेदन' कहलाता है। यह पारदगत मलको शिथिल कर देता है। औषधीय चूर्ण एव रसोद्वारा खरल मे, मर्दक से, पारद को घोटना 'मर्दन' कहाता है। इसके द्वारा पारद बहिर्मल से मुक्त हो जाता है। मर्दन सस्कारोक्त औषधीय द्रव्यो से पारद को 'नष्ट-पिष्ट' बनाना 'मूर्छन' सस्कार है। इससे पारद के बहिर्विषादि दोष की निवृत्ति अवश्य होती है तथापि पारद मे नष्ट-पिष्टत्व रूप मूर्छाव्यापत्ति आ जाती है। पारद की इस मूर्छावस्था को हटाकर उसको पूर्वावस्था में लाने के लिये, उसे पुन. सचेतन करने के लिये, कांजिका आदि अम्ल द्रव्यो से पारद का प्रक्षालन 'उत्थापन' सस्कार कहलाता है। तदनन्तर, ऊर्ध्व, अध. तथा तिर्यक् पातन द्वारा पारद का 'पातन' सस्कार किया जाता है। इस तरह के त्रिविध पातनद्वारा अपने कृत्रिम (योगिक) दोषो से मुक्त पारद कदर्थित तथा निर्वीर्य बन जाता है। पारद की इस पंढत्वनिवृत्ति के लिये आचरित सस्कार 'बोधन' कहलाता है। षोडशवर्षीया अरुण-युवति के आर्तव आदि में पारद को निमग्न करके तीन दिवसपर्यंत भूगर्भ में रहने देने से पारद का बोधनसंस्कार सपादित किया जाता है-'अनेन सूतराजोऽय पण्ढभाव विमुंचति'। बोधनसस्कार से प्रबलवीर्यसपन्न पारद प्रदीप्त हो उठता है। अत उसे वश में करने के लिये, उसकी चपलत्व निवृत्ति के लिये, सर्पाक्षी, अम्लिका, भृंगराज, धत्तूरा आदि शास्त्रोक्त औषधीय द्रव्यों के रस से एक दिन पर्यंत स्वेदन करने से पारद स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। पारद का यह 'नियमन' सस्कार है। इस तरह नियमित पारद अग्निसह बन जाता है। अग्नितप्त होने पर भी उडता नहीं, तथा निर्धूम रहता है। 'नियामतो न प्रयाति तथा धूमगतिं प्रिये!' तदनन्तर, धातु-पाषाण-मूलादि द्रव्यो से परिपूर्ण घट के मध्य में स्थापित पारद का, तीन दिवस पर्यंत स्वेदनद्वारा, 'दीपन' सस्कार किया जाता है। दीपन-सस्कार से पारद में तीव्रत्व, वेगकारित्व, व्यापकत्व, बुभुक्षितत्व तथा निर्मलत्व गुणो की उत्पत्ति होती है। दीपित पारद को, जंभीरादि के रस से पूर्ण-मृत्पात्र मे स्थापित करके-एक दिनभर धूप में रखकर 'अनुवासन' सस्कार निष्पन्न किया जाता है। इस तरह अनुवासनान्त नव सस्कारों से सपन्न रस-राज पारद वह्नि-सम-प्रभाव से उद्दीप्त हो उठता है। तदनन्तर, पारद का 'जारण' संस्कार करना चाहिये। ऊर्ध्व-पातन-यत्रादिद्वारा पातन के विना तथा वस्त्रादि से गालनविना, अभ्रक-स्वर्णादि के भक्षणोपरांत भी पारद की स्व-स्वरूप में अवस्थिति 'जारणा' कहलाती है। 'जारणा हि नाम पातनगालनव्यतिरेकेण घनहेमादिग्रासपूर्वक पूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वम्' अर्थात् जारण-सस्कार से रहित भी पारद स्वर्णादि का भक्षण करता है, किंतु वस्त्र आदि से परिगालनद्वारा स्वर्ण तथा पारद पृथक् किये जा सकते हैं। इसी तरह, कज्जली-गत पारद आपातत गधक में विलीन सा हो जाता है किंतु, ऊर्ध्वयंत्रद्वारा वह पृथक् निकाला जा सकता है। तदुपरांत, उपरोक्त दोनो अवस्थाओ मे पारद का वजन भी बढ जाता है, किंतु जारण-सस्कार-

त्रिपर्णिका मृगत्वुरी चाङ्गेरी मेषशृङ्गिका ।
भृङ्गराजः शिखिशिखा काकमाची कुमारिका ॥ ८ ॥
अर्कः सेहुण्डधत्तूरौ कुम्भी मण्डूकपर्णिका ।
धामार्गवो बला शिग्रुर्लशुनं वह्निमूलके ॥ ९ ॥

ग्रास-पारद कवलीगत होने पर अथवा स्वर्णादि ग्रास कर लेने पर न तो हाथ में चढ़ता है, न गालन पातनद्वारा गंधक-स्वर्णादि से पृथक् किया जा सकता है, अर्थात् कवलीगत अथवा स्वर्णादि-भुक्त-जारित-पारद गालन-पातन किये जाने पर भी, पूर्णरसायन-स्वरूप-में ही रहता है। इस प्रकार का ग्रास पारद अद्भुत-शक्ति समन्वित होता है। इस तरह से सिद्ध किये गये पारदसेवन से, 'कायाकल्पीकरण' अर्थात् रसायन-सेवन योग्य-परिष्कृतदेह से युक्त व्यक्ति ही, अधिकारी कहे गये हैं, 'घनहेमादिजीर्णस्य क्रामणीकरणात्मनैव शरीरिणां भक्षणेऽधिकारः'।

प्रस्तुतप्रकरण में पारद के जारणादि संस्कारों की विधि बताई गई है। शास्त्रों का आधार लेकर अध्ययनात्मक व्याख्या कर देना, एक बात है। किंतु, शास्त्रोक्त विधान को क्रियात्मक रूप से प्रत्यक्ष करके, प्रत्यक्षीकृत उसी ज्ञान को, उसके मौलिक स्वरूप में, अपने अनुभव का पुट लगाकर प्रस्तुत करने से, शास्त्रों के प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि होती है। और इसी में उस ज्ञान को प्रस्तुत करने वाला अपनी कृतकृत्यता समझता है। आत्मज्ञान से साक्षात् करने वाले, ब्रह्मसूत्र के व्याख्याता श्री शंकराचार्य, वेदव्यास से कदापि न्यून नहीं हैं। आयुर्वेदविज्ञान-वारिधि स्व. श्री भट्टजी - नागार्जुनादि रस वैज्ञानिकों की समकक्षा के उद्भट विद्वान थे। क्योंकि, बीसवीं-शताब्दि में सर्व प्रथम यही एक ऐसा रस-विद्या-वैज्ञानिक रहा, जिसने रस-ज्ञान के विषय में अपना यह परिचय दिया 'सूते गंधकजारणावधिकृता येन क्रिया नैकशः.')।

हिंगुल में से निकाले गये पारद की शुभ दिवस में पूजा करके उसमें गुणाधान करना चाहिये। जिसकी विधि इस तरह है। (हिंगुल में से निकाला गया पारद शुद्ध होता है। अतः उसके मलापकर्षण की आवश्यकता नहीं रहती) ॥ ७ ॥

तिपत्ति, मृगत्तुरी, अम्ललोणिका, मेषशृंगी, भांगरा, मयूरशिखा, काकमाची, गवारपाठा, आकडा, स्नुही, धत्तूरा, दूधी, मण्डूकपर्णी, कोशातकी, बला, सहजना, लशुन, चित्रक, मूली, कचनार, शतावरी, निंब, अजमोदा, अजवायन, खुरासानी अजवाइन, त्रिकटु, त्रिफला, लाजवंती, मछेछी, कण्टकारी तथा अम्लवर्ग (अम्लवेत, जंभीर, निंबु, बीजपूर, चांगेरी, चणकाम्ल, इमली, कोल, दाडिम, अम्बष्ठा, वृक्षाम्ल, नारंगी, रसपत्रिका, करमर्द आदि) इन सभी औषधीय द्रव्यों के रस से पारद का तीन-दिवस-पर्यंत दोलायन्त्र से स्वेदन करके फिर, तीन दिवस पर्यंत उसका मर्दन करें। फिर, अतसी, मालकांगनी, दंतीबीज, भिलावा, राई, कालाजीरा तथा अजमोदा इन

१–'तिपत्ती' इति ख्याता। २–अम्ललोणिका। ३–मयूरशिखानामौषधि प्रायः पर्वतभूमौ प्ररोहति। ४–ब्राह्मीभेद।

काञ्चनारो वरी निम्बोऽजमोदा कारवीद्वयम् ।
त्रिकटु त्रिफला लज्जा मत्स्याक्षी कण्टकारिका ॥ १० ॥
अम्लवर्गो रसैरेषां स्वेदयेन्मर्दयेत् त्र्यहम् ।
उमा ज्योतिष्मती दन्तीवीजभल्लातराजिकाः ॥ ११ ॥
कारवी दीप्यकं चेति तैले प्रत्येकशः पचेत् ।
गोमूत्रे हिङ्गुपयसि काञ्जिके तैजसे द्रवे ॥ १२ ॥
सूतं निबध्य दोलायां मासं मासं पृथक् पचेत् ।
विषैरुपविषैः शस्तं मर्दनं तप्तखल्वके ॥ १३ ॥

प्रत्येक के तैल से पारद को तीन तीन दिवस पर्यंत पकावें । फिर, तीन-तह वाले वस्त्र में भूर्जपत्र रखकर, उसमे पारद स्थापित करके पोटली बाध लें, इस पोटली को दोलायंत्र में लटका कर, तदन्तर्गत पारद को, गोमूत्र मे, हींग के पानी में, काञ्जिका में तथा तेजो जल में पृथक् पृथक् एक एक मासपर्यंत पकावें । फिर, विषों तथा उपविषोंद्वारा तप्त-खल्व में, सातदिवस तक पारद का मर्दन करें । विषोद्वारा मर्दन से पारद में, पक्षच्छेदपूर्वक वह्नि तथा मुख उत्पन्न होते है । तदनन्तर, तेजोजल से क्षालन तथा उत्क्वथनद्वारा पारद का प्रतिस्वेदन मर्दन कर लें । तेजोजल का निर्माण छहों प्रकार के लवण तथा आठों प्रकार के क्षार से किया जाता है । इन लवणो तथा क्षारों को एकत्र लेकर उनको लघुपुट (वाराह, कौक्कुट आदि) की आंच मे फूक दे । कपिलवर्ण की भूमि के जल को क्षारजल कहते हैं । इस क्षार जल को, प्रथम थोडा, उकाल लेवे, जब पक कर गरम हो जाये तब उसमें उपरोक्त लवण तथा क्षार भस्म मिलाकर तीन दिन धूप में रखदें । पात्र तल में, जब भस्म बैठ जाये तब ऊपर का स्वच्छ जल नितार लेवें । इस तरह, अनेकवार नितारने से, अंत में स्वच्छ, घन-द्रव्यरहित तैजस् जल को ग्रहण

१–यवानी पारसीकयवानीति द्वयम् । २–नमस्कारी लोके लज्जालुरिति लप्यते । ३–मछेछीति प्रसिद्धा । अत्रानुक्तामपि प्रसारिणीं प्रक्षिपन्ति वैद्या । ४–“अम्लवेतसजम्बीरनिम्बूकबीजपूरकम् । चाङ्गेरी चणकाम्लं च अम्लीका कोलदाडिमम् ॥ अम्बष्ठा तिन्तिडीकं च नारङ्गं रसपत्रिका । करमर्दं तथा चान्यदम्लवर्गं प्रकीर्तित ॥” इति रसशास्त्रोक्तः । ५–दोलायन्त्रेणेति शेष । ६–अतसी । ७–मालकाङ्गुनीति ख्याता । ८–इतीत्येषाम् । ९–त्र्यहमिति पूर्वोक्तमत्रापि योजनीयम् । १०–“निबद्धमौषधै. सूतं भूर्जे तत्त्रिगुणाम्बरे । रसपोटलिका काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि ॥ संधानपूर्णकुम्भान्त स्वावलम्बनसस्थिताम् । अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥ दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्य तदेव हि ॥” इत्युक्तस्वरूपायाम् । ११–अम्लवर्गेण सहेति शेष । विषाण्युपविषाणि तन्त्रान्तरे प्रोक्तानि । यथा–“शृङ्गिकं कालकूटं च वत्सनाभं सकृत्रिमम् । पित्तं च विषवर्गोऽयं प्रवर परिकीर्तित ॥” इति । तथा “लाङ्गली विषमुष्टिश्च करवीर जपा तथा । तिलक. कनकोऽर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मक ॥” इति । एभि. सह मर्दनाद्धि जायते पारदस्य वह्नि पक्षच्छेदो मुखं च, यथोक्तं–“विषोपविषकैर्मर्द्य प्रत्येकं दिनसप्तकम् । तेनास्य जायते वह्नि पक्षच्छेदो मुखं

तेजोऽद्भिः क्षालनोत्क्काथौ प्रतिस्वेदनमर्दनम् ॥
लवणक्षारवर्गं प्राक् कनीयसि पुटे पचेत् ॥ १४ ॥
शृतोष्णे क्षारसलिले क्षिप्त्वा घर्मे त्र्यहं न्यसेत् ।
परिस्राव्य बहून् वारान् गृह्णीयात्तैजसं द्रवम् ॥ १५ ॥
प्रतिसंस्कारममुना पारदोत्क्कथनं स्मृतम् ।
सृष्ट्यम्बुजप्रभृतिषु विनिमज्ज्याधिपात्रकम् ॥ १६ ॥
सप्ताहं पूरयेद्गर्ते राजहस्तप्रमाणतः ।
क्षिप्त्वाऽम्लैः सैन्धवशिलागर्ते नियमनं चरेत् ॥ १७ ॥
मातुलुङ्गरसे न्यस्य घर्मान्तरनुवासयेत् ।
वालुकाकूर्मकुधरगर्भाद्यन्यतमे दृढे ।
यन्त्रे दशांशगरलं षड्गुणं जारयेद्बलिम् ॥ १८ ॥

करके काचकूपी मे भर दें। इस तैजस्-द्रवद्वारा पारद का प्रति संस्कार, 'उत्क्कथन' कहलाता है। तदनन्तर, षोडश वर्षीया अरुण युवति के आर्तव आदि से युक्त-घट में पारद को स्थापित करके, उसे तीस-अंगुल गहरे भू-गर्त में, एक सप्ताह पर्यंत गाड़ कर रख दें। पारद का यह 'बोधन' सस्कार कहलाता है। फिर, सैंधव-शिलागर्त में पारद को पधराकर, अम्लवर्गोक्त औषधीय द्रव्य-रसों से पारद का 'नियमन' सस्कार सपादित करना चाहिये। तदनन्तर, मातुलुग-रस में पारद को डालकर, सूर्य-ताप में स्थापित करके उसका 'अनुवासन' सस्कार करलें। अब, इस तरह सुसंस्कृत पारद को वालुका, कच्छप, भूधर अथवा गर्भ आदि किसी एक यंत्र मे स्थापित करें। फिर, पारद से षड्गुण अधिक, अत्यल्प मात्रा मे गरल-मिश्रित गंधक को लेवें-इस गंधक को, उपरोक्त पारद मे, थोडी थोडी मात्रा से प्रक्षिप्त करते हुये, जारित करें ॥ ८-१८ ॥

तथा ॥" इति। तप्तखल्वलक्षणं च स्मरणीयम्। यथा-"अजाशकृत्तुषाग्निं च भूगर्भे त्रितयं क्षिपेत्। तस्योपरि स्थितं खल्व तप्तखल्वमिति स्मृतम् ॥" इति। तथाऽन्यत्र-"लौहो नवाङ्गुल खल्वो निम्नत्वे च षडङ्गुल। मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्वाभिधो ह्ययम् ॥ कृत्वा खल्वाकृतिं चुल्हीमङ्गारै परिपूरिताम्। तस्या निवेशितं खल्व पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥" इति।

१-समनन्तरमेवाभिधीयमानविधानाभि। २-"लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं विडम्। सौवर्चल रोमकं च चुल्हिकालवण तथा ॥ क्षारत्रयं समाख्यातं यवजस्वर्जिटङ्कणम्। पलाशमुष्ककक्षारो यवक्षार सुवर्चिका ॥ तिलनालोद्भव क्षार सप्रोक्तं क्षारपञ्चकम् ॥" इत्यादि तन्त्रान्तरोक्तम्। ३-वाराहकौकुटाद्यन्यतमे। ४-कपिलवर्णभूमिभवं जलं तादृशं भवति। यदुक्तं चरके-"श्वेते कषाय भवति पाण्डुरे स्यात्तु तिक्तकम्। कपिले क्षारसंसृष्ट-मूषरे लवणान्वितम् ॥ कटु पर्वतविस्रावे मधुर कृष्णमृत्तिके। एतत्साड्गुण्यमाख्यातं महीस्थस्य जलस्य हि ॥" इति। ५-सस्कारस्यास्य बोधनमिति सज्ञा शास्त्रे। सृष्ट्यम्बुज चार्तवमिति सकेत। ६-विश्वामित्रकपालकाचकूप्याद्यन्यतमपात्रे। ७-"बोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये। क्रियते पारदे स्वेद प्रोक्तं नियमनं हि तत् "इत्युक्तरूपम्। ८-अनुवासनमिदम्। ९-विहितपूर्वोक्तविधानस्य पारदस्य यथा गन्धकजारणं विधेय तद्दर्शयन्ति-वालु-

सद्भाण्डे धूलिगर्भे चषकमतिभृतं गन्धचूर्णैर्निदध्यात्।
स्फीतां लौही त्रिपादीं तदुपरि चषकालङ्कृतां न्यस्य विद्वान्।
तत्र प्रक्षिप्य सूतं त्रिगुणमथ मृदाऽऽयोज्य भाण्डे पिधानं
दत्ते वह्नौ पिधानात् पतितमिति रसे जारयेद्गन्धधूमम्॥ १९॥
तेजोऽद्भिर्वक्ष्यमाणाभिः क्थनं प्रतिजारणम्।
उपादानानि तासां तु क्षाराः सर्वे पटूनि च॥ २०॥

प्रस्तुतश्लोक मे गर्भ-यंत्रद्वारा पारद की गन्धक-धूम से, जारण-विधि प्रदर्शित की गयी है। यह स-गन्ध-अन्तर्धूम मूर्च्छना का प्रकार है-इस प्रक्रिया को परम सावधानतया संपादित करें। एक विशाल-घट लेकर उसमे, उसके मध्यभाग से कुछ ऊपर तक, धूलि भरदे। इस धूलि-गर्भ घट के भीतर एक चषक स्थापित करें-चषक को आमुख गधक-चूर्ण से लवालव भरदें। इस चषक के ऊपर एक ऊची लोहमयी त्रिपादी तथा त्रिपादी पर, गंधक से त्रिगुणित पारद-पूर्ण चषक स्थापित करें। अब, घट के मुख को एक ढक्कन से बंध करके चारो ओर कपडमिट्टी करदें। घट के नीचे अग्नि-प्रज्वलित करें। ढक्कन के मुख से टकरा कर, पारदपर पतित गंधकीय धूमद्वारा 'जारण' संस्कार सपादित करलें॥ १९॥

जिन तैजस् जलों से पारद का क्थन तथा प्रतिजारण करने में आता है, उनके

केत्यादि। षड्गुणगन्धकजीर्णस्य रसराजस्य रोगमात्रहन्तृत्वमुपजायते "षड्गुणे गन्धके जीर्णे रसो भवति रोगहा। अवश्यमित्युवाचेद देवीं श्रीभैरव स्वयम्" इत्युक्ते। वालुकायन्त्र-स्वरूपं च यथा-"भाण्डे वितस्तिगम्भीरे मध्ये निहितकूपिके। कूपिकाकण्ठपर्यन्तं वालुका-भिश्च पूरिते॥ भेषजं कूपिकासस्थं वह्निना यत्र पच्यते। वालुकायन्त्रमेतद्धि यन्त्रं तत्र बुधैः स्मृतम्"। तथा कच्छपयन्त्रलक्षणमपि यथा-"जलपूर्णपात्रमध्ये दत्त्वा वै खर्परं सुविस्ती-र्णम्। तदुपरि विडमध्यगत स्थाप्य सूत कृत कोष्ठ्याम्॥ लघुलोहकटोरिकया कृतपट-मृत्सधिलेपयाऽऽच्छाद्य। पूर्णतरैर्घटखर्परमध्येऽङ्गारैश्च खदिरकोलमयै॥ स्वेदनतो मर्दनत कच्छपयन्त्रस्थितो रसो जरति"। तथैव च भूधराह्वयं यन्त्रमुक्तं—"वालुकागूढसर्वाङ्गां गर्तें मूषां रसान्विताम्। दीप्तोत्पलैः सन्तृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम्" इति। गर्भयन्त्रस्वरूपं च समनन्तरं स्वयमेवोच्यमानम्। आदिशब्दादिष्टिकायन्त्रादि वोध्यम्। यदुक्तमन्यत्र-"विधाय वर्तुलं गर्तं मल्लमत्र निधाय च। विनिधायेष्टिका तत्र मध्यगर्तवर्ती शुभाम्॥ गर्तस्य परितः कुर्यात् पालिकामङ्गुलोच्छ्र्याम्। गर्ते सूतं विनिक्षिप्य गर्तास्ये वदनं क्षिपेत्॥ निक्षिपेद्गन्धकं तत्र मल्लेनास्यं निरुध्य च। मल्लपालिकयोर्मध्यं मृदा सम्यङ्निरुध्य च॥ वनोत्पले पुट देयं कपोताख्यं न चाधिकम्॥ इष्टिकायन्त्रमेतत्स्याद्गन्धकं तेन जारयेत्" इत्यादि। गरलप्रक्षेप-श्चात्र सम्यक्तया गन्धकजारणार्थं गुणाधानार्थं च। षड्गुणबलिश्च क्रमेण देयो न त्वेकदैव, समं समं वलिं दत्त्वा षट्कृत्वो जारयेदित्यर्थ।

१-कटोरीमित्यनर्थान्तरम्। तथा च रसरत्नसमुच्चये "चषकं च कटोरी च वाटिका खारिका तथा। कचोली ग्राहिका चेति नामान्येकार्थकानि हि"। २-तेजोपाम्।

किंचिच्छिदाद्य संगाल्य प्रत्येकं सत्त्वमुद्धरेत् ।
सुधाखण्डानि पादोनं स्वर्जिकासत्त्वमुत्तमम् ॥ २१ ॥
ततोऽर्धमर्कजं सत्त्वं तदर्धान्यपराण्यपि ।
सत्त्वजातमतिक्षारे कूपक्षीरेऽभिगालयेत् ॥ २२ ॥
अष्टाहमातपे धृत्वा तीक्ष्णतां तत्र साधयेत् ।
तेजोजलं शनैर्नीत्वा पुनस्तत्र जलं क्षिपेत् ॥ २३ ॥
न्यस्यातपे पुनरपि द्रवं पूर्ववदुद्धरेत् ।
द्वित्रिवारमिति प्राज्ञः कृत्वा तद्वक्कसं त्यजेत् ॥ २४ ॥
तेजोजलं तदेकध्यं विस्राव्य पटतोऽसकृत् ।
मुक्ताच्छं काचगं रक्षेत् सौरसागरसिद्धये ॥ २५ ॥
कलमं सौरमादाय यथाविधि विशोधितम् ।
तेजोजलैः पचेत्तावद्यावद्वह्निक्षमं भवेत् ॥ २६ ॥

निर्माण की सविस्तर विधि प्रस्तुत श्लोकों से बताई जाती है। तैजस् जलों का निर्माण सभी प्रकार के क्षार तथा लवणों के सत्वों से किया जाता है। (लवण छह प्रकार के कहे गये है-सामुद्र, सैंधव, विड, सौवर्चल, रोमक तथा पांशुज, क्षार आठ प्रकार के कहे गये है-स्नुही, पलाश, अपामार्ग, चिंचा, अर्क, तिलनाल, स्वर्जिका तथा यवक्षार। सभी प्रकार के क्षारों मे टकण का भी ग्रहण किया जाना चाहिये।) प्रथम, प्रत्येक क्षार को तथा प्रत्येक लवण को किंचित् गरम करके वस्त्रपूत करलें। फिर, सत्व निर्माणविधि से प्रत्येक में से अलग अलग सत्व निकाल लेवें। अब, एक भाग सुधाखड, इससे एक चतुर्थांश उत्तम सर्जिकाक्षार का सत्व, इससे अर्धमात्रा में अर्कक्षार का सत्व तथा इससे अर्ध मात्रा में, उपरोक्त विधि से निर्मित लवण और क्षार के सत्वों को लेवें। इस सत्व-समूह को कूपजल से छानकर आठ दिवसपर्यंत कडी धूप में रहने दें। तदनन्तर, अत्यत सावधानी से, पात्र जरा भी हिलने न पाये इस तरह से, धीरे धीरे ऊपर से तैजस्-जल को नितारलें। इस नितरे हुये तेजोजल में पुन कूपजल मिलाकर पुनः आठ दिन तक धूप में रखदें। नवमे दिन, पात्र हिलने न पाये इस तरह, पूर्ववत्, ऊपर का द्रव-भाग नितारलें। इस तरह दो तीन बार करके, द्रवभाग को निकालकर, तल-लग्न किट्ट को अलग फैंक दें। अब, इस तरह प्राप्त-तेजो जल को कई बार वस्त्रपूत करें। परिणामत, मोती के समान स्वच्छ एव उज्ज्वल तथा वह्निक्षमत्व सिद्धि से युक्त इस तेजोजल को, काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें ॥ २०-२५ ॥

कलमी सोरे को वह्नि-क्षम बनाने की विधि—उत्तम जाति के कलमी सोरे का यथाविधि शोधन करके, उसे तेजो-जल में, वह्निक्षम न बन जाये तब तक उकालते ही

१—सुधाखण्डापेक्षयेत्यर्थं । २—पूर्वोक्तविधिविहितानि लवणक्षारसत्त्वानि । ३—"नीरक्षीराम्बु शम्बरम्" इत्यभिधानम्। ४—निष्कम्पमित्यर्थं । ५—वह्निक्षमत्वरूपा हि तत्सिद्धि । ६—सौरविशेषणमिदं, तस्य चोत्कृष्टजातेरिय संज्ञा। ७—पूर्वोक्ते ।

कूप्यां निधाय तं सिद्धं मुखं कूप्याः पिधाय च
गर्ते हयशकृद्गर्भे निदधीत त्रिमासकम् ॥ २७ ॥
सागरं विंशतिगुणसुधाक्षोदान्तरस्थितम् ।
दहेदिभपुटे सिद्धं निर्गाल्य स्रावयेत् पटात् ॥ २८ ॥
तं पक्त्वा घनतां नीतं पुटेल्लघुपुटे पुनः ।
ततो निर्गाल्य निस्राव्य स्वच्छतामुपलम्भयेत् ॥ २९ ॥
तं पाकात् किञ्चिदाश्यानं पचेत्तेजोजलोच्चयैः ।
चाङ्गेरीजम्भजरसैः पुनरावर्त्य शोषयेत् ॥ ३० ॥
कूप्यां संभृत्य संमुद्र्य स्थापयेद्भुवि सौरवत् ॥ ३१ ॥
सौरं यवानीविजयासमन्वयात् कूपीटयोनिक्षमतां प्रलम्भयेत् ।
तदन्तरावापितमग्निदानतः सिद्धं भवेद्धिङ्गुलमल्लतालकम् ॥ ३२ ॥

रहें । इस विधि से सिद्ध इस द्रव को काच कूपी में भर, उसके मुख को दृढतया मुद्रित करके, अश्व की लीद से पूर्ण भूगर्त मे - तीन मास पर्यंत गाडकर रख देवें ॥२६-२७॥ सागर अर्थात् चुल्हिका लवण (नौसादर) को वह्निक्षम करने की विधि.-सागर को उससे बीस गुणित सुधा - चूर्ण में दबाकर गज - पुटकी आंच मे फूक दे । तदुपरात, इसको पानी में घोलकर वस्त्र - पूत करके, पुन वस्त्र में से टपकालें । इस द्रव को अग्नियोग से पकाकर-घट्ट बनालें तथा पुन एक लघु पुट देवें । इसे पुन. पानी मे मिलाकर वस्त्र से छानलें । फिर, पात्र में रखकर, ऊपर के द्रवभाग को नितारले । इस तरह पुन पुनः नितारकर केवल स्वच्छ भाग ग्रहण करें । इस स्वच्छ द्रव को पुन. पकावें, किंचित् घन होनेपर, तेजो जल - राशि - मिलाकर इसे पुन उकाले । तत्पश्चात्, इस द्रव के पुन. घन होनेपर, इसमें चागेरी तथा जभीर का रस डालकर, इनका रस निःशेष न हो जाये तब तक, इसे उकालते रहें । अंतमे, कूपीमे भरकर, मुख को मुद्रित करके, सोरे की तरह, तीन मास पर्यंत, अश्व - लीदसे पूर्ण भूगर्भ मे स्थापित करके, रहने दें ॥ २८-३१ ॥

सोरे को वह्नि - क्षम बनाने का दूसरा-प्रकार तथा उसका उपयोग -भाग तथा अजवायन के सम्बन्ध से सोरा वह्नि - क्षम बन जाता है । इस प्रकार के वह्निक्षम - सोरक में आवापित किये गये (अर्थात् अन्दर दबाये गये) हिंगुल, मल्ल तथा हरिताल, अग्नि-

---

१-सौरसिद्धिमभिधाय सागरस्यापि स्वच्छताविधानपूर्वकं सिद्धिविधिरभिधीयते, सागरं चुल्हिकालवणम् । २-जलेनेति शेष । ३-ईषद्घनीभूतमिति यावत् । "पथश्चाश्यानकर्दमान्" इति रघुवंशे । ४-जम्भो जम्बीर । ५-प्रकारान्तरेणापि सौरस्य वह्निक्षमत्वं तथा तादृशस्य कुत्रोपयोग इत्यभिधीयते । ६-"भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया" इति निघण्टु । ७-कूपीटस्य जलस्य योनि कारणं वह्निरित्यर्थ । "वायोरग्निरग्नेराप." इति श्रुते ।

भङ्गायवानीपिहितः प्रदीपितः सौरो वृहद्भानुसहो भविष्यति ।
गूढं तदन्तर्दरदालमल्लकं चुल्ल्यग्निना सेत्स्यति नोड्डयिष्यते ३३ ॥

अथ रसयोगाः-

१ अम्लै रसशतमल्लौ विमर्दितौ पातयेच्छतं वारान् ।
एष प्रशमयति रसो वलासपवमानसंरम्भम् ॥ ३४ ॥
२ छिक्कायां सदृशि रसं पिष्टायां द्विगुणगन्धतेजोद्भिः ।
निक्षिप्य चतुर्यामं कूप्यां पक्त्वाऽऽददीत रसभस्म ॥ ३५ ॥
३ रसरसविधू नवाक्षौ सार्धेषु चतुःसुवर्णवलिमल्लौ ।
कूप्यां द्व्यहं परिपचेत् पवनकफौ हन्ति मल्लसिन्दूरः ॥ ३६ ॥
४ रसभागा रसतः पुनरेकैकस्तालमल्लगन्धकतः ।
कूप्यां द्व्यहं परिपचेत् पवनकफौ हन्ति तालसिन्दूरः ॥ ३७ ॥
५ त्रिपलंश्चपलो गन्धः पलार्धः कज्जलीं द्वयोः ।
कूप्यां भृत्वाऽऽलैमाम्रार्धमुपर्याकीर्य कम्पयेत् ॥ ३८ ॥
विमुद्य वालुकायन्त्रे पचेद् द्वादशयामकम् ।
जायते रससिन्दूरः सिन्दूरसदृशच्छविः ॥ ३९ ॥

योग से सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ सोरे को भांग तथा अजवायन के भीतर रखकर, क्रमवृद्ध अग्नि से प्रज्वलित करें, वह वह्नि-क्षम बन जायेगा । चूल्हे की सतत आंच देनेपर भी यह सोरा कदापि नहीं उडेगा, इतना ही नहीं-इस सोरे के भीतर रखे गये-हिंगुल, हरिताल तथा मल्ल सिद्ध भी हो जायेंगे ॥ ३३ ॥

रस योग.-(कुल प्रयोग ८३)-निंबू, जभीर, बीजपूर आदि के अम्ल-रसों में अच्छी तरह खरल करके, पारद तथा शतमल्ल का शत वार ऊर्ध्व-पातन करलें । यह 'रस' कफ तथा वात के वेग को प्रशमित कर देता है ॥ ३४ ॥ द्विगुणित गंधक तथा तेजोजल से पीसी गई नकछीकनी में समान भाग पारद मिला, काच कूपी में भरकर, बारह-घंटे वालुका यन्त्रद्वारा पकावें । इस 'रस-भस्म' को उपयोग में लें ॥ ३५ ॥ पारद तथा-रसकपूर प्रत्येक नौ तोला, गंधक ६½ तोला तथा शतमल्ल ४½ तोला इनको एकत्र, दो दिवस पर्यंत, काचकूपी में, क्रमवृद्ध अग्नि-द्वारा पकावें । यह 'मल्ल-सिंदूर' वात-कफ को नष्ट कर देता है ॥३६॥ पारद छह भाग तथा हरिताल, मल्ल और गंधक प्रत्येक एक एक भाग-इनको एकत्र पीस कूपी में भरकर दो दिन तक पकावे । यह 'ताल-सिंदूर' वात तथा कफ को दूर करता है ॥३७॥ पारद बारह तोला तथा गंधक दो तोला, इनकी कज्जली बनाकर कूपी में भरदे । फिर, ऊपर से दो तोला

१-जम्बीरनिम्बूकबीजपूरादिभि । २-ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण । ३-समानायाम् । ४-वालुकायन्त्रेणेति शेषः । ५-पारदरसकर्पूरौ । ६-अध्यर्धपञ्चकर्षो बलिः, सार्धचतु कर्षः शतमल्ल इति । ७-षड्भागाः । ८-पारद. । ९-हरितालम् ।

अमुष्य नित्यमभ्यासाच्छ्रेयः संपद्यते ध्रुवम् ।
चीण्या विशालया यामं घृष्ट्वाऽम्लैः क्षालयेद्रसम् ॥ ४० ॥

६ कूपीं काचमयीं मृदम्बरदृढां चूर्णैश्चतुर्मुष्टिभि-
र्भृत्वा हिङ्गुलजैः समाचय यथादेशं हसन्त्यां सखे ।
ज्वाला यर्हि विनिःसरेद्वदनतः कूप्यास्तदा वारिणा
नालीं प्रोक्ष्य ततो गृहाण सहसा चन्द्रोदयं नालिकम् ॥ ४१ ॥

सुवर्णगर्भता नक्तमुद्भ्रचाकचक्यता ।
भासुरारुणवर्णत्वं प्रत्यग्रोदितचन्द्रवत् ॥ ४२ ॥
तलस्थता मनोज्ञत्वं मार्दवं गुणशालिता ।
न यत्र सप्तलिङ्गानि तं न चन्द्रोदयं वदेत् ॥ ४३ ॥

हरिताल चूर्ण भरका कूपी को अच्छी तरह हिला लेवें । अब, कूपी मुख को मुद्रित करके, वालुकायत्र में रखकर ३६ घण्टे तक पकावे । सिंदूर के समान रक्ताभ 'रस-सिंदूर' सिद्ध हो जायेगा । इस रस के नियमित सेवन से, नि सदेह आरोग्य रूप सुख की प्राप्ति होती है । यहा पारद को, प्रथम इन्द्रवारुणी फल-रस तथा शक्कर-चूर्ण से तीन प्रहर तक खरल करके अम्ल रसो से प्रक्षालित करें । इस तरह शोधित पारद का उपरोक्त रस-सिंदूर में उपयोग करे ॥ ३८–४० ॥

हिंगुल के बीस तोला चूर्ण को, एक काचकूपी में भरकर, उसके चारों ओर दृढ कपडमिट्टी करलें । इस कूपी को प्रज्वलित-अंगीठी पर रख देवें । कूपी के मुख में से जब ज्वाला निकलने लगे, तब उसकी नालीपर पानी छिटकदें तथा शीघ्र ही नलिका-लग्न 'चद्रोदय' को निकाल ले । इस तरह, उपरोक्त विधि से बनाया गया चद्रोदय, वस्तुत 'चद्रोदय' नहीं है, तथापि अमुक वचक-वैद्य इस तरह सरल-विधि से तथा-कथित चंद्रोदय बना लेते है । इस प्रकार से निर्मित चद्रोदय का, अनुभवी-सद्वैद्य कदापि उपयोग न करें । वचक-वैद्यों से सावधान करने के लिये ही यह प्रयोग यहां लिखा गया है ॥ ४१ ॥

विधिपूर्वक सिद्ध किये गये चद्रोदय के लक्षण यहा दिये जाने है । निम्न लिखित सातों लक्षणो से रहित चद्रोदय को कदापि शुद्ध न समझे । १–जिसके गर्भ मे स्वर्ण हो, २–जो रात्रि मे प्रकाश युक्त रहे, ३–जो नवोदित चद्रमा के समान चकचकित अरुण-वर्ण वाला हो, ४–जिसमे तलस्थता हो, ५–जो मनोरम, ६–मृदु तथा ७–गुण

१–पूर्वोक्तरससिन्दूरकरणाय पारदशोधनप्रक्रियेयम् । सिता चात्र चीणीशब्दार्थः । विशालाया फलरसो गृह्यते । २–वञ्चकवैद्यविधीयमानचन्द्रोदयप्रकारोऽयमत्यन्तावधानपूर्वकप्रवृत्त्यर्थं भिषजां प्राकाश्यं नीत । ३–"काचायोमृद्वराटाना कूपिका चषकानि च" इत्यतो गृह्यमाणानां मृदादिकूपीनां व्युदासार्थं काचशब्दोपन्यासः । तत्राप्यरुणपिञ्जरसितान्यतमकाचघटिताम् । ४–व्यावहारिकविंशतितोलकमितैः । ५–अङ्गारधानिकायाम् ।

७ रसबलिरविरजतकनकमुक्तातालप्रवाललोहाभ्रम् ।
बद्ध्वा पैटे विपक्वा बैलितैले हेमगर्भपोट्टलिका ॥ ४४ ॥

८ एको मुक्ताफलजरजसः कुङ्कुमं च त्रिभागं
जातीजातीफलमृगभुवां द्वौ विभागौ पृथक् स्तः ।
हेम्नो मुक्तावदमलबलिः पारदोऽपि त्रिभागः
सारे मद्यः क्षयकसनकफान् हन्ति खल्लीरसोऽयम् ॥ ४५ ॥

९ स्थालीसंपुटनिर्गतो दरदतः सूतो भवेत् संस्कृतः
सप्ताहं नवसादरेण सहितैर्मायूरपादीरसैः ।
आम्रं तस्य बलिः समो मृदु तयोस्तुल्यं दलं काञ्चनं
मुक्तायोऽभ्रकवज्रभस्म विमलं कर्षप्रमाणं पृथक् ॥ ४६ ॥
खल्वे तत् सकल विमर्द्य मसृणं कृत्वाऽग्निना द्रावितं
रम्भापत्रपुटे निधाय झटिति प्रोत्पीडयेद्यत्नतः ।
सिद्धः काञ्चनपर्पटीरसवरः कृष्णासखः सेवितो
दाडिम्याः स्वरसेन हन्ति हठतो मन्दाग्निमूलामयान् ॥ ४७ ॥

युक्त हो—वही सिद्ध चंद्रोदय है । तलस्थता-गुण तभी आ सकेगा जब सु-सस्कृत एवं षड्गुण जारित, अत एव वह्नि-क्षमता को प्राप्त पारदद्वारा ही चन्द्रोदय सिद्ध किया गया हो । चंद्रोदय मे स्वर्ण-गर्भता तभी सभवित है जब उसमे तलस्थता हो, अत पूर्वोक्त विधि से यदि पारद को, प्रथम बुभुक्षित न बना लिया हो, तो तल भाग मे स्वर्ण की कृष्णवर्ण भस्म शेष रह जायेगी । स्वर्ण ऊपर उडकर नहीं चढेगा ॥ ४२—४३ ॥

पारद, गंधक, ताम्र, रजत, स्वर्ण, मुक्ता, हरिताल, प्रवाल, लोह तथा अभ्रक इनको एकत्र कौशेयादि वस्त्र से पोटली मे बाधलें । फिर इसको द्रव-भूत गंधक द्वारा अग्नियोग से पकावें । इस विधि से 'हेमगर्भ पोट्टलिका' निर्माण करें ॥ ४४ ॥ मुक्ता-भस्म तथा स्वर्ण-भस्म १-१ भाग, जावित्री, जायफल तथा कस्तूरी २-२ भाग; केसर, शुद्ध-गधक तथा पारद ३-३ भाग, इनको एकत्र लेकर दूध मे से निकाले गये नवनीत में खरल करलें । यह 'खल्ली-रस' क्षय-कास तथा कफ को नष्ट कर देता है ॥ ४५ ॥ हिंगुल मे से, स्थाली-सपुटद्वारा निकाले गये पारद को, एक सप्ताह पर्यंत, मयूरशिखा के स्वरससहित नवसादर से खरल करलें, इस विधि से वह शुद्ध हो जाता

६—यथाविधिविहितस्य चन्द्रोदयस्य लक्षणं द्वाभ्याम् । तत्प्रक्रिया च प्रसिद्धत्वादुपेक्षिता । ७—पूर्वोक्तषड्गुणगन्धजारणान्तविधया वह्निक्षमत्वमुपलम्भितेन पारदेन क्रियमाणस्यैव चन्द्रोदयस्य तलस्थत्व सभवति । अथवा रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तद्वितीयवालुकायन्त्रेणापि । तलस्थत्वेनैव च सुवर्णगर्भताऽपि भवितु शक्या नान्यथा, सुवर्णस्योड्डयनासभवादित्यभिप्राय. ।

१—कौशेयादिवस्त्रे । २—गन्धकचूर्णेऽग्नियोगाद्द्रुते । ३—मृगभू. कस्तूरी । ४—दुग्धोत्थनवनीते । ५—मयूरशिखारसै । ६—एवं सस्कृतस्य दरदाकृष्टसूतस्य ।

१० पलमितपरिमाणे निर्मलीवीजकल्के
धृतममलसुवर्णं मुद्रयित्वा द्विमाषम् ।
अथ सुरभिशकृद्भिः पाचयेत्तत्रिवारं
बलकृदखिलकार्ये योजयेत् सिद्धमेतत् ॥ ४८ ॥

अथान्ययोगाः—

११ दहेदपामार्गजकल्कगर्भितां गर्तेऽष्टकृत्वो दशगोमयोत्पलैः ।
आकल्लकल्केऽपि तथैव राजतीं मुद्रामयं रूप्यरसो महागुणः ॥ ४९ ॥

१२ तापं तापं रवेः खण्डं मरुशाखिप्रसूनजे ।
रसे निर्वापयेत् पञ्चशतकृत्वः समाहितः ॥ ५० ॥
तद्बुकसंजकल्कस्थं द्विस्त्रिर्गजपुटैः पुटेत् ।
तद्भस्म धवलप्रख्यं बलं धत्ते घृताशिनाम् ॥ ५१ ॥

है। इस तरह संशोधित पारद चार तोला तथा समभाग गंधक, इनको लेकर कज्जली निर्माण करें। फिर, कज्जली-तुल्य-प्रमाण में सोने के बरक तथा मुक्ता भस्म, लोह-भस्म, अभ्रक भस्म और हीरक-भस्म प्रत्येक १-१ तोला लेकर कज्जली में मिला, खरल में मर्दित करके खूब मुलायम बनाले। फिर, अग्नियोग से इस मिश्रण को पिघला, कदली-दलपर फैलाकर ऊपर दूसरा कदली पत्र रख शीघ्र ही वस्त्र से खूब दबादें। इस विधि से सिद्ध यह रसश्रेष्ठ 'कांचन-पर्पटी' कहलाता है। दाडिम-रस के अनुपान पूर्वक, पिप्पली चूर्ण में मिलाकर, इसका सेवन करने से, मंदाग्नि-जन्य विकार शीघ्र नष्ट हो जाते है ॥ ४६–४७ ॥ कतक-बीजों के चार तोलाभर कल्क में दो माषाभर शुद्ध स्वर्ण रखकर शराव-संपुटित करके गोबरी की आंच के तीन कपोत पुट देवें। बल देने वाले इस सिद्ध वर्ण का सभी अवस्थाओं मे-औषधादि कार्यों में-उपयोग करें ॥ ४८ ॥

—अन्य-प्रयोग-(कुल-प्रयोग-८३)—

अपामार्ग के २० तोले कल्क में, जयपुरीय झाडशाही रुपये को रखदें। फिर, एक गर्त में, दश गोमय उपलो की अग्निद्वारा दस बार पकावें। पुन इसी तरह अकल-करे के कल्क में रखकर दस बार, उपरोक्त-विधि से, पुट देवें। यह 'रूप-रस' महान् गुण दर्शाता है ॥ ४९ ॥ एक ताम्र मुद्रा को अग्नि में तपाकर, पांच-सो वार, करीर-पुष्प के स्वरस में बुझावें। इस बुझावे वाले स्वरस में, करीर-पुष्प के बुक्स को (उपरोक्त स्वरस निकाल लेने पर अवशिष्ट-बुक्स-भुक्की को) मिलाकर कल्क बनालें। अब, इस कल्क मे उपरोक्त ताम्र मुद्रा स्थापित करके, उसे दो या तीन गजपुट की आंच मे फूक देवें। श्वेत-वर्ण की इस भस्म को एक चावल-भर मात्रा में लेने से

१–कतकबीजकल्के। २–रूप्यक जयपुरीयं, तस्यैव प्रशस्तत्वात्। ३–ताम्रीं मुद्रामित्यर्थ। ४–करीरपुष्पस्वरसे। ५–मरुशाखिपुष्पबक्से निर्वापणावशिष्ट रस निक्षिप्य कल्कयेदिति। ६–विकल्पोऽयम्। ७–तन्दुलाधिकं न देयम्।

१३ प्रस्थैकगण्डीररसे क्षवस्य निर्वाप्य टङ्कमनेकवारम् ।
तट्ङ्कसान्तश्छगणोत्तमाभ्यां पचेत दिक्प्रस्थसमुद्धृताभ्याम् ॥ ५२ ॥
एष प्रयोगोऽद्भुतशक्तिधारी मुमूर्षतां प्राणगतेः प्रणेता ।
प्रत्यर्पि सारस्वतशम्भुदत्तविद्यार्थिना पञ्चनदालयेन ॥ ५३ ॥

१४ पिष्ट्वा यशाङ्क दुग्धेन पृथगक्षावयोरसौ ।
सपुटे न्यस्य संमुद्य सप्तप्रस्थोपलैः पुटेत् ॥ ५४ ॥
त्रिभिः पुटैर्भवेद्भस्म पक्वदाडिमसंनिभम् ।
भक्षयेत्तन्दुलमितं पीततांम्बूलयोगतः ॥ ५५ ॥
त्रिभिर्दिनैर्भवेत् कामी यदि पश्येत् स्त्रियं न हि ।
रक्तपित्तं जयेत् सिंहशार्करेण निषेवितम् ॥ ५६ ॥

१५ करकं न्यस्य हसन्त्यां तत्र च यसदं द्रवीकृत्य ।
तदुपरि तदर्धमानं त्रिः किर चिरयन् पुनर्नवामूलम् ॥ ५७ ॥
तदनु तदर्धं तत्र त्रिः क्षिप पूर्वमिव शृङ्गविषम् ।
सिद्धमिति यसदभसितं वल्लमितं वा ततो मनागूनम् ॥ ५८ ॥

तथा पथ्य मे घृत सेवन से बल मे वृद्धि होती है ॥ ५०–५१ ॥ राई के चौसठ तोला भर गण्डीर-स्वरस से, एक ताम्र मुद्रा को तपा तपा कर, अनेकों-(शतवार) बुझावे दे। फिर, इस मुद्रा को निष्पीडित-गण्डीर-बुक्स मे स्थापित करके, ५-५ सेर की दो पाथियो मे रखकर २५६ तोला शुष्क उपलो की अग्नि से फूक दे। यह प्रयोग अद्भुत शक्ति देता है। यहा तक कि मरणासन्न व्यक्ति के प्राणो की भी यह रक्षा करता है। मेरे ही छात्र, पजाब-निवासी शभुदत्त सारस्वत ने यह प्रयोग मुझे बताया है ॥ ५२–५३ ॥ लोह-भस्म तथा पारद प्रत्येक एक एक तोला लेकर दोनो को उदुवर के दूध से खूब घोटले। फिर, शराव-सपुट मे रखकर कपडमिट्टी करके, ४४८ तोला उपलो मे फूक दे। इस तरह तीन ही पुटो मे पक्व दाडिम-फल के समान वर्णवाली उत्तम भस्म बन जायेगी। इसकी एक चावल-भर मात्रा को तांबूल के साथ लेने से तीन दिवस मे ही, स्त्री की ओर दृष्टि न करने पर भी काम स्वत उत्पन्न होने लगता है। इसेही, रक्त-पित्त की शान्ति के लिए 'आटरूपक (अरडूसा) शार्कर' के साथ, सेवन करना चाहिये ॥ ५४–५६ ॥ अगीठी पर एक करवे (मृत्पात्र) मे यशद को पिघला लेवें। यशद से अर्ध-मात्रा मे पुनर्नवा मूल के चूर्ण को, कुछ देर ठहर ठहर कर, तीन बार, द्रवित यशद पर प्रक्षिप्त करदे। तदनन्तर, अर्ध-मात्रा भर शृंगी विष के चूर्ण को भी, इसी तरह डाल देवें। इस विधि से यशद-भस्म सिद्ध हो जायेगी। इस भस्म को एक वाल-मात्रा मे अथवा इससे कुछ न्यूनमात्रा मे-तांबूल के साथ

१–राजिकाया प्रस्थगण्डीरस्य 'गादल' इति प्रसिद्धस्य रसे। २–गोमयरचितशुष्केन दिक्प्रस्थमितेन छगणद्वयेनेति। ३–पञ्चनद 'पञ्जाब' इति प्रसिद्धो भारतभाग। ४–औदुम्बरदुग्धेन। ५–शरावयोरिति शेष। ६–आटरूषकशार्करेणेत्यर्थ। ७–त्रिकृत्वेत्यर्थः।

दलं[1] निपेव्य तदुपरि कवलय गुडपावकं[2] स्मरोद्दीप्त्यै ।
रससेवनमर्यादा दिनानि नव तैलवर्जितं पथ्यम् ॥ ५९ ॥

१६ भागैकमहिफेनस्य[3] नागभागचतुष्टयम् ।
घर्षणान्निम्बकाष्ठेन मन्दवह्निप्रदानतः ॥ ६० ॥
नागभूतिर्भवेद्भव्या मनाक् पीतहरित्प्रभा ।
शस्ता मेहादिरोगेषु वीर्यदार्ढ्यकरी मता ॥ ६१ ॥

१७ तालं[4] ज्योतिष्मतीतैले मज्जयित्वा मुहुर्मुहुः ।
द्रुतनागोपरि प्राज्ञः क्षिप्रं विष्वग्विवर्तयेत् ॥ ६२ ॥
सर्वतैलक्षये जाते तत्तालं प्राप्तसंस्कृति ।
विशालाफलगर्भस्थं त्रिभिश्छगणकैः पुटेत् ॥ ६३ ॥
एवं शतपुटैस्तालं सिद्धिमालम्बते पराम् ।
सार्धप्रस्थं ब्रुवे तैलं नागं[5] तालं[6] त्विहाम्रकम्[7] ॥ ६४ ॥

१८ शाणाः शिलातो[8] दश तालतोऽपि ते
खण्डात् खरांशा[9] दधि सांम्लमाढकम्[10] ।

लेकर, उसपर गुड-निर्मित सीरे का भोजन करे। यह भस्म तीव्र विरेचनपूर्वक कामोद्दीपन करती है। यह अनुभव सिद्ध है। इस रस के सेवन की अवधि नव दिवस तक ही है। तैलवर्जित पथ्य है ॥ ५७–५९ ॥ एक भाग अफीम तथा चार भाग सीसा लेवे। सीसे को एक मिट्टी की कडाही मे पिघला ले-फिर, उससे शनै शनै अल्पाल्प-मात्रा से अफीम-चूर्ण का प्रक्षेप करते हुये, निंब-काष्ठ से उसे रगडते रहें। इस प्रकार मदाग्निद्वारा, किञ्चित् पीत-हरित-प्रभा से युक्त उत्तम नागभस्म सिद्ध हो जायेगी। प्रमेहादि रोगो मे यह प्रशस्त है, तथा वीर्य को गाढा करती है ॥ ६०–६१ ॥ हरताल को ज्योतिष्मती के तैल में पुन. पुन बुझाकर, इस तैल लिप्त हरताल को चीमटे से पकड कर से पिघले हुये सीसे पर चारो तरफ से तपावें। तैल के सपूर्ण जल जाने पर हरिताल का सस्कार हो जाता है। इस तरह शोधित हरताल को, इन्द्रवारुणी-फल के गूदे मे रखकर तीन उपलो का पुट देवें। इस तरह शतपुट देनेपर ताल परम सिद्धि को प्राप्त होता है। उपरोक्तविधि से तैल तथा नाग प्रत्येक ९६ तोला लेवें तथा ताल चार अथवा दो तोलाभर लेवे ॥६२–६४॥ मन शिला तथा हरताल प्रत्येक तीस-माषा, शक्कर ९० माषा, किंचित् खटासयुक्त दही २५६ तोला-इन सब को एकत्र पात्र में भर

१–ताम्बूलपत्रमहितम् । २–इदं यसदभस्म महान्तं विरेकमुद्राव्य स्मरोद्दीपनं करोतीत्यनुभव । ३–खर्परस्थे द्राविते निम्बकाष्ठेन घृष्यमाणे सीसके शनै शनैरहिफेनप्रक्षेप-परम्परा कार्या । ४–हरितालम् । ५–सदशादियन्त्रेण गृहीत्वेति शेष । ६–नागमपि सार्धप्रस्थमेव । ७–पल पलार्धं वा । ८–मन शिलाया दशशाणा इत्यर्थ । ९–त्रिंशच्छाणा इत्यर्थः । १०–ईषदम्लम् ।

सर्वं संमर्द्य सप्ताहं काकणन्तीसमा वटी ।
गीर्णा[1] दुग्धानुपानेन पाण्ड्यशोथविबन्धनुत् ॥ ७६ ॥
२६ पञ्चाशदब्दोत्तरमप्यखण्डितां सखे ! समस्तेन्द्रियशक्तिमीहसे ।
अशुद्धमेवोन्दुरमारमद्धि रे तिल तिल द्वादशवत्सरावधि ॥ ७७ ॥
२७ मल्लाहिफेनदरदं वटपयसाऽऽपिष्य निर्मिता वल्यः[3] ।
सघृतसितदुग्धगीर्णाः संग्राहिण्य[4]ः सरा वितीर्णबलाः ॥ ७८ ॥
२८ जातीफलं जातिपत्रीं सर्पफेनं लवङ्गकम् ।
तोलं तोलं पृथक्कृत्वा सर्वमेकत्र कल्कयेत् ॥ ७९ ॥
कल्कान्तः कल्कतुलितं न्युस्वा हिङ्गुलखण्डकम् ।
कल्कस्य गोलकं बद्ध्वा वस्त्रग्रन्थौ शिखायुं[6]जि ॥ ८० ॥
तैलान्तरागलं[7] ग्रन्थि मज्जयित्वा शरावके ।
दीपवज्ज्वालयेन्मूर्ध्नि वासरानेकविंशतिम् ॥ ८१ ॥

चार तोला, इन सबको एकत्र एक सप्ताह तक खूब खरल करके गुंजा-भर गुटिकायें बनालें। दुग्धानुपान-पूर्वक एक वटी को प्रात निगल जायें। इसकी सेवनावधि पंदरह दिवस तक है। यह नपुसकता, शोथ तथा विबन्ध को दूर करती है ॥ ७५ ॥ हे मित्र ! पचास वर्ष की वय के उपरात भी, यदि तुम अपनी इन्द्रिय समूह की सपूर्ण शक्ति को अखडित रखना चाहते हो, तो पथ्य-रूपसे घृतप्रचुर भोजन करते हुये, बारह वर्ष तक, अरे ! एक एक तिल-जितनी मात्रा मे अशुद्ध मल्लका ही सेवन करते रहो ॥ ७६–७७ ॥ मल्ल, अफीम तथा हिगुल को वट-दुग्ध में घोटकर मूग-तुल्य गुटिकायें बनाले। मिश्री तथा घृतयुक्त दूध के साथ सेवन करने से यह बल देती है। बद्ध-मल का नि सरण करती है। भिन्न-मल को रोकती है अर्थात् अतिसार में लाभ देनी है। इस गुटी का यह अचिन्त्य-प्रभाव है ॥ ७८ ॥ जायफल, जावित्री, अफीम तथा लविंग प्रत्येक १-१ तोला लेकर इनका एकत्र कल्क बनाले। इस कल्क में तुल्य वजन जितना हिंगुल का खड रखदे तथा कल्क का गोला बनालें। इस गोलक को वस्त्र-पोटली में बाधलें-तथा पोटली के दोनों सिरो को एकत्र उमेठकर वर्तिकाकार बनालें। अब, इस पोटली को आमुख (अर्थात् पोटली की ग्रंथि तक), तैलपूर्ण शराव मे रखकर, पोटली के वर्तिकाकार सिरे को दीपक की तरह प्रज्वलित कर दें। इस तरह इकीस दिवस पर्यंत पुन पुन तैल डालकर इसको प्रदीप्त-स्थिति में रहने दें। तदनन्तर, कल्क-गोलक में से सिद्ध हिंगुल-खड को निकाल लेवें। इस हिंगुल-खड को पुन धत्तूरे के शुद्ध किये गये बीजों के कल्क में रखदें। अब, इस हिंगुल-खंड-गर्भित कल्क-गोलक को भोभल

१–प्रातरिति शेष । सेवनमर्यादा पञ्चदश दिनानि। २–शतमल्लम् । घृताशिना चात्र भवितव्यम्। ३–मुद्गप्रमाणा । ४–भिन्नवर्चसा सग्राहिण्यो, बद्धवर्चसा सरा, इति विषयभेदान्नात्र विरोध , प्रभावस्याचिन्त्यत्वाच्च सर्वं सघटते इति। ५–आफूकम्। ६–वस्त्रप्रान्तयोर्वर्तनेन शिखा कार्या। ७–शिखा गलादधोवर्तिनि तैले पुनरन्यत्तैलं प्रक्षेप्यम्।

कल्कगोलात्ततः कृष्ट्वा सिद्धं हिङ्गुलखण्डकम् ।
शुद्धधत्तूरवीजानां कल्कं कृत्वा तदन्तरे ॥ ८२ ॥
निधाय कोष्णभस्मितैस्त्रिवारमवकूलयेत् ।
कुङ्कुमाम्बरकस्तूरीकाञ्चनानि यथाक्रमम् ॥ ८३ ॥
द्वात्रिंशदष्टषट्सप्तवल्लानि परिचूर्णयेत् ।
नागवल्लीदलरसैर्विभाव्य वटिकाः कृताः ॥ ८४ ॥
वलासवातमन्दाग्निप्रमेहमथनक्षमाः ।
यथोचितानुपानेन प्रयोज्या भिषगुत्तमैः ॥ ८५ ॥

२९ स्विन्नक्षीरैर्महिष्या वटपयसि पुनर्व्यालफेनेन पिष्टं
धृत्वा स्वाद्वीफलान्तर्द्विगुणितदरदं युङ्क्ष्व गोधूमलोप्त्रीम् ।
गव्याज्ये साधु पक्त्वा मसृणय दरदं नागवल्लीपयोभि-
र्गुञ्जामञ्जुं तदीयां निशि गिल गुलिकां चेच्चिरं रन्तुमिच्छा ॥ ८६ ॥

३० त्रिघटे पलाण्डुजरसे पक्तव्यं दोलया पलं दरदम् ।
अष्टाहमुषितमवनौ गुञ्जैक कामकारिपर्णेन ॥ ८७ ॥

(चूल्हे की गरम राख) से आच्छादित करदें, इस तरह गरम-राख से तीन बार आच्छादित करें। अन्त मे, कल्क में से हिंगुल-खंड को निकाल लेवें। अब केसर, अंबर, कस्तूरी तथा स्वर्ण-पत्र को क्रमश. बत्तीस, आठ, छ तथा सात वालभर प्रमाण में लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण बनालें। अब, इस चूर्णसहित हिंगुल को एकत्र खरल मे, नागरवेल के पत्र-स्वरस की भावना देकर खूब मर्दन करके वटिकायें बांधले। यह टिकायें मदाग्नि, कफ, वात तथा प्रमेह का मथन कर देती हैं। श्रेष्ठ वैद्यो को यथोचित अनुपानपूर्वक इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७८–८५ ॥

एक तोला हिंगुल को, भैंस के १२८ तोला दूध में, दोलायंत्र-द्वारा, स्विन्न करलें। दोला को इस तरह लटकाना चाहिये कि जिससे दूध के उफान का फेन भी उसे स्पर्श न कर सके। अर्थात् दुग्धोद्भूत-बाष्पद्वारा ही हिंगुल का स्वेदन करें। जबतक दूध घट्ट न हो जावे तब तक स्वेदन करते रहें। फिर, वट के एक तोला भर दूध में छह माषा अफीम घोलकर, इस द्रव-मिश्रण से, स्विन्न हिंगुल को खरल मे खूब मर्दित कर लें। इस तरह मर्दित हिंगुल को, छुहारे मे भर देवें-तथा इसके चारो ओर गेहूं के आटे की लपरी चुपडकर, गाय के सोलह तोला घी में अच्छी तरह पकावें। तदनन्तर, नागरवेल पत्र खरस में इसको खूब बारीक घोटकर, एक गुजाभर मात्रा से चिररमणार्थ-रात्रि के समय लेवें ॥ ८६ ॥ चार तोला हिंगुल को, प्याज के तीन द्रोण रस में, दोलायंत्र द्वारा-पकावें। तदुपरांत, इसे आठ दिन तक भू-गर्त में गाड दें।

१–'भोभल' इति प्रसिद्धे । २–आच्छादयेत् । ३–काञ्चनस्य सूक्ष्मतरदलानि ग्राह्याणि । ४–दोलायन्त्रेण स्वेद । दोला च तथा लम्बनीया यथोत्तिष्ठद्भि फेनैरपि दोलास्पर्शो न भवेत् । दुग्धस्य सान्द्रतावधिस्वेद । दुग्ध च प्रस्थद्वयम् । ५–तोलकमिते

३१ जातीफलस्य फणिफेनभृतोदरस्य लिप्तस्य सत्पुटमृदा परिपाचितस्य ।
एलाकुरङ्गसुमकुङ्कुमहिङ्गुलाढ्या रेतो रुणद्धि गुटिका पयसा निपीता ॥

३२ आकल्लजातीफलजातिकैलाकस्तूरिकाकुङ्कुमहिङ्गुलानाम् ।
पटे पटुः पोट्टलिकां प्रणीय निक्षिप्य दुग्धे विपचेद्धसन्त्या ॥ ८९ ॥
ज्ञात्वाऽर्धशेषं ससितं पयस्तन्निष्काश्य तां पोट्टलिकां पिवेद्यः ।
भवन्ति भोगाय न तस्य शक्ताः प्रचण्डकामाः शतशोऽपि रामाः ॥९०॥

३३ भङ्गावीजलवङ्गहिङ्गुलविषाकल्लत्रिकट्वश्वजि-
ज्जातीसाल्मिजातिकाफलमिषेर्माषाः स्युरष्टौ पृथक् ।
पिष्ट्वा स्थाप्य च नारिकेरजठरे संसाध्य दुग्धाढके
खण्डे पञ्चगुणे क्षिपेत् पलमिता वट्यो महापुष्टिदाः ॥ ९१ ॥

३४ निमज्जितानि त्रिदिनं घृतान्तः खण्डानि वै शम्बरशृङ्गजानि ।
दिक्प्रस्थकैः काननगोमयानां दुग्धोजकल्के पच साधु षोढा ॥ ९२ ॥

नागरवेल-पत्र में एक गुजा मात्रा से सेवन करें ॥ ८७ ॥ जायफल के भीतर अफीम भरकर कपडमिट्टी करके उसे अच्छी तरह पकालें । तदुपरात, इलायची, कस्तूरी, लौंग, केसर तथा हिंगुल-इनको एकत्र जायफल-तुल्य-वजन मे लेकर, उपरोक्त सिद्ध जायफल के साथ खरल मे घोट ले । दूध के साथ इस गुटी को लेने से वीर्य-स्तभित होता है ॥ ८८ ॥ अकलकरा, जायफल, जावित्री, इलायची, कस्तूरी, केसर तथा हिंगुल-इनको एकत्र एक पोटली से अच्छी तरह बांधकर तथा इसे दूध में रखकर, अंगीठि ऊपर पकावें। जब दूध आधा रह जाये तब उसमे से पोटली निकाल लेवें । मिश्री मिलाकर इस दूध को पीने वाले की भोग-शक्ति के लिये, काम-वेगसे पीडित शत-युवतिया भी, पर्याप्त नहीं हैं ॥ ८९–९० ॥

भाग के बीज, लौंग, हिंगुल, शृगीविष, अकलकरा, त्रिकटु, करवीर, जावित्री, सालिम, जायफल तथा सौंफ प्रत्येक आठ तोला लेकर-इनका वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बना कर, नारियेल की गुलिका के भीतर भर देवे । फिर, २५६ तोला दूध मे इसे पकाकर सिद्ध करलें । अब, इस नारियेल को, पाच गुणा मिश्री मिलाकर, पीसलें, तथा चार तोला वजन की वटिकायें वाधले । यह वटिया महापुष्टि अर्पण करती हैं ॥ ९१ ॥ घृत में तीन दिवस पर्यत डुबोकर रखे गये सोलह तोला शम्बर-शृग के टुकडो को, दूधी के चौसठ तोला कल्क में रखकर, छह सो चालीस (अथवा तीन सो वीस) तोला वन्य-

---

वटदुग्धे पणमाषेणाहिफेनेन सह तोलकमितं हिङ्गुलं पिष्ट्वा खाद्वीफलान्तर्धृत्वा तदुपरि गोधूम-लोप्त्री युङ्क्ष्वेति योजना । ६–कुडवमिते । ७–द्रोणत्रयमिते ।

१–एलादिसभारो जातीफलसमो ग्राह्यः । अत्र कुरङ्गशब्देन कस्तूरी, सुमशब्देन च लवङ्ग ग्राह्यम् । २–जातिका जातिपत्री । ३–विषं शृङ्गीकम् । ४–अश्वजित् करवीर । जाती जातिपत्री । ५–कुडवमितानि । ६–शम्बरो विकटबहुविषाण शरदि शृङ्गत्यागी कश्चिन्मृगविशेष । ७–सौश्रुतै , तेन चरकानुमतपञ्चप्रस्थैरेवेति । ८–प्रस्थमिते ।

ततः स्नुहीसूर्यपयःसु देहि पुटं क्षिपेन्द्राभिधमेकमेव ।
सिद्धं सितं भस्म भजस्व मापं प्रभूतदुग्धं यदि पातुमिच्छा ॥ ९२ ॥

३५ बब्बूललम्बिकण्टकगृहगतकीटं विदाह्य घृतकर्के ।
तद्भस्म तन्दुलमितं संतानिकया तनोत्यतनुमतनुम् ॥ ९४ ॥

३६ खाद्रीफलान्यधिपयो त्रुटितान्यनस्थी-
न्यन्तःक्षुराणि पच सर्पिंषि लोप्त्रिगानि ।
सक्षौद्रभाण्डनिहितानि खनाधिचुल्लि-
भूहग्दिनान्यनुपयांसि भजस्व पुष्ट्यै ॥ ९५ ॥

३७ छोहाराफलमज्जा विभर्ज्य पयसा पिचून्मितः पीतः ।
पुष्णाति वपुषि वीर्यं किं च क्लिश्नात्यतीसारम् ॥ ९६ ॥

३८ भावितात् स्वरसैः सप्तवारं गोक्षुरकात् पलम् ।
वर्याकल्कभैषज्यमुशलीतः पृथक् पलम् ॥ ९७ ॥

गोवरी की आंच से छह वार अच्छी तरह पकावें। फिर स्नुही तथा आकडे के दूध में रख कर एक गजपुट से फूक दें। इससे शम्बर सींगों की श्वेतभस्म सिद्ध हो जायेगी। यदि, अधिक प्रमाण में दूध पीकर उसे पचा जाने की इच्छा हो तो इस भस्म को एक माषा प्रमाण में नागरवेल पत्र के साथ लेवें ॥ ९२-९३ ॥ बबूल के कांटो पर निर्मित-कोषगत कीट को, घृत स्निग्ध एव लाक्षा तथा विष से लिप्त, छोटे से मुलायम करवे में रखकर, करीब २½ प्रस्थ कडों की अग्नि से जला देवें। एक चांवल-भर इस भस्म को दूध की मलाई के साथ लेने से प्रवलकामोत्तेजना होती है ॥९४॥ गुठली रहित छुहारों को दूध से भिगो देवें। फिर, उनमे तालमखाने के वीज भरकर-तथा इनको, चारों ओर से गोधूम आटे की लपरी से प्रलिप्त करके, घी मे पकावें। तदुपरांत, इन छुहारों को, इनसे चतुर्गुणशहद पूर्ण-पात्र मे निमग्न करदें। अब, इस पात्र को, चूल्हे में गर्त खोदकर गाड देवें। इस तरह करने से, इस पात्र को नित्य प्रति चूल्हे की अग्नि का ताप लगता रहेगा। इस पात्र को एक वीस दिवस पर्यंत इसी तरह गर्त मे रहने दें। तदुपरात, पात्र को निकाल कर, एक एक छुहारे को दूध के साथ, चबाकर पीजायें। इससे पुष्टि मिलती है ॥ ९५ ॥

छुहारे के फल की मज्जा को दूध में मसलकर, दो तोला मात्रा में पीने से, शरीर में वीर्य की वृद्धि होती है तथा अतिसार मिटता है। इसी छुहारे को जल मे मसलकर लेने से विबंध दूर होता है ॥ ९६ ॥ चार तोला गोखरू को, उसी के स्वरस की सात

१—गजपुटम् । २—नागवल्लीदलादिनेति शेष । ३—अध्यर्धसेटकद्वयमितैरछगणकैरिति । ४—घृतस्निग्धे लाक्षाविषलिप्ते स्वल्पमृद्भाण्डे । ५—दुग्धोत्थया । ६—बहुलं काममित्यर्थ । ७—'छोहारा' इति प्रसिद्धानि । ८—क्षुर कोकिलाक्ष 'तालमखाना' इति लोकप्रसिद्ध । ९—खाद्रीफलापेक्षया क्षौद्रं चतुर्गुणम् । १०—तथाकरणेन प्रतिदिनं तापसंभव । ११—एकविंशतिदिनानि । १२—पुष्टिकामो दुग्धेन, विवन्धकामो जलेनेति विभाग । १३—वरी शतावरी, भैषज्यं शुण्ठी ।

माषाः षट् कुङ्कुमात् खण्डं सर्वतुल्यं समीरितम् ।
पयसैतद्रजः पीतं पुष्टिदं भवति ध्रुवम् ॥ ९८ ॥

३९ उच्चटा[1]मूलचूर्णानि पीत्वा दुग्धैः सितासखैः ।
जीर्णप्रायोऽपि भवति समुद्दीपितदर्पकः[2] ॥ ९९ ॥

४० शाणौ नवाकल्लकवानरीजौ गुञ्जाः सिताः[3] शाणमिता विचूर्ण्य ।
प्रस्थे पयस्यर्धशृते प्रपाच्य योऽश्नाति योषासु स नैति तृप्तिम् ॥१००॥

४१ शुण्ठीशाल्मलिनिर्यासौ गद्याणावस्थिशृङ्खला[4] ।
आकारकरभश्चोभा[5]वर्धगद्याणकौ पृथक् ॥ १०१ ॥
लोहवाणं[6] द्विगद्याणमष्टगद्याणकास्तिलाः ।
चपला[7] चाब्धिगद्याणा सर्वतुल्या सितोपला ॥ १०२ ॥
चूर्णमुत्तमरामाख्यं बलवीर्यकृदुत्तमम् ।
परा[8]ऽस्य कार्षिकी मात्रा ह्यनुपानं सितापयः ॥ १०३ ॥

४२ विश्वशाल्मलिनिर्यासलोहवाणजनूरजः ।
सशर्करं पयः पीतं धातुपुष्टिकरं परम् ॥ १०४ ॥

भावनायें देवें । फिर शतावरी, अकलकरा, सूठ तथा मुशली प्रत्येक चार तोला तथा केसर छह माषा लेकर, गोखरूसहित इनका एकत्र सूक्ष्म कपडछान चूर्ण बनालें । तदुपरांत, इस चूर्ण मे चूर्णसमान वजन में मिश्रीचूर्ण मिलाकर, दूध के साथ सेवन करने से निश्चय पुष्टि मिलती है ॥ ९७-९८ ॥ उटींगण मूल के चूर्ण को मिश्रीमिश्रित दूध के साथ पीकर, वृद्धत्व को प्राप्त भी, काम-भाव से उद्दीप्त हो उठता है ॥९९॥ नूतन-अकलकरा तथा कौंच प्रत्येक तीन तीन माषा तथा श्वेतगुंजा तीन माषा इनको लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनालें । इस चूर्ण को चौसठ तोला दूध में पकावें । अर्धावशेष रहने पर, दूध को उतार, उसमे शक्कर मिलाकर पीनेवाला अतृप्त की तरह रमणियो से रमण करता है ॥ १०० ॥ सूठ तथा शाल्मलिनिर्यास-प्रत्येक छह माषा, मैंदालकडी तथा अकलकरा प्रत्येक तीन माषा, लोहवाण बारह माषा, तिल अडतालीस माषा, पिप्पली चौवीस माषा तथा इन सभी द्रव्यों से समान-भाग में मिश्री, इनका एकत्र सूक्ष्म चूर्ण करले । बल तथा वीर्य की वृद्धि करने वाला यह 'उत्तम चूर्ण' उत्तमराम से प्राप्त होने के कारण 'उत्तम-राम' नाम से प्रसिद्ध है । इसकी उत्तम-मात्रा एक तोला है, तथा अनुपान है, मिश्री-मिश्रित-मधुर-दूध ॥१०१-१०३॥ सूठ, शाल्मलि निर्यास तथा लोहवाण से निर्मित चूर्ण को, शर्करा-मिश्रित दूध के साथ पीने से

१-'उटींगण' इति प्रसिद्धस्य मूलचूर्णानि दुग्धं कोष्णं चेदेतच्चूर्णक्षेपेनोत्फणतीति । २-"कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्ग." इति कोश । ३-श्वेतवर्णा गुञ्जा इति सबन्ध । ४-'मैदालकडी' इति ख्याता । ५-आकल्लकम् 'अकरकरा' इति ख्यातम् । ६-अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धं धूपोपयोगि सुगन्धि द्रव्यम् । ७-पिप्पली । ८-चूर्णम् ॥

४३ समं शाल्मलिनिर्यासैर्लोहवाणं सितोत्तरम् ।
नक्तं पयोनुपानेन द्विवल्लं तुष्टिपुष्टिदम् ॥ १०५ ॥
४४ कपर्दोपपदं लोहवाणं द्वादशतोलकम् ।
जातीफललवङ्गालं प्रत्येकं वार्धितोलकम् ॥ १०६ ॥
काचकोशभृताद्द्रव्यकोशात्तैलं समुद्धरेत् ।
तत्तैलाक्तशरीदत्तबीजाङ्कं पर्णतम्बुलजम् ॥ १०७ ॥
त्रिसन्ध्यमुपयुञ्जीत त्र्यहमेव गतस्मरः ।
पथ्यं गोधूमदुग्धाज्यशर्कराप्रभृति स्मृतम् ॥ १०८ ॥
कार्यमत्र गुरुप्रोक्तमधोभुवनयन्त्रकम् ।
आलकस्याज्यदुग्धाभ्यां त्रिवारं शुद्धिरिष्यते ॥ १०९ ॥
४५ तैलाक्तप्रतर्पाद्त्रैर्दध्नोऽमंत्रं प्रपूरयेत् ।
तन्मुखे चीनचषकं न्युब्जं संयोज्य मृत्पटैः ॥ ११० ॥
पश्चात् पातालविधिना गृह्णीयात्तैलमुत्तमम् ।
तत्तैलमर्दनाद्भङ्गो ध्वजभङ्गस्य जायते ॥ १११ ॥

धातुओ की परम-पुष्टि होती है ॥ १०४ ॥ शाल्मलि-निर्यास में समान-भाग लोह-बान मिलाकर, इनके चूर्ण का दो वाल मात्रा मे मिश्रीयुक्त दूध के अनुपान पूर्वक सेवन, पुष्टि तथा तुष्टि देता है ॥ १०५ ॥

कोडिया-लोहवान बारह तोला, जायफल, लौंग तथा हरिताल प्रत्येक चार तोला-इनको एकत्र काचकूपी मे भरकर, पाताल-यंत्रद्वारा तैल निकाल लें । इस तैल से सिक्त-सींकद्वारा एक के अंक से अंकित नागरवेल का पान खायें (अर्थात् तैल सिक्त एक सींक-भर मात्रा से पान के साथ लेवें) । इस तरह दिवस में तीन बार लेवें । तीन दिवस-पर्यंत, इसके सेवन से ही, काम का आविर्भाव होता है । प्रयोग-काल में गोधूम, घृत, दूध, शक्कर आदि पथ्य है । इस तैल को गुरु-प्रोक्त, अधोभुवन (पाताल-यंत्र) द्वारा निकालें । इसयोग में हरिताल को, प्रथम, घृत तथा दूध द्वारा तीन वार शुद्ध करके, फिर उपयोग मे लेना चाहिये ॥ १०६-१०९ ॥ तैल मे सिक्त पुराणी जूतियों को, दहि-मथन भांड में, भर देवें । फिर, भांड मुखपर चीनी कटोरी औंधी ढककर सधि को कपड-मिट्टी करदें । अब, पाताल-यंत्र-विधिद्वारा इसमें से उत्तम तैल टपकालें । इस तैल के मर्दन से ध्वज-भग-भग्न हो जाता है । धूपैल-तैल-निर्माण-प्रसग मे उपवर्णित पाताल-यंत्र-विधि ही यहां उपयोग में लेवें । अर्थात् तैल

१-षड्रक्तिकम् । "त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते" इत्युक्ते । २-'कोडिया लोहवाण' इति प्रसिद्धम् । ३-आलं हरितालम् । ४-चतुस्तोलकमित्यर्थ । ५-द्रव्यसमूहात् । ६-तत्तैलमग्ना या शरीषीका तया दत्तो लिखितो बीजाङ्क एकाङ्को यस्मिस्तत्तथाभूतम् । ७-नागवल्लीदलम् । ८-पुराणोपानद्भि । ९-दधिमन्थनभाण्डमित्यर्थ ।

यन्त्रन्यासो विपर्यस्तैः कार्यो धूपेलयन्त्रवत् ।
कोकिलैश्छगणैर्वह्निः पृथक् पाण्डवसेटकैः ॥ ११२ ॥
तथाऽत्र कौशलं कार्यं यथा तैलस्य न क्षयः ।
तैलाक्तीकृत्य पादत्राण्यतिप्रत्नानि कारयेत् ॥ ११३ ॥

४६ "भङ्गा सेर दुरस्त पाव वरकेगोभा द्विमासे भरी
आफू सर्व मिलाय तेल कचिया तोला तहां छ कहा ।
पीछै तैल पतालयन्त्रविधितें सीसीविषे खींचके
कीजे मर्दन मर्दकी फिरसही तेजी जगे क्यों नहीं" ॥ ११४ ॥

४७ वातामजस्नेहपिचौ मृगोत्थाकाश्मीरजातीफलजातिपत्रिकाः ।
एकैकशो वल्लसिताः प्रणीय विमर्द्य यामं विदधीत कूप्याम् ॥ ११५ ॥
ततः प्रलिम्पेच्छनकैरुपस्थं खादेत् पृदाकुव्रततिच्छदेन ।
नश्येच्छ्लथत्वं करकर्मजातं तृतीयमुच्चै रचयेत् पुमर्थम् ॥ ११६ ॥

४८ पातालयन्त्रपतितं तैलं वानरविड्भवम् ।
भक्षयन्म्रक्षयन् मापं भवेद्भूयो युवा नरः ॥ ११७ ॥

निकालते समय, भाण्डमुख-भाग (अर्थात् चीनी-कटोरी वाला भाग) नीचे-तथा जूतियोवाला भाग ऊपर रखना चाहिये। उपरोक्त विधि से, करीब ३२० तोला कोयलो की तथा इतने ही वजनभर कडो की आच देनी चाहिये। तैल को सावधानीपूर्वक इस तरह निकाले, जिससे तैल यथामात्रा में नष्ट हुये विना, निकल सके। यहा, जूतियों को पहिले ही से तैलसिक्त करके रख देनी चाहिये जिससे समय बीतने पर वह पुरानी भी हो जायेंगी ॥ ११०-११३ ॥ धोकर साफ की गयी भाग एक सेर, वट-शुग पावभर, अफीम दो माषा-इनको एकत्र लेकर, छह तोला कचिया तैल में निमग्न करदें। फिर, पाताल-यंत्र विधि से, शीशी में तैल निकाल लें। इसके मर्दन से ध्वज-भंग दूर होता है तथा नवयौवन सुलभ 'ताजगी' जागृत हो उठती है ॥ ११४ ॥

बादाम के एक तोलाभर तैल में, कस्तूरी, केसर, जायफल तथा जावित्री प्रत्येक एक वाल भर मिला, एक दिन तक खरल करलें। फिर, शीशी मे भरकर, सावधानतया धीरे धीरे उपस्थपर इसका प्रलेप करें तथा पान मे एक रत्ति मात्रा से सेवन भी करें। यह हस्तमैथुनोद्भूत शिथिलता को मिटाता तथा मनुष्य के तीसरे अर्थ (काम) का प्रचुर-मात्रा मे सपादन करता है ॥ ११५-११६ ॥ वानर-पुरीष में से पाताल-यन्त्रद्वारा तैल-टपका लें। इसके लेप तथा भक्षण से मनुष्य नवयौवन प्राप्त

१-यथा चीनचपकमधस्तात्कृतपादत्रभाण्डं चोपरिष्टाद्भवेत्तया कार्यम्। धूपेलतैल च क्षुद्ररोगप्रठितम्। २-पञ्चप्रस्थमानै। ३-प्रस्थमितैलार्थं। ४-धौतेति यावत्। ५-कुडवमितानि। ६४-वटशुङ्गानि। ७-षट्। ८-वातामस्नेहकर्षे। ९-कस्तूरी। १०-रक्तिप्रमाणमिति शेषः। ११-कामाभिधानम्। १२-उपस्थ इति शेषः।

४९ निष्पीतकृष्णगर्दभवृषणरुधिरया जलौकया पक्कम् ।
तैलं करनिधुवनकृतशेफःशैथिल्यहारि निर्दिष्टम् ॥ ११८ ॥
५० दक्षाण्डेसारवडवापीयूषार्द्रं पटं निबध्नाति ।
भूभृद्भिरहोभिरहो पुरुषः पौरुषमवाप्नोति ॥ ११९ ॥
५१ ब्यहात् स्खलनशीलेन केनापि यवनेन मे ।
ऋक्षजं कौकुरं शेफ. शेफोदार्ढ्यें समीरितम् ॥ १२० ॥
५२ त्रिर्मज्जितं रविपयसि कर्पटमभिषिच्य सर्पिषा किमपि ।
प्रज्वाल्य पातयेत् सर्पिर्लिम्पेत लिङ्गदार्ढ्याय ॥ १२१ ॥
५३ शिलापृष्ठे पिष्ट्वा पलतुलितमाकारकरभं
वटीः कुर्यात् पश्चाच्छतधवलवार्ताकजरसैः ।
तया लिङ्गं लिप्त्वा सह मदिरया योऽभिरमयेत्
स्त्रियं सा सर्वस्वं वितरति च तस्मै स्पृहयति ॥ १२२ ॥
५४ साकल्लकैर्नारघसै. प्रसूनैर्लिङ्गं विलासी निशि मर्दयित्वा ।
भुङ्क्ते प्रियां यः स्खलितेऽपि शुक्रे न शिश्नशैथिल्यमुरीकरोति ॥ १२३॥

करता है ॥ ११७ ॥ तरुण तथा उन्मत्त कृष्णवर्ण - गर्दभ के वृषण - गत रुधिर का पान करवा कर जलौका को तैल मे पकावें । इस तैल की मालिश से, हस्तमैथुन से उत्पन्न शिथिलता दूर होती है ॥ ११८ ॥ दक्षपक्षी के अडे के भीतरी द्रव से तथा प्रथम प्रसूता अश्वी (घोडी) के प्रथम ही प्रथम दोहे गये दूध से, वस्त्र को आर्द्र कर उपस्थ-पर बाधने से, सात दिवस मे ही पुरुष, पौरुष को प्राप्त करता है ॥११९॥ निम्न - प्रयोग मुझे एक पशु - यवन ने बताया है । रींछ तथा श्वान के उपस्थ से सिद्ध जल का लेप करने से मनुष्य का लिग दृढ होता है । रींछ के उपस्थ मे मोगरे के इत्र को मिलाकर, उसका लेप करके सभोग करने से स्त्रियो को परम आह्लाद प्राप्त होता है । श्वान के शेफ - जल का प्रलेप, स्तंभन के साथ, लिंगवृद्धि करता है ॥ १२० ॥ एक वस्त्र - खड को आकडे के दूध मे तीन दिवस तक भिगोकर रखें । फिर, इसको घी से थोडा सिक्त करलें । अब, इस वस्त्र को जलाकर घी टपकालें । उपस्थ की दृढता के लिये इस घी का प्रलेप करे ॥ १२१ ॥ एक शिलापर चार तोला अकलकरे को वार्ताक - रस मे पीसकर वटी बनालें । फिर, इसे मदिरा मे घिसकर लेप करके रमण करने से, परम आसक्ति-पूर्वक युवति उसको अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है ॥१२२॥ अकलकरे को नरगिस-पुष्प - रस से पीसलें । अब, रात्रि को इसका लेप करके, विलासी पुरुष स्त्री से सभोग

१—कृष्णवर्णो गर्दभो मत्तस्तरुणश्च गवेषणीय -। २—दक्षाण्डद्रवस्तथा सूताया वडवाया प्रथमदुग्धं पीयूषस्ताभ्यामार्द्रम् । ३—सप्तभि । ४—खञ्जेन । ५—अत्रायं विशेष । ऋक्षशेफस केनाप्यत्तरेण सह लेप । गुणश्च स्त्रीणा महानानन्दोदय । श्वशेफसो जलेन लेप , तेन स्तम्भनं वृद्धिश्च । ६—स्पष्टमिदम् । ७—नरघसनाम्ना प्रसिद्धस्य वृक्षविशेषस्य पुष्पै. ।

५५ प्रातः पर्युषितमुखो दारुसितां[1] किमपि संचर्व्य ।
तल्लालया प्रलेपाज्जायेत ध्वजसमुच्छ्रायः ॥ १२४ ॥

५६ बहुपोतपयसः[2] प्रसृतौ फणिफेनपलं[3] तथैव वातामम् ।
संपिष्य कृता वटिका वन्धं वीर्यस्य विदधाति ॥ १२५ ॥

५७ आकल्लं कुङ्कुमं जातीफलं प्रत्येकमाक्षिकम् ।
त्रिर्भावितं वटक्षीरे रजो भङ्गाविशेषजम्[4] ॥ १२६ ॥
पञ्चकार्षिकमेकत्र समस्तं साधु चूर्णयेत् ।
संविभाव्य वटक्षीरैर्वटीः कुर्याच्चणोपमाः ॥ १२७ ॥
सायं सेवेत वटिकामनुपानं घनं पयः ।
तरुणस्तरुणीं गच्छेद्रेतोरोधसमुद्धतः[5] ॥ १२८ ॥

५८ फेनं[6] व्यालस्य कर्ष नववटविटप कोरयित्वा तदन्ता
रुन्ध्याद्यतेन पक्षे गतवति च तमुद्धृत्य माषप्रमाणम् ।
प्रत्येकं कुङ्कुमैलाविधुँहरिणमदात्[7] त्रीणि जातीफलानि
स्वर्णं शाणं गुटीयं द्विचणकतुलिता वीर्यरोधं विधत्ते ॥ १२९ ॥

५९ प्रत्येकं विरचय्य माषतुलिताञ्जातीभकुम्भोद्गल-[8]
द्दानाकल्लककुङ्कुमत्रुटिकणावर्यैणगन्धाहिजान्[9] ।

करे । इससे शुक्र-स्खलन होने पर भी शिश्न में शैथिल्यनहीं आयेगा ॥१२३॥ प्रातः बासी मुख ही थोडी दालचीनी चबाकर तज्जन्य लाला से, उपस्थ को लिप्त करें। इससे ध्वज ऊंचा होता है ॥ १२४ ॥ वटदुग्ध सोलह तोला, पोस्त तथा बादाम-प्रत्येक चार तोला लेकर-एकत्र पीसकर वटी बनालें । यह वीर्य का स्तभन करती है ॥ १२५ ॥

अकलकरा, केसर तथा जायफल प्रत्येक एक तोला, इनको वटदुग्ध की तीन भावनायें दें । श्याम-पत्र-गाजेका चूर्ण पाच तोला लेवें । अब, इन सबका एकत्र सूक्ष्म-चूर्ण बना, पुन वटक्षीर में खरल करके, चने-समान वटिया बांधलें । गाढे दूध के अनुपानपूर्वक, सांझ को, एक वटी का सेवन करें । फिर दो तीन घंटे पीछे युवक, शुक्रस्तंभन-सुलभ अभिमान से, युवति के साथ क्रीडा करे ॥ १२६–१२८ ॥ नूतन वटवृक्ष के स्तभ को एक जगह से काटकर, उसके भीतर एक तोला अफीम युक्तिपूर्वक रखदे, फिर, काटकर निकाले गये वट के पढ को, उस पर यथावत् बिठा दे । एक पक्ष पीछे, अफीम निकाल लेवें । अब केसर, इलायची, कपूर तथा कस्तूरी प्रत्येक एक माषा, तथा जायफल तीन नग, सोने के वरक या भस्म तीन माषा-इनको एकत्र उपरोक्त अफीम के साथ घोटकर दो-चणक तुल्य गुटियां बांधले । ये शुक्र का निरोध करती है ॥ १२९ ॥ गज-गड-स्खलित मद-जल, जावित्री, अकलकरा,

१–'दालचिनी', इति ख्याताम् । २–वटदुग्धस्य । ३–खाखसखसज्ञम् । ४–लोके गाञा-शब्दवाच्य, तच्च श्यामपत्र ग्राह्यम् । ५–द्वित्रिघटिकानन्तर गच्छेत् । ६–सर्पफेनम् । ७–विधुः कर्पूरम् । हरिणमद कस्तूरी । ८–गजगण्डस्थलगलित मदजलम् । ९–अहिजम् आफूकम् ।

कार्याः पञ्चदशैव रम्यगुटिका एकां पिबेत्तासु यः
सक्षीरां प्रहरत्रयं रमयते रेतोऽतिरोधाद्वधूः ॥ १३० ॥

६० कद्रूकुमाराशनवाहनाङ्कवतसविद्वेषिगुरोः पदस्य ।
तैलं मनाक् पादतले प्रघृष्टं कामाहवे दैत्यगुरुं रुणद्धि ॥ १३१ ॥

६१ मायाफलानि स्वरसेन जम्बूसंवर्तिकानां परिपिष्य वद्धाः ।
रुन्धन्ति वस्त्यो हरिमन्थमाना रेतोभगप्रस्रवणातिसारान् ॥ १३२ ॥

६२ धत्तूरबीजविषमुष्टिकगन्धसूत-
जातीफलानि सलिलेन पृदाकुवल्ल्याः ।
पिष्ट्वा विशिष्य मसृणं गुटिकीकृतानि
रुन्धन्ति धातुमधिमन्मथकेलि यूनाम् ॥ १३३ ॥

६३ बीजेषु वास्तूकभवेषु सत्सु क्षौद्रेण सत्यामपि यष्टिकायाम् ।
पुनः प्रकामं किमहो यतन्ते चिरप्रयोगार्थममी युवानः ॥ १३४ ॥

केसर, इलायची, पिप्पली, शतावरी, कस्तूरी तथा अफीम प्रत्येक एक माषा लेवें । इनको एकत्र पीसकर, पन्द्रह सुंदर वटिकायें बनाले । इनमें से एक वटी को दूध के साथ निगीर्ण करें । शुक्र के अत्यत निरोध के कारण, वधू-सह तीन प्रहर तक रति-क्रीडा की जा सकती हे ॥ १३० ॥

कद्रु-कुमार अर्थात् सर्प, सर्प का अशन- भोजन करने वाला मयूर, मयूर है वाहन जिसका अर्थात् कार्तिकेय, कार्तिकेय के अंस-स्कंध-प्रदेश का भूषण अर्थात् बाण (बाण-असुर), बाणासुर का विद्वेषी अर्थात् विष्णु, विष्णु का पद अर्थात् वियद् अर्थात् अंबर, अर्थात् अंबर नामक सुगंधित-द्रव्य में से निष्कासित तैल को पादतल पर थोडा मलकर-रति-संग्राम करने से-अर्थात् काम-युद्ध मे (काम तथा बाणासुर युद्ध मे) जिस तरह शुक्राचार्य गतिरुद्ध हो गये थे उसी तरह दैत्य-गुरु अर्थात् शुक्र का निरोध होता है ॥ १३१ ॥

जामुन के नूतन पत्तों के स्वरस मे, मांजूफल को पीसकर, चणे तुल्य गोलियां बाधलें । ये शुक्र, योनिस्राव तथा अतिसार को रोकती है ॥ १३२ ॥ धत्तूरे के बीज, शुद्ध कुचला, गंधक, पारद तथा जायफल, इनको नागरवेल के पत्र-स्वरस में खरल करके सूक्ष्म तथा मुलायम बनालें । इसकी गुटिकायें मन्मथ-क्रीडा-रत युवको के शुक्र को रोकती है ॥ १३३ ॥ जब, वास्तूक के बीजों का तथा मधु-सहित मधुयष्टि का अस्तित्व है-तो फिर, ये युवक, विलंब से प्राप्य-प्रयोगो के लिये, अहो ! व्यर्थ में

१–विष्णो । २–अम्बरस्येत्यर्थ । 'वियद्विष्णुपदं वाऽपि" इति कोश । तन्नाम्न सुगन्धिद्रव्यस्येति फलितोऽर्थ । ३–शुक्रम् । ४–' माजूफल' इति प्रसिद्धानि । ५–जम्बू-नवदलानाम् । ६–विषमुष्टिक 'कुचिला' इति प्रसिद्धम् । तच्च शुद्धमादेयम् । ७–स्वर-सेन । ८–गुञ्जाप्रमाणानि ।

६४ कारवीवटकैर्गव्यं घृतं पक्त्वा समुद्धरेत् ।
तद्घृतं मान्द्यमाहत्य कन्दर्पमपि बोधयेत् ॥ १३५ ॥
६५ वटीर्विदारीकपिकच्छुगोक्षुरैर्विधाय सक्षौद्रघृतेन भो जनाः ! ।
सदैव योऽश्नाति मृषा न वर्णये तदीयवीर्येण जिता नभोजनाः ॥१३६॥
६६ वटशुङ्गभङ्गसङ्गं विभातमारभ्य वासरं क्वथितम् ।
सायं पिब सह सितया तृतीयपुरुषार्थसिद्धये दुग्धम् ॥ १३७ ॥
६७ क्षौद्रेण सममानेन पलाण्डुरसतिन्दुकम् ।
पिबतां पक्षदर्शाभिर्दिनैर्दैन्यं न दृश्यते ॥ १३८ ॥
६८ पलाण्डुक्षोदसंभिन्नैर्मुद्गद्विगुणतन्दुलैः ।
प्रकल्पिता विना नीरं कृशरा कृशपूजिता ॥ १३९ ॥
६९ बहुलालस्यवशंवद ! चिकलयिषसि चेच्चमत्कारम् ।
गिल तिन्दुकतूर्याशां स्फटीं क्षपां च गुडपावकेन सह ॥ १४० ॥

ही क्यों भटक रहे है-प्रयत्न कर रहे है ? ॥ १३४ ॥ अजवायन से निर्मित वटको से गाय के घी को सिद्ध करलें। मधु-सह यह घृत जठरानल के साथ साथ कामानल को भी उद्दीप्त करता है ॥१३५॥ विदारीकद, कौंच तथा गोखरू-इनको एकत्र पीसकर वटियां बनालें। वटियो के वजनतुल्य उनमे घी तथा शहद मिला देवे। इन वटियो का नित्य सेवन करनेवाला अपने वीर्य से देवोपर भी विजय प्राप्त कर लेता है-मेरा यह कथन असत्य नहीं है ॥ १३६ ॥ वटशुग तथा भाग को एकत्र, सुबह से लेकर दिनभर, उकालते रहें। फिर, सांझ को, मिश्रीमधुर दूध के साथ इसके सेवन से तीसरे पुरुषार्थ-काम-की सिद्धि होती है ॥ १३७ ॥ एक तोला पलाण्डु स्वरस को समभाग शहद अथवा घृत मे मिलाकर, एक पक्ष अथवा मास पर्यंत सेवन करनेवाले का दैन्य अदृश्य हो जाता है ॥ १३८ ॥ मूंग से द्विगुणित चावल लेकर, दोनो को मिला लेवें। अब, एक तपेली में, प्रथम प्याज के कचूमर को फैलाकर उसपर मूगसहित चावल की तह जमादे। इस तरह, इस तह के ऊपर, पुन प्याज के कचूमर की तह फैलादे। इस तरह एक के ऊपर एक तह जमाते जाये। तपेली का मुख थाली से ढकदें। नीचे से मन्दाग्नि दे। इस तरह जल के विना ही खिचडी सिद्ध हो जायेगी। ऊपर से हींग, लौंग, आदू, लवण, हरिद्रा आदि के प्रक्षेप सहित घृत भी मिला देवें। इस तरह निर्मित कृशरा (खिचडी) कृशता को दूर कर देती है। यहां प्याज के कचूमर को खीचडी से डेढ गुणा अधिक लेवे ॥ १३९ ॥ अत्यंत आलस्य के वशीभूत हे मानव ! यदि आपको चमत्कार देखने की इच्छा हो तो स्फटी तथा हरिद्रा प्रत्येक तीन माषा लेकर चूर्ण बनाले, तथा इसका गुड के सीरे के साथ सेवन करें ॥ १४० ॥

१-पूर्वोक्तविधिविहितैर्यवानिकावटकै। २-यावता वटीभावस्तावत्प्रमाणमत्र क्षौद्रघृतम्। तच्च परस्परमतुल्य शम्। ३-देवा। ४-प्रभातमारभ्य सर्वदिन क्वथितम्। ५-कामोद्दीप्त्यै। ६-घृतेनेति पाठान्तरम्। ७-पलाण्डुस्वरसम्। ८-त्रिंशद्दिनैरिति पर।

७० भल्लातेषु शनैः शनैरधिघृतं पक्वेषु मन्दाग्निना
रुन्ध्यादुल्मुकतो घृतं कियदपि प्रज्वाल्य युक्त्या शिखाम्।
पूतं तत्तिलनालिकेरशकलैर्भुक्तं सितासंगतं
वातं हन्ति बलं ददाति मदनं प्रोद्बोधयत्यन्वहम् ॥ १४१ ॥

७१ भल्लातगर्भगुलिकातिलनालिकेर-
वातामचारुलमुकूलककन्दरालम्।
दुग्धैः प्रपिष्य घृतभर्जितमुत्तखण्ड-
द्रावं निषेव्य सुरते वनिता भरालम् ॥ १४२ ॥

७२ भल्लातार्कसखं सखे! क्वथनतो गव्यं पवित्रं पयः
सान्द्रीकृत्य सितार्द्रवे क्षिप पुनः स्थाल्यां द्रुतं ढालय।
चन्द्रैलातिलनारिकेलशकलान्याकीर्य तस्योपरि
स्फीतां स्वीकुरु मात्रया कतलिकां चेद्वृष्यतामीहसे ॥ १४३ ॥

भिलावो को उनसे द्विगुणित घृत मे मंदाग्नि से, धीरे धीरे पकावें। जब भिलावे पक जायें तब जलते हुये अगारो द्वारा अवशिष्ट घी को प्रज्वलित करदे। इस तरह घी के कुछ अंश को जलाकर, ऊपर उठती हुई अग्नि-शिखा को, पात्रादिद्वारा ढककर युक्तिपूर्वक शात करदे। अब, इस घृत को वस्त्र मे से छानकर, मिश्री से मिला सेवन करें-साथ में तिल तथा नारियेल के छोटे छोटे टुकडो को मिलाकर खाये। यह प्रयोग वायु को दूर करता तथा बल देता है तथा प्रतिदिन कामभाव को उद्दीप्त करता रहता है ॥ १४१ ॥ भिलावे की मींगी, तिल, नारियेल, बादाम, प्रियालमज्जा, पिस्ता तथा अखरोट, इनको दूध मे घोटकर घी मे भूनले। फिर, मिश्री की चासनी मे मिला देवें। यह रसायन रति प्रसग मे अनेकों वनिताओं के लिये पर्याप्त है ॥ १४२ ॥ यन्त्रद्वारा भिलावे का अर्क निकाल लेवें। इस अर्क को गाय के पवित्र-दूध मे उकालें। जब दूध घट्ट हो जाये, तब उसमे मिश्री की तितारी चासनी मिलाकर, शीघ्र ही थाली मे जमादे-ढालदें। इसके ऊपर कपूर, तिल तथा नारियेल का भुका भुरका देवे। यदि वृष्यत्व चाहते हो तो यथामात्रा से इसकी एक स्वच्छ चकत्ती का नियमित सेवन करें ॥ १४३ ॥

काष्ठा। ९—पलाण्डुक्षोद क्षुशरोपादानादध्यवैकगुणस्तेन सभिन्नैरिति उपर्युपरि पटलत्वेन विन्यस्तै। हिङ्गुलवङ्गार्द्रखण्डलवणहरिद्राक्षेप उपरिष्टात् घृतप्रक्षेपश्च ततो मुद्राकल्पनेति। १०—कर्षचतुर्थांशाम्।

१—अष्टगुणे घृते। २—ज्वलदङ्गारत। कियदपि घृत प्रज्वाल्य युक्त्या पिधानादि-रूपया शिखा रुन्ध्यादित्यन्वय। ३—प्रतिदिनम्। ४—चारुल· प्रियालमज्जा। मुकुल्को दन्तीबीजसदृश 'पिस्ता' इति ख्यात। कन्दरालोऽक्षोट· लोके 'अखरोट' इति ख्यात औत्तरापथिक·। ५—घृतभर्जित सितातन्तुल्या समेत्य निषेवणीयम्। ६—भल्लाताना यन्त्रद्वारा निष्कासितो योऽर्कस्तद्युक्तमित्यर्थ। ७—त्रिचतुस्तन्तूद्गमाया सितातन्तुल्याम्। ८—आखादयेत्यर्थ·।

७३ भर्जयित्वा घृतप्रस्थे वरीस्वरससाधिते ।
तुल्यां स्वार्धपयःपिण्डां शुद्धगोधूमगुञ्जिकाम् ॥ १४४ ॥
द्विप्रस्थखण्डतन्तुल्यां शीतायां च क्षिपेद्धि ताम् ।
ततो यथायथं वैद्यश्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १४५ ॥
जातीफलं जातिपत्रीं व्योष पुष्पं त्वचं दलम् ।
प्रत्येकं कोलमात्राणि सालिमं मुसलीं वरीम् ॥ १४६ ॥
पृथग्द्वितोलमानानि त्रिपुटा च त्रितोलका ।
कुङ्कुमं शाणिकं माषं कस्तूर्यम्बरचन्द्रतः ॥ १४७ ॥
वातादं नारिकेरं च मुकूलं च पृथक् पलम् ।
वङ्गप्रवालहेमाभ्रं पृथक् गद्याणसंमितम् ॥ १४८ ॥
सर्वं संमेल्य तन्तुल्यां ढालयेद्रौप्यभाजने ।
इत्येष साधितः पाकः स्वर्णपर्णैरलङ्कृतः ॥ १४९ ॥
एनं प्राश्य पुरा कृष्णः स्त्रीसहस्राण्यरीरमत् ।
द्याढकोऽत्र रसो वर्यास्तन्तुल्यां दाडिमीरसः ॥ १५० ॥
एवं तुरगगन्धाया मुशल्याः शालिमस्य वा ।
चोपचिन्या विदार्या वा पाको गोक्षुरकस्य वा ॥ १५१ ॥

शतावरी स्वरस में चौसठ तोला घी सिद्ध करके, उसमें चौसठ तोला गेहूं की सूजी तथा बत्तीस तोला मावा भूनले। अब, १२८ तोला शक्कर की तितारी चासनी बनाले। चासनी के शीतल होनेपर, उसमें उपरोक्त द्रव्य डाल देवें। तदुपरांत, जातीफल, जावित्री, त्रिकटु, लौंग, तज तथा तालपत्र प्रत्येक एक एक तोला; सालिममिश्री, मुसली तथा शतावरी प्रत्येक दो तोला, छोटी इलायची तीन तोला; केसर तीन माषा; कस्तूरी, अंबर तथा कपूर प्रत्येक एक माषा, बादाम, नारियेल तथा पिस्ता प्रत्येक चार तोला, वंगभस्म, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म तथा अभ्रकभस्म प्रत्येक छह माषा - इन सभी औषधीय द्रव्यों का यथावत् प्रक्षेप करके, चासनी में अच्छी तरह मिला एक चांदी की थाली में ढाल दे। इस तरह सिद्ध किये गये पाक को स्वर्णपत्रों से अलंकृत कर देवें। उपरोक्त पाक में, शतावरी का रस ५१२ तोला लेवें तथा चासनी को दाडिमरस से सिद्ध करें। अतीतयुग में, इस पाक का सेवन करके श्रीकृष्ण ने एक सहस्र युवतियो के साथ रमण करने की शक्ति प्राप्त की थी। इसी विधि से, असगंध, मुशली, सालिम, चोपचीनी, विदारीकंद अथवा गोखरू आदि का पाक बना लेना चाहिये ॥ १४४–१५१ ॥

१–पय पिण्डमग्निसंयोगात् पिण्डाकारं पय इत्यर्थः । २–'सूजी' इति ख्यातं गोधूमचूर्णम् । ३–लवङ्गम् । ४–तालपत्रम् । ५–द्राविडी । ६–पृथगिति शेषः । ७–एषां निरुत्थं निश्चन्द्रं च भस्म ग्राह्यम् । ८–घृतसाधने । ९–दाडिमबीजरस । १०–अश्वगन्धायाः ।

७४ उद्वेगानि[1] सुजातानि[2] वपेत् प्रस्थप्रमाणतः ।
जलार्द्रगौरमृत्स्नायामिन्दुदृग्दिवसावधि[3] ॥ १५२ ॥
जलैः[4] प्रक्षाल्य तदनु सकृद्विर्भावयेत् क्रमात्[5] ।
द्वित्रिप्रस्थप्रमाणाभ्यां रसाभ्यां लुङ्गजम्भयोः ॥ १५३ ॥
भावनैका स्नुहीक्षीरकर्षैः सप्रस्थवारिभिः[6] ।
एकादश[7] ततो द्विर्द्विप्रस्थैर्निम्बूकजै[8] रसैः ॥ १५४ ॥
विभावनाभिराभिः स्युरुच्छूनानि मृदून्यपि ।
तदा तानि[9] सितापङ्के तरुणीकेतकार्कजे[10] ॥ १५५ ॥
चन्द्रकुङ्कुमसौरभ्ये सैलारजसि मज्जयेत् ।
त्रि.[11] सितैलापलं चन्द्रो[12] वल्लः[13] शाणं च कुङ्कुमम् ॥ १५६ ॥
सिद्धेष्वेकैकमासाद्य सितापङ्कपरिप्लुतम् ।
को न विन्दति तत्त्वज्ञस्तुष्टिं पुष्टिं रुचिं बलम् ॥ १५७ ॥

चौसठ तोला अच्छी सुपारियां लेकर, जलार्द्र श्वेत मिट्टी मे, इक्कीस दिवसपर्यंत, गाडकर, रहने दे । तदुपरात, इनको निकाल, पानी से धोकर साफ कर लें । फिर, इनको, मातुलुग के दो प्रस्थ रस की एक भावना तथा जभीरी निंबू के तीन प्रस्थ-रस की दो भावनाये देवें । स्नुही के एक तोला दूध को एक प्रस्थ जल मे अच्छी तरह घोलकर, उसकी भी एक भावना देवें । फिर, निंबू के दो दो प्रस्थ रस से ग्यारह भावनाये देवे । इन भावनाओ से पूगी-फल फूल जायेंगे तथा कोमल हो जायेंगे । अब, इनको केतकी के अर्क से प्रक्षालित करले । गुलाब तथा केतकी पुष्प के अर्क में मिश्री मिलाकर चासनी बनायें, चासनी मे बरास, केसर तथा इलायची चूर्ण का प्रक्षेप करके, सुगधित बनालें । अब, इस चासनी में, उपरोक्त, पूगीफल निमग्न कर देवें । इस तरह सिद्ध किये गये पूगीफलो मे से, चासनी द्रव से परिप्लुत एक नग लेकर, सेवन करने से, किस तत्त्वज्ञ को तुष्टि, पुष्टि रुचि तथा बल की प्राप्ति नहीं होगी ? उपरोक्त चासनी-निर्माण मे, तीन-प्रस्थ मिश्री चूर्ण लेना चाहिये तथा प्रक्षेप द्रव्यों

१–पूगफलानि । २–प्रशस्तानि लोके 'श्रीवर्धिनी', 'छालिया' इति च प्रसिद्धानि । ३–एकविंशतिदिनावधि । ४–अक्षारैरिति शेष । ५–द्विप्रस्थेन लुङ्गरसेनैका भावना, त्रिप्रस्थेन जम्भरसेन च द्वे भावने इति क्रम । ६–प्रस्थाम्भोलुलितै स्नुहीक्षीरैरित्यर्थ । ७–भावना इति शेष । ८–प्रतिभावना द्विप्रस्थैरिति वीप्सार्थ । ९–केतकार्केण प्रक्षालितानि । १०–सितातन्तुल्यां द्रवस्थाने तरुणीकेतकयोरर्क आदेय इति तात्पर्यार्थ. । ११–अनन्तरोक्तद्रव्याणा मानकथनम् । तत्रोद्वेगमानतस्त्रिगुणा त्रिप्रस्था सिता ग्राह्या । १२–'भीमसेनी कर्पूर' इति लोकप्रसिद्ध । १३–वल्ल इत्युपलक्षणं, तेन पञ्चगुञ्जातोऽधिकक्षेपो न कार्य इति बोध्यम् ।

७५ मधुराम्लं सामिसितं सकुङ्कुमं दुग्धसङ्गि दधि पूतम् ।
आम्रनिशारससुरभिणि घटे निभृतमनुकरोति चूतरसम् ॥ १५८ ॥
७६ गर्जराणि सुजातानि दशौं नीरे निगज्जयेत् ।
सभसनि ततस्तोये स्वेदयन्मार्दवावधि ॥ १५९ ॥
निष्कुलीकृत्य शकलान्यस्थिवर्जं प्रकल्पयेत् ।
तलयेद्घृत एकस्मिन् यथा नश्येन्न मार्दवम् ॥ १६० ॥
द्विखण्डे लोठयेत् किंवा खण्डपङ्के निमज्जयेत् ।
सैलामुकूलवातामः पाकः स्याद्गार्जरोऽद्भुतः ॥ १६१ ॥
वल्यो वृष्यः परं स्वादू राजार्हः किंच नाशयेत् ।
दाहप्रमेहपित्तास्रपिपासाप्रदरादिकान् ॥ १६२ ॥
७७ क्लीवाजमुण्डगर्भं द्रम्मकलार्धाहृतोष्मसंस्कारम् ।
संसाध्य घृतशरावं मन्दोष्णं पिब समस्तमेव शनैः ॥ १६३ ॥

मे वरास, अधिक से अधिक पांच गुंजा कम से कम एक वाल, इलायची चार तोला तथा केसर तीन माषा लेवें ॥ १५२–१५७ ॥

किंचित् खटासयुक्त मधुर दही मे थोडा दूध तथा दही से अर्धमात्रा में मिश्री-चूर्ण एवं यथामात्रा मे केशर मिलाकर वस्त्र मे से छान लेवें। अब, इसको आंबाहलदी के रस से प्रक्षालित अतएव तत्सुलभ सौरभ से उद्वासित एक मिट्टी के कोरे पात्र में भर दें। यह आम्र-रस का यथार्थ-अनुकरण करता है ॥ १५८ ॥ दश-प्रस्थ उत्तम जाति की गाजर को, प्रक्षालित करके, पानी मे वाफ ले। फिर, इसमे से अस्थियों को निकाल कर टुकडे करके छूद लेवें। अब, इस छूदे को, एक प्रस्थ-भर घृत में, इस तरह भूनें जिससे इसकी मृदुता नष्ट न हो जाये। फिर, इसी छूदे को मिश्री के चूर्ण मे अच्छी तरह सानले अथवा, मिश्रीचूर्ण की केशर रंजित चासनी मे निमग्न करदें। ऊपर से इलायची, बादाम तथा पिस्ताचूर्ण का प्रक्षेप करें। यह अद्भुत 'गार्जर-पाक' परम सुस्वादु, बलकारक तथा वृष्य एव राजपुरुषोपभोग्य है। विशेषत यह दाह, प्रमेह, रक्तपित्त, प्यास, प्रदर आदि विकारो को नष्ट कर देता है ॥१५९–१६२॥ क्लीब बकरे के मुंड-गर्भ का सोलह तोला घी में शोरबा सिद्ध करलें। फिर थोडा गरम मसाला (दो पैसो के मूल्य से जितना मिले उतना) उसमे भुरका कर, कवोष्ण होने पर, धीरे धीरे इस शोरवे को पीजाये। इस तरह सेवन करने से,

१–आम्ररसानुकारप्रकार । २–आम्रनिशा 'आमीहलदी' इति प्रसिद्धा। तद्घृष्ट-जलक्षालित इत्यर्थः । ३–दशप्रस्थोन्मितानि । ४–एकप्रस्थमिते घृते । ५–द्विगुणितखण्डे । ६–कुङ्कुमसस्कृते सितापङ्के। ७–अर्धाणकक्रीतमुष्मकम् । उष्मकशब्देन 'गरम मसाला' इति लोकप्रसिद्धं द्रव्यजातम् ।

द्रव[1]चण्डरक्तमण्डलखण्डनताण्डवमखण्डमारभते ।
पथ्यं कृशरा सघृता ससैन्धवा पोलिका वाऽपि ॥ १६४ ॥
रसकर्पूरशवाश्म[2]क्षोदसखीभिः प्रलिम्प वपुरद्भिः ।
योगेनानेन परं पथ्याशी मण्डलं[3] प्रयुक्तेन ॥ १६५ ॥
यावज्जीवं जन्तुः स्त्रीराजीर्याति वाजीव ।
प्रयतेत पिपाचयितुं किं तु व्यायामतः सर्पिः ॥ १६६ ॥

७८ मरिचैः सचमत्कारमुत्स्विन्नं कोलजं[4] पलम् ।
दक्षाण्ड[5]त्रुटिवातामस्रुकूलदध्रिपिण्डकैः ॥ १६७ ॥
मौक्तिकाम्बरकस्तूरीस्वर्ण[6]विद्रुमकुङ्कुमैः ।
कल्कीकृत्य घृतं दत्त्वा पाणिभ्यां बहु मर्दयेत् ॥ १६८ ॥
वटिकाश्चास्य शनकैस्तलिता प्राज्यसर्पिषि ।
अत्यच्छकाबुलोत्पन्नदाडिमीशर्करे[7] क्षिपेत् ॥ १६९ ॥
काञ्चनच्छदसौरभ्य[8]निक्षेपकृतसंस्क्रियाः ।
सेवेत वटिकाः सायं पयोऽनु ससितं पिबेत् ॥ १७० ॥

शरीरगत प्रचड दाह तथा रक्तमडल को खंडित कर देनेवाले अखंड-तांडवनृत्य का प्रारभ हो जाता है। गोधूम की पोलिका, ससैंधव-घृतसिक्त खीचडी पथ्य है। शरीरपर रसकर्पूर तथा मुरदासींगी के चूर्ण से भावित जल का लेप करना चाहिये। इस प्रयोग को, परम पथ्यपूर्वक चालीस दिवस तक करने से, मनुष्य जीवन पर्यंत स्त्रीसमूह से अश्व की तरह रमण करने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। इस प्रयोगकाल में व्यायाम आदि द्वारा घी को पचाने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये ॥ १६३–१६६ ॥

चार तोला वाराह-मास को मरिचचूर्ण से, स्विन्न करलें। (मरिचचूर्ण डालने से मास अच्छी तरह पक जाता है।) इस स्विन्न मांस मे दक्ष-कुक्कुट पक्षी के अंडे, इलायची, बादाम, पिस्ता, जलनिष्कासित दही का पिण्ड, मुक्ताभस्म, अंबर, कस्तूरी, स्वर्णभस्म, प्रवालभस्म तथा केसर आदि यथोचित मात्रा मे मिलाकर, कल्क बनालें। फिर घी डाल कर इस कल्क को हाथ से खूब मसल लेवें। अब, इनकी वटिकायें बना, प्रचुर घी में अच्छी तरह तलकर काबुली दाडिमस्वरस में सिद्ध की गयी चासनी मे डाल देवें। इसमें, ऊपर से सौरभार्थ इलायची-चूर्ण का प्रक्षेप करके, स्वर्णपत्र भी मिला देवें। सायंकाल को, मिश्रीयुक्त मधुर-दूध के अनुपानपूर्वक इन वटिकाओं का सेवन करें। इससे मनुष्य अश्व की तरह प्रबल काम वेगपूर्वक, प्रमदा समूह को, रतिरस से तृप्त

१–द्रवो द्रवथुः। २–शवाश्मा 'मुरदासीग' इति ख्यात। ३–चत्वारिंशद्दिनावधि। ४–वाराहमासम्। ५–दक्षाण्डं कुक्कुटाण्डम्। एतै सर्वैर्यथोचित कल्पितप्रमाणै। ६–स्वर्णस्य भस्म, तदभावे स्वर्णपत्राणि। ७–दाडिमीरसकृते सितापक्के इत्यर्थः। ८–सौरभ्यमेलादिकम्।

वाजीव प्रमदाराजीस्तर्पयेदूर्जितस्मरः ।
शतावरीरसे क्षीरगर्भं संसाधयेद्घृतम् ॥ १७१ ॥
वटिकातलने तत् स्यादुपयोगि महागुणम् ।
माषपर्णभृताया गोर्दुग्धं दधि घृतं स्मृतम् ॥ १७२ ॥
७९ दक्षाण्डसारभावितमसकृत्तिलसाङ्गभृङ्गजं चूर्णम् ।
खाब्धिदिनानि निपीतं मदिरामुष्ट्या स्मरं प्रबोधयति ॥ १७३ ॥
८० कृत्तपुच्छाङ्घ्रिवक्रान्तं सण्डं सर्पिषि पाचितम् ।
श्रीमदुत्थाश्छदाः शुष्काश्चूर्णं कुर्यात् समद्वयम् ॥ १७४ ॥
गिलेद्धारोष्णपयसा तच्चूर्णं तुल्यशर्करम् ।
पुष्ट्यै कोलोन्मिता मात्रा भोजने सैन्धवं मनाक् ॥ १७५ ॥
८१ विपाच्य पादांशवटाङ्कुरच्छदं पलद्वयं मांसमजस्य गोघृते ।
त्वक्पत्रपुष्पोषणजीरसैन्धवैश्चमत्कृतं भुंक्ष्व मनोजवृद्धये ॥ १७६ ॥
८२ अर्कं वक्ष्ये शुभोदर्कं पुंसां पुंस्त्वविवर्धनम् ।
कुङ्कुमाम्बरकस्तूरीजातीजातीफलानि भोः ॥ १७७ ॥

कर देता है। उपरोक्त योग मे, घृत को, दूध में मिलाकर, शतावरी के रस से सिद्ध करना चाहिये। वटिकाओ के तलने मे भी, परम गुणकारी इसी सिद्ध-घृत का उपयोग करे तथा यहा माषपर्ण से (वन उडद के पत्ते खाकर) परिपुष्ट वनी हुयी गाय का ही घी, दूध तथा दही ग्रहण करें ॥ १६७–१७२ ॥

पंचाग सहित भांगरे का चूर्ण तथा तिल इनको एकत्र लेकर, सात दिवसपर्यंत, कुक्कुट के अंडे के भीतरी द्रव से भावना देवें। चालीस दिवस तक, चार तोला मदिरा के साथ, इसका सेवन करे। इससे काम प्रदीप्त होता हे ॥ १७३ ॥ सांडा के मुख, पूंछ तथा पैररहित, अवशिष्ट भाग को घी मे भूनलें। सिरू-वृक्ष के शुष्क-पत्तो का चूर्ण वनावें। इन दोनो को समान भाग मे लेकर, दोनो के वजन-तुल्य, इनमे. शर्करा मिलाकर, धारोष्ण दूध के साथ पीजायें। इसकी मात्रा एक तोलाभर है। भोजन में, सैन्धव अल्प मात्रा से ही ले। यह प्रयोग पुष्टिकारक है ॥ १७४–१७५ ॥ वकरे के आठ तोला मास मे, वट के दो तोला भर शुङ्ग-चूर्ण को मिलाकर, गाय के घी में पकावें। फिर, इसमें तज, तेजपात, लौंग, मिर्च, जीरा तथा सैंधव यथोचित मात्रा मे प्रक्षिप्त करके, कामोद्दीप्ति-चमत्कार के लिये सेवन करें ॥ १७६ ॥

पुरुषो के पुंस्त्व में अभिवृद्धि करने वाले, उनके भावी कल्याण के लिये, अब

१–पूर्वोक्तयोगस्य परिभाषारूपोऽय सार्ध श्लोकः। २–कुक्कुटाण्डगर्भद्रवेण भावितम्। ३–सप्तवासरानित्युपदेश.। ४–साङ्गपञ्चाङ्गसहितो भृङ्गो मार्कव.। ५–मुष्टिः पलम्। ६–'सांडा' इति लोकप्रसिद्धम्। ७–'सिरू' इति लोकप्रसिद्धस्योपवनभूषणभूतस्य तरुविशेषस्य पत्राणि। ८–द्विकर्षोन्मितवटशुङ्गसहितम्।

लवङ्गाकल्ल[1]मल्लैलास्त्वक् श्वेतकरवीरजा[2] ।
सारलः [3]स्फीतनिर्यासः शङ्खोऽपि शुभलक्षणः ॥ १७८ ॥
शृङ्गिकं च[4]श्चुजो मज्जा मज्जा हरिणभू[5]भृतः ।
[6]नालं किमुचितं नालं कोलघण्टि[7]क[8]मत्स्ययोः ॥ १७९ ॥
द्रव्याणीमानि मानेन मापिकाणि प्रकल्[9]पयेत् ।
उशीरं नूतनं शुष्कं कुडवं तनु [10]कर्तयेत् ॥ १८० ॥
तत् सर्वं गर्भ[11]यन्त्रान्तर्विरचय्य यथा[12]क्रमम् ।
निष्कासयेदनम्भोऽर्क[13]मलसेन कृशानुना ॥ १८१ ॥
भाण्डे त्रिपादि[14]कां तत्र चषकं विपुलोदरम् ।
भाण्डास्ये सपयः पात्रं गर्भयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १८२ ॥
८३ पादोनमाढकं मां[15]सात् सेवा[16]मरुद्गर्जरात् ।
तोलकानि त्रयस्त्रिंशत् पृथ[17]गक्षं द्विजीरतः[18] ॥ १८३ ॥

मैं, एक 'अर्क' का प्रयोग बताता हूं। केसर, अंबर, कस्तूरी, जावित्री, जायफल, लौंग, अकलकरा, मल्ल, इलायची, श्वेतकरवीर की मूल-त्वक्, सरल-निर्यास, कोडिया लोहवान, शुभ-चिह्नोंवाला श्वेत शंख, शृंगीविष, एरंड फल की मज्जा, सिंह की मज्जा तथा कोल और घटिक संज्ञक मत्स्यों का मेहन, इस अंतिम-द्रव्य का ग्रहण अनुचित नहीं मानना चाहिये, इन प्रत्येक को एक एक मापा भर लेकर, जौकुट करले। अब, सोलह तोलाभर नूतन किंतु शुष्क उशीर लेकर, कैंची से काटकर, सूक्ष्म टुकडे बनालें। फिर, एक पात्र में, प्रथम उशीर के इन सूक्ष्म तृणों को बिछा दे। फिर, इन पर काष्ठौषधि द्रव्य, इस पर सुगंधित द्रव्य तथा सब से ऊपर मांस-मज्जा आदि द्रव्य यथाक्रम फैला दें। अब, जल के योग बिना, गर्भ-यंत्रद्वारा, मंदाग्नि से, इनका अर्क निकाल लेवें। उपरोक्त भाण्ड में, प्रथम एक छोटी सी तिपाई रखदें। इस तिपाई पर एक गहरे पैंदे वाली विशाल कटोरी रखकर, भाण्डमुख को जलपूर्ण पात्र से ढक देवें। यह गर्भ-यंत्र कहलाता है ॥ १७७—१८२ ॥

अजा अथवा वाराहमांस १९२ तोला, सेव, अमरूद और गाजर इन प्रत्येक

१—मल्ल शतमल्ल । २—करवीरमूलजेति सम्प्रदाय । ३—स्फीतविशेषणात् कपर्दोपपदोऽयोबाण 'कोडिआ लोहवाण' इति प्रसिद्ध । ४—एरण्डफलज । ५—सिंहस्य । ६—अलमुचित न किम्? अर्थादुचितमेवेति । ७—मेहनम् । ८—घण्टिकमत्स्यो 'घरीआर' इति ख्यातो मत्स्यविशेष । ९—यवस्थूलानि कारयेदित्यर्थ । १०—कर्तयेंति शेष । ११—गर्भयन्त्रं समनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपम् । १२—अत्रायं क्रम —भाण्डे कर्तितमुशीर प्रसार्य, तदुपरि काष्ठौषधं, ततोऽप्युपरि सौरभद्रव्यं, ततश्च मांसमिति । १३—मन्देन । १४—त्रिपादिका परित औषधसभार । १५—आजाच्छौकराद्वा । १६—सेवामरुदौ स्वनाम प्रसिद्धौ फलविशेषौ, गर्जर च कन्दविशेषम् । १७—पृथगिति पूर्वोत्तर सर्वत्र सबध्यते । १८—यद्यपि जीरद्वय कथितं तथाऽपि कृष्णजीरमेव नवमाषोन्मित क्षेप्यमिति रहस्यम् ।

एकस्तु कुक्कुटः प्रौढः सर्वमेकत्र संनयेत् ।
ततो निष्कासयेदर्कमेनं भो गर्भयन्त्रतः ॥ १८४ ॥

त्रिजातक[1]प्रतीवापं दाडिमीशार्करोत्तरम् ।
पलमस्योपयुञ्जीत द्विसन्ध्यं मण्डलावधि ॥ १८५ ॥

अर्क एष परं रुच्यो वृष्यः संतानवर्धनः ।
ग्रहणीदोषयक्ष्मघ्नो रक्तपित्तप्रसाधनः ॥ १८६ ॥

[2]अन्येऽपि बहवः सन्ति योगा गुरुमुखोद्गताः ।
ते विस्तरभयात् सर्वे मया नात्र प्रकाशिताः ॥ १८७ ॥

[3]सुधाकुम्भं हस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदाम् ।
मणिं श्रीवत्साङ्के हृदि जलनिधेर्योऽजनि पुरा
विनिघ्नन् विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ॥ १८८ ॥

का तेतीस तोला गूदा, श्वेत तथा कृष्णजीरक प्रत्येक एक तोला (यद्यपि यहां दोनो प्रकार के जीरक-ग्रहण करने का विधान बताया है, तथापि केवल नौ माषा भर कृष्ण-जीरक ही लेना उपयुक्त होगा) तथा एक प्रौढ कुक्कुट-इन सबको एकत्र लेकर, गर्भ-यंत्र द्वारा अर्क निकाल लेवें । फिर, इस अर्क का, त्रिजात-चूर्ण से युक्त 'दाडिमी-शार्कर' के साथ सुबह तथा सांझ को दो बार नित्य चार-तोला मात्रा में, पैंतालीस दिवस पर्यंत प्रयोग करें । यह अर्क अत्यंत रुचिकर, वृष्य तथा संततियों की अभिवृद्धि करनेवाला, ग्रहणीविकार तथा यक्ष्मा का संहारक एव रक्त-पित्त का प्रसाधक कहा गया है । ग्रहणी विकार यदि हो तो उपरोक्त योग में, त्रिजात का प्रक्षेप न करें ॥ १८३-१८६ ॥

गुरुमुख से उपदिष्ट और भी, अनेकों प्रयोग मैं जानता हूं, किंतु उन सभी प्रयोगों को मैं विस्तारभय से, यहां प्रकाशित नहीं करूंगा ॥ १८७ ॥

इस तरह विस्तारभय से, श्रीगुरु इस 'माला' का यहां उपसंहार करते है—

हितार्थी देवो के, अमि-कलश धारे उदधि से-
अथर्वन् छंदों के प्रथम-अगदंकार-प्रकटे ।
सुहाये श्रीवत्साकित-हृदय पै कौस्तुभ-मणी-
मिटा के विघ्नों को, सुखद विभु धन्वन्तरि बनें ॥ १८८ ॥

१-ग्रहण्या प्रतीवापो वर्ज्य इति । २-व्यासभीरवो गुरवो मालामुपसहरन्ति ।
३-चरममङ्गलमिदम् ।

श्रीमढुण्ढारदेशे हसितसुरपुरी प्राज्ञसङ्घैः समेता
गुप्ता श्रीमाधवेन स्फुरति जयपुरी काऽपि यत्र स्थितेन ।
श्रीकृष्णाख्येन वैद्यागमनिगमविदा विद्वदापद्विपत्त्यै
यत्नात् सङ्गुम्फितेयं ललतु बुधगले सिद्धभैषज्यमाला ॥ १८९ ॥

येनाशिक्षि स जीवनाथगुरुतः काव्यप्रकाशाशय-
श्छन्दश्चन्दनदासतः सगणितं वैद्यागमस्ताततः ।
सूते गन्धकजारणावधि कृता येन क्रिया नैकशः
सोऽहं नैकनवीनकाव्यकृदिह श्रीकृष्णशर्मा कविः ॥ १९० ॥

श्रीकृष्णकल्पितामेतां श्रीकृष्णः कृतिमुत्तमाम् ।
खलारब्धपरीवादादव्यादव्याजतो विभुः ॥ १९१ ॥

त्रिपञ्चनवचन्द्राब्दे फाल्गुनस्य सिते दले ।
भैषज्यमणिमालाऽसौ परिपूर्णाऽभवत् खलु ॥ १९२ ॥

श्रीमद् ढुण्ढारदेश में, स्वर्ग का उपहास करने वाली, प्रखर-पण्डितों की निवास-भूमि, श्रीमाधव-भूपति से परिपालित सुप्रसिद्ध जयपुरी नामक नगरी है। इसी नगरी के निवासी, वैद्य-शास्त्र के परम-ज्ञाता श्रीकृष्ण ने, विद्वानों की विपदा को दूर करने वाली इस 'सिद्ध-भैषज्य-मणि-माला' को यत्न-पूर्वक गूंथा है। यह पंडितो के कठप्रदेश की शोभा में अभिवृद्धि करे ॥ १८९ ॥

अनेकों नूतन काव्यो का रचयिता मैं वही सुप्रसिद्ध श्रीकृष्णशर्मा महाकवि हूं जिसने श्रीजीवनाथ गुरु से स-रहस्य काव्य प्रकाश का, श्रीचंदनदास से गणितसहित छन्द शास्त्र का तथा अपने ही पूज्य पिता से आयुर्वेद विज्ञान का अध्ययन किया एवं जिसने पारद में गन्धक-जारण-पर्यंत सस्कारो से सबंध रखनेवाली प्रात्यक्षिक-क्रियाओं को अनेक प्रकार से सपादित करी ॥ १९० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अनुग्रह-पूर्वक, श्रीकृष्ण-विरचित इस उत्तम-ग्रंथ की, दुष्टजनों के अपवाद से रक्षा करें ॥ १९१ ॥

संवत् १९५२ फाल्गुन-शुक्ल-पक्ष की पूर्णिमा को यह 'सिद्ध-भैषज्य-मणि-माला' परिपूर्ण हुई ॥ १९२ ॥

१—अस्मद्दीक्षागुरूणां सञ्ज्ञेयम्। एते सिद्धप्रयोगा प्रथितगुणगणा योगतो ध्वस्तरोगा. प्राप्तास्तत्तद्गुरूभ्य पुरुतरकरुणाचारुचर्याचरुभ्य । श्रीकृष्णाख्यैर्दिगन्तप्रसृमरसुयशोराशिभिर्व्याधिताना-वैद्याना चेष्टसिद्ध्यै बुधवरगुरुभिर्गुम्फिता सस्फुरन्ति ॥१॥ वैद्यानामुपकारिणी गुरुनियोगनिघ्नेन । टिप्पणिका रचिता मया पूर्णा चाविघ्नेन ॥ २ ॥ आसीद्दादुमहर्षिदर्शित-पथे सजातदीक्षाक्रमश्छन्द.शास्त्रविचक्षण' सुभिषजामग्रेसरश्चन्दनः । तेनायं परिलालितो निजसुतप्रेम्णाऽऽप्तविद्योदयो लक्ष्मीरामशिशु सदैव विदुषा भूयात् कृपाभाजनम् ॥ ३ ॥ यथोपदेशं विहितां यथास्थान निवेशिताम् । कृतिं मदीया सप्रेक्ष्य श्रीकृष्ण सप्रसीदतु ॥४॥ यः प्राचां भिषजा विवेद महितास्तिस्रोऽपि ता संहिता साहित्यं च सधर्मशास्त्रमभित.

श्रीलल्लुरामात्मजकुन्दनाद्यो लेभे जनिं कृष्णकवेर्हि तस्य ।
भैषज्यरत्नस्रजि सद्गुणायां पूर्णोऽभवत् पञ्चमगुच्छ एषः ॥ १९३ ॥
इति राजवैद्यमहाकविश्रीकृष्णरामभट्टविरचितायां
सिद्धभैषज्यमणिमालायां पञ्चमो गुच्छः ।

श्रीलल्लुरामजी के आत्मज श्रीकुन्दनरामजी के पुत्र, उदार-चरित्र-
श्रीकृष्ण-कवि-विरचित सद्-गुण-युक्त भैषज्य-रत्न
माला का यह पंचम-गुच्छ सपूर्ण हुआ ॥ १९३ ॥
वैद्यराज महाकवि श्रीकृष्णराम भट्ट विरचित सिद्ध-भैषज्य-मणि मालाका
पंचम-गुच्छ सपूर्ण ।

— अनुवाद-सपूर्ति मङ्गल-श्लोक —

आसीन्महाकवि साक्षाद्धन्वन्तरिरिवापरः। ज्ञानप्रदीप श्रीकृष्णो गुर्जरो भूमिनिर्जर ॥ १ ॥
चत्वारस्तनुजा जातास्तत्सुतात् श्रीकलाधरात् । तृतीयस्तेष्वहं श्रीमद्रणछोकारप्रभुनामधृक् २
सोऽहमावाल्यतो वालकविश्च वालवाग्भट । इति नानाभिधानैस्तु सर्वतो विश्रुतोऽभवम् ३
स-रहस्यायुषो वेदकाव्यशास्त्रकलादिभि. । मा देवानिव चाऽपुष्यत् स्वकलाभि कलाधर. ४
श्रीमद्दुर्गाप्रसादाच्च तच्छिष्यात् बुधतल्लजात ।
बाल्य एवाविद साङ्ग ससाख्य ज्योतिष त्रयीम् ॥ ५ ॥
आङ्ग्लवाङ्मयसर्वोच्चपदारूढ. कृपास्पदम् । सोऽह कृतार्थो मालाया कृतार्थ. पितुराज्ञया ६
भिषक्पते. कृष्णकवेः सुतस्य कलाधरस्येव कलाधरेण ।
कृता कृतार्थेन सुतेन पूर्णा मणिस्रगेषा स्फुटितप्रकाशा ॥ ७ ॥
मालामनूनामिह वैजयन्त्यास्तामेव कृष्णाय पुन सभक्त्या ।
वैश्वानराख्याय निवेदयामि सपूर्णपूर्णो यदनुग्रहेण ॥ ८ ॥

—हिंदी—अनुवाद सपूर्ण—

॥ समाप्तेयं सिद्धभेषजमणिमाला ॥

स्वच्छन्दवाक् छन्दसि । लक्ष्मीरामसुधी स एष भिषगाचार्यप्रशस्ति वहन् श्रीभैषज्यमणिस्रजो विवृतवान् गुच्छं पर पञ्चमम् ॥ ५ ॥

इति आयुर्वेदाचार्य-श्रीलक्ष्मीरामस्वामिविरचितायां सिद्धभेषजमणिमाला-
टिप्पण्या पञ्चमो गुच्छ ।

१-गुजरात प्रांत के निकट डाकोर-क्षेत्र मे विराजमान भगवान श्रीरणछोडरायजी । २-स्व पू. पिता श्रीकलाधरजी को 'चरक-सहिता' अनुलोम विलोम गति से कंठाग्र थी । चित्रकला एव वीणादिवादन मे परम निष्णात थे । आपकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी । ३-स्वनामधन्य महामहोपाध्याय स्व श्रीदुर्गाप्रसादजी । ४-परमपूज्य स्व. श्रीचंद्रशेखरजी प्रश्नवर-वेद और व्याकरणके अप्रतिम-विद्वान ।

चरकोक्त पंचाशत्-महाकषायाः

श्लोकयिता—'कविरत्न' र. कलाकर भट्ट

मुनिप्रोक्तकषायाणां हरिदत्तनियोगतः ।
छन्दोबन्धप्रयोगोऽयं सुखस्मृत्यै कृतो नवः ।

जीवकर्षभकौ-मेदे-काकोल्यौ-मधुकं-सहे ।
जीवन्ती जीवनीयानि दशेमानि जयन्त्यहो ! ॥ १ ॥

भारद्वाजी-पयस्येक्षुवाजिगधे च दुग्धिका ।
काकोल्यौ बृंहणीयोऽयं सवाट्याक्षीरिणीवला. ॥ २ ॥

चिरविल्वो-वचा-तिक्ता-चित्रकातिविषा-निशा. ।
लेखनीयो गणो मुस्ता-कुष्ठं-हैमवतीवचा ॥ ३ ॥

स्वर्णक्षीरी-त्रिवृत्-वह्निमुखी-चित्रार्क-चित्रका. ।
करज. कटुकैरण्डौ भेदनीयानि शंखिनी ॥ ४ ॥

कट्फलं-फलिनी-पिच्छा-समगा-पृश्निपर्णिका ।
सलोध्राऽम्बष्ठकी-यष्टी सधानो धातकी-मधु ॥ ५ ॥

मरिचं-नागर-चुक्रं यवानीचव्यचित्रकम् ।
कणातन्मूलभल्लातरामठं दीपनो गण. ॥ ६ ॥

इति षट्क' कषायवर्ग ।

रोहिणी-ऋषभी-ऋष्यप्रोक्ता चातिरसा स्थिरा ।
पयस्यैंद्र्यश्वगंधेति गणो बल्यो बलाद्वयम् ॥ ७ ॥

मंजिष्ठा मधुकं तुंगं चन्दनोशीरपद्मकम् ।
क्षीरकाकोलिकाऽनन्ता गणो वर्ण्यो लता सिता ॥ ८ ॥

हंसपादी विदारी च सारिवा कट्फल कणा ।
यष्टी द्राक्षेक्षुमूलानि कण्ठ्यानि बृहतीयुगम् ॥ ९ ॥

रुचक लकुचं कोलमाम्रमाम्रातक गणम् ।
हृद्यं सवदराऽम्लचुक्रवृक्षाम्लदाडिमम् ॥ १० ॥

इति चतुष्क कषायवर्गः ।

शुण्ठीमुस्तापटोलाऽग्निचव्योष्णावेल्लजानि च ।
तृप्तिघ्नानि दशेमानि वचा-मूर्वा-रसायनी ॥ ११ ॥

विषावचानिशायासबिल्वाऽग्निवत्सकानि च ।
अर्शोघ्नानि दशेमानि शुण्ठी चव्यं-हरीतकी ॥ १२ ॥

गायत्री शारदाऽरिष्टदार्वी भल्लातकाऽभया. ।
कुष्ठघ्ना. कृमिजिज्जातीप्रवालाऽमलकारग्वधाः ॥ १३ ॥

दार्वीसर्षपशम्याककुटजोशीरचंदनम् ।
कण्डूघ्नोऽयं गणो निंबयष्टीघनकरजकम् ॥ १४ ॥
वृषाऽखुपर्णी निर्गुण्डी गण्डीराऽक्षीवकेतुकम् ।
गणः कृमिघ्न किणिही कृमिघ्नोपणगोक्षुरम् ॥ १५ ॥
श्लेष्मातकशिरीषैला-श्यामा-शेफालिका-निशा ।
गणो विषघ्नो मंजिष्ठा रास्नाकतकचदनम् ॥ १६ ॥
इति षट्क कषायवर्गः ।

दर्भेक्षुवालिकेक्षूणा गुन्द्रस्य कुशकाशयो ।
षष्टिकेत्कटवीराणा मूलानि स्तन्यवृद्धये ॥ १७ ॥
दारुपाठाऽमृता मूर्वा कलिंगोपधसारिवा ।
किरातकटुका तिक्ता स्तन्यशुद्धिकरो गणः ॥ १८ ॥
कुलिंगो जटिला मेदा जीवकर्षभकौ वरी ।
काकोल्यौ सूर्पपर्ण्यौ च वर्गो वीर्यकरो मत ॥ १९ ॥
अब्धिफेनेक्षुकाण्डेक्षुकुष्ठैलवालुकेक्षुरै ।
कदंबवसुकोशीरैः शुक्र शुध्येत सकट्फलै ॥ २० ॥
इति चतुष्क. कषायवर्ग. ।

काकोल्यौ जीवको द्राक्षा मधुकं मधुपर्णिका ।
स्नेहोपगास्तु जीवन्ती स्थिरा मेदा विदारिका ॥ २१ ॥
अर्क कुलत्थ एरडो यवो माष पुनर्नवा ।
वर्गं स्वेदोपग. शिग्रुर्वृश्चीरो वदरस्तिल. ॥ २२ ॥
नीपापामार्गबिम्च्यर्कं विदुलं मधुकं मधु ।
काचनौ शणपुष्पी च गणोऽय वमनोपग. ॥ २३ ॥
रेकोपगो गणो द्राक्षापथ्याक्षा. सपरूपकम् ।
धात्रीबदरकर्कंधुकोलकाश्मर्यपीलुकम् ॥ २४ ॥
शतपुष्पा त्रिवृद्बिल्ववचावत्सकसर्षपम् ।
पिप्पलीमधुकं कुष्ठ फलमास्थापनोपगम् ॥ २५ ॥
शताह्वा गोक्षुरो दारु फलं बिल्वं पुनर्नवे ।
श्योनाकोऽरणिको रास्ना गणोऽनुवासनोपग· ॥ २६ ॥
क्षवक शिखरी पण्याविडगोषणसर्षपा ।
श्वेतायुगं कणाशिग्रु शिरोरेकोपगो गण. ॥ २७ ॥
जम्व्वाम्रदलमृल्लाजायवाम्लकोलदाडिमम् ।
षष्टिकोशीररुचक छर्दिनिग्रहणोपगम् ॥ २८ ॥

घनचंदनशुण्ठ्युशीरमुस्तवच्च पटोलीपर्पटाऽमृता·
किरातकच्छुराछत्रास्तृष्णा निग्रहणो गणः ॥ २९ ॥

द्विबृहत्यभयायासशटीशृंगीकणाऽमृता· ।
पौष्कर कोलमज्जा च हिक्कानिग्रहणे हिताः ॥ ३० ॥

इति त्रिकः कषायवर्ग· ।

पद्मापद्माद्रजोऽनन्ता-समंगा-लोध्रटिण्टुकाः ।
प्रियंग्वाम्रास्थिधातक्य· पिच्छा विड्ग्रहणो गण· ॥ ३१ ॥

पयस्याभृष्टमृद्यासश्याह्वशल्लकिपिच्छिलाः ।
विड्विरेककरो जंबू यष्टी नीलोत्पलं तिलः ॥ ३२ ॥

जम्ब्वाम्राऽश्मन्तकाऽश्वत्थभल्लातककपीतनम् ।
न्यग्रोध· खदिर· प्लक्षो मूत्र गृह्णात्युदुम्बर· ॥ ३३ ॥

कह्लार-धातकी-गुन्द्रा-यष्टी-नलिनकैरवैः ।
पद्मोत्पलशतश्वेतैर्मूत्रं याति विरागताम् ॥ ३४ ॥

वशिरो वसुको वन्दा गुन्द्रा गोकण्टकेत्कटम् ।
मूत्रस्य भेदको दर्भकुशकाशाऽश्मभेदका· ॥ ३५ ॥

इति पंचक· कषायवर्गः ।

पथ्यातामलकी शृङ्गी कच्छुरामलकीकणाः ।
कास निघ्नंति वृश्चीर क्षुद्रा द्राक्षा पुनर्नवा· ॥ ३६ ॥

सुरसाऽगुरुचण्डैलातामलक्यम्लवेतसा· ।
श्वासं हरन्ति जीवन्ती शटी बाह्लीकपौष्करम् ॥ ३७ ॥

पाटलाऽरणिकाश्मर्यबिल्वं क्षुद्रे स्थिरे नटः ।
शोथस्योन्मूलने शूलं दशमूल सगोक्षुरम् ॥ ३८ ॥

मंजिष्ठा सारिवाऽम्बष्ठा द्राक्षा पीलु परूपकम् ।
साऽमृता त्रिफला चाय गणो जीर्णयति ज्वरम् ॥ ३९ ॥

यवपष्टिकखर्जूर प्रियालेक्षुपरूपकम् ।
गण· श्रमघ्न· स-द्राक्षाफल्गुबदरदाडिमम् ॥ ४० ॥

इति पंचकः कषायवर्ग ।

चदनोशीरकाश्मर्यह्रीवेरमधुकोत्पलम् ।
दाहापहाः स्मृता· लाजा शर्करासारिवाऽमृताः ॥ ४१ ॥

भूतीकपिप्पलीव्याघ्री वाचाविश्वाऽरणिनता ।
शमयन्त्यचिरात् शीतं श्योनाकाऽगुरुधान्यका ॥ ४२ ॥

खदिरोबदरश्चार कदिरौ तिन्दुकोऽसन. ।
सप्तपर्णोऽश्वकर्णश्च पार्थश्चोदर्दंदारक. ॥ ४३ ॥
काकोली चदन सेव्यं मपर्णिण्यौ निदिग्धिके ।
वर्धमानमधूकैलाश्चागमर्दोपमर्दका ॥ ४४ ॥
कृष्णाजगधागण्डीरचव्यचित्रकदीप्यकम् ।
शूलस्योन्मूलनं शुण्ठीकणातन्मूलजीरकम् ॥ ४५ ॥

इति पंचक कपायवर्ग ।

मृद्कपाल सिता पिच्छा फलिनी मधुकं मधु ।
रुधिरस्थापकं लोध्रलाजारुधिरगैरिकम् ॥ ४६ ॥
शिरीषो वंजुलोऽशोक शैलैलवालुकट्फलम् ।
वेदनामोचको मोच कदवस्तुगपद्मके ॥ ४७ ॥
गुग्गुलो रोहिणी ब्राह्मी हिगुकैडर्यचोरका ।
सज्ञादा कदिरोऽशोको गोलोमी जटिला वचा ॥ ४८ ॥
शतवीर्या प्रिया दूर्वाऽरिष्टाऽमोघाऽव्यथा शिवा ।
गर्भमास्थापयेदैन्द्री वाट्यपुष्पी सरस्वती ॥ ४९ ॥
मंडूकपर्णी जीवन्ती रास्नापथ्याऽमृता स्थिरा ।
वर्षाभू श्रेयसी धात्री वयस. श्रेयसि स्मृता ॥ ५० ॥

इति पचक कपायवर्ग ।



परिशिष्ट १

प्रस्तारज्ञापकं यन्त्रम् ।

(तृतीय गुच्छ के ५८ वें श्लोक को देखें)

१	१	२	३	४	५	६
२	०	२	३	४	५	६
३	१	०	३	४	५	६
४	०	०	३	४	५	६
५	१	२	०	४	५	६
६	०	२	०	४	५	६
७	१	०	०	४	५	६
८	०	०	०	४	५	६
९	१	२	३	०	५	६
१०	०	२	३	०	५	६
११	१	०	३	०	५	६
१२	०	०	३	०	५	६
१३	१	२	०	०	५	६
१४	०	२	०	०	५	६
१५	१	०	०	०	५	६
१६	०	०	०	०	५	६
१७	१	२	३	४	०	६
१८	०	२	३	४	०	६
१९	१	०	३	४	०	६
२०	०	०	३	४	०	६
२१	१	२	०	४	०	६
२२	०	२	०	४	०	६
२३	१	०	०	४	०	६
२४	०	०	०	४	०	६
२५	१	२	३	०	०	६
२६	०	२	३	०	०	६
२७	१	०	३	०	०	६
२८	०	०	३	०	०	६
२९	१	२	०	०	०	६
३०	०	२	०	०	०	६
३१	१	०	०	०	०	६
३२	०	०	०	०	०	६
३३	१	२	३	४	५	०
३४	०	२	३	४	५	०
३५	१	०	३	४	५	०
३६	०	०	३	४	५	०
३७	१	२	०	४	५	०
३८	०	२	०	४	५	०
३९	१	०	०	४	५	०
४०	०	०	०	४	५	०
४१	१	२	३	०	५	०
४२	०	२	३	०	५	०
४३	१	०	३	०	५	०
४४	०	०	३	०	५	०
४५	१	२	०	०	५	०
४६	०	२	०	०	५	०
४७	१	०	०	०	५	०
४८	०	०	०	०	५	०
४९	१	२	३	४	०	०
५०	०	२	३	४	०	०
५१	१	०	३	४	०	०
५२	०	०	३	४	०	०
५३	१	२	०	४	०	०
५४	०	२	०	४	०	०
५५	१	०	०	४	०	०
५६	०	०	०	४	०	०
५७	१	२	३	०	०	०
५८	०	२	३	०	०	०
५९	१	०	३	०	०	०
६०	०	०	३	०	०	०
६१	१	२	०	०	०	०
६२	०	२	०	०	०	०
६३	१	०	०	०	०	०
६४	०	०	०	०	०	०

(तृतीय गुच्छ के ६० वे श्लोक की टिप्पणी तथा मेरु-यंत्र)

१–'एकरसादि षड्रसपर्यन्त स्वस्वप्रस्तारे कियन्तः सर्वरसभेदा, कियन्त' पञ्चचतुरादिरसभेदाः, कति च रसाभावभेदा, कियति वा प्रस्तारसख्या' इति प्रश्ने मेरुणा प्रत्युत्तर देयम्। तत्र प्रथममेकरसे कोष्ठकद्वयं, द्विरसे कोष्ठकत्रयम्, इति प्रतिरसमेकैककोष्ठकवृद्ध्या मेरुं निर्माय सर्वत्र चाद्यन्त्यकोष्ठयोरेकाङ्कमङ्कयेत्। पश्चादुपरितनकोष्ठद्वयाङ्क शृङ्खलाबन्धन्यायेनैकीकृत्यावशिष्टकोष्ठकान्यपि पूरयेत्। एवं पूरितेषु कोष्ठेषु एकरसप्रस्तारे आदौ एकरसभेद', तदन्ते च रसाभावभेद, इति सकेत। द्विरसप्रस्तारे त्वादौ सर्वरसभेद, मध्ये चैकरसभेदौ, अन्त्ये च रसाभाव। त्रिरसप्रस्तारे आदौ सर्वरसभेद, ततो द्विरसभेदा, तदग्रे चैकरसभेदा, अन्ते रसाभावः। चतूरसे चादौ सर्वरसभेदः, ततस्त्रिरसा, ततो द्विरसाः, तत एकरसभेदा', अन्ते रसाभाव। पञ्चरसेऽप्यादौ सर्वरस, ततश्चतूरसा, त्रिरसाः, द्विरसा, ततश्चैकरसभेदा यथाक्रमं, पश्चिमे च रसाभाव। षड्रसप्रस्तारे आदौ सर्वरसभेद, तत. पञ्चरसभेदा, ततश्चतूरसभेदाः, ततस्त्रिरसभेदा, ततो द्विरसभेदा', तत एकरसभेदा, अन्ते रसाभाव इति विभावनीयम्। अत्राङ्कयोगेन सख्याङ्का भवन्तीति च अङ्कपूरणप्रकारस्फुटीकरणार्थं यन्त्रन्यास —

मेरुयंत्र– १

१	१					
१	२	१				
१	३	३	१			
१	४	६	४	१		
१	५	१०	१०	५	१	
१	६	१५	२०	१५	६	१

१	१					
१	२	१				
१	३	३	१			
१	४	६	४	१		
१	५	१०	१०	५	१	
१	६	१५	२०	१५	६	१

१						
१	६					
१	५	१५				
१	४	१०	२०			
१	३	६	१०	१५		
१	२	३	४	५	६	
ओं	१	१	१	१	१	१

अत्र तृतीये यन्त्रेऽधस्तादुष्ट्रगत्याऽङ्कद्वयसकलनमिति दिक्। विस्तरभयादधिकं न प्रपञ्चितम्।

अथ केवलषड्रसप्रस्तारे सकलरसादिभेदज्ञानार्थमेकावलीमेरोर्दण्डमेर्वपरनाम्न' करणसूत्रमत्रोच्यते। यथा–"सैकरसमितैकाङ्कानूर्ध्वोर्ध्व स्थान् क्रमात् क्षिपोर्ध्वोर्ध्वम्। मुञ्चान्त्यमुपान्त्यादवतर पुनरारोह तद्वदवतर रे॥ एव पुन पुनः कुरु यावदभीष्ट भवेत् सिद्धम्। सकलरसात् पूर्वस्मात् पञ्चचतुर्य्यादिरसभेदा ॥"

अस्यार्थ –एकेनाधिकेन सहितान् रससख्यानेकाङ्कानूर्ध्वाध स्थितान् कुर्यात्, न तु नष्टोद्दिष्टवद्धताक्षरक्रमेणेति भाव । यथा १ तत एकद्वित्र्यादिक्रमेणोपर्युपर्यङ्के क्षिपेत् ।

१
१
१
१
१
१

प्रथममेक द्वितीयाङ्केन सयोज्य द्वितीयस्थाने द्व्यङ्क कुर्यात् । तृतीयाङ्केन संयोज्य तृतीयस्थाने त्र्यंक, चतुर्थेन संयोज्य चतुर्थस्थाने चतुरङ्क कुर्यादिति, एवमुत्तरोत्तर कर्तव्यं; किं तूपान्त्यमङ्कमन्त्याङ्केन न मेलयेदित्यर्थ । प्रथमावृत्तौ इयमा १ कृति सिद्धा । द्वितीययोजनायां च

६
५
४
३
२
१

सर्वोपरितनाध:स्थस्यान्त्यत्वमिति क्रमेणाधोऽध स्थितानां तत्तद्योजनाया सर्वेपामन्त्यत्वं ज्ञेयम् । द्वितीयावृत्तौ कृतायामित्थ

१
६
१५
१०
६
३
१

सिध्यति । एवं पुन: पुन कृते मेर्वाकृति सिद्धा भवति । सा चैतादृशी

१
६
१५
२०
१५
६
१

१–पताकासूत्रम् । पताकाप्रयोजन च मेरौ षड्रसप्रस्तारस्यैको भेदः सर्वरसः, षट् पञ्चरसाः, पञ्चदश चतूरसाः, विंशतिस्त्रिरसाः, पञ्चदश द्विरसाः, षडेकरसाः, एको रसाभावात्मकोऽस्ति । तत्र चतुःषष्टिभेदभिन्ने षड्रसप्रस्तारे कतमस्थले सर्वरसभेदः कतमस्थले च पञ्चरसात्मकाः कतमस्थले चतूरसात्मका इत्यादिप्रश्ने पताकयोत्तरं दातव्यमिति गुरुमुखादवगतम् । भरणप्रकारश्चेत्थं–तत्र मेरौ यावती रसाद्यङ्कसंख्या भविष्यति तावन्त्येव कोष्ठकानि पताकाया लेखनीयानीति युक्त्या सिध्यति । अथोद्दिष्टाङ्कक्रमादधोऽधःस्थितैर्दण्डभरणं विधाय सर्वाधःस्थिताङ्के ऊर्ध्वस्थितानङ्कान् क्रमेण हृत्वा शिष्टमङ्कं लिखेत् । किं च पूर्वलिखितमङ्कं न कुत्रापि लिखेत् । इदमुक्तं भवति–आदौ तावत् यत्संख्यरसानां पताका चिकीर्षिता तत्संख्या उद्दिष्टवदुत्तरोत्तरं द्विगुणिता अङ्का दण्डे स्थाप्याः, पश्चान्मेरुप्रस्ताराङ्कसंख्यया पताकाकोष्ठा वर्धनीयाः, ततः क्रमात् प्रान्तस्थिताङ्कादुपरिस्थान् सर्वानङ्कान् हरेत् । हृत्वा हृत्वाऽवशिष्टमवशिष्टमङ्कं क्रमात् पुरःस्थितकोष्ठकेषु लिखेत् । पूर्वं कुत्रापि लिखितमङ्कं शेषक्रमेण पुनरायान्तमपि तत्संख्याङ्कं नैव स्थापयेत् । यथा षड्रसपताकायामेकद्विचतुरष्टषोडशद्वात्रिंशच्चतुःषष्ट्यङ्कैरुद्दिष्टरूपैर्दण्डं रचयित्वा प्रान्तस्थिते चतुःषष्ट्यङ्के द्वात्रिंशद्धरणाच्छिष्टा अपि द्वात्रिंशत्, ते च लिखिता एवेति न पुनर्लिख्यन्ते । पुनः षोडशहरणादवशिष्टचत्वारिंशदङ्को द्वात्रिंशदग्रस्थिते कोष्ठके लिखेत् । ततस्तस्मिन्नेवाष्टाङ्कहरणात् शिष्टः षट्पञ्चाशदङ्कोऽष्टचत्वारिंशदग्रकोष्ठके लिखेत् । ततश्चतुर्हरणात् शिष्टः षष्ट्यङ्कः, तदग्रे पुनर्द्व्यङ्कहरणात् द्विषष्टिः, तदग्रे एकहरणात् त्रिषष्टिस्तस्याप्यग्रे लेख्या, एवमेकपङ्क्तिः सिद्धा भवति । ततश्च प्रान्ताङ्का द्वात्रिंशदग्रपङ्क्तिस्थाः सर्व एव मन्तव्याः, तेषु क्रमादूर्ध्वाङ्कहरणं सर्वेषु कर्तव्यम् । यथा–द्वात्रिंशदङ्के षोडशहरणात् शिष्टाः षोडश पूर्वस्थिताः नात्र स्थाप्यन्ते, ततोऽष्टाङ्कहरणेन शिष्टश्चतुर्विंशत्यङ्कः षोडशाङ्ककोष्ठकाग्रस्थितकोष्ठमालायाः प्रथमकोष्ठके लिखितुं योग्यः, ततश्चतुर्हरणादष्टाविंशतिः तदग्रकोष्ठके, ततो द्विहरणात्त्रिंशदङ्कः तदग्रे, तत एकहरणादेकत्रिंशत्, तत्पुरस्तात् पुनरष्टचत्वारिंशदङ्के षोडशहरणादवशिष्टो द्वात्रिंशदङ्क आगच्छन्नपि पूर्वलिखितत्वादुपेक्ष्यते, ततोऽष्टाङ्कहरणाच्चत्वारिंशत्, एकत्रिंशदग्रकोष्ठे स्थाप्यः । एवं क्रमेण चतुर्हरणाच्चतुश्चत्वारिंशत्, द्विहरणात् षट्चत्वारिंशत्, एकहरणात्सप्तचत्वारिंशदग्राग्रकोष्ठेषु लेख्याः, ततः षट्पञ्चाशदादिप्रान्ताङ्केषु हरणशेषाङ्का लेख्याः, ततः तृतीयपङ्क्तिरचनाय द्वितीयपङ्क्तिस्थाः सर्वे प्रान्ताङ्काः, ततस्तेष्वपि तथैव कर्तव्यम् । एवं पुनः पुनः कृते पताका सिद्धा भवति ।

६	१	१																			
५	६	२	३	५	९	१७	३३														
४	१५	४	६	७	१०	११	१३	१८	१९	२१	२५	३४	३५	३७	४१	४९					
३	२०	८	१२	१४	१५	२०	२२	२३	२६	२७	२९	३६	३८	३९	४२	४३	४५	५०	५२	५३	५७
२	१५	१६	२४	२८	३०	३१	४०	४४	४६	४७	५२	५४	५५	५८	५९	६१					
१	६	३२	४८	५६	६०	६२	६३														
०	१	६४																			
रसाः	भेदाः	०																			

प्रकारान्तरेणापि पताका पूर्यते। स प्रकारश्चैवमवधार्य.--आदावुद्दिष्टाङ्कान् क्रमेण पङ्क्त्याकार लिखेत्, तत आद्यपराङ्कयोग कृत्वा पताकाकोष्ठकेषु यथाक्रमं लिखेदिति। आद्याङ्काश्च पूरयितव्यपङ्क्ते. प्रधानाङ्कस्य पश्चात् स्थिता अवगन्तव्या। मेरुक्तप्रस्तारसंख्यया पताकाङ्का वर्धयितव्यास्तदुत्तरमागच्छन्तोऽप्यङ्का न लेख्या एवेति तावतैव पङ्क्तिपूर्ति करणीया। किंच भेदाङ्कादूर्ध्वतना अङ्का अप्यागच्छन्तो न लेख्याः, तद्भेदेषु तत्सख्याभावात् पूर्वाङ्कितमङ्कमपि न लिखेच्चेति सप्रदायः। यथा-षड्रसपताकाभरणे पूर्वं यथाक्रममुद्दिष्टाङ्का एकादिद्वात्रिंशदन्ता. स्थाप्या, तत एकाङ्कस्य पूर्वाङ्कासंभवाद्द्वितीयाङ्कमारभ्य पङ्क्तिरचना, तत्राद्याङ्क एकाङ्क एव, तस्य परे द्वितीयादय, ते चाव्यवहितानतिक्रमेण सकलस्य कोष्ठेषु समर्प्यन्ते, तथा चैकेन द्वाभ्या मिलित्वा त्र्यङ्को द्वितीयाङ्काध' स्थाप्य, तत एकेन चतुर्भिर्मिलित्वा पञ्चाङ्कस्त्र्यङ्काध, तत एकेनाष्टभि सह योगान्नवाङ्क पञ्चाङ्काधः तत एकेन षोडशभि सप्तदश नवाङ्काध, तत एकद्वात्रिंशद्योगात् त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशाध स्थाप्या., तत पङ्क्तिपूर्ति। अथ चतुरङ्कस्याधस्तथैवाङ्का लेख्या, तत्र द्वाभ्यां चतुर्भिर्मिलित्वा षट् चतुरङ्कस्याध, द्वाभ्यामष्टाभिश्च दश, तदध द्वाभ्या षोडशभिरष्टादश, दशाध द्वाभ्या द्वात्रिंशता च चतुस्त्रिंशत्तदध तत पूर्वस्थितेनैव त्र्यङ्केन षोडशभिरेकोनविंशतिस्तदध, त्र्यङ्केन द्वात्रिंशता पञ्चत्रिंशत्तदध, तत-स्त्र्यङ्काध स्थितपञ्चाङ्केनाद्यभूतेन चतुर्भिर्मिलित्वा आगच्छन्नवाङ्क पूर्वलिखितत्वान्न लिख्यते, पञ्चभिरष्टाभिस्त्रयोदश पञ्चत्रिंशदध, पञ्चभि. षोडशभिरेकविंशतिस्तदध, पञ्चभिर्द्वात्रिंशता सप्तत्रिंशत्, ततो नवभिश्चतुर्भिस्त्रयोदश पूर्वमागता अतो न लिख्यन्ते। तथा नवभिरष्टाभि सप्तदशापि तथैव। नवभि' षोडशभि पञ्चविंशति सप्तत्रिंशदध., नवभिर्द्वात्रिंशतैकचत्वारिंशत्तदध, सप्तदशभिश्चतुर्भिरेकविंशतिः पूर्वमागता। सप्तदशभिरष्टाभि. पञ्चविंशतिरपि तथैव, सप्तदश षोडश योगात् त्रयस्त्रिंशदपि पूर्वं लिखिता। सप्तदशभिर्द्वात्रिंशता चोनपञ्चाशदेकचत्वारिंशदध, तत प्रस्तारसख्यासमाप्ते पङ्क्तिरपि समाप्यैव। एवमेव सर्वा पताका पूरणीया। सर्वाग्रे च रसाभावरूपश्चतु पष्ट्यङ्क पश्चाल्लेख्य.। एतत्प्रकारदर्शकं पद्यमपि रचितम्। यथा-

"अङ्कानुद्दिष्टवद्दत्त्वा योगेनाद्यपराङ्कयो।
पताका कुरु किन्च प्राक्सिद्धमङ्कं परित्यजेत् ॥" **इति पताकाग्रन्थः।**

यन्त्रद्वयेऽपि मेरुणोक्त सर्वरसभेद एक प्रथम एवेति पताकयोत्तर पञ्चरसभेदा द्वितीयपङ्क्तिसख्याका. षट्, चतूरसभेदा. पञ्चदश, चतुरङ्काधःस्थपङ्क्तिदर्शितसंख्या इत्यादि। अन्येऽपि बहव. प्रकारा तथा सूचीमर्कट्याद्यप्रत्ययान्तराण्यपि विस्तरभयादरुचिप्रवर्तकत्वाच्च नेह प्रदर्श्यन्ते।

पताका यंत्र- २

१	२	४	८	१६	३२	६४
	३	६	१२	२४	४८	
	५	१०	२०	४०	५६	
	९	१८	३६	२८	६०	
	१७	३४	१४	४४	६२	
	३३	७	२२	५२	६३	
		११	३८	३०		
		१९	२६	४६		
		३५	४२	५४		
		१३	५०	५८		
		२१	१५	३१		
		३७	२३	४७		
		२५	३९	५५		
		४१	२७	५९		
		४९	४३	६१		
			५१			
			२९			
			४५			
			५३			
			५७			

(तृतीय गुच्छ के ९८ वें श्लोक की टिप्पणी)

तदपि रसिकानां दृष्टिपथमवतारयामि। अथालौकिकप्राकृतव्याकृतिं व्याचिख्यासुरे-तदारम्भे प्रत्यूहव्यपोहाय स्वेष्टदेवतानमोरूपं मङ्गलं संव्यवहाराय सञ्ज्ञासूत्रं च समं समुपन्यस्यति–श्रीमृड इत्यादि। मङ्गले 'प्रणम्यते' इत्याक्षिप्यते। प्रकृते च श्रीप्रभृतयो याहच्छिका सञ्ज्ञा अर्थापन्हवसिद्धिमात्रफलका, ईकारादयः सुखोच्चारणार्थत्वादविवक्षिताः; श्रीप्रभृतय सञ्ज्ञिनो वेति। क्रमप्राप्ततया सञ्ज्ञिन· सञ्ज्ञा वा सूत्रयति–कखगाघौ चच्छजझ्ञा टाठाडाढाणतौ सथदौ। धनपाफो वभमायो रोल· श प सहौक्षश्री। सञ्ज्ञाखिव सञ्ज्ञिष्व-प्यकारादय पूर्ववदविवक्षिता वबयोरैक्यम्। कादीनां संज्ञात्वमपि। वर्गसख्यासूत्रमाह– 'चत्वारो वर्गा'। वर्गा वक्ष्यमाणास्ते चत्वार एव न तु पञ्चेति सूत्रारम्भ वर्गसञ्ज्ञासूत्रम्। 'शुङ्गभघकृदधृक्र' वर्गा इत्यनुवर्तते। तेषां च यथासख्यं सञ्ज्ञासञ्ज्ञित्वम्। ऋकारो वर्णाष्टकग्रहणार्थं। भवतश्चात्र श्लोकौ–श्री कं ब्रवीति मडपा खगघान्यथा भोः। ढश्चङ्क्रमेण खटगाश्छजझास्तथा भो। झष्टं ब्रवीति पकराष्टडढान् यथा भो·। फोणं क्रमेण णशधास्तथदास्तया भो। धो भेन किं च नपफा कथिता सतच्छैर्वोथेन जेन खलु भोऽपि मयौ यदाभ्याम्। घोर नल क्ष इह शसति शं तु च पं व स लह वदति ह क्षमिवाह ठः श्रीम् ॥ २ ॥ स्वरक्रमस्तु लोकादवगन्तव्य। इत्याह–'लोकात् स्वरक्रमस्य च सिद्धि·'। अत्रानुक्ता योगा योगवाहिनो लोकात् प्रत्येतव्या इति चार्थ। 'पर प्रकृतिभेद' नामधात्वोरेव भेदो यथा धेथज्वादय, नतु सुतिवादिप्रत्ययानाम्। 'सयोगे प्रथमविकृति'। यथा– 'स्व' इति, वक्तव्ये 'न्व' इति, 'न्व' इति वक्तव्ये 'स्व' इति। शेषप्रक्रिया तु व्याकरणान्तरात्' पाणिनीयसारस्वतान्यतरस्मात्। उदाहरणमप्यस्य यथा–देवं नमामि नित्यं सिन्दूरशोभिगण्डमिभवदनम्। यस्य भजनमात्रादपि रिपव सहारमायान्ति ॥ एतस्मिन् पद्ये वाच्ये लेख्ये वा प्रोक्तन्यायेन–'धेथं सयामि सिण्यं विन्धूवक्षोजिडङ्कमिजथधसम्। मस्य धभलखाप्रादधि ढिधसो नक्षाढमामान्ति ॥ इति सिद्धं भवति। अत्रोदाहरणे पूर्वार्धे पूर्वप्रकार, उत्तरार्धे द्वितीयप्रकार सदर्शित।

प्रथमः प्रकारः

वाचका	श्री	मृ	ड.	प्री	ढ	ख	द्वा	गो	क्ष	षा	का	रिः	फ	णी	श	धः	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्व	व	ली	ह	ठी
वाच्या	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	श	ष	स	ह	क्ष	श्री.

द्वितीयः प्रकारः

वाचका·	क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	श	ष	स	ह	क्ष	श्री
वाच्या	श्री	मृ	ड	प्री	ढ	ख	द्वा	गो	क्ष	षा	का	रि.	फ	णी	श	धः	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्व	व	ली	ह	ठी

तृतीयः प्रकारः

क्रमाङ्क	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
श्लोकाक्षराणि	श्री	मृ	ड	प्री	ढ	ख	द्वा	गो	क्ष	पा	का	रि	फ	णी	श	ध.	भ	सि	ता	च्छो	थ	ज	य	दो	ध	ना	क्ष	श्व	च	ली	ह	ठी

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक स.	हिंदी अनु. पंक्ति	शुद्ध
प्रमार्जिनी	५	–	८	प्रमार्जनी
पटोलपत्रं पित्तघ्न	८	–	६	पित्तघ्नं
ओर	९	–	नीचेसे ३	और
एवमेते ।	९	–	टिप्पणी	एवमेते
श्लेष्मपदार्थं	१०	१६	–	श्लेष्मलपदार्थ
रसायिनी	१२	–	१०	रसायनी
एवमामलकेऽपि...	१३	–	टिप्पणी	एवमामलकेऽपि -कर्यार्वमान
इसके	१८	–	१७	इनके
पाण्डु...	१९	–	१६	पाण्डु, कफ,
फूल	१९	–	२५	फल
अमेध्य, अवृष्य	२०	–	१५	मेध्य, वृष्य
फुफ्फुस,	२४	–	५	फुफ्फुस-कलाशोथ
त्वचाका	२४	–	१७	वचाका
विषायति	४२	१०७	–	विषादयति
सारम्य	४४	–	टिप्पणी	सौरम्य
जलमें न डूबे	४५	–	९	जलमें डूबे
हिंगूद्राविड	५०	–	६	हिंगूद्राविद
गुणोंसे युक्त,	६३	–	नीचेसे ५	गुणो से युक्त, देव-राज से भी प्रार्थित
पयोभिरार्द्रा	६४	१९२	–	पयोभिरार्द्रा
समीर'	७४	२४१	–	समीरे
नष्ट करने मे...	७४	–	४	करने मे
विजेता वीर...	७४	–	४	विजेता वीर एवं पित्तकारक हैं ।
रुक्षस्तथा	७६	२४७	–	रुक्षस्तथा ..
लघु	८१	–	नीचेसे १	लघु तथा रोचक
मूत्रकृच्छ्र,	८१	–	नीचेसे १	मूत्रकृच्छ्र, पथरी और
रुचि	८४	–	नीचेसे १	अरुचि
पाल्व	८६	–	नीचेसे ५	पाल्वल
वातपित्त	८८	–	नीचेसे ८	कफ-पित्त

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक स.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
मुखरोग	८८	–	नीचेसे १	मुखरोग, विषविकार
गर्वी	८९	२९६	–	गुर्वी
चलाल	९०	२९८	–	वलास
किं	९०	२९८	–	कं
मृतधातु...	९०	–	११	मृतधातु अर्थात् मृत- - शुक्रकीटाणुओंको
सहा	९०	३००	–	सदा
दोष,	९१	–	९	दोष, शोष,
रूक्ष,	९१	–	५	रूक्ष, मानस-रोगों में प्रशस्त,
अर्क	९३	–	४	अर्क अर्थात् ताम्र
सभालकर	९३	–	६	सभालकर तल मे से अर्क अर्थात् ताम्र...
सिकता नामक...	९३	–	१०	सिकता नामक मूत्र-शर्करा...
द्विगुणमिति	९३	–	टिप्पणी	द्विगुणामिति
(नोसादर) .	९३	–	नीचेसे २	नोसादर) प्रवाहिका तथा प्रतिश्यायको मिटानेवाला...
द्वितीयोऽगमद्द्वितीय·	९४	अ. श्लो पं.	–	द्वितीयोऽगमदद्वितीय. ।
श्रीसिंहावतारस्य	९५	–	टिप्पणी	श्रीनृसिंहावतारस्य
नाप और. .	१०५	–	१०	धूमसे
मनोक्षं	१५४	४१	–	मनोज्ञं
सत्यभामा	१५५	–	नीचेसे ४	रुक्मिणी
साथ	१५६	–	२	स्थान में
फूले	१६१	–	नीचेसे ४	फुलके
सुभ्रष्टक	१६६	९७	–	सुभृष्ट
खरल करके	१६७	–	६	खरल करके एक एक रत्तिकी
पात्रस्तिथा	१७१	२२७	–	पात्रस्थिता
	१७७	पृष्ठ के २७ वें श्लोकानुवाद को इस तरह पढें–अफीम दो रत्ति, खदिर सार चार रत्ति तथा सूठ आठ रत्ति और तीन इलायची इनकी तीन मात्रा वना चांवल के धोवन सह सेवन करनेसे अतिसार शमन हो जाता है।		
केसर	१९७	–	५	नागकेसर

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
रवमूल	१९९	३३	–	रविमूल
सीसेको	१९९	–	१०	कासीमको
उनकी	१९९	–	१३	उसकी अर्थात् सिरे की...
	२०५	पृष्ठ गत छठे श्लोकके अनुवादमें दोनों माक्षिक ('स्वर्ण माक्षिक तथा रुप्यमाक्षिक)' की जगह 'द्विगुणितमधु' पढ़ें।		
निध्याल्य	२१२	१९	–	निधायाल्प
क्षपणानिरुभवन्ति	२१२	२०	–	क्षपणानि भवन्ति
पस्तर	२१९	–	४	प्रस्तर
लिहितो	२२०	२३	–	लिहतो
कोष्ठाशुद्धि	२२२	३	–	कोष्ठशुद्धि
	२३४	वे पृष्ठ की चतुर्थ पंक्ति को इस तरह पढें–खर्पर (जिस खपरा नामक पुनर्नवा भेद) के...		
	२३६	वें पृष्ठ की चतुर्थ पंक्ति में ' सकोरा औंधा ढकदें' इससे आगे इतना और पढ़े–"तदनन्तर, चार तोला सैंधव में एक तोला कतीरा गूंद मिला जलसे पीस चीनीपात्र के चारों ओर संधि लेप करके सुखालें। फिर, इनको तीन प्रहरतक तैल के दीपक की मंद मंद ..		
मयूरपिच्छ	२४१	–	११	मयूरपिच्छ चंद्रिका के मध्य भाग की...
घृतमें थोडे...	२४४	–	१	घृतमें भूने गये शुद्ध कुचले का किंचित् चूर्ण...
पार्श्वशूल	२४५	–	८	रुद्धान्त्रशूल
मूंज	२६२	–	नीचेसे २	मूंजकी सींकें,
बबूल,	२६३	–	१	बबूलकी फली,
यकृदोदर	२६४	–	नीचेसे ५	यकृदुदर
कलज्जिका	२६५	१८	–	कज्जलिका
भेदि	२६७	२८	–	भेदी
चावलों	२७०	–	७	चौलाई
स्नुही-क्षीरसे	२७१	–	७	स्नुही-स्वरस से
गोरख मुंडी का फल	२७१	–	अं प	गोरखमुंडी चार तोला, सैंधव दो तोला...
मुञ्ज्याः फलं	२७२	२	–	मुण्ड्या फलं

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
कषाय को ४५ दिवस	२७२	–	१	कषाय को ४ या ५ दिवस
चक्षि	२७२	६	–	चक्षु
नखम्पजो	२७३	३	–	नखम्पचो...
शिलारस	२७३	–	नीचेसे ४	शिलारस तथा सिंदूर...
निंबू	२८२	–	३	नीम
रससिंदूर	२८३	–	६	रसकपूर
शाल्मल	२९०	५०	–	शाल्मलेः
गंधाबिरोजा	२९१	–	४	गंधाबिरोजा, राल
सफेद सुरमे	२९३	–	७	एक तोला सफेद सुरमे

२९३ पृष्ठ पर ८ वीं प का वाक्य इस तरह पढे–' फिर, ६४० वन्य-गोवरी में फूंकदे। इसी तरह दो तोला दधिमंड से खरल करके पुन दस सेर गोवरी में फूंकदें। इस भस्म में से एक गुजाभर मात्रा को नवनीत के साथ चाट जायें। ...दूध, घी, शक्कर से युक्त भात ..

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
रांगेको	२९३	–	१२	सीसेको
पिस्तालीस	२९७	–	३	चौपन
...तृण प्रज्वलित रहें	२९९	–	१	उसपर तृण प्रज्वलित होने लगें .
रक्त निकाल लें	३०२	–	५	किंचित् रक्त निकाललें
एरंड	३०२	–	६	अरडूसा
निंबू	३०२	–	१०	नीम
श्वेतजीरा	३०५	–	अ पं	कृष्णजीरा
हरडै	३०९	–	७	आमले
कपूरकाचरी...	३०९	–	अ पं	कपूरकाचरी, जटामांसी,
शिलाजीत	३१०	–	१	शिलापुष्प (छरीला)

३११ वे पृष्ठ-गत 'इस चूर्ण में' इस नवमी पं को इस तरह पढें ... इस चूर्ण में इससे चतुर्गुण शत-धौत घृत मिलादें।.

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु.पंक्ति	शुद्ध
.. गंधक,	३१३	–	२	गूगल, गंधक
साबुदाना, गंधक	३१३	–	१०	साबुन, कणगूगली,

३१३ वें पृष्ठ पर हिंदी अनुवादके २९ अक के आगे ३० और लिखलें। ३० की जगह ३१ तथा ३१ की जगह ३२ करलें।...

अशुद्ध	पृष्ठ	श्लोक सं.	हिंदी अनु पंक्ति	शुद्ध
विकरा	३१५	१	–	विकार:
जलको उतार .	३१६	–	२	जलको उतार वस्त्रपूत करके
पलाशपत्र मे...	३१८	–	६	पलाशपत्र में चूना तथा
कालिङ्ग	३१९	३२	–	कलिंद
सौगन्धमुखा	३१९	३५	–	सौगन्ध्यमुखा
वृक्षाम्ल १ तोला,	३१९	३५	–	वृक्षाम्ल (सीमाक)
सीमाकभस्म् १½ तो			–	१ तोला ४ रत्ति–
दन्तदर्व्य	३२१	४२	–	दन्तदार्व्य
चूर्ण को	३२४	–	११	चूर्णको अथवा समुद्र-फेन चूर्णको
२५६ तोला रसांजन	३२७	–	अ प	१६ तोला रसाजन को
	३२० वे पृष्ठ गत २९ वें श्लोकके हिंदी अनुवाद में जसद की जगह सीसा पढें ।			
तीव्र-विकारसमूहरूप	३३०	–	१०	तीव्र-विकार-समूह का. .
इस तत्र का ..	३३३	–	अ. प	इस तंत्रमें, सावर मनु (मत्र) का उपदेश महिलाओंमें दिया है ।
४५	३३५	–	२	४ या ५
स्थानगत	३३६	–	११	स्थानगत दारुणक आदि.
डोकार प्रभु	३९२	२	–	डाकोरप्रभु
वालवाग्भट	३९२	३	–	शिशुवाग्भट.